हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

[प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये स्वीकृत]

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, एम० ए०, डी० फिल्०

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

माता-पिता की महानता
और आरती के
संतोष को

परिचय

हिन्दी कहानी-साहित्य अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा अधिक गति
है। मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन ने इस स
के विकास में बहुत अधिक योग दिया है। फलस्वरूप कहानी-साहित्य में
धिक प्रयोग हुए हैं और कहानी किसी निर्झरिणी की गतिशीलता लेकर
दिशाओं में प्रवाहित हुई है।

इस वेग में मर्यादा रहनी चाहिए। बरसात में किसी नदी के
कमज़ोर हों तो गाँव और नगर में पानी भर जाता है। इसलिए वेग को
देने की आवश्यकता है। प्रवाह में गंभीरता आनी चाहिए। मनोरंजन की
उठाने वाला कहानी-साहित्य; तट को तोड़कर बहने वाला साहित्य नहीं है।
जीवन की गहराई है—जीवन का सत्य है। दिग्वधू की घनश्याम केश-रा
सजा हुआ इन्द्रधनुष बालकों का कुतूहल ही नहीं है, वह प्रकृति का स
है। कितनी प्रकाश-किरणों ने जीवन की बूँदों के हृदय में प्रवेश कर इस सं
विधि में अपना आत्म-समर्पण किया है।

कहानी के सत्य को भी समझने की आवश्यकता है। मेरे प्रिय वि
डा० लक्ष्मीनारायण लाल स्वयं एक सफल कहानी-लेखक और उपन्यासक
उन्होंने एम० ए० तक हिन्दी-साहित्य का अध्ययन कर आलोचना के सि
पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और वे स्वयं कलाकार भी हैं। जब
कहानी-साहित्य की शिल्प-विधि पर खोज करने की अनुमति माँगी तो मैंने
सहर्ष प्रदान कर दी। कहानी-लेखक होने के कारण वे कहानी-साहित्य की
विक अनुभूति प्राप्त कर सकेंगे, और अपने शास्त्र-ज्ञान से तथ्य निरूपण
लेंगे, यही मेरा विश्वास था। श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने सफलता
अपना खोज-कार्य किया जिस पर उन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त हुई,
इस दिशा में उनका कार्य श्रेष्ठ समझा गया। मुझे प्रसन्नता है कि उन
कार्य अब साहित्य-जगत् के सामने पहुँच रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इ
से साहित्य-जगत् का हित होगा और लेखक का भावी पथ अधिक प्रशस्त

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
विजयदशमी १९५२

रामकुमार व

परिचय

हिन्दी कहानी-साहित्य अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा अधिक गति
है। मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन ने इस स
के विकास में बहुत अधिक योग दिया है। फलस्वरूप कहानी-साहित्य में
धिक प्रयोग हुए हैं और कहानी किसी निर्झरिणी की गतिशीलता लेकर
दिशाओं में प्रवाहित हुई है।

इस वेग में मर्यादा रहनी चाहिए। बरसात में किसी नदी के
कमज़ोर हों तो गाँव और नगर में पानी भर जाता है। इसलिए वेग को
देने की आवश्यकता है। प्रवाह में गंभीरता आनी चाहिए। मनोरंजन की
उठाने वाला कहानी-साहित्य; तट को तोड़कर बहने वाला साहित्य नहीं है।
जीवन की गहराई है—जीवन का सत्य है। दिग्वधू की घनश्याम केश-रा
सजा हुआ इन्द्रधनुष बालकों का कुतूहल ही नहीं है, वह प्रकृति का स
है। कितनी प्रकाश-किरणों ने जीवन की बूँदों के हृदय में प्रवेश कर इस सं
विधि में अपना आत्म-समर्पण किया है।

कहानी के सत्य को भी समझने की आवश्यकता है। मेरे प्रिय वि
डा० लक्ष्मीनारायण लाल स्वयं एक सफल कहानी-लेखक और उपन्यासक
उन्होंने एम० ए० तक हिन्दी-साहित्य का अध्ययन कर आलोचना के सि
पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और वे स्वयं कलाकार भी हैं। जब
कहानी-साहित्य की शिल्प-विधि पर खोज करने की अनुमति माँगी तो मैंने
सहर्ष प्रदान कर दी। कहानी-लेखक होने के कारण वे कहानी-साहित्य की
विक अनुभूति प्राप्त कर सकेंगे, और अपने शास्त्र-ज्ञान से तथ्य निरूपण
लेंगे, यही मेरा विश्वास था। श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने सफलता
अपना खोज-कार्य किया जिस पर उन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त हुई,
इस दिशा में उनका कार्य श्रेष्ठ समझा गया। मुझे प्रसन्नता है कि उन
कार्य अब साहित्य-जगत् के सामने पहुँच रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इ
से साहित्य-जगत् का हित होगा और लेखक का भावी पथ अधिक प्रशस्त

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
विजयदशमी १९५३

रामकुमार व

निवेदन

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी-कला का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारों में सर्वोपरि है। इस कला को वर्तमान युग की प्रतिनिधि धारा कही जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। कहानी अपने साधारण रूप, अर्थात् कथा, लघुकथा, आख्यायिका और आख्यानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इस की परम्परा वैदिक साहित्य से आरम्भ हो कर बौद्ध जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के चारणकाल और मध्य-युग तक आती है। कहानी के इस भारतीय स्रोत ने कदाचित् किसी समय समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिन्दी कहानी-कला अपने विशिष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है और आधुनिक हिन्दी कहानी का उत्थान, वास्तव में, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ। इस तरह हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है और यह सूक्ष्म अन्वेषक-दृष्टि की अपेक्षा करता है। अध्ययन की पृष्ठभूमि में प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का वैज्ञानिक विवेचन अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उसी के उपरान्त हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि के आविर्भाव, विकास आदि युगों के स्वतंत्र अध्ययन की स्थिति आती है।

उक्त दृष्टिकोण से आज तक हिन्दी कहानी-कला पर हिन्दी जगत् में कोई खोजपूर्ण आलोचना-ग्रंथ नहीं है। अब तक इस दिशा में यथासंभव जितनी आलोचनाएं हुई हैं; वे दो कोटियों में आती हैं। प्रथम, आधुनिक 'हिन्दी साहित्य के विकास' के अध्ययन क्रम में—इस क्षेत्र में डा० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' निबंध (ग्रंथ) उल्लेखनीय है। दूसरी कोटि में अनेक कहानी-संग्रहों की भूमिकाएं आती हैं। इन दो कोटियों के उपरांत, किसी एक विशिष्ट कहानीकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर उस पर एक स्वतंत्र आलोचना ग्रंथ लिखने की शैली आती है। इस दिशा में डा० सत्येन्द्र लिखित 'प्रेमचन्द-उनकी कहानी-कला' एक महत्वपूर्ण प्रयास है। मुझे इस की शैली से बड़ी सहायता मिली है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डी० फिल्० थीसिस—'इवोल्युशन ऑव् द टेक्नीक ऑव् हिन्दी शार्ट स्टोरीज़ एंड इट्स सोर्सेज़'—(हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास और उद्गम सूत्र) के रूप में लिखा गया था। पुस्तक रूप देने में कई स्थान पर काट-छाँट हुई है। उपलब्ध

निवेदन

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी-कला का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारों में सर्वोपरि है। इस कला को वर्तमान युग की प्रतिनिधि धारा कही जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। कहानी अपने साधारण रूप, अर्थात् कथा, लघुकथा, आख्यायिका और आख्यानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इस की परम्परा वैदिक साहित्य से आरम्भ हो कर बौद्ध जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के चारणकाल और मध्य-युग तक आती है। कहानी के इस भारतीय स्रोत ने कदाचित् किसी समय समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिन्दी कहानी-कला अपने विशिष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है और आधुनिक हिन्दी कहानी का उत्थान, वास्तव में, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ। इस तरह हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है और यह सूक्ष्म अन्वेषक-दृष्टि की अपेक्षा करता है। अध्ययन की पृष्ठभूमि में प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का वैज्ञानिक विवेचन अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उसी के उपरान्त हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि के आविर्भाव, विकास आदि युगों के स्वतंत्र अध्ययन की स्थिति आती है।

उक्त दृष्टिकोण से आज तक हिन्दी कहानी-कला पर हिन्दी जगत् में कोई खोजपूर्ण आलोचना-ग्रंथ नहीं है। अब तक इस दिशा में यथासंभव जितनी आलोचनाएं हुई हैं; वे दो कोटियों में आती हैं। प्रथम, आधुनिक 'हिन्दी साहित्य के विकास' के अध्ययन क्रम में—इस क्षेत्र में डा० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' निबंध (ग्रंथ) उल्लेखनीय है। दूसरी कोटि में अनेक कहानी-संग्रहों की भूमिकाएं आती हैं। इन दो कोटियों के उपरांत, किसी एक विशिष्ट कहानीकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर उस पर एक स्वतंत्र आलोचना ग्रंथ लिखने की शैली आती है। इस दिशा में डा० सत्येन्द्र लिखित 'प्रेमचन्द-उनकी कहानी-कला' एक महत्वपूर्ण प्रयास है। मुझे इस की शैली से बड़ी सहायता मिली है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डी० फिल्० थीसिस—'इवोल्युशन ऑव् द टेक्नीक ऑव् हिन्दी शार्ट स्टोरीज़ एंड इट्स सोर्सेज़'—(हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास और उद्गम सूत्र) के रूप में लिखा गया था। पुस्तक रूप देने में कई स्थान पर काट-छाँट हुई है। उपलब्ध

निवेदन

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी-कला का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारों में सर्वोपरि है। इस कला को वर्तमान युग की प्रतिनिधि धारा कही जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। कहानी अपने साधारण रूप, अर्थात् कथा, लघुकथा, आख्यायिका और आख्यानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इस की परम्परा वैदिक साहित्य से आरम्भ हो कर बौद्ध जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के चारणकाल और मध्य-युग तक आती है। कहानी के इस भारतीय स्रोत ने कदाचित् किसी समय समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिन्दी कहानी-कला अपने विशिष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है और आधुनिक हिन्दी कहानी का उत्थान, वास्तव में, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ। इस तरह हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है और यह सूक्ष्म अन्वेषक-दृष्टि की अपेक्षा करता है। अध्ययन की पृष्ठभूमि में प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का वैज्ञानिक विवेचन अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उसी के उपरान्त हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि के आविर्भाव, विकास आदि युगों के स्वतंत्र अध्ययन की स्थिति आती है।

उक्त दृष्टिकोण से आज तक हिन्दी कहानी-कला पर हिन्दी जगत् में कोई खोजपूर्ण आलोचना-ग्रंथ नहीं है। अब तक इस दिशा में यथासंभव जितनी आलोचनाएं हुई हैं; वे दो कोटियों में आती हैं। प्रथम, आधुनिक 'हिन्दी साहित्य के विकास' के अध्ययन क्रम में—इस क्षेत्र में डा० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' निबंध (ग्रंथ) उल्लेखनीय है। दूसरी कोटि में अनेक कहानी-संग्रहों की भूमिकाएं आती हैं। इन दो कोटियों के उपरांत, किसी एक विशिष्ट कहानीकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर उस पर एक स्वतंत्र आलोचना ग्रंथ लिखने की शैली आती है। इस दिशा में डा० सत्येन्द्र लिखित 'प्रेमचन्द-उनकी कहानी-कला' एक महत्वपूर्ण प्रयास है। मुझे इस की शैली से बड़ी सहायता मिली है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डी० फिल्० थीसिस—'इवोल्युशन ऑव् द टेक्नीक ऑव् हिन्दी शार्ट स्टोरीज़ एंड इट्स सोर्सेज़'—(हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास और उद्गम सूत्र) के रूप में लिखा गया था। पुस्तक रूप देने में कई स्थान पर काट-छाँट हुई है। उपलब्ध

विषय-प्रवेश

जब भाव और वस्तुओं का चित्रण मानव के मन और मस्तिष्क में संगृहीत होता है, तब वह उस की अभिव्यक्ति में सचेष्ट होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का सहारा लेता है, कभी आकृति का, लेकिन वह अपने भाव-प्रकाश में रोचक से अधिक रोचकता, आकर्षण और मनोरंजकता के लिए, अनेकानेक रूप विधानों की योजना करता है। यहीं पर विधान-योजना की प्रवृत्ति कहानी को जन्म देती है और उस के विविध रूप कहानी की शिल्पविधि के प्रेरक होते हैं।

सामग्री

कथा-कहानी कहने की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है, जितनी की मानवता। आज तक में क्रमशः जितने विकास—जितने परिवर्तन आते गये हैं, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा-कहानियों की शिल्पविधि में भी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार जीवन के सकल आनन्द, माधुर्य, मनोरंजन और संघर्ष सब कहानी के विस्तृत क्षेत्र में समाहित होते हैं। लेकिन बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के अनुरूप इस के रूप विधान और शिल्पविधान में भी परिवर्तन होते जाते हैं, यह सत्य पूर्णतः निर्विरोध है। इस के उदाहरण में ऋग्वेद से चल कर, ब्राह्मणों, बौद्ध जातकों, जैन कथाओं, पौराणिक आख्यानों, तथा संस्कृत के लोक-प्रसिद्ध कथा सरित्सागर से होकर पंचतंत्र, हितोपदेश, प्राकृत-अपभ्रंश की कथाओं तक हम आते हैं, और यहां हमें कथा-कहानी के रूप और विधानों में परिवर्तन और विकास मिलता है। हिन्दी कहानी के जन्म से चल कर, दूसरे और इस के आविर्भाव, विकास और संक्रांति युगों में, हमें शिल्पविधान के इतने रूप, इतने आकार मिलते हैं, कि हमें आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। एक ही भाव, एक ही अनुभूति को विविध कलाकार क्यों इतने विविध रूप-विधानों में रख कर सजाते हैं? एक तो जिस दृष्टि-बिन्दु से वह संसार को परखना चाहता है उसके अनुसार जीवनगत सत्य अपना आकार ग्रहण करता है, और, दूसरे उस की कला की अभिव्यंजना इस प्रकार होती है कि वह अपने लिये एक अलग कोटि का निर्माण कर लेती है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक कलाकार के विशिष्ट भाव-प्रकाश से अधिक से अधिक श्रोता और पाठकों का मन आकृष्ट होता है, और उन्हें

अन्यान्य मौलिक शिल्प विधानों की विविधता प्राप्त होती है। कलाकार भी सदैव अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये कुछ ऐसे माध्यमों, विधानों और तंत्रों की खोज में लगा रहता है, जो एक ओर अभिनव हों, दूसरी ओर उन में इतनी शक्ति हो कि वे कहानी कला की परम्परा में नवीन क्रान्ति उपस्थित कर सकें।

दृष्टिकोण

विचारणीय यह है कि जिस शिल्पविधि का उल्लेख ऊपर किया गया है उस की परिभाषा क्या हो सकती है? शिल्पविधि का बोध अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है, ढंग, विधान, तरीका, जिस के माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गयी हो। यह लक्ष्य भौतिक जीवन में किसी वस्तु अथवा मनोवांछित तत्त्व की प्राप्ति से संबध रखता है और कला के क्षेत्र में इस लक्ष्य से अभिप्राय है—संपूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कला के विभिन्न तत्त्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग जिस से कलाकार की अनुभूति अमूर्त्त से मूर्त्त हो जाय। प्रत्येक कला की सृष्टि और प्रेरणा दोनों रूपों में अनुभूति और लक्ष्य ही मुख्य तत्त्व हैं। चित्रकार की सृष्टि में निःसंदेह एक अनुभूति होती है, जिसे वह अपनी रेखाओं और विभिन्न रंगों के आनुपातिक संयोग से अभिव्यक्त करता है, अमूर्त्त अनुभूति को मूर्त्त करता है। जैसे, कोई चित्रकार अकाल की पीड़ा की अनुभूति को चित्रात्मक अभिव्यक्ति देना चाहता है। इस के लिये प्रथमतः उसे एक ऐसी संवेदना को आधार शिला बनानी होगी, जिस की पृष्ठभूमि पर वह अपनी अनुभूति व्यक्त करेगा, अतएव इस तत्त्व में कथा वस्तु के बीज अंकुरित हुए, फिर उसे भावों को वहन करने के लिये कुछ पात्रों की अवतारणा करनी पड़ेगी, जैसे अकाल पीड़ित मानव, जीव-जन्तु आदि, इनके माध्यम से वह अनुभूति को सजीव अभिव्यक्ति देगा। अतएव यह तत्त्व, चरित्र अवतारणा की ओर निर्देश करता है। इसके उपरान्त चित्रकार का यह प्रयत्न होगा कि वह किन-किन रंगों, परिपार्श्वों के सहारे, पात्रों को कहाँ-कहाँ रखे, किन-किन स्थितियों की व्यंजना करें जिस से अकाल के भाव घनीभूत हो जायँ, फलतः उस का यह प्रयत्न उसकी शैली हुई, जिस के सहारे उस ने अपने चित्र को पूर्ण किया। इस सम्यक चित्र से उस के लक्ष्य की पूर्ति हुई और जिस प्रक्रिया से उसका चित्र प्रस्तुत हुआ, वही उस चित्र की शिल्पविधि-टेकनीक हुई। शिल्पविधि के इस मोटे रूपक से यह प्रकट है कि किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिये जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं, वही उस कला की शिल्पविधि है।

कहानी में यह व्याख्या अनुभूति और लक्ष्य, इन दोनों रूपों में अत्यन्त स्पष्ट है। कहानी की रचना में जिस तरह अनुभूति उस के तत्वों में ढलती जाती है, वही उसकी टेक्नीक है। दूसरी ओर एक निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रभाव की पूर्ति के लिये कहानी की रचना में जो एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करनी पड़ती है, वही उस की शिल्पविधि है। इस तरह सृजन की दृष्टि से कहानी की प्रेरणा दो पक्षों से आती है। एक ओर, कहानी अनुभूति की प्रेरणा से अपनी सृष्टि कराती है, दूसरी ओर लक्ष्य की प्रेरणा से, और सम्यक दृष्टि से दोनों की प्रेरणा किसी न किसी अनुपात में कहानी की रचना में विद्यमान रहती है। क्योंकि कहानी में अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उस के अनुरूप एक लक्ष्य की कल्पना करनी पड़ती है, और लक्ष्य के स्पष्टीकरण के लिए एक मूलभाव का सहारा लेना पड़ता है।[1] उदाहरण स्वरूप, किसी तरुणी विधवा में प्रेमानुभूति को ले कर जैसे, कोई कहानी लिखनी हो, इसके लिए कहानीकार को प्रथमतः उस के अनुरूप एक कथावस्तु लेनी होगी, फिर चरित्र लेने होंगे, चरित्रों के प्रकाश में विधवा का चरित्र-विश्लेषण, व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और उस का मानसिक ऊहापोह उपस्थित करना होगा। कथावस्तु और चरित्र की कल्पना के उपरांत कहानी का रूप आरम्भ होगा और यहाँ से कहानी में शैलीगत समस्या आयेगी। शैली के अन्तर्गत कहानी की रूपशैली अथवा निर्माणशैली के प्रश्न खड़े होंगे। अर्थात् कहानी किस पुरुष में (उत्तम, मध्यम अथवा अन्य पुरुष) लिखी जाय, फिर ऐतिहासिकता के सहारे से लिखी जाय, या चिन्तन के सहारे या किसी अन्य माध्यम से इस का आरम्भ हो, और इस की चरम सीमा कैसी हो? वस्तुतः रूप विधान के ये सभी प्रश्न, शैली के व्यापक पक्ष में आते हैं। इस के साथ ही साथ कहानी-निर्माण में शैली का सामान्य पक्ष भी आता है, जैसे वर्णन, चित्रण, वातावरण-निर्माण, गद्यशैली और कथोपकथन आदि। शैली के इन्हीं दोनों पक्षों के प्रकाश में कहानी अपने व्यावहारिक रूप में सामने आती है। देश-काल-परिस्थिति का निर्माण होता है, चरित्र अपने मूर्तरूप में सामने आते हैं, अपनी सजीवता के साथ मानव-कार्य व्यापारों में रत हो जाते हैं, घटनाएँ उपस्थित करते हैं। मुख्य भाव, मुख्य अनुभूति, घटनाओं, मानवों व्यापारों के सहारे उत्तरोत्तर स्पष्ट होती जाती है। विधवा के प्रति प्रेमानु-

1 The shart story. by Sean'o Faoaalo, page 173 St, James Landon 1949

भूति का केन्द्रीय भाव बिल्कुल स्पष्ट हो कर कहानी की चरम सीमा, निष्पत्ति या अंत पर अपने सम्पूर्ण प्रभाव को प्राप्त हो जायगा।

अनुभूति के धरातल अथवा प्रेरणा से लिखी हुई कहानी में लक्ष्य केवल गूढ़ व्यंजना के रूप में आता है, अतएव इस की सोद्देश्यता भी अस्पष्ट ही रह जायगी। लेकिन अपने सम्पूर्ण प्रभाव में ऐसी कहानी बहुत ही सशक्त होगी। योजना की दृष्टि से अनुभूति की प्रेरणा से लिखी हुई कहानियों में अपेक्षाकृत, कहानी की संवेदना, और चरित्र अवतारणा में यथार्थ का संबल बहुत रहता है, यही कारण है कि ऐसी कहानियों में एकान्त प्रभाव आश्चर्यजनक ढंग से होता है। दूसरी ओर, जब किसी लक्ष्य, सिद्धान्त अथवा किसी तत्त्व को प्रतिष्ठा की प्रेरणा से कहानी लिखनी हो, अर्थात् जब यह सिद्ध करने के लिए कहानी की रचना करनी हो कि विधवा विवाह होना चाहिए, वर्ग संघर्ष शाश्वत है, आर्थिक पहलू व्यक्ति का प्रधान पहलू है, मनुष्य का अवचेतन जगत् ही सब कुछ है, चेतन जगत् उसकी अभिव्यक्ति मात्र है, या वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में नारी सब से अधिक शोषित है, फिर इनकी अभिव्यक्ति के लिए रचना के अनुसार, प्रथमतः उचित और स्वाभाविक कथावस्तु की कल्पना करनी होगी। उस के अनुरूप विभिन्न पात्र जुटाने होंगे, और शैली के अंतर्गत वे सब प्रश्न सुलझाने होंगे जो ऊपर अनुभूति परक कहानी की दिशा में आए हैं। केवल निष्पत्ति, अंत या चरम सीमा पर लक्ष्यात्मक कहानी इस से कुछ भिन्न हो जायगी। वस्तुतः वहाँ उस की सोद्देश्यता, एकलक्ष्यता पूर्ण स्पष्ट हो जायगी। लगेगा कि कहानी का कार्य सम्पूर्ण हो गया और उस का अभिप्राय सिद्ध हो गया। लेकिन अनुभूति से प्रेरित कहानी में अपेक्षाकृत इससे कुछ विरोधी तत्त्व मिलेंगे।

इस तरह कहानी, शिल्पविधि में लक्ष्य और अनुभूति सब से मुख्य तत्त्व हैं। इन्हीं के प्रकाश से कहानी के विधान में कथावस्तु की योजना, चरित्र अवतारणा और शैली का निर्माण होता है।

शिल्पविधि में कहानी के भावपक्ष का क्या स्थान है, यह भी एक प्रश्न है। वस्तुतः विधान के अध्ययन में भावपक्ष का कोई निरपेक्ष स्थान नहीं निर्धारित किया जा सकता। इस का यथासंभव संबंध अनुभूति और लक्ष्य तत्त्व से है। इस की ही सीमा में कहानी के भावपक्ष की ओर प्रकाश डाला जा सकता है, वैसे शिल्पविधि के अध्ययन-क्षेत्र में कहानी का कलापक्ष ही मुख्य रूप से आता है।

विषय-विस्तार

स्थूल रूप से हमारे आलोच्य-विषय का काल बीसवीं शताब्दी

से प्रारम्भ होता है, क्योंकि पूर्व निर्धारित रूप से सभी ये हिन्दी कहानियाँ अपने वैज्ञानिक रूप में विकसित हुईं। किन्तु अध्ययन की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी से पूर्व की ओर जाना पड़ता है क्योंकि हिन्दी कथा की ऐतिहासिक परम्परा में आख्यानों की दिशा में उल्लेखनीय रचना प्राप्त है, और उस परम्परा की देख लेना आवश्यक है जो इस की दिशा में है। हिन्दी साहित्य में भी पूर्व काल वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कथा, आख्यायिका, गाथा आदि रूपों में पूर्ण परिपाक प्राप्त कर चुका था। आरम्भ काल में ऐसे स्थानों पर भी इस कहानी परम्परा के दर्शन प्राप्त होते हैं जो कथा कहानी, आख्यायिका, उपन्यास और गद्य काव्य विषयक, वार्ता आदि कथात्मक रूपों में अपने अस्तित्व से हिन्दी प्रान्त में उपस्थित था। यद्यपि यह निश्चित है कि हिन्दी कहानी की वैज्ञानिक टेकनीक पाश्चात्य के सम्पर्क की देन है किन्तु यह भी निश्चित है कि कथा, आख्यायिका, उपन्यास और किस्से के विषय में जितना हमारा प्राचीन साहित्य परिपूर्ण है, उतना संसार का कोई साहित्य नहीं। अतएव इस दिशा में हमारी पूर्व परम्परा है, इस का ज्ञान हमारे अध्ययन की आवश्यक विशेषताएँ, क्योंकि इसने परोक्ष रूप से हिन्दी कथा-साहित्य को प्रभावित किया है। इस के उपरान्त कहानी के आविर्भाव के स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है और विशेष रूप हमें इस की उत्पत्ति की उस व्यापक पृष्ठभूमि को भी देखना है जहाँ इसके जन्म के बीज बोए गए हैं। इस संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी, विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध—हरिश्चन्द्र युग की प्रेरणा और तत्कालीन प्रमुख पत्र पत्रिकाओं[1] का अध्ययन हमारे लिए सब से अधिक आवश्यक है। फिर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का युग, हिन्दी कहानियों के आरम्भ, प्रयोग और विकास के केन्द्र 'सरस्वती' (१९०० ई०) और 'हिन्दी गल्पमाला' (१९१८) आदि मासिक पत्रों के अध्ययन की आवश्यकता है। इस के उपरान्त ही हिन्दी कहानियों की क्रमागत निश्चित रूप से हमारे सामने आ जाती है। तत्पश्चात् हमें इस के विकास और उत्कर्ष के उस व्यापक क्षेत्र का अध्ययन उपस्थित करना है, जिस में हिन्दी कहानियाँ अपनी मुख्य प्रवृत्तियों में फैलकर विकसित हुई हैं। इस दिशा में केवल प्रवृत्तियों

---

[1] हरिश्चन्द्र मैगज़ीन १८७३ ई० श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका १८७४ ई० हिन्दी प्रदीप १८७७ ई०

और शिल्पविधानात्मक धाराओं को ही ले कर और उन्हीं के धरातल पर अध्ययन करना, आलोच्य-विषय के अनुकूल होगा।

आलोच्य-विषय में उद्गम सूत्र के अध्ययन की भी विशेषता है। इस दिशा में उन अनेक उद्गम-स्थलों को खोज कर के, उन के प्रभाव और प्रेरणाओं को देखने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही साथ उन समस्त शक्तियों और विभिन्न प्रेरणाओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई है, जो कहानी शिल्पविधि के उद्गम और विकास में प्राणशक्ति के रूप में कार्य कर रही थीं। आलोच्य-विषय के अध्ययन में प्रवृत्तियों की ओर भी मुख्यता दी गयी है, क्योंकि शिल्पविधान के विकास में उनकी प्रेरणा सब से अधिक रही है। इस के साथ ही साथ कहानी के कलापक्ष, तत्वों, और रूपों के अध्ययन का भी यथा-सम्भव प्रयत्न किया गया है, तथा उन नवीन प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला गया है, जो वर्तमान कहानी-कला के क्षेत्र में अवतरित हो रहे हैं। इस भाँति कहानी की शिल्पविधि में मैंने जो अन्वेषण किए हैं, उन का वैज्ञानिक विश्लेषण आप आगे के पृष्ठों में देखेंगे।

पूर्व परिचय

असंख्य वर्षों की साधना से अनेक युगों में विकसित भारतीय साहित्य की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त इस की कथा प्रवृत्ति तथा इस कला की विशेषता अनुपम है। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि साहित्यिक युगों में कथा की कला क्रमशः अपने बीज रूप से विकसित होती हुई चरम सीमा पर फलवती हुई है। यही कारण है कि आज भी भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि और आधुनिकतम रूप हिन्दी-साहित्य में कहानी-कला की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन के समय हमारी दृष्टि भारत के प्राचीन कथा-साहित्य की ओर जाती है। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दी-कहानियाँ आधुनिक युग की देन है, तथापि हमारा यह देख लेना कि इस दिशा में भारत के प्राचीन साहित्य की क्या स्थिति रही है, हमारे अध्ययन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। भारत का प्राचीन साहित्य अपने विभिन्न युगों और भाषाओं में अभिव्यक्ति पाता हुआ कथा की कला में अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ रखता है। आलोच्य विषय की समीक्षा करने के पूर्व, भारत के प्राचीन कथा साहित्य की विभिन्न कलात्मक विशेषताओं—जैसे, आख्यायिका; आख्यानक, जातक, पौराणिक और दन्त कथाओं-वार्ताओं के रूपों को देखना हमारे लिए परम आवश्यक है। कथा की ये विशेषताएँ भारत की अपनी साहित्यिक सम्पत्ति हैं और इन्हीं स्रोतों से उस समय संसार की अन्य भाषाओं को भी शक्ति मिली है।

भारत का प्राचीन कथा साहित्य

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश आदि भाषा-युगों में मिलता है। इन समस्त भाषा युगों में कथा की कला अपनी अलग-अलग विशेषताओं के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी है। फलतः आलोचकों ने प्राचीन कथा साहित्य का आरम्भ वैदिक संस्कृत अर्थात् ऋग्वेद से जोड़ा है। लेकिन ऋग्वेद में हमें कथायें नहीं मिलतीं वरन् कथाओं के बीज मिलते हैं। इन कथा-बीजों में मूल रूप से यज्ञ-धूम्र की सुगन्धि और मंत्रों का सुन्दर संगीत मिलता है। इन में कहीं भी कथा का वह रूप नहीं मिलता, जिसे हम ब्राह्मण और उपनिषदों में पाते हैं। ऋग्वेद विभिन्न देवी शक्तियों की आराधना, पूजा, प्रशंसा, में कहे गए असंख्य मंत्रों का भांडार है। इन मंत्रों

के बीच-बीच में कुछ ऐसे सूक्त अवश्य मिल जाते हैं, जिन में दो या तीन पात्रों के परस्पर कथोपकथन हुए होते हैं। ऐसे सूक्तों को 'संवाद सूक्त' कहते हैं। भारतीय साहित्य के अनेक अंगों और रूपों का उद्गम, आलोचक गण इन्हीं संवाद-सूक्तों से जोड़ते हैं। इन के अतिरिक्त सामान्य स्तुति-परक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक छोटे-छोटे मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानों के संकेत मिलते हैं—जैसे, प्रसिद्ध 'अपाला की कथा' का संकेत—एक रोगी, दुःखी युवती अपने पति से त्याग दी जाती है। इस निःसहाय अबला की सहायता इन्द्र करते हैं।

लेकिन संहिता में ऐसी जितनी कथाओं का केवल सूचना या संकेत मात्र है, उन का विस्तृत वर्णन बृहद्देवता में तथा षड्गुरु की 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थ दीपिका टीका' में किया गया है। निरुक्ति में यास्क तथा सायण ने अपने भाष्य में इन कथाओं के रूप तथा प्राचीन आधार को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद को संस्कृत आख्यान, कथाओं और आख्यायिकाओं का मूल स्रोत मानना होगा, क्योंकि संस्कृत के कितने आख्यानक और आख्यायिकाएँ ऋग्वेद संहिता से बीजरूप अथवा संकेत रूप से आरम्भ हो कर उपनिषदों, निरुक्ति बृहद्देवता, कात्यायन सर्वानुक्रमणी और पुराणों आदि से होती हुई अपने आख्यायिका या आख्यानक रूप में पूर्ण हुई हैं, जैसे इक्ष्वाकु नरेश राजा हरिश्चंद्र और पुरुरवा तथा उर्वशी की कथाएँ।

उपनिषदों की कथाएँ

उपनिषदों में सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच-बीच में कथाएँ आने लगती हैं। लेकिन ये कथाएँ, कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आई हैं, बरन् उपनिषदों के भिन्न-भिन्न प्रतिपाद्य तत्वों को ले कर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं—ठीक उसी तरह, जैसे 'बाइबिल' में ईसाई-धर्म की महान सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास और अविश्वास के धरातल पर अनेक कथाएँ मिलती हैं। उपनिषदों की कथाओं में उक्त विषय के उदाहरण सर्वत्र मिलते हैं, जैसे :

१. केनोपनिषद् में	: देवताओं की शक्ति-परीक्षा की कथा।
२. कठोपनिषद् में	: नाचिकेता के साहस की कथा।
३. छान्दोग्य उपनिषद् में	: सत्य काम की गो सेवा, उपस्ति की कठिनाई, महात्मा रैक्व और राजा जान श्रुति आदि की कथाएँ।

के बीच-बीच में कुछ ऐसे सूक्त अवश्य मिल जाते हैं, जिन में दो या तीन पात्रों के परस्पर कथोपकथन जुड़े होते हैं। ऐसे सूक्तों को 'संवाद सूक्त' कहते हैं। भारतीय साहित्य के अनेक अंगों और रूपों का उद्गम, आलोचक गण इन्हीं संवाद-सूक्तों से जोड़ते हैं। इन के अतिरिक्त सामान्य स्तुति-परक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक छोटे-छोटे मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानों के संकेत मिलते हैं—जैसे, प्रसिद्ध 'अपाला की कथा' का संकेत—एक रोगी, दुःखी युवती अपने पति से त्याग दी जाती है। उस निःसहाय अबला की सहायता इन्द्र करते हैं।

लेकिन संहिता में ऐसी जितनी कथाओं का केवल सूचना या संकेत मात्र है, उन का विस्तृत वर्णन बृहद्देवता में तथा षड्गुरु की 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थ दीपिका टीका' में किया गया है। निरुक्ति में यास्क तथा सायण ने अपने भाष्य में इन कथाओं के रूप तथा प्राचीन आधार को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद को संस्कृत आख्यान, कथाओं और आख्यायिकाओं का मूल स्रोत मानना होगा, क्योंकि संस्कृत के कितने आख्यानक और आख्यायिकाएँ ऋग्वेद संहिता से बीजरूप अथवा संकेत रूप से आरम्भ हो कर उपनिषदों, निरुक्ति बृहद्देवता, कात्यायन सर्वानुक्रमणी और पुराणों आदि से होती हुई अपने आख्यायिका या आख्यानक रूप में पूर्ण हुई हैं, जैसे इक्ष्वाकु नरेश राजा हरिश्चंद्र और पुरुरवा तथा उर्वशी की कथाएँ।

उपनिषदों की कथाएँ

उपनिषदों में सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच-बीच में कथाएँ आने लगती हैं। लेकिन ये कथाएँ, कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आई हैं, वरन् उपनिषदों के भिन्न-भिन्न प्रतिपाद्य तत्त्वों को ले कर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं—ठीक उसी तरह, जैसे 'बाइबिल' में इसाई-धर्म की महान सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास और अविश्वास के धरातल पर अनेक कथाएँ मिलती हैं। उपनिषदों की कथाओं में उक्त विषय के उदाहरण सर्वत्र मिलते हैं, जैसे :

१. केनोपनिषद् में : देवताओं की शक्ति-परीक्षा की कथा।
२. कठोपनिषद् में : नाचिकेता के साहस की कथा।
३. छान्दोग्य उपनिषद् में : सत्य काम की गो सेवा, उपस्ति की कठिनाई, महात्मा रैक्व और राजा जान श्रुति आदि की कथाएँ।

आख्यान के मेरुदंड पर उन मनीषियों ने क्रमशः रामायण और महाभारत आख्यानक[1] काव्यों की सृष्टि की होगी तथा इन में अन्यान्य कथाओं की सुन्दर लड़ी गूँथ कर उन काव्यों को महाकाव्य बनाया पड़ा होगा। वस्तुतः भारतीय साहित्य में यह कलासृष्टि उन आदि कलाकारों की प्रथम और अपूर्व सृष्टि सिद्ध हुई होगी। लेकिन इन आख्यानक काव्यों के पूर्व ही उपनिषदों की कथाओं की मूल आत्मा जिज्ञासा और प्रश्नोत्तर की भावना पर आधारित थी। फलतः इन आदि महाकाव्यों में भी जिज्ञासा और धार्मिक पिपासा की शान्ति के लिये मनीषियों ने कितने प्रश्नोत्तरों को प्रस्तुत किया होगा। बाल्मीकि रामायण में सरयू नदी की उत्पत्ति की कथा इस का उदाहरण है तथा महाभारत में विभिन्न पात्रों के सम्वाद, प्रश्न तथा समस्त गीता के प्रवचन इस के साक्षी हैं।

काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बौद्ध जातक कथाओं से बहुत पहले पड़ता है। रामायण की रचना बुद्ध के जन्म से पहले ही हुई अर्थात् रामायण को ५०० ई० पू० से पहले की रचना मानना न्याय-संगत है।[2] महाभारत भी बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ है।[3] इस तरह से रामायण और महाभारत के माध्यम से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का आरम्भ जातक कथाओं से बहुत पहले हो चुका था।

रामायण में मूल-कथा के साथ विभिन्न अंतर्कथाएँ प्रासंगिक और अप्रासंगिक ढंग से गुँथी हुई हैं। बाल्मीकि ने राम-कथा को अपनी काव्यात्मक सृष्टि द्वारा इतना शाश्वत और चिरन्तन बनाया कि इससे कथातत्त्व और मानव-तत्त्व, दोनों लोक-भावना में व्याप्त हो गयी। यहाँ नाटकीय परिस्थितियों का सृजन तथा सजीव पात्रों की अवतारणा ने परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य के लिये एक नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया।

आख्यान और पौराणिक कथाओं की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य में अपूर्व है। कथा-तत्त्व की दिशा में इसकी कथाओं

---

[1] पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण को कहते हैं। 'अक्खानं ति भारत रामायणादि' (दी० नि० अ० १-८४)

[2] संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय पृष्ठ ४५।

[3] वही, पृष्ठ ५०।

की परम विशेषता यह है कि इन में इतिहास, धर्म और कल्पना तीनों का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि ये कथाएं पौराणिक कथाओं के रूप में समूचे परवर्ती संस्कृत नाट्य साहित्य की उपजीव्य बनी हैं। इसके उपाख्यानों के ही अवलम्बन से आगे के संस्कृत कवियों लेखकों ने काव्य, नाटक, चम्पू और कथा आख्यायिकाओं आदि की सृष्टि की है। दूसरी ओर महाभारत की ये असंख्य कथाएं मूल आख्यान से इतनी कलात्मकता के साथ जुड़ी हुई हैं कि इनके सामूहिक 'कथा-तत्त्व में हमारा समग्र जीवन अपने विस्तृत रूप में समा गया है। यही कारण है कि महाभारत जहाँ एक ओर अख्यानक काव्य है, वहाँ दूसरी ओर पुराण भी। संस्कृत में पुराण शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है......'पुराणमाख्यानम्'। पुराणों के संबंध में यह धारणा, वस्तुतः महाभारत पुराण के ही आधार पर निश्चित हुई है, क्योंकि महाभारत में प्रायः समस्त प्रसिद्ध आख्यानों की सृष्टि हुई है। जैसे इसके आदि पर्व में 'शकुन्तलोपाख्यान', वनपर्व में 'मत्स्योपाख्यान' और रामोपाख्यान', 'शिविउपाख्यान', 'सावित्री उपाख्यान', और 'नलोपाख्यान।'

इस तरह से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का प्रारम्भ यहीं से होकर आगे आने वाले तमाम पुराणों में विकसित होकर ये कथाएं प्राचीन भारतीय साहित्य में अपनी पूर्णता तक पहुँच गयी। ये पौराणिक कथाएं विभिन्न अवतारों सूर्य-चंद्र वंशी राजाओं व्रत, पर्व, महोत्सव आदि कथाओं के आधार पर प्रस्तुत हुईं। भाव और कला पक्ष की दृष्टि से पुराण के पांच लक्षण[1] भी इन कथाओं में सर्वत्र विद्यमान हैं।

दन्त-कथाओं का आरम्भ

पौराणिक कथाओं के विस्तार तथा प्रसार से जन-मस्तिष्क शीघ्र ही पूर्ण रूप से सुसम्बद्ध हो गया होगा क्योकि कथा कहने-सुनने की प्रवृत्ति ने लोक-रुचि को पौराणिक कथाओं के कहने-सुनने की ओर प्रेरित किया होगा। इस तरह धीरे-धीरे इन पौराणिक कथाओं का अधिकांश रूप मौखिक हो गया होगा, फलतः इसका प्रभाव दो रूपों में पड़ा। ये पौराणिक कथाएं लोक-रुचि, लोक-

---

[1] मत्स्य, विष्णु तथा ब्रह्मांड आदि महापुराणों में पुराण का लक्षण बतलाते हुए लिखा है......'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥

मस्तिष्क की सीमाओं में बाँधी गई होंगी और दूसरी ओर इन कथाओं के सादृश्य पर अन्य स्वतन्त्र कथाओं की अवतारणा होने लगी होगी। यही कारण है कि दन्त-कथाओं के इन दोनों रूपों ने परवर्ती कथा-साहित्य को पूर्ण रूप से प्रभावित किया है, क्योंकि उनकी अवतारणा पौराणिक कथाओं के सादृश्य और साम्य पर असीम ढङ्ग से हुई।

इस प्रभाव का उदाहरण हमें समस्त परवर्ती संस्कृत कथा-ग्रन्थों में मिलता है, जहाँ पशु-पक्षी, देव-दानव, नदी-पहाड़, सरोवर, पेड़-पौधे आदि समस्त चर-अचर सजीव चरित्र के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः दंत-कथाओं की इस शैली का पूर्ण प्रभाव हमें सर्वप्रथम बौद्ध-जातक कथाओं में मिलता है।

जातक

काल-क्रमानुसार जातक कथाओं का स्थान परवर्ती संस्कृत कथाओं के पहले आता है। क्योंकि ये कथाएँ ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गयी होंगी।[1]

जातक शब्द का अभिप्राय है, जन्म संबंधी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ-सत्तर या अधिक से अधिक सौ वर्षों के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने होंगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधिसत्व रही। 'बोधि' का अर्थ है बुद्धत्त्व और 'सत्त्व' का अर्थ प्राणी—बुद्धत्त्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी।[2] इस तरह जातक में बोद्धिसत्त्व के पांच सौ सैंतालीस जन्मों का उल्लेख है और उनकी कथाएं हैं। ये कथाएं अपनी शिल्प-विधि के रूप में चार भागों में विभक्त हैं :—

१. पच्चुपन्नवत्थु कथा—वर्तमान कथा
२. अतीतवत्थु —पुनर्जन्म की कथा या अतीत कथा
३. अत्थ वणाना —गाथाओं की व्याख्या

---

[1] जातक प्रथम, भूमिका, पृष्ठ २४

[2] जातक प्रथम खंड भूमिका पृष्ठ १२
भदन्त आनन्द कौशल्यायन

४. समोधान —अन्त में आने वाला भाग जिसमें, बुद्ध बताते हैं, कि पात्रों में कौन क्या था, वे स्वयं उस समय किस योनि में पैदा हुए थे।

उक्त भागों को हम पांच सौ सैंतालीस जातक कथाओं में से किसी भी कथा में देख सकते हैं, उदाहरणार्थ खरादिय जातक को ले सकते हैं। यह गाथा बुद्ध ने जैतवन में विहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के संबन्ध में कही थी।

१. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने उससे पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच कटुभाषी है, किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करता ?"

"भगवान ! यह बात सच है।"

बुद्ध ने कहा—"पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण पंडितों का उपदेश नहीं ग्रहण किया।" कह अतीत की कथा सुनाई।

२. अतीत कथा

पूर्व समय में, वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हो, मृगगण के साथ जंगल में रहते थे। (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हें हरिणपुत्र दिखाकर कहा, "भाई ! यह तुम्हारा भांजा है। इसे मृग माया सिखाओ।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सौंपा। उसने भांजे को कहा-अमुक समय पर आकर सीखना। वह कहे हुए समय पर न आया। जैसे एक दिन उसी उसी प्रकार सात दिनों तक, सात उपदेशों का उल्लंघन कर, वह मृगमाया को बिना सीखे ही चरता हुआ पाश में बँध गया। माता ने भाई से आकर पूछा—"क्यों भाई ! तूने भांजे को मृगमाया सिखा दी ?" बोधिसत्व ने, (उस बात) न मानने वाले का सोच मत कर। तेरे पुत्र ने मृगमाया नहीं सीखी। कहकर अब भी उसे सिखाने का अनिच्छुक ही हो गाथा कही।

अट्ठ खुरं खरादिये मिगं वंकातिवङ्किन।
सत्तहि कलाहत्ति वकंत न तं ओवदितुस्सहे।

३. गाथा की व्याख्या

अट्ठ खुरं, एक-एक पांव में दो-दो खुर खरादिये। इस नाम से संबोधन करता है। मिग-सब (मृगों) के लिए एक शब्द है। वंकातिवंकिन-आरम्भ में टेढ़े,

इस प्रकार वंकातिवंक जिसके ऐसे सींग हों, वह वंकातिवंक, (उस तो) नहानिवर्ती को। सत्तहि कलाकृति वकंत का अर्थ है, उपदेश के सात समयों पर उपदेश का उल्लंघन करने वाला। न तं आवेदिनुसहं का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसे को उपदेश देने का मुझे विचार तक नहीं होता। यही स्पष्ट किया है।

४. समोधान

सो शिकारी, उस पाश में बँधे हुए कटुभाषी मृग को मारकर मांस लेकर चला गया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू केवल अब भी कटुभाषी नहीं है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है।'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का भांजा मृग (अनका) कटुभाषी भिक्षु था। बहन (अबकी) उत्पल वर्णा (भिक्षुणी) थी। लेकिन उपदेश देने वाला मृग तो मैं ही था।[1]

इन जातक कथाओं से तीन बातें मूलतः स्पष्ट हैं। ये कथाएं बौद्ध-धर्म के प्रकाश और प्रचारार्थ लिखी गयी हैं। इनमें पिछली पौराणिक कथाओं और आख्यानों की अपेक्षा अधिक कलात्मकता आयी है। ये कथाएं सीधे वर्णनात्मक या कथात्मक न होकर वर्तमान कथा, अतीत कथा, गाथा की व्याख्या और समोधान क्रमों की सुन्दर श्रृङ्खला है, तथा फिर भी इनमें कथा का तारतम्य सुरक्षित है और इनका लक्ष्य भी पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। एक बात से एक स्वतंत्र कथा का, जन्म, और उस कथा से अन्य कथा का जन्म होते की कला संभवतः इन्हीं जातक कथाओं से आरम्भ हुई तथा इस कला की चरमसीमा हमें आगे चलकर संस्कृत के सुप्रसिद्ध कथा-संग्रह "कथासरि- त्सागर" और "पंचतंत्र" में मिलती है।

कुछ विद्वानों ने प्रायः जातक कथाओं और रामायण महाभारत तथा अन्य पुराण के समान या एक दूसरे से मिलती-जुलती कथाओं तथा आख्यानकों को लेकर, यह समस्या खड़ी की है कि अमुक कथा जातक की मूल देन है, अमुक

---

[1] जातक-प्रथम खंड, पृष्ठ २०७, २०८, २०९
भदन्त आनन्द कौशल्यायन

आख्यान तथा अमुक गाथा रामायण-महाभारत अथवा अमुक पुराण की देन है। वस्तुतः बात यह है कि बौद्ध और अबौद्ध दोनों कथा-साहित्य एक ही परंपरा के ऋणी हैं और वह परम्परा है संहिता के कथा-बीज, उपनिषद् आख्यानक महाकाव्य का कथा प्रसार तथा दन्त-कथाओं का स्वतंत्र निर्माण और सब का आपस में सम्मिश्रण।

फिर भी जहाँ तक प्राचीन कथा-तत्त्व में कलात्मकता के विकास का प्रश्न है, जातक कथाओं ने इसमें अपूर्व बल दिया है। जातक कथाओं में जितनी वर्तमान कथाएं आती हैं उनमें प्रायः कल्पना-तत्त्व मुख्य है और उनमें जितनी अतीत कथाएं आती हैं, उनमें प्रायः ऐतिहासिक तत्त्व मिलते हैं। इस तरह यथार्थ कल्पना और व्याख्या तत्त्व का एक साथ तादात्म्य, कथा की दिशा में जातक कथाओं की पहली कलात्मक देन है। प्रायः समस्त जातक कथाओं में अतीत कथा का आरंभ इस वाक्य "पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे" से होता है। वस्तुतः यह कथा आरम्भ करने की एक कलात्मक टेक थी, लगता है कि आगे चलकर इसी के कलात्मक सादृश्य पर उर्दू और अंग्रेजी की प्राचीन कहानियाँ और अफसाने यों आरम्भ किए गए हैं। "एक दफा का जिक्र है कि" और "वंस अपान ए टाइम"।

ये जातक कथाएं बहुत ही व्यापक और मानवतत्त्व के समीप हैं। इन में राजा, सेठ-साहूकार से लेकर दरिद्र, चोर, चांडाल, अपराधी आदि चर तथा नदी, पहाड़, पेड़-पौदे आदि अचर तथा सब प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, आदि सजीव पात्रों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और इन सब के माध्यम से हमारे जीवन के व्यापक रूपों को बांधने का प्रयत्न किया गया है। यही कारण है कि पिछले दो सहस्र वर्षों के इतिहास में ये कथाएं मानव समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं तथा इन का समान प्रभाव परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के निर्माण और दन्त-कथाओं पर इतना पड़ा कि जातक कथाएं कभी भुलाई नहीं जा सकतीं।

संस्कृत का परवर्ती कथा-साहित्य

संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य में 'बृहत्कथा' का स्थान सब से महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्राचीन संस्कृत कथा-साहित्य में यह अति प्राचीन और सुमान्य कथा संग्रह माना गया है। पता लगता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पंडित ने पैशाची भाषा में इस कथा-

ग्रंथ को लिखा था। इसका समय ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व ही माना जाता है। लेकिन वर्तमान समय में यह ग्रंथ एकदम अप्राप्य है, केवल इसका वैज्ञानिक प्रमाण हमें बाण के 'हर्ष-चरित्', दंडी के 'काव्यादर्श' क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा मंजरी' और सोमदेव के 'कथा सरित्सागर' में मिलता है। कुछ विद्वानों का तो कहना है कि क्षेमेंद्र की 'बृहत्कथा मंजरी', सोमदेव का 'कथा सरित्सागर' और बुद्ध स्वामी का 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' बृहत्कथा के ही आधार पर लिखे गए कथा-ग्रंथ हैं। वस्तुतः जब बृहत्कथा पूर्णतः अप्राप्य है, इस समस्या पर कोई वैज्ञानिक मत प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता।

इस भाँति परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत 'बृहत्कथा श्लोक' 'कथा सरित्सागर' 'वैताल पंचविंशतिका', 'शुकसप्तति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' ही मुख्य कथा-ग्रंथ हैं। वैसे लोग परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के बाण की कादम्बरी वसुबंधु की 'वासवदत्ता' और दंडी का 'दस कुमार चरित' भी लेते हैं। परन्तु ये काव्य-ग्रंथ कथा और उपन्यास की अपेक्षा गद्य काव्य अधिक और कथा कम हैं। वैसे यह तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बात है कि दंडी ने गद्य-काव्य को ही कथा कही है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये काव्य-ग्रंथ हमारे आलोच्य ग्रंथों में नहीं आ सकते। वैसे ये ग्रंथ कभी भुलाये नहीं जा सकते। बाण का 'हर्ष चरित्' तो निश्चित रूप से कथा-ग्रंथ के बहुत ही समीप है क्योंकि इनके कथा-तत्व में यथार्थ और कल्पना का कलात्मक संयोग हुआ है, लेकिन कादम्बरी श्लिष्ट और सामासिक पदावली की शैली के कारण इसकी कथात्मकता नष्ट हो गई है और भाषा चमत्कार उभर आया है।

बृहत् कथा श्लोक

यह ग्रंथ बुद्ध स्वामी द्वारा प्रस्तुत हुआ है। इसकी कुछ कथाएं 'पंचतंत्र' और 'वैताल पंचविंशतिका' से मिलती-जुलती हैं। लगता है कि ये समान कथाएं एक ही स्रोत दन्त-कथा के फलस्वरूप प्रस्तुत हुई हैं। इसकी समस्त कथाएं श्लोकों के माध्यम से आई हैं, फिर भी इन कथाओं में कथा-तत्व पर्याप्त मात्रा में है। इसका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है।

कथा सरित्सागर

कथा सरित्सागर का स्थान परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में अद्वितीय है। इस का समय ग्यारहवीं शताब्दी है। इस विशाल कथा-ग्रंथ में असंख्य कथाएं संकलित हैं तथा सारी कथाएं विभिन्न 'लंबकों' में विभाजित होकर अन्यान्य तरंगों

के माध्यम से आई है। प्रत्येक 'लवंक' क्रमशः कथा की संवेदनाओं के अनुकूल आए हैं; जैसे—१. कथापीठ, २. कथामुख, ३. लावणक, ४. नर वाहनदत्तोत्पत्ति, ५. चतुर्दारिका, ६. मदनमचुका, ७. रत्नप्रभा, ८. सूर्यप्रभा, ९. अलंकारवती, १०. शक्तिपशा, ११. वैला, १२. शशांकवती, १३. मदिरावती, १४. पंच, १५. महाभिषेक, १६. सुरतमंजरी, १७. पद्मावती और १८. विशमशील लवंक। कथापीठ लवंक की यह संज्ञा इसलिए दी गयी है कि वस्तुतः यह सम्पूर्ण 'कथा सरित्सागर' की पृष्ठभूमि है, धरातल है, जिस पर असंख्य कथाएं प्रतिष्ठित हुई हैं। हिमालय के उत्तरवर्ती कैलाश शिखर पर अपनी प्रिया पार्वती के साथ शिव जी रहते हैं। एक बार शिव जी पार्वती जी से प्रसन्न हुए और उनसे पूछा—प्रिये! क्या चाहती हो? पार्वती जी ने उत्तर दिया—स्वामिन् कोई नयी कथा सुनाइए। शंकर जी ने अपने और पार्वती जी के विवाह की कथा कह सुनाई, लेकिन इस कथा से पार्वती जी को संतोष न हुआ। तब शिव जी ने अपूर्व और मनोहर कथा कहने की प्रतिज्ञा कर पार्वती का रोष शांत किया। पार्वती जी ने नंदी को दरवाजे पर बिठा दिया और कह दिया कि भीतर किसी को न आने देना। फिर शिव जी पार्वती जी से विद्याधरों की कथा सुनाने लगे। लेकिन जब शिव जी कथा कहने लगे तब उन का बड़ा प्यारा गण—'पुष्पदंत' आया और जल्दी से रोकने पर भी वह न रुका और योगबल से वह भीतर चला गया तथा जो कुछ कथा शिव जी ने सात विद्याधरों की कही—सब उस ने सुन ली और घर आकर निज स्त्री 'जया' को भी ज्यों की त्यों सुना दी। जया ने पार्वती जी से सब कथाओं को कह दिया। इस पर पार्वती जी बहुत कुपित हुई और उन्होंने शंकर जी से कहा कि आपने कैसी पुरानी कथाएं कही, उन सब को तो जया जानती थी। महादेव ने सब रहस्य बता दिया और पार्वती जी ने क्रोधित होकर पुष्पदंत को शाप दिया—'नीच! जा तू मनुष्य रूप में जन्म ले।'

रुद्राणी चंडिका का ऐसा शाप सुनकर माल्यवान गण पुष्पदंत का पक्षपात करने लगा। इस पर कोपवती उमा ने उसे भी शाप दे दिया। फिर वे दोनों जया सहित भवानी के चरणों पर गिर पड़े। तब भवानी ने शांत होकर कहा, 'सुनो कुबेर जी के शाप से सुप्रतीक नामक एक यक्ष पिशाच हो गया है और विन्ध्याचल के जंगलों में रहता है, उसका नाम' 'काणभूति' है। उसे देखकर पुष्पदंत को अपने इस जन्म की कथा याद आ जायगी और जब वह काणभूति को अपनी कथा सुनायेगा तो शाप से उसकी मुक्ति हो जायगी। फिर

काणभूति से इस कथा को 'माल्यवान' सुनेगा, तब काणभूति की मुक्ति हो जावेगी और जब माल्यवान इस कथा को लोक में प्रकाशित करेगा तब वह शाप से मुक्त होगा। यह कहकर पार्वती जी चुप हो गयीं और वे दोनों न जाने कहाँ लुप्त हो गए।

योंही कुछ दिनों के बाद पार्वती जी ने दया करके शंकर जी से पूछा कि नाथ यह बताइये कि वे दोनों शापित व्यक्ति अब इस समय कहाँ होंगे। तब शंकर जी ने बताया कि कौशाम्बी महानगरी में पुष्पदंत तो वररुचि नाम से जन्मा है और माल्यवान सुप्रतिष्ठ नामक नगर में गुणाढ्य नाम से प्रसिद्ध है।

इधर मृत्युलोक में वस्तुतः पुष्पदंत मनुष्य रूप में वररुचि अथवा कात्यायन नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह विंध्याचल में 'काणभूति' नामक पिशाच से भेंट करता है और शाप के अनुसार कात्यायन को अपने पूर्व जन्म की बातें स्पष्ट हो जाती है और यह कह उठा—मैं पुष्पदंत हूँ मैं तुझे महाकथा सुनाऊँगा। यह कहकर कात्यायन ने सात लाख श्लोकों वाली महाकथा काणभूति को सुनायी।

कथा सरित्सागर में कथा का रूप

'कथा सरित्सागर'[1] की कथाओं को पढ़ने से स्पष्ट है कि ये अपने कलात्मक रूप में पुराणों की कथाओं की भाँति हैं—अर्थात् एक श्रोता है और एक वक्ता-कथाकार, जो एक मूलभूत कथा आरम्भ करता है तथा उसी मूलभूत कथा से धीरे-धीरे अन्यान्य कथाएं स्वतः निकलती रहती हैं और प्रत्येक कथा अपने वास्तविक मूल्य में स्वतंत्र और पूर्ण-सी प्रतीत होती हैं। वस्तुतः कथा की यह शैली मूलतः पौराणिक कथा-शैली और जातक तथा जैन कथाओं की शैलियों की मिश्रित शैली हैं।

वस्तुतः श्रोता और वक्ता की दृष्टि से इसका मूल संबंध शंकर और पार्वती से ही है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से 'कथा सरित्सागर' की सारी कथाएं वररुचि द्वारा कही गयी हैं और विंध्याचल के जंगल में काणभूति ने सुनी है। वररुचि अपने जन्म से स्वयं अपनी कथा आरम्भ करता है, लेकिन यहाँ दो विशेषताएँ आती हैं। यद्यपि 'कथा सरित्सागर' की समस्त कथाओं की संवेदनाएं वररुचि के जीवन के धरातल से चलती हैं फिर भी कथा रूप में संवेदना इतनी

---

[1]भाषा कथा सरित्सागर-प्रथम, द्वितीय भाग, बाबू रामकृष्ण द्वारा संपादित। भारत जीवन प्रेस, काशी, १९०५ ई०

शाल और व्यापक हो जाती है कि वररुचि के समय का भारत, उस की समस्त कालिक परिस्थितियाँ जैसे इनमें पिरो उठीं हैं। फलतः कथा सरित्सागर ख्य स्वतंत्र और पूर्ण कथाओं से परिपूर्ण हो उठा है। जहाँ किसी भी ग में वररुचि अपना वृतान्त कहते-कहते यह कहने लगता है कि हे काणभूति ी व्याड़ी और इंद्रदत्त के साथ उपाध्याय जी के स्थान पर रह कर मैंने समस्त या प्राप्त किया और युवा हुआ। एक समय की बात है कि हम लोग उस र में इन्द्रोत्सव देखने गये और वहाँ एक कन्या परमसुन्दरी ऐसी दीख पड़ी उसे कामदेव का साक्षात् अस्त्र ही कहना चाहिए। उसे देखते ही मैंने दत्त से पूछा कि मित्र! यह कौन है? बस, इसके उत्तर में इंद्रदत्त एक स्वतंत्र या कहने लगता है और दोनों के प्रश्नोत्तर से इस तरह असंख्य कथाएं कलती-बनती रहती हैं। कभी राजा, मंत्री, पुरोहित की कथा व्यक्तिगत कथा, भी शासन और समाज की कथा और कभी ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्र से राजा वत्सराज, नरवाहनदत्त, राजा सूर्यप्रभ और विक्रमादित्य और इंद्र, बेर, मयदानव और महासुर आदि की कथाएं आती-रहती हैं तथा सर्वत्र इन थाओं में कथा की मूल संवेदना बहुत ही स्थूल बाह्य परिस्थितियों के धरातल र चलती-रहती है, फलतः समस्त कथाओं का रूप एक ही जैसा है—अर्थात् क कथा के तारतम्य और सूत्र में अन्यान्य कथाएं पुष्प की पंखड़ियों की भाँति कसित होती जाती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि तात्कालिक पौराणिक न्त-कथाएं, अधिक से अधिक रूप में इस की कथाओं में संगृहीत हो गयी हैं और यह कथाओं का सागर हो गया है।

ताल पंचविंशतिका

यह पचीस कथाओं का संग्रह है और इन कथाओं का वक्ता शव में सा हुआ एक वैताल था जो अपने श्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से ंग करता था और अंत में वह एक रहस्य का उद्घाटन करता है जिससे राजा ा बहुत कल्याण होता है। कोई ठग राजा विक्रमादित्य को ठगने की चाल से उन्हें आदेश देता है कि वे अमुक वृक्ष से अमुक लटकती हुई लाश को अगर उसके पास लाएँ तो वह राजा के लिए महान हितकर सिद्ध होगा। जब राजा उस लाश को उतार कर ले चले तो रास्ते में उस लाश में प्रतिष्ठित वैताल ने उन से प्रतिज्ञा करा ली कि वे रास्ते भर चुप रहेंगे और अगर वे बोले तो वह फेर उसी पेड़ से जा लटकेगा। राजा ने प्रतिज्ञा कर ली और वैताल राजा को

एक कथा सुनाने लगा और उससे, उत्पन्न एक समस्या को उस ने राजा के सामने रख दी, राजा ने उसका उत्तर दे दिया फलतः वैताल फिर उसी डाल से जा लगा। इस भाँति उस वैताल ने राजा से कुल चौबीस स्वतंत्र कथाएं कहीं और पचीसवीं कथा को कह कर उस ने राजा के सामने कोई समस्या नहीं रखी, बल्कि उसने उस पाखंडी महात्मा का रहस्योद्घाटन कर दिया।

शुक सप्तति

इस कथा-ग्रन्थ में कुल सत्तर कथाएं हैं। एक तोते ने (वक्ता) अपनी स्त्री मैना (श्रोता) से ये सब कथाएं कहीं हैं। इसमें अधिकांश रूप में तोते ने उन स्त्रियों की कथाएं ली हैं जो दुष्टा और कुल्टा हैं तथा जो अपने प्रपंचों और छद्मभेषों से पुरुषों को छलती रहती है। लेकिन इन कथाओं का ध्येय स्त्री वर्ग को नीचा दिखाना या द्वन्द्व मानना नहीं है वरन् उन्हें अधर्म-पथ से सत्पथ पर लाना है।

शुक सप्तति की कथाओं का धरातल यों है—एक वणिक मदनसेन परदेश जाता है और अपने शुक को घर की पूरी जिम्मेदारी दे जाता है। वह शुक वस्तुतः एक गंधर्व था, उसने देखा कि वणिक की पत्नी अपने पतिव्रत धर्म से गिरना चाहती है, तोता उस स्त्री को सत्पथ पर लाने के लिए सत्तर-रातों तक सत्तर कथाएं कह सुनाता है और अन्तिम कथा की रात्रि को मदन स्वयं आ जाता है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका

इस कथा-संग्रह में, विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुतलियों द्वारा कही हुई कथाएं हैं, जिन्हें राजा भोज सुनते हैं और उस दैवी सिंहासन पर नहीं बैठ पाते। वस्तुतः राजा विक्रमादित्य का सिंहासन इंद्र द्वारा दिया गया था जो विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी में गड़ गया था। कालान्तर उसे राजा भोज ने पुनः प्राप्त किया और उसकी सदुपयोग करना चाहा। लेकिन जब राजा उस पर बैठने को होते, हर बार सिंहासन से एक युवती निकल कर उन्हें सिंहासन पर बैठने से रोकती और राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा, महानता, शौर्य आदि की कथाएं सुनाती। इस तरह इस कथा-संग्रह में कुल बत्तीस पुतलियों द्वारा सुनाई हुई बत्तीस कथाएं हैं।

समीक्षा

उपर्युक्त चारों कथा-संग्रह-'कथा सरित्सागर' 'वैताल पंचविंशतिका' 'शुक सप्तति' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के

विशिष्ट स्तम्भ हैं। इनका प्रभाव जहाँ एक ओर जन-मस्तिष्क की कथा-प्रवृत्ति पर पड़ा, दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश कथा-भाग पर भी पड़ा।

जन-मस्तिष्क में पैठ कर इन संग्रहों की कथाएं आगे चल कर दन्त-कथाओं के रूप में प्रचलित हुईं तथा जन-समुदाय में इनके आधार पर अनेक कथाएं गढ़ी गयीं। वस्तुतः आगे चल कर हिन्दी-प्रदेश में जितनी भी दंत-कथाएं और लोक कथाएं प्रचलित हुईं, उन सब के आदिस्रोत यही उक्त कथा-संग्रह हैं, जो अपने विभिन्न विकसित रूप में क्रमशः 'कथा सरित्सागर' से 'कथासागर', 'वैतालपंच-विंशतिका' से 'बैताल पचीसी', 'शुक सप्तति' से 'तोता-मैना किस्सा' और सिंहासन द्वात्रिंशिका' से 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाओं के रूप में आईं।

नीति संबंधी कथा संग्रह

समूचे परवर्ती संस्कृत-कथा साहित्य में दो प्रकार की कथाएं मिलती हैं एक मनोरंजन प्रधान, दूसरी शिक्षा और नीति प्रधान। संस्कृत कथा-साहित्य में पहले प्रकार की कथाएं बहुत ही सीमित और मानव-सापेक्ष हैं। लेकिन दूसरे प्रकार की कथाएं संस्कृत कथा-साहित्य में असीम हैं। इसमें चर-अचर, पशु-पक्षी सब को कथा-साधन बनाया गया है जैसे 'शुक सप्तति', 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' आदि की कथाएं।

'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' क्रमशः तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के आसपास की रचना है। लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनों नीति संबंधी कथा-संग्रह हैं। लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनों कथा-संग्रह संस्कृत साहित्य की दो अमूल्य निधियाँ हैं। इन दोनों की तुलना पूर्व कथित कथा-ग्रंथ जैसे 'सरित्सागर' आदि से नहीं की जा सकती। क्योंकि उनका प्रयोजन पाठकों को विशुद्ध मनोरंजन देना है जब कि इन कथा-ग्रन्थों का उद्देश्य मूलतः धर्म और राजनीति की शिक्षा देनी है। इनका उद्देश्य नीति का स्पष्टीकरण है। इनके पात्र मूलतः पशु-पक्षी हैं और सभी मानव-संवेदनाओं से युक्त हैं।

पंचतंत्र में कथा का स्वरूप

समूचा पंचतंत्र[1] पांच विभिन्न तंत्रों, जैसे १. मित्र भेद २. मित्र

[1]विष्णु शर्मा का 'पंचतंत्र', सम्पादक—पन्नालाल अभिमन्यु और पण्डित सीताराम झा, प्रकाशक—खेलाड़ी लाल एंड संस, कचौड़ी गली बनारस सिटी, सन् १९३१ ई०।

संप्राप्ति ३. काकोलूकीय ४. लब्ध प्रणासे और ५. अपरीक्षित कारके में संकलित है। ये प्रत्येक तंत्र अपने में स्वतंत्र हैं और प्रत्येक तंत्र के अपने उपदेश और अपनी नीति है। यह समूची नीति, धर्मोपदेश और कूटनीति, विभिन्न कथाओं के माध्यम से आई है तथा प्रत्येक तंत्र में अधिक से अधिक बीस कथाएं तक आई हैं। जैसे, मित्रभेद तंत्र में मूर्ख बानर कथा, शृंगाल दुन्दुभि कथा, दन्तिलम कथा, देवशर्म परिव्राजक कथा, वकलीर कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, वानरचत्क दम्पति कथा आदि कुल बाइस कथाएं आई हैं।

ये कथाएं जिस रूप में कही गयी हैं, कला की दृष्टि से उन में जो विशेषताएं आई हैं, वे सर्वत्र स्पष्ट हैं। प्रायः सभी तंत्रों की मुख्य संवेदनाएं नीति संबंधी हैं और इन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति जिन कथाओं से हुई है, वे कथाएं छोटी-छोटी और अनेक हैं। सब कथाओं के कथाकार पशु-पक्षी हैं और कथाओं के पात्र जड़-चेतन हैं। ये कथाएं अपनी शिल्पविधि के रूप में, कथा-सरित्सागर की कथाओं की ही भाँति है। अर्थात कथा में कथाओं का जुड़ते जाना और एक कथा से दूसरी कथा की उत्पत्ति और विकास होना इस की शैलीगत विशेषता है। सब कथाओं का मुख्य देश—दक्षिण प्रान्त में महिलारोप्य नामक एक नगर और तंत्रों की उपकथाओं के देश उसी के समीपवर्ती वन, पहाड़ और वृक्षादि हैं।

उक्त बातों के उदाहरण में हम किसी भी तंत्र को ले सकते हैं, जैसे, मित्र भेद प्रथम तंत्र का आरम्भ, मध्य और अंत केवल इसी नीति से भरा पड़ा है कि धन का क्या महत्व है? राजा किसे अपना मित्र बनाता है? कौन मित्र कैसा होता है? मित्रों के संबंध में राजा की क्या नीति होनी चाहिए। ये नीतियाँ विभिन्न कथाओं के माध्यम से कही गयी हैं तथा इन के कथाकार हैं 'करटक' और 'दमनक' नामक दो सियार। तंत्र की कथा यों आरम्भ होती है—दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का एक नगर था, वहाँ एक धनवान बनिया रहता था। वह धनोपार्जन के लिए अपनी गाड़ी पर बैठ कर, जिसमें संजीवक और नन्दक नामक बैल जुते थे, रवाना हुआ। रास्ते में संजीवक नामक बैल जमुना की तलहटी के दलदल में फँस गया और बनिया उसे वहीं छोड़ कर अपने रास्ते चला गया। भाग्यवश बैल स्वस्थ होकर निकल आया और वहीं जंगल में रहने लगा। एक समय पिंगलक नामक एक शेर उसी जगह जमुना में पानी पीने आया और वहाँ बैल को गर्जते हुए सुनकर, शेर वहीं डर से बैठ गया। सिंह के करटक और दमनक नाम के दो सियार मित्र थे। दोनों अधिकारच्युत होने

के कारण आपस में चिन्ता करने लगे कि उनका राजा सिंह कहाँ रह गया। इस पर करटक कहता है कि हे मित्र ! जो पुरुष बिना काम के काम करता है वह उसी प्रकार नष्टावस्था को प्राप्त होता है, जिस प्रकार कांटे को निकाल कर मूर्ख वानर। इस तरह करटक मूर्ख वानर की कथा कहने लगता है। इस भाँति करटक दमनक और पिंगलक आपस में इस तंत्र की तमाम कथाएं कहते हैं। ये कथाएँ मानव-जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित न होकर पशुपक्षियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन की नीति दिशा में प्रकाश डालती है। सब कथाएं उपदेशात्मक शैली में कही गयी हैं, यद्यपि कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक है। वस्तुतः पंचतंत्र की कथाएं कथा-तत्व को ध्यान में रख कर नहीं लिखी गयी हैं, बल्कि इनका ध्येय इन कथाओं के साधन-मात्र से अमरशक्ति राजा के दुष्ट मूर्ख राजकुमारों को नीति कुशल और व्यावहारिक बनाना था। इस दिशा में पंचतंत्र की कथाएं पूर्णतः सफल हैं।

हितोपदेश और उसकी कथाएं

पंचतंत्र की ही भाँति हितोपदेश भी नीति-ग्रंथ है तथा जिस उद्देश्य को लेकर पंचतंत्र की कथाएं आई हैं, उसी उद्देश्य से हितोपदेश की भी कथाएं आई हैं। पाटलीपुत्र के राजा सुदर्शन के समस्त पुत्र पराङ्मुख, कुमार्गी और शास्त्र के पठन-पाठन से विरक्त थे। राजा के ऐसे ही पुत्रों को शिक्षा देने के लिए हितोपदेश-कार विष्णुशर्मा ने इन कथाओं तथा अन्यान्य उपकथाओं और अन्तर्कथाओं में समस्त शिक्षाओं और हितोपदेशों को पिरोया है। इससे यह सिद्ध है कि हितोपदेश पंचतंत्र की भाँति-नीति ग्रंथ है। इसकी आत्मा शिक्षा और उपदेश है और इसके रूप का निर्माण छोटी-छोटी कथाओं, अन्तर्कथाओं और उपकथाओं द्वारा हुआ है। इसमें कुल १. मित्रलाभ २. सुहृद्भेद ३. विग्रह और ४. संधि चार प्रकरण हैं तथा इन चारों प्रकरणों में कुल मिला कर अड़तीस कथाएं हैं और इन कथा रूपी लताओं में न जाने कितनी शिक्षाएं, उपदेश आदि रूपी फल-फूल और पत्तियाँ चुनी हुई हैं।

प्रत्येक प्रकरण का अपना एक साध्य बिन्दु है। इसी के प्रकाश में उस प्रकरण की सारी शिक्षाएं आती हैं और उस शिक्षा के ही अनुरूप उस प्रकरण की कथाएं भी आई हैं। जैसे मित्रलाभ प्रकरण का साध्य-बिन्दु है—उचित मित्रों से कितने लाभ हैं। बस इसी के प्रकाश में मूल कथा आरम्भ होती है। कबूतरों और एक बहेलिये की कथा—बहेलिया कबूतरों को फँसाने के लिये जाल

फैलाता है और उस पर चावल बिछाता है। उसे देखकर कबूतरों का सरदार उन्हें १. बाघ और लालची व्यक्ति की कथा सुना कर, सावधान करता है, और मूल कथा फिर आगे बढ़ती है। सब कबूतर अपने सरदार की आज्ञा से जाल सहित उड़े तथा उड़ते-उड़ते एक चूहे के पास आते हैं। वही चूहा सब को बंधन-मुक्त कर देता है। चूहे की यह महानता देख कर एक कौए ने उस से मित्रता जोड़ने के लिए प्रार्थना की। इस पर चूहे ने २. सियार और मृग की कथा तथा ३. एक बिलाव और गृद्ध की कथा सुना कर उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता कभी नहीं होती। फिर वह चूहा उस निर्जन वन में क्यों रहता था उसने यह स्पष्ट करने में ४. एक संन्यासी और अपनी कथा कह सुनाई। ५. लीलावती तथा बूढ़े की कथा तथा ६. लालची सियार की कथा कह सुनायी। इसके उपरान्त मूल-कथा का सूत्र फिर आगे चलता है। जिस समय चूहे कौए को ये कथाएं सुना रहा था, एक डरा हुआ मृग उसकी शरण में आया। लेकि चूहे ने मृग से ७. एक बनिये और उनकी पत्नी की बेइज्जती की कथा तथा ८. हाथी और सियार की कथा सुना कर उससे कहता है कि उन्हें वह स्थान शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए। उन लोगों ने वही किया। लेकिन फिर भी बहेलिया उन का पीछा करता ही रहा। परन्तु मित्रों के लाभ से उनका कुछ भी न बिगड़ सका।

उक्त कथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि एक मूल कथा समूचे प्रकरण में आदि से अन्त तक चलती है। इसकी एक निश्चित शिक्षा होती है। इसे शिक्षा के उदाहरण में तथा इसकी परिपुष्टि में अन्य उपकथाएं और अंतर्कथाएं आती हैं। समस्त कथाओं के पात्र प्रायः पशु-पक्षी हैं तथा समस्त देव-अदेव पात्र उपदेश और शिक्षाप्रद कथाएं कहते रहते हैं।

फलतः पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएं विशुद्ध रूप से नीति कथाएं हैं। इनका मुख्य लक्ष्य शिक्षा है और कथा-तत्व इन के साधन-मात्र हैं। फिर भी परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में ये दोनों नीति ग्रंथ सदा अमर रहेंगे।

प्राकृत और अपभ्रंश में कथा-तत्त्व

संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी हमें कितने मुक्तक और प्रबन्ध काव्य मिलते हैं। लेकिन स्मरणीय यह है कि यहाँ इन मुक्तक और प्रबंध काव्यों में आख्यान या आख्यानक काव्य के तत्व बहुत ही कम मिलते हैं। परन्तु महाराष्ट्री प्राकृत में 'कौतहल' द्वारा रचित 'लीलावती कथा' का स्थान आख्यानक

काव्यों में बहुत है। इस की कथा भी बहुत मनोरञ्जक है। गोदावरी तट पर प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती के प्रेम और विवाह का चित्रण कवि ने गाथाबद्ध रचना में किया है। यह गाथाबद्ध रचना प्राकृत की सब से बड़ी देन है। फलतः संस्कृत कथा-शैली से प्राकृत में गाथा का यह विकास स्मरणीय रहेगा। इस कथा को कवि ने दिव्य-मानुषी कथा कही है और इसमें वस्तुतः देवता और मनुष्य परस्पर दोनों वर्गों के पात्र मिलते हैं। सम्पूर्ण कथा अलंकृत काव्यमय शैली में प्रस्तुत की गयी है तथा इस पर प्रबन्ध शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव है। इसके अतिरिक्त मुख्य कथा के अंतर्गतऔर कथाएं भी आयी हैं और इस के सुसंबंध करने तथा कथा को एक सूत्रता देने में स्पष्ट रूप से कवि पर 'कथा सरित्सागर' और 'पञ्चतन्त्र', 'हितोपदेश' की कथा-शैली का प्रभाव लक्षित है।

अपभ्रंश में साहित्य और कला की दृष्टि से जैन अपभ्रंश का स्थान सर्वोपरि है। इसमें मुक्तक काव्य और कथाएं अधिकांश रूप में मिलती हैं। आख्यानक काव्य की दृष्टि से इसमें प्रेम-कथा 'पउमिसिरी चरिउ'—पद्मश्री चरित्र' धाहिल कवि की एक मात्र कृति मिलती है। इसमें पद्मश्री के पूर्व जन्मों की कथाएं हैं। एक जन्म में वह वसन्तपुर नगर के सेठ धनसेन की पुत्री धनश्री थी। धनदत्त और धनावह उस के भाई थे। एकाएक धनश्री विधवा हो जाती है, और अपने भाई की शरण में धार्मिकता का जीवन व्यतीत करती है। लेकिन उस के बड़े भाई की स्त्री यशोमति उस पर व्यंग करती है और कुछ ही दिनों बाद तप करती हुई धनश्री स्वर्गवास करती है। दूसरे जन्म में इस का जन्म हस्तिनापुर में होता और इस का नाम पद्मश्री रखा जाता है। उधर धनदत्त और धनावह का पुनर्जन्म अयोध्या में होता है और इन का नाम क्रमशः समुद्रदत्त तथा वृषभदत्त रखा जाता है। तरुण होने पर संयोगवश धनश्री और समुद्रदत्त से प्रेम होता है। लेकिन पूर्व जन्म के कर्मानुसार दोनों में भेद उत्पन्न होता है। फलतः समुद्रदत्त पद्मश्री को छोड़ कर कान्तिमती से विवाह करता है। पद्मश्री भ्रमण करती हुई अयोध्या पहुँचती है और पुनः कान्तिमती से अपमानित होती है। अन्त में तपस्या करती हुई पद्मश्री मोक्ष प्राप्त करती है।

इस के अतिरिक्त श्रीचंद के एक कथा-कोष का भी पता मिलता है। इस में, विद्वानों का कहना है कि मनुष्य, देव, पशु-पक्षी आदि पात्रों के माध्यम से अनेक उपदेशात्मक कथाएं हैं। इस पर भी प्रत्यक्ष रूप से जातक और पंचतंत्र का प्रभाव स्पष्ट है।

जैन अपभ्रंश साहित्य में महाभारत की कथा से संबंधित अनेक कृतियाँ मिलती हैं। इस में यशकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' सब से महत्वपूर्ण है।

सारांशतः प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कथा का रूप मूलतः काव्यात्मक रहा है। जिसमें प्रबन्ध और मुक्तक के रूप विशेष ढङ्ग से मिलते हैं। जैसे, प्राकृत प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत 'सेतुबन्ध' साहित्यिक महाकाव्य है। 'महावीर चरितादि' जैन धार्मिक प्रबंधात्मक रचनाएं हैं, तथा वसुदेव हिन्दी और समराइच्चकहा गद्य-पद्य मिश्रित कथा कृतियाँ हैं। मुक्तक के अन्तर्गत गाथा सप्तशती' और 'वज्जलग्ग' स्मरणीय हैं। अपभ्रंश प्रबन्धात्मक काव्य में 'पउमसिरीचरिउ' के अतिरिक्त 'भविसयत्त कहा' और 'विशुद्ध खंड-काव्य' के अंतर्गत 'संदेशरासक' और व्रतादि से सम्बन्धित अनेक पद्यबद्ध छोटी-छोटी कथाएं मिलती हैं।

इन सब का प्रभाव परवर्ती साहित्य के कथा-तत्व पर कितना पड़ा इस के उत्तर में हम मध्यकालीन हिन्दी आख्यान काव्य को रख सकते हैं तथा प्राकृत अपभ्रंश के कथा-तत्व को हम इन मध्यकालीन आख्यानक काव्य के कथा-तत्व में ढूँढ़ सकते हैं। लेकिन हिंदी के आदि युग चारणकाल अथवा वीरगाथा काल में इसका क्या प्रभाव पड़ा, यह चिन्त्य है। वस्तुतः हिंदी साहित्य के आदि काल में भी कथा-तत्व और कथा-प्रवृत्ति दोनों अपने सुंदर रूप में हमें मिलती हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने इस काल को प्रेम-गाथा और लोक-गाथा काल कहा है।

चारण साहित्य में कथा-तत्व

समूचा चारण साहित्य दो शैलियों में मिलता है। प्रथम प्रबन्धात्मक शैली और द्वितीय गीतात्मक शैली। पिछले पृष्ठों में हमने देखा है कि प्राकृत और अपभ्रंश में प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों वहाँ मिले हैं। उस काल में भी अपेक्षाकृत प्रबन्ध काव्य साहित्य के अन्तर्गत था और मुक्तक काव्य जनता की वस्तु थी। तथा इसी को गेय बना कर और इस में अन्यान्य दन्त-कथाओं को जोड़ कर इसे अपने मनोरञ्जन में लाते थे। दूसरी ओर इसी को जैन धर्मावलंबी, नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय वाले अपनी धार्मिकता के प्रचार में सदुपयोग करते थे।

विषय की दृष्टि से चारण साहित्य मुख्यतः चार विषयों में विभाजित है।

ये विषय हैं—इतिहास, बात, प्रसंग और दास्तान। इन की परिभाषा चारणों ने यों दी है—

—'जिण खिसा में दराजी रहे सो खिसो इतिहास कहावै।'

—'जिण खिसा में कम दराजी सो खिसो बात कहावै।'

—'इतिहास रो अवयव प्रसंग कहावै।'

—'जिण बात में एक प्रसंग हीज चमत्कारिक होय तिनका बात दास्तान कहावै[1]।'

इस प्रकार चारण साहित्य में पद्य को कविता और गद्य को वार्ता कहा गया है। इसी वार्ता को ही 'वचन का' बात और ख्यात कहा गया है। बात वस्तुतः किस्से और कथा के रूप में आया है और ख्यात इतिहास के सम्बन्ध में।

कविता के अंतर्गत 'बीसलदेव रासो' 'पृथ्वीराज रासो' आते हैं। प्रायः इन सब कथात्मक काव्यों में विभिन्न कथाओं की अवतारणा हुई है और उन्हीं के धरातल पर इनके काव्यात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ इन कथाओं में प्रायः एक ही मूलभूत संवेदना है—कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता है, उस से विवाह होता है, विरह की स्थिति आती है, संयोग होता है, अथवा किसी राजा को अपने तमाम विवाहों में अनेक युद्ध करने पड़ते हैं।

कथा के इन रूपों में लौकिक भावना अधिक है। यही कारण है कि इन में से कुछ कथाओं का प्रचलन हमारी लोक-भावना में अधिक है और इन का रूप मुख्यतः दन्त-कथात्मक हो गया है। फलतः (चारण काल) (ग्यारहवीं शताब्दी से आरम्भ) से आगे ही दन्त-कथाओं और कथात्मक लोक-रुचि ने अनेक लोक-गाथाओं की सृष्टि की है। डा० रामकुमार[2] वर्मा ने, चारण काल के उपरान्त ही इस सृष्टि काल को एक स्वतंत्र लोक-गाथा काल माना है।

लोक-गाथाएं

वस्तुतः अपभ्रंश में ही और उसके साथ ही साथ सिद्धनाथ सम्प्रदाय

---

[1] A Descriptive catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Section 1, Prose Chronicles Part 1, by Dr. L. P. Tessitory. Page 6.

[2] हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन—डा० रामकुमार वर्मा, तीसरा प्रकरण, पृष्ठ १३४।१६७ साहित्य भवन, ९ फ़ेनस रोड, लाहौर।

वाले जन-भावना में वैराग्य अथवा धार्मिकता के प्रति भावों की प्रतिष्ठा करने के लिए अनेक दृष्टान्तात्मक कथाएँ कहते थे। ये कथाएँ प्रायः लौकिक प्रेम के भौतिक प्रेम के धरातल पर गढ़े लिए जाते थे और अन्त में उन में इस भौतिक संसार की निस्सारता सिद्ध की जाती थी। दूसरी ओर ये रूप, कहानियाँ और बाद को चारण साहित्य के कथात्मक रूप धीरे-धीरे अपने मौलिक और अपरिवर्तित रूप में लोक गीत में प्रचलित रहे थे।

इन लोक-गाथाओं में, गीतात्मकता इनकी प्रमुख विशेषता है। इस के अतिरिक्त इन में जातीय सांस्कृतिक परंपरा, प्रकृति सौंदर्य, जीवन की सरलता और तरलता, अलौकिक प्रभाव तथा मानव और अमानव का संबंध इन की अनेक विशेषताएं हैं। भावपक्ष की दृष्टि से इन में संयोग वर्णन और तत्कालीन परिस्थितियाँ भी समान रूप में वर्तमान रहती हैं; जैसे, नायक और नायिका में पूर्वानुराग, वियोग और बारहमासा चित्रण आदि। समस्त लोकगाथाएं अपने तीन रूपों में मिलती हैं। पहला रूप पद्यात्मक दूसरा गद्यात्मक और तीसरा मिश्रित है।

पद्यात्मक रूप में सब से प्रसिद्ध लोक-गाथाएं 'ढोलामारूरा दूहा'[1] और 'माधवानल काम कंदला'[2] हैं। इन के अतिरिक्त 'हीर राँझा'[6] कुतुब शतक, 'सिंहासन बत्तीसी'[3] 'पंच सहेलीरादूहा'[4] 'मैनासत'[5] 'चन्दन मलियागिरी री बात', त्रिया विनोद[7], भी सुन्दर पद्यात्मक लोक-गाथाएं हैं।

गद्यात्मक रूप में 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' की कथा 'बगले हंसिणी की कथा', और 'फुटकर वांता रो संग्रह' हैं। 'फुटकर वांता रो' संग्रह में,

---

[1] ढोलामारूरा दूहा—काशी ना० प्रचा० सभा से प्रकाशित १९९१ वि०

[2] सम्पादक, एम० आर० मजूमदार : ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा

[3] राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पृष्ठ १५२-१५३ : पं० मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ उदयपुर १९४२।

[4] वही पृष्ठ ८०

[5] बार्डिक एण्ड हिस्टा० सर्वे ऑव् राजपूताना सेक्सन २, पार्ट १, पृ० ४२

[7] राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पंडित मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर, १९४२; पृष्ठ ३९।

डा० एल० पी० टैसीटरी ने अनेक कथाओं का संग्रह दिया है, जैसे 'सांई कर रह्यो हैं तै री बात' 'कुतुब दी साहिजादे री बात', 'मोसल री बात', 'देवी नायक देरी बात', 'बुधिमल कथा री कहाणियाँ', 'मोसल री बात', 'सुपियार देरी बात', 'आठ कहाणियाँ', 'पांच कहाणियाँ', 'बीझरे अहीर री बात', 'अमादे भटियाणै री बात', 'पलक दरिगाव री कथा'। इन सब के कथाकार अलग-अलग चारण हैं।

मिश्रित रूप में 'मदन सतक', 'चंद्र कुंवर री बात', 'बीजा सोरठ री बात', और 'सदावछ सावलिंगा री बात' इन के सुन्दर उदाहरण हैं।

वस्तुतः इन सब के निर्माण और सृष्टि में संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य, दन्त-कथाओं, इतिहास और कल्पना का सामुहिक हाथ है। इन लोक-गाथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि जहाँ कोई लोक-गाथा कुछ काल्पनिक प्रेम चरित्रों को लेकर उन की इतिवृत्ति में सँवारी गयी है, वहाँ अन्य लोक-गाथाएं कुछ ऐतिहासिक या सामाजिक घटनाओं के आधार पर अवतरित हुई हैं। इन के अतिरिक्त कुछ कथाएं ऐसी भी आती हैं, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत, अपभ्रंश और चारण काल के कथात्मक काव्य की छाप है जैसे—'ढोलामारू', 'हीर-रांझा'।

इस तरह इन लोक गाथाओं ने अपने समस्त पूर्ववर्ती कथा-साहित्य के प्रकारों का अपने रूपों में इतनी सुन्दरता से समन्वय किया है कि उन में जहाँ एक ओर विभिन्न कथा-शैलियों का समावेश है, दूसरी ओर उन में उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास व्यक्ति और समाज सब से तादात्म्य स्थापित हुआ है। ऐसा एक स्थान पर सब कुछ कैसे संभव हुआ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि साहित्य का कथा-पक्ष बहुत सरलता से जन-रुचि में स्थान कर लेता है और जन-रुचि की दंत-कथात्मक, मनोरंजनात्मक शक्ति तथा प्रेम और वीरता की प्रेरणा उनमें अनायास ही कितनी लोक-गाथाओं की सृष्टि करती रहती है।

उपर्युक्त गाथाओं में जितनी प्रमुख गाथाएं हैं—जैसे 'ढोलामारू' और 'माधवानल काम कंदला' इन सब का धरातल मुख्यतः प्रेम है। इन प्रेम-गाथाओं का स्थान जन-भावना में इतना है कि इन के विभिन्न रूप अथवा इन के सादृश्य पर बने और भी प्रेम-गाथाएं हमें अन्य जनपदीय बोलियों में मिलती हैं। फलतः यही लोक-गाथा काल हमारे जनपदीय साहित्य का विकास काल है और इसी साहित्य के प्रभाव से हमारी ग्राम कथाएं, प्रेम कथाएं आज भी विकसित होती रहती हैं। लेकिन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से इन लोक-गाथाओं का प्रारम्भ जैन कवियों की वैराग्य परक रचनाओं से प्रारम्भ हुआ, लौकिक प्रेम-

डा० एल० पी० टेसीटरी ने अनेक कथाओं का संग्रह किया है, जैसे 'सांई कर रह्यो हूँ तै री बात' 'कुतुब दी साहिजादे री बात', 'मोसल री बात', 'देवी नायक देरी बात', 'बुधिमल कथा दी कहाणियाँ', 'मोसल री बात', 'सुपियार देरी बात', 'आठ कहाणियाँ', 'पांच कहाणियाँ', 'वीभरे अहीर री बात', 'अमादे भटियाणे री बात', 'पलक दरियाव री कथा' । इन सब के कथाकार अलग-अलग चारण हैं ।

मिश्रित रूप में 'मदन सतक', 'चंद्र कुंवर री बात', 'बीजा सोरठ री बात', और 'सदाबछ सावलिंगा री बात' इन के सुन्दर उदाहरण हैं ।

वस्तुतः इन सब के निर्माण और सृष्टि में संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य, दन्त-कथाओं, इतिहास और कल्पना का सामुहिक हाथ है । इन लोक-गाथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि जहाँ कोई लोक-गाथा कुछ काल्पनिक प्रेम चरित्रों को लेकर उन की इतिवृत्ति में सँवारी गयी है, वहाँ अन्य लोक-गाथाएं कुछ ऐतिहासिक या सामाजिक घटनाओं के आधार पर अवतरित हुई हैं । इन के अतिरिक्त कुछ कथाएं ऐसी भी आती हैं, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत, अपभ्रंश और चारण काल के कथात्मक काव्य की छाप है जैसे—'ढोलामारू', 'हीर-रांझा' ।

इस तरह इन लोक गाथाओं ने अपने समस्त पूर्ववर्ती कथा-साहित्य के प्रकारों का अपने रूपों में इतनी सुन्दरता से समन्वय किया है कि उन में जहाँ एक ओर विभिन्न कथा-शैलियों का समावेश है, दूसरी ओर उन में उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास व्यक्ति और समाज सब से तादात्म्य स्थापित हुआ है । ऐसा एक स्थान पर सब कुछ कैसे संभव हुआ ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि साहित्य का कथा-पक्ष बहुत सरलता से जन-रुचि में स्थान कर लेता है और जन-रुचि की दंत-कथात्मक, मनोरंजनात्मक शक्ति तथा प्रेम और वीरता की प्रेरणा उनमें अनायास ही कितनी लोक-गाथाओं की सृष्टि करती रहती है ।

उपर्युक्त गाथाओं में जितनी प्रमुख गाथाएं हैं—जैसे 'ढोलामारू' और 'माधवानल काम कंदला' इन सब का धरातल मुख्यतः प्रेम है । इन प्रेम-गाथाओं का स्थान जन-भावना में इतना है कि इन के विभिन्न रूप अथवा इन के सादृश्य पर बने और भी प्रेम-गाथाएं हमें अन्य जनपदीय बोलियों में मिलती हैं । फलतः यही लोक-गाथा काल हमारे जनपदीय साहित्य का विकास काल है और इसी साहित्य के प्रभाव से हमारी ग्राम कथाएं, प्रेम कथाएं आज भी विकसित होती रहती हैं । लेकिन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से इन लोक-गाथाओं का प्रारम्भ जैन कवियों की वैराग्य परक रचनाओं से प्रारम्भ हुआ, लौकिक प्रेम-

इस प्रकार उक्त सभी प्रेम कथात्मक कृतियों में कथा-तत्व और कथा-शिल्प दोनों पर्याप्त मात्रा में हैं।

यहाँ कथा-तत्व अथवा कथानक वस्तुतः इसीलिए इतनी कलात्मकता से प्रस्तुत किए गए हैं, कि उस समय जनता उतने बड़े-बड़े प्रेमाख्यानों को अधिकतर कथा की जिज्ञासा और आग्रह से पढ़ती और सुनती रही होगी, आध्यात्मिकता के आग्रह से इतना नहीं। अतः स्पष्ट शब्दों में इन प्रेमाख्यानों में कथा-तत्व युग की वस्तु है और इनकी आध्यात्मिकता कवि की अपनी वस्तु रही है जिस का संचयन वह स्वान्तः सुखाय के लिए करता रहा होगा तथा इस विकास के पीछे प्राकृत और अपभ्रंश कथा-तत्व की प्रेरणा संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य के तत्वों की प्रेरणा से अधिक रही है।

वार्ता साहित्य की धार्मिक-कथाएं

चारण साहित्य में हमें वात की शैली का दर्शन हो जाता है। लेकिन उस काल में वात मुख्यतः पद्य ही के लिए प्रयुक्त होता था। यहाँ वार्ता साहित्य मुख्यतः ब्रज भाषा गद्य की वस्तु है और इस वार्ता पर प्राचीन संस्कृत की कथा वार्ता शैली की पूरी छाप है। यह साहित्य विशेषकर पुष्ट-मार्गीय श्री वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णव से सम्बन्धित है। इस में यथासम्भव वैष्णव भक्तों के जीवन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन कथाओं के माध्यम से हुआ है। इन कथाओं के ध्येय वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति हममें आस्था उत्पन्न करनी है। वार्ता से यहाँ तात्पर्य, वैष्णव के जीवन सम्बन्धी घटनाओं को कथा के पुट से अभिगत करना है। वार्ता साहित्य के मुख्यतः दो प्रतिनिधि ग्रंथ हैं १. चौरासी वैष्णवन की वार्ता[1] और २. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता[2]।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कुल चौरासी वार्ताएं संगृहीत हैं। इन में वे वार्ताएं मिलती हैं जो वैष्णव के जीवन सम्बन्धी विवरण पर थोड़ा-सा प्रकाश डालती हैं; जैसे, 'दामोदर दास हर्सानी की वार्ता', 'पद्मनाभ दास कन्नौजिया ब्राह्मण', 'कन्नौज में रहते तिनकी वार्ता', 'नरहर दास तिनकी वार्ता' आदि। इन वार्ताओं में वैष्णव भक्तों के जीवन सम्बन्धी किसी एक घटना से अधिक

---

[1]गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, सं० १९८९,

[2]गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, सं० १९८८,

का विवरण इन में नहीं मिलता और यह विवरण केवल एक छोटी-सी बात के धरातल पर कथात्मकता के पुट से आता है। जैसे, कविराज भाट 'तिनकी वार्ता'[1] 'सो वे कविराज भाट ब्राह्मण हुते, सो तीन भाई हुते सो तीन भाई श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं उनको समर्पण करवायो पाछे श्रीनाथ जी के सन्निधान कवित्त सुनावते पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु कविराज भाट के ऊपर बहुत प्रसन्न रहने सो वे कविराज भाट श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपा पात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्ता अब कहाँ ताईं लिखिए।'

उक्त वार्ता से स्पष्ट है कि इस का धरातल कथा की दृष्टि से कितना सामान्य है। न इसमें कोई कथा-तत्व ही है, न जीवन का कोई संतुलित पक्ष ही।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

ये वार्ताएं भी मूलतः धार्मिक धरातल से आई हैं, लेकिन इन की संवेदनाओं में अपेक्षाकृत कुछ अधिक कथा-तत्व आए हैं। भाव-पक्ष में मानव अनुभूतियां और उनके चरित्रचित्रण की ओर आग्रह भी है जैसे वेश्या की बेटी[2], हंस हंसनि[3], दो ठग[4], दो प्रेत[5], एक वेश्या[6], एक चोर[7], पठान का बेटा[8], एक सौदागर[9] और सासुबहू[10] आदि वार्ताएं चौरासी वैष्णवन की वार्ताओं से बिलकुल अलग हैं। इन में अधिक से अधिक कथा-तत्व आए हैं तथा इन का स्थान कथा विकास की कड़ी में कथा-तत्व की तीन विशेषताएं नितान्त स्पष्ट हैं इस में एक छोटी-सी कथा वस्तु है, एक घटना है, और इन दोनों का आरोह अवरोह भी है, तथा इन के विकास की एक सूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन वार्ताओं का ध्येय वही है कि वैष्णवधर्म सर्वोत्कृष्ट है और श्री ठाकुर जी परम महान् हैं

[1] चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० २४६

[2] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० १२७

[3] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३७२

[4] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३६४

[5] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २७८

[6] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २६४

[7] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २२४

[8] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २०८

[9] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ४१५

[10] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३६२

शिल्प-विधि

विशुद्ध शैली की दृष्टि से ये वार्ताएं वर्णनात्मक ढंग से कही गयी हैं। इन में कौहतूल और जिज्ञासा वृत्ति पर कोई विशेष बल नहीं पड़ता। फलतः इन वार्ताओं में कथा-तत्त्व केवल इसो अर्थ में है कि यहाँ जीवन की किंचित् घटनाओं विवरणों की अभिव्यक्ति कथा के माध्यम से हुई है। लेकिन इस से हम यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी गद्य में यह पहला प्रयत्न है, जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें कथा-तत्त्व में ढल कर हमारे साहित्य में आई हैं।

सिंहावलोकन

पिछले पृष्ठों में हम ने संक्षिप्त रूप में वैदिक काल से लेकर हिन्दी के मध्ययुग तक कथा-साहित्य के ऐतिहासिक विकास-सूत्र का अध्ययन किया है, इस में हमने वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, चारणकाल तथा मध्य युगीन हिन्दी आख्यानक काव्यों वार्ताओं आदि में कथा के क्रमिक रूपों का अवलोकन किया है। इन में जहाँ हम ने कथा की विभिन्न शैलियों से परिचय प्राप्त किया है, वहाँ हमें यह भी स्पष्ट हुआ है कि कथा और चरित्र के रूपों के परिवर्तन के साथ-साथ कथाओं, आख्यानों के विषय और लक्ष्य में भी परिवर्तन होता गया है।

वैदिक काल में कथाएं अपने बीज रूप में, देवताओं की स्तुति और यज्ञादि के मंत्रों के बीच में छिपी हुई थीं और उनका ध्येय विशुद्ध धार्मिक था। उपनिषद काल में कथाओं की मुख्य संवेदनाएं अध्यात्म ज्ञान और अध्यात्म चर्चा को लिये हुए आई हैं। पौराणिक काल में जीवन अपने सम्पूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य में हुआ है। फलतः यहाँ से दन्त-कथाओं एवं आख्यानों का आरम्भ हुआ है। जीवन और साहित्य में कथा ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। इस के प्रभाव का उदाहरण हम ने सम्पूर्ण परिवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में देखा है। पालि साहित्य में कथाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के माध्यम से धर्म की प्रचारात्मक नीति की नींव पड़ी है। प्राकृत और अपभ्रंश में कथाएं लौकिक एवं जीवन और यथार्थ धरातल पर आयी हैं, फलतः यहाँ मनोरंजक कथाओं के साथ ही प्रेमाख्यानों और आख्यानों की भी सृष्टि हुई। चारण काल और गाथा काल में कथा के इस विकास का चरम उत्कर्ष हुआ तथा मध्य युग के प्रेमाख्यानों और वार्ताओं में उसका पर्यवसान हुआ।

का विवरण इन में नहीं मिलता और यह विवरण केवल एक छोटी-सी बात के धरातल पर कथात्मकता के पुट से आता है। जैसे, कविराज भाट 'तिनकी वार्ता'[1] 'सो वे कविराज भाट ब्राह्मण हुते, सो तीन भाई हुते सो तीन भाई श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं उनको समर्पण करवायौ पाछे श्रीनाथ जी के सन्निधान कवित्त सुनावते पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु कविराज भाट के ऊपर बहुत प्रसन्न रहते सो वे कविराज भाट श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपा पात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्ता अब कहाँ ताई लिखिए।'

उक्त वार्ता से स्पष्ट है कि इस का धरातल कथा की दृष्टि से कितना सामान्य है। न इसमें कोई कथा-तत्व ही है, न जीवन का कोई संतुलित पक्ष ही।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

ये वार्ताएं भी मूलतः धार्मिक धरातल से आई हैं, लेकिन इन की संवेदनाओं में अपेक्षाकृत कुछ अधिक कथा-तत्व आए हैं। भाव-पक्ष में मानव अनुभूतियों और उनके चरित्रचित्रण की ओर आग्रह भी है जैसे वेश्या की बेटी[2], हंस हंसनि[3], दो ठग[4], दो प्रेत[5], एक वेश्या[6], एक चोर[7], पठान का बेटा[8], एक सौदागर[9] और सानुग्रह[10] आदि वार्ताएं चौरासी वैष्णवन की वार्ताओं से बिलकुल अलग हैं। इन में अधिक से अधिक कथा-तत्व आए हैं तथा इन का स्थान कथा विकास की कड़ी में कथा-तत्व की तीन विशेषताएं नितान्त स्पष्ट हैं। इन में एक छोटी-सी कथा वस्तु है, एक घटना है, और इन दोनों का आरोह अवरोह भी है, तथा इन के विकास की एक सूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन वार्ताओं का उद्देश्य नहीं है कि वैष्णव-धर्म सर्वोत्कृष्ट है और श्री ठाकुर जी परम महान् हैं।

[1] चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० २४६
[2] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० १२७
[3] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३७२
[4] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३६४
[5] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २७८
[6] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २६४
[7] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २२४
[8] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३०८
[9] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ४६५
[10] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३१२

शिल्प-विधि

विशुद्ध शैली की दृष्टि से ये वार्ताएं वर्णनात्मक ढंग से कही गयी हैं। इन में कौहतूल और जिज्ञासा वृत्ति पर कोई विशेष बल नहीं पड़ता। फलतः इन वार्ताओं में कथा-तत्व केवल इसी अर्थ में है कि यहाँ जीवन की किंचित् घटनाओं विवरणों की अभिव्यक्ति कथा के माध्यम से हुई है। लेकिन इस से हम यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी गद्य में यह पहला प्रयत्न है, जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें कथा-तत्त्व में ढल कर हमारे साहित्य में आई हैं।

सिंहावलोकन

पिछले पृष्ठों में हम ने संक्षिप्त रूप में वैदिक काल से लेकर हिन्दी के मध्ययुग तक कथा-साहित्य के ऐतिहासिक विकास-सूत्र का अध्ययन किया है, इस में हमने वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, चारणकाल तथा मध्य युगीन हिन्दी आख्यानक काव्यों वार्ताओं आदि में कथा के क्रमिक रूपों का अवलोकन किया है। इन में जहाँ हम ने कथा की विभिन्न शैलियों से परिचय प्राप्त किया है, वहाँ हमें यह भी स्पष्ट हुआ है कि कथा और चरित्र के रूपों के परिवर्तन के साथ-साथ कथाओं, आखयानों के विषय और लक्ष्य में भी परिवर्तन होता गया है।

वैदिक काल में कथाएं अपने बीज रूप में, देवताओं की स्तुति और यज्ञादि के मंत्रो के बीच में छिपी हुई थीं और उनका ध्येय विशुद्ध धार्मिक था। उपनिषद् काल में कथाओं की मुख्य संवेदनाएं अध्यात्म ज्ञान और अध्यात्म चर्चा को लिये हुए आई हैं। पौराणिक काल में जीवन अपने सम्पूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य में हुआ है। फलतः यहाँ से दन्त-कथाओं एवं आख्यानों का आरम्भ हुआ है। जीवन और साहित्य में कथा ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। इस के प्रभाव का उदाहरण हम ने सम्पूर्ण परिवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में देखा है। पालि साहित्य में कथाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के माध्यम से धर्म की प्रचारात्मक नीति की नींव पड़ी है। प्राकृत और अपभ्रंश में कथाएं लौकिक एवं जीवन और यथार्थ धरातल पर आयी हैं, फलतः यहाँ मनोरंजक कथाओं के साथ ही प्रेमाख्यानों और आख्यानों की भी सृष्टि हुई। चारण काल और गाथा काल में कथा के इस विकास का चरम उत्कर्ष हुआ तथा मध्य युग के प्रेमाख्यानों और वार्ताओं में उसका पर्यवसान हुआ।

आविर्भाव युग

हिन्दी के आरम्भ और मध्यकाल में काव्य की प्रमुखता थी। प्रायः सब प्रकार के विषयों और विवेचनाओं का माध्यम पद्य ही था, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि काव्य की इस अपूर्व प्रमुखता में कथा का महत्व सर्वत्र था। कुछ ही स्फुट गीतों और उद्गार प्रकट करने वाले कवियों को छोड़ कर शेष समस्त कवियों की वाणी का मूलाधार कथा ही था। चन्दबरदाई का, 'रासो' जगनिक का, 'आल्हा-खण्ड', तथा उस समय की लोक-गाथाएं, जायसी का 'प्रेमाख्यान' सूर का 'सूरसागर' तुलसी का 'मानस' केशव की 'रामचन्द्रिका' लाल का 'छत्र प्रकाश' और सूदन का 'सुजान चरित्र' आदि सब काव्य ग्रंथों का मेरुदण्ड कथा ही है। दूसरे शब्दों में हम यहाँ तक कह सकते हैं कि ये सब कथाएं हैं या कथाओं पर आश्रित काव्य हैं। यह परम्परा संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों और अपभ्रंश साहित्य के प्रेमाख्यानों से आई हुई ज्ञात होती है। हिन्दी के मध्य युग ही में वल्लभ सम्प्रदाय ने व्रजभाषा गद्य को भी जन्म दिया और गोकुलनाथ जी की वैष्णवों की वार्त्ताओं के माध्यम से हिन्दी कथा को एक नवीन मार्ग मिला, लेकिन इस दिशा में शीघ्र ही हिन्दी खड़ी बोली के आ जाने से इस का मार्ग बन्द हो गया और कथा का अन्य रूप हमारे सामने आया।

हिन्दी खड़ी बोली में कथाओं का आरम्भ

ऐतिहासिक दृष्टि से व्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली गद्य तीनों की स्फुट साहित्यिक परम्पराएं हमें पहले से मिली थी, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन तीनों परम्पराओं से खड़ी बोली गद्य को एक नूतनतम पथ मिला और यह व्रजभाषा और राजस्थानी की परम्पराओं को छोड़ कर स्वयं प्रकाश में आ गई तथा यहाँ से इसके गद्य साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास मिलने लगा, जिस में कथा की शृंखला सब से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई, क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ही आधुनिक हिन्दी कहानियों की पीठिका है। पिछले पृष्ठों में हमने जो अब तक कथा-सूत्र का अध्ययन किया है, वस्तुतः उस का महत्व केवल ऐतिहासिक है, लेकिन भारतेन्दु से पूर्व का हिन्दी कथाओं का अध्ययन तथा अगले पृष्ठों में उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के

कथा-सूत्र और पत्र-पत्रिकाओं में कथा-तत्व और कहानी-तत्व का इतिवृत्तात्मक अध्ययन हिन्दी कहानियों की भावभूमि का वह अध्ययन है, जिसके प्रकाश में इसकी उत्पत्ति हुई है।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी कथाएं

भारतेन्दु से पूर्व का कथा साहित्य मुख्यतः पौराणिक अख्यानों पर आधारित है और लेखक गण रागात्मक कल्पनाओं से प्रेरित हैं! भारतेन्दु से पूर्व (१८०० ई० से १८५८ ई०) हिन्दी गद्य की दिशा में, हमें तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ मिलते हैं। पहला लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' (१८०३-१८०६) दूसरा सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (१८०३ ई०) और तीसरा सैयद इंसा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' (१८०० ई० १८१० के बीच)। प्रेम सागर के अतिरिक्त लल्लू लाल से सम्बन्धित 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल पच्चीसी' और 'माधोनल' उनके अन्य कथा-ग्रंथ कहे जाते हैं, लेकिन ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से केवल 'प्रेमसागर' का ही महत्व है क्योंकि इन के अन्य ग्रंथ संस्कृत कथा साहित्य के भावानुवाद या छायानुवाद हैं।

प्रेम सागर

लल्लू लाल का प्रेमसागर[1] भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद नहीं है, बल्कि दशम स्कन्ध के अनुसार कृष्ण चरित्र का पौराणिक दृष्टि से वर्णन है। इस तरह, समस्त प्रेमसागर इक्यानवे अध्यायों में बँटा है और सब अध्यायों में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध और महाभारत के नायक अर्जुन-भेंट तक की कथा है। इन अध्यायों के विस्तार में भागवत के दशम स्कन्ध की सारी कथाएं इस में आ गई हैं, इन कथाओं की शैली अक्षरशः पौराणिक है। वर्णनों के माध्यम से कथा आरम्भ होती है और एक कथा को पूर्ति में अनेक कथाएं जन्म पाती-जाती हैं। ये कथाएं पुराणों की भाँति श्री शुकदेव जी द्वारा राजा परीक्षित से कही गई है।

'इतनी कथा सुनाय' श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा और उग्रसेन दुख मरने, देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब व्याहन योग हुई तब

---

[1] प्रेमसागर—अनुवादक लल्लू लाल, सम्पादक पं० योगध्वन मिश्र फोर्ट विलियम किताब कालेज १८४२ ई०

बिन्नैजा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। वह बोला, सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बड़ी धूम धाम से बारात बनाय, सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसुदेव को व्याहन आये[१]।

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेतोपाख्यान[२] की भूमिका से स्पष्ट है कि यह पुस्तक संस्कृत के नासिकेतोपाख्यान से अनूदित है जिसमें चन्द्रावली की कथा कही गई है। वस्तुतः यह भी पौराणिक कथा है जिसे वैशम्पायन जी जनमेजय को सुनाते हैं कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि के पास पिप्पलाद मुनि गये और उन्होंने उनसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। घटनाओं के विकास में उद्दालक नासिकेत के पिता होते हैं : और वह अपने पिता से मिलता है। नासिकेत की माता चन्द्रावली भी बाद को ढूढ़ती-ढूढ़ती वहाँ मिलती है और सब अपने आश्रम पर जाते हैं वहाँ उद्दालक की आज्ञा की अवहेलना पर नासिकेत को जीवित ही यमपुर जाने का शाप मिलता है। समयानुकूल वह फिर पिता के पास लौटता है तथा यमपुर आदि का वर्णन करता है।

वस्तुतः यह कथा कठोपनिषद् की है और अपने पौराणिक रूपों में होती हुई आख्यान रूप में बदली है। शैली की दिशा में नासिकेतोपाख्यान 'प्रेम सागर' की अपेक्षा अधिक कलात्मक और सुसंगठित है। यह पूर्णतः पौराणिक शैली में आई हुई कथा है तथा समस्त कथाओं के वर्णन और उद्देश्य भी पौराणिक हैं।

रानी केतकी की कहानी

आलोच्य काल के कथा सूत्र में, रानी केतकी[३] की कहानी का महत्व

[१] प्रेमसागर, पृष्ठ ६

[२] नासिकेतोपाख्यान—अनुवादक, सदल मिश्र, सम्पादक श्याम सुन्दर दास, ना०प्र० सभा १९२५

[३] सैयद इंशा अल्ला खाँ लिखित रानी केतकी की कहानी : श्यामसुन्दर दास बी० ए०, ना० प्र० सभा, तृतीय आवृत्ति सं० २००२

सब से अधिक है। यद्यपि इस के लिखने का उद्देश्य था कि एक ऐसी रचना की जाय जिसमें हिन्दी, हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। लेकिन फिर भी यह रचना उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की प्रथम कथात्मक मौलिक रचना है। यह न किसी के आधार पर लिखी गई है, न इस पर किसी की छाया तक है। कथा कहने का ढंग भी चित्ताकर्षक और मनोहर है। इस में जहाँ-तहाँ कविता का भी पुट दिया गया है।

इसकी कथावस्तु से स्पष्ट है कि किसी देश के एक राजकुमार कुँवर उदैभान एक बार शिकार में एक हिरनी का पीछा करते-करते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ चालीस-पचास रंडियाँ (स्त्रियाँ) झूला झूल रही थीं। उन में से एक रानी केतकी से इनका प्रेम हो गया। राजकुमार जब अपनी राजधानी में लौटा, तब उस ने राजा से इस विवाह का प्रस्ताव किया। राजा की ओर से एक ब्राह्मण उस राजा के यहाँ गया, लेकिन राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, फिर दोनों राजाओं में लड़ाई हुई। रानी केतकी के पिता ने जोगी महेन्दर की सहायता से कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप को हिरनी बना दिया। इधर रानी केतकी ने भी उसी योग क्रिया से कुँवर का पक्ष लिया और उस ने उसे विजय दिलवाई। फिर दोनों की शादी हो जाती है।

शैली

वस्तुतः इंशा अल्ला खाँ अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे। उनके संस्कारों में अरबी, फ़ारसी मसनवियाँ और दास्तानों के रूप ताजे थे फलतः उन्होंने इन सब अरबी-फ़ारसी शैलियों को मिला कर, रानी केतकी की, कहानी लिखी है। इसका आरम्भ ईश्वर की प्रार्थना से होता है। इस के आरम्भ ही कहानी लिखने का प्रयोजन दिया गया है। इन बातों से मसनवी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। दूसरी ओर इसकी कथा, इसके विकास आदि में दास्तान शैली का प्रभाव है। समूची कथा विभिन्न परिच्छेदों से होकर आगे बढ़ी है; जैसे (क) कहानी के जीवन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार, (ख) आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड़ से और कुँवर उदैभान तथा उसके माँ बाप को हिरनी-हिरन कर देना, (ग) रानी केतकी का भभूत लगाकर बाहर निकल जाना,

विन्नैजा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। वह बोला, सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्रह्मण को बुलाय शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बड़ी धूम धाम से बारात बनाय, सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसुदेव को ब्याहन आये[1]।

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेतोपाख्यान[2] की भूमिका से स्पष्ट है कि यह पुस्तक संस्कृत के नासिकेतोपाख्यान से अनूदित है जिसमें चन्द्रावली की कथा कही गई है। वस्तुतः यह भी पौराणिक कथा है जिसे वैशम्पायन जी जनमेजय को सुनाते हैं कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि के पास पिप्पलाद मुनि गये और उन्होंने उनसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। घटनाओं के विकास में उद्दालक नासिकेत के पिता होते हैं : और वह अपने पिता से मिलता है। नासिकेत की माता चन्द्रावली भी बाद को ढूढ़ती-ढूढ़ती वहाँ मिलती है और सब अपने आश्रम पर जाते हैं वहाँ उद्दालक की आज्ञा की अवहेलना पर नासिकेत को जीवित ही यमपुर जाने का शाप मिलता है। समयानुकूल वह फिर पिता के पास लौटता है तथा यमपुर आदि का वर्णन करता है।

वस्तुतः यह कथा कठोपनिषद की है और अपने पौराणिक रूपों में होती हुई आख्यान रूप में बदली है। शैली की दिशा में नासिकेतोपाख्यान 'प्रेम सागर' की अपेक्षा अधिक कलात्मक और सुसंगठित है। यह पूर्णतः पौराणिक शैली में आई हुई कथा है तथा समस्त कथाओं के वर्णन और उद्देश्य भी पौराणिक हैं।

रानी केतकी की कहानी

आलोच्य काल के कथा सूत्र में, रानी केतकी[3] की कहानी का महत्त्व

---

[1] प्रेमसागर, पृष्ठ ६

[2] नासिकेतोपाख्यान—अनुवादक, सदल मिश्र, सम्पादक श्याम सुन्दर दास, ना०प्र० सभा १६२८

[3] सैयद इंशा अल्ला खाँ लिखित रानी केतकी की कहानी : श्यामसुन्दर दास बी० ए०, ना० प्र० सभा, तृतीय आवृत्ति सं० २००२

सब से अधिक है। यद्यपि इस के लिखने का उद्देश्य था कि एक ऐसी रचना की जाय जिसमें हिन्दी, हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। लेकिन फिर भी यह रचना उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की प्रथम कथात्मक मौलिक रचना है। यह न किसी के आधार पर लिखी गई है, न इस पर किसी की छाया तक है। कथा कहने का ढंग भी चित्ताकर्षक और मनोहर है। इस में जहाँ-तहाँ कविता का भी पुट दिया गया है।

इसकी कथावस्तु से स्पष्ट है कि किसी देश के एक राजकुमार कुँवर उदैभान एक बार शिकार में एक हिरनी का पीछा करते-करते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ चालीस-पचास रंडियाँ (स्त्रियाँ) झूला झूल रही थीं। उन में से एक रानी केतकी से इनका प्रेम हो गया। राजकुमार जब अपनी राजधानी में लौटा, तब उस ने राजा से इस विवाह का प्रस्ताव किया। राजा की ओर से एक ब्राह्मण उस राजा के यहाँ गया, लेकिन राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, फिर दोनों राजाओं में लड़ाई हुई। रानी केतकी के पिता ने जोगी महेन्द्र की सहायता से कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप को हिरनी बना दिया। इधर रानी केतकी ने भी उसी योग क्रिया से कुँवर का पक्ष लिया और उस ने उसे विजय दिलवाई। फिर दोनों की शादी हो जाती है।

शैली

वस्तुतः इंशा अल्ला खाँ अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे। उनके संस्कारों में अरबी, फ़ारसी मसनवियाँ और दास्तानों के रूप ताजे थे फलतः उन्होंने इन सब अरबी-फ़ारसी शैलियों को मिला कर, रानी केतकी की, कहानी लिखी है। इस का आरम्भ ईश्वर की प्रार्थना से होता है। इस के आरम्भ ही कहानी लिखने का प्रयोजन दिया गया है। इन बातों से मसनवी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। दूसरी ओर इसकी कथा, इसके विकास आदि में दास्तान शैली का प्रभाव है। समूची कथा विभिन्न परिच्छेदों से होकर आगे बढ़ी है; जैसे (क) कहानी के जीवन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार, (ख) आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड़ से और कुँवर उदैभान तथा उसके माँ बाप को हिरनी-हिरन कर देना, (ग) रानी केतकी का भभूत लगाकर बाहर निकल जाना,

(घ) राजा इन्द्र का कुँवर उदैभान का साथ करना, (ङ) आ पहुँचना कुँवर उदैभान का व्याह के ठाट के साथ दूल्हन की ड्योढ़ी पर।

इंशा अल्ला खाँ ने अपनी इस लम्बी कथा को 'कहानी' कहा है; यही कारण है कि हिन्दी के कुछ आलोचकों ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहिली कहानी मानी है, लेकिन यह पूर्णतः अवैज्ञानिक है यहाँ उन्होंने कहानी का तात्पर्य केवल कथा से लिया है। जैसा कि इस कथा-ग्रन्थ से ही स्पष्ट है, यह एक लम्बी और विस्तृत कथा है, जिस में बार-बार पद्य का भी प्रयोग हुआ है तथा इस की शैली से दास्तान और मसनवी का रूप स्पष्ट हो जाता है, कहानी का किंचित् मात्र भी नहीं, लेकिन यह निश्चय है कि हमारे आलोच्य काल में कथा की दिशा में इसका मूल्य सब से अधिक है।

व्यवधान

हमारे उक्त आलोच्य काल में यह जो कुछ कथा की दिशा में संभव हुआ, उसका भी विकास आगे काफी समय तक न हो सका। यद्यपि यह सत्य है कि उक्त गद्य कथा साहित्य अपने कलात्मक रूप में कुछ भी नहीं था। लेकिन फिर भी इस का विकास आगे एक लम्बे व्यवधान के कारण रुक गया। वह लम्बा व्यवधान दो दिशाओं से प्रस्तुत हुआ—प्रथम गद्य कथा के पाठकों की अत्यन्त कमी थी और कोई भी गद्य कथा पढ़ने से दूर भागता था। यह वस्तु उस समय अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती थी, फलतः जितने पाठक थे वे मुख्यतः पद्य की रचनाओं को पढ़ते थे, दूसरी दिशा में राजनीतिक व्यवधान था। उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तक आते-आते देश में एक अजीब राजनीतिक असंतोष फैल रहा था। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध देश में क्रान्ति और विद्रोह की ज्वाला भड़क रही थी जिसकी चरम सीमा थी अठारह सौ सत्तावन का ग़दर। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के अंतिम पन्द्रह-बीस वर्षों की स्थिति साहित्य-अवतारणा के बिल्कुल विरुद्ध थी। विशेषकर गद्य कथा की दिशा और भी रुकी थी। राजनीतिक असंतोष फलतः स्वाभिमान जागरण की प्रेरणा से राजा शिवप्रसाद ने कुछ नई शैली में जरूर लिखना आरम्भ किया, जैसे, 'गुलाब चमेली का किस्सा' 'राजा भोज का सपना', 'नरसिंह का वृत्तान्त', लेकिन इन सब के पीछे स्पष्ट रूप से पूर्व संस्कृत की नीति कथाओं और अरबी-फ़ारसी की दास्तान शैली कार्य कर रही थी। फलतः इन सब हिन्दी कथाओं को कोई

नवीन मार्ग न मिल सका। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हरिश्चन्द्र से पूर्व तक का हिन्दी कथा-साहित्य अनुवाद और कहानी किसी भी क्षेत्र में नहीं आ सकता। क्योंकि न इसमें उपन्यास कहानी की कोई शिल्प-विधि थी और न कोई भाव विशेष।

भारतेन्दु युग में कथा-विकास

विकसित कथा की दिशा में उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युग है। इस युग में कथा के क्षेत्र में नाटकों और उपन्यासों की सृष्टि प्रमुख ढंग से हुई। ऐसा क्यों और कैसे हुआ, इसको समझने के लिये हमें उन शक्तियों को देखना होगा, जो इस युग की प्रमुख प्रेरणा थीं तथा जिनकी प्राण-शक्ति से यह अनूठा युग उभरने में इतने विशाल साहित्य की सृष्टि कर सका, जिस से हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य को गौरव मिला तथा आधुनिकता की नींव पड़ी।

शक्तियां

ये शक्तियां थीं सुधारवादी आन्दोलन और राजनीतिक प्रतिक्रियाएं। सुधारवादी आन्दोलनों में सर्व प्रथम 'ब्रह्म समाज' (१८२८ ई०) का नाम आता है। इसका जन्म पाश्चात्य विचारधारा के धरातल से हुआ था, अतः बंगाल में भी यह केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा। इसका प्रभाव न हमारी सामाजिकता पर पड़ा न हमारे साहित्य पर, क्योंकि इस आन्दोलन में विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण नहीं था।

भारतीय नवोत्थान तथा विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण हमें आर्यसमाज आन्दोलन में मिला। इसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने १८७५ ई० में की। यह आन्दोलन मुख्यतः हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र का महान् आन्दोलन है। इस ने ही सब से पहले हिन्दू समाज के पुनरुत्थान और ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के विरोध में सब से सशक्त और ऊँची आवाज उठाई। इस आवाज से समूची उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध को प्रेरणा मिली तथा इस के आन्दोलन का प्रभाव हमारे समाज के उच्च मध्यम और निम्न वर्ग पर समान रूप से पड़ा। सामाजिक क्षेत्र में इस ने बाल विवाह, बहु-विवाह और वृद्ध विवाह का निषेध किया तथा विधवा विवाह का प्रचार किया। इसने स्त्री अधिकार और समानता की सर्व प्रथम आवाज उठाई। धर्म-पाखंड, व्यभिचार के विरुद्ध इस ने आन्दोलन किया तथा अंध-विश्वासों रूढ़ियों, अंध-भक्ति और भूत-प्रेतादि अमानुषिक शक्तियों की आस्था को खंडित किया। इस तरह से आर्यसमाज ने जहाँ देश में सामाजिक

पुनर्जागरण किया, वहाँ दूसरी ओर इसने देश को इसकी वास्तविक संस्कृति और विशालता की ओर प्रेरित किया। इस ने स्थान-स्थान पर गोशालाएं, सभाएं और समाज की शाखाएं स्थापित कीं। जगह-जगह पर पाठशालाएं और गुरुकुलों को स्थापित कर, उन से वैदिक आदर्शों की शिक्षा दी। इसी समय अमेरिका से थियोसोफिकल सोसायटी के जन्म दाता मैडम ब्लैवट्स्की और कर्नल अल्काट भारतवर्ष में आये तथा उन लोगों ने यहाँ थियोसोफिकल सोसायटी का केन्द्र स्थापित किया। इसके बाद ही श्रीमती एनीबिसेन्ट के भारत-आगमन ने इस मत का भारत में और प्रचार किया। इन्होंने अपनी सोसायटी द्वारा पाश्चात्य दर्शन की उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहा और इसके साथ ही साथ इस मत ने हमारे देश के प्राचीन गौरव को भी हमारे सामने रखा तथा इसका खूब गुण-गान किया। इस सोसायटी को यहाँ के शिक्षित वर्ग ने बहुत ही शीघ्र अपनाया क्योंकि इस से हमारी राष्ट्रीय भावना को बल एवं हमारे सामाजिक पुनरुत्थान आन्दोलन को सहयोग मिल रहा था। थियोसोफी ने विशेषकर हमारी संकीर्णता को दूर करने के लिये बहुत ही अधिक प्रयत्न किया। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ के प्रयत्न और इनकी प्रतिभा ने देश में आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा की तथा इन लोगों ने देश का ध्यान वैदिक संस्कृति की ओर आकर्षित किया।

दूसरी ओर इस युग में राजनीतिक शक्तियां तथा इनकी प्रतिक्रियाओं ने भी अपूर्व शक्ति और नवोत्थान की प्रेरणा दी। वस्तुतः १८५७ ई० की क्रांति उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की सब से बड़ी राजनीतिक घटना है। इस घटना के बाद, आने वाले बीस वर्ष तक देश में शान्ति थी और अंग्रेजी ने इसी समय में कितने शासन सम्बन्धी सुधार किये। देश में वैज्ञानिक आविष्कारों रेल-तार आदि का प्रचार हुआ तथा १८५७ ई० के ही आसपास प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थापना भी हुई। फलस्वरूप, इंगलैंड, फ्रांस, रूस जैसे देशों के साहित्य से हमारे सम्पर्क स्थापित होने का सूत्रपात हुआ। इसी समय इटली का स्वतंत्र होना और अमेरिका के संयुक्त राज्य की स्थापना ने हमारी राष्ट्रीय भावना में और भी प्राण फूंके। इस में दूसरी ओर से आयरलैन्ड, रूस, इथोपिया, चीन जापान तथा इस्लाम आदि के आन्दोलनों ने अपूर्व बल दिया। इस तरह इन अन्यान्य राजनीतिक शक्तियों, प्रतिक्रियाओं और आधुनिकता के आन्दोलनों के फल स्वरूप १८८८ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ यह भी घटना इस युग की दूसरी महान् घटना है। इससे हमारी राष्ट्रीय भावना को

एक सशक्त और निश्चित मोर्चा मिल गया। हम आत्मसम्मान और राष्ट्र गौरव की भावना लेकर और भी प्रेरित हुए। इसी समय हाजसन, वोतलिंक् और मैक्समूलर आदि ने प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनेक खोजों को हमारे सामने उपस्थित किया। इनकी खोजों तथा रचनाओं का प्रभाव यहाँ के शिक्षित वर्ग पर अपूर्व ढङ्ग से पड़ा और इन्हें अपने पूर्वजों, कवियों, मनीषियों, लेखकों का सर्व प्रथम वैज्ञानिक परिचय मिलना आरम्भ हुआ। विशेपकर इस प्रेरणा से उस काल के लखकों में एक अजीब रचनात्मक तथा उदात्त प्रतिक्रिया हुई।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की शक्तियों और प्रेरणाओं ने भारतेन्दु युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त पक्षों के निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान कीं। सामाजिक आन्दोलनों ने जहाँ एक ओर हमारी सामाजिकता में पुनर्जागरण क्रिया को स्फूर्ति दी, दूसरी ओर उसने युग के समस्त लेखकों के सामने असंख्य कथा-वस्तुओं और संवेदनाओं को उपस्थित किया तथा लेखकों को अपनी मूक वाणी से आमंत्रित किया कि वे इन के धरातल से नवीन साहित्य का निर्माण करें, अपनी लेखनी से समाज में नव चेतना के प्राण फूंकें तथा देश में नव प्रकाश ला दें। राजनीतिक प्रतिक्रियाओं ने जहाँ उन्हें राष्ट्रीय भावना और प्राचीन साहित्य की ओर प्रेरित किया, उसने युग के लेखकों को विदेशी साहित्य के संपर्क में ला खड़ा किया। इन्हीं शक्तियों के फलस्वरूप इस युग के तमाम साहित्यिक उन्नायकों (विशेपकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) के व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से राजनीतिक, समाज-सुधारक, धर्मोपदेश और प्राचीन संस्कृति के उन्नायक की छाप है। यही कारण है कि भारतेन्दु युग के कथा-साहित्य की दिशा में नाटक और उपान्यास की सृष्टि अपूर्व है। इस समूची सृष्टि में भारतेन्दु का व्यक्तित्व सदा अमर रहेगा। अधुनिक कथा-साहित्य में उपन्यास और नाटकों की परंम्परा की देन इन्हीं के व्यक्तित्व की देन है। इन्होंने कथा की दिशा में आधुनिक हिंदी कहानी का विकास क्यों नहीं किया, इस पर आश्चर्य होता है। भारतेन्दु में कहानी कला को आगे बढ़ाने की प्रतिभा और क्षमता थी। इस के उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि उस समय तक भारतवर्ष में आधुनिक कहानी कला का बहुत ही अस्पष्ट रूप आ सका था। बंगाल भी अभी पश्चिम से केवल उपन्यास कला सीख रहा था। भारतेन्दु विशेपकर प्राचीन संस्कृत नाटकों को अनूदित करने तथा मौलिक नाटकों, उपन्यासों आदि के लिखने में व्यस्त थे। उन्हें शायद कहानी-कला की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं

मिला और वे शायद यह समझते थे कि साहित्यिक क्षेत्र में कहानी का विशेष महत्व नहीं है। वह हलकी और नगण्य है। इस युग के अन्य लेखक भी इसी शैली के बड़े रूप नाटक और उपन्यास के अनुवाद और मौलिक सृष्टि में ही अधिकतर व्यस्त थे। इस काल में इन का विकास भी इतना हुआ कि वस्तुतः कहानी की कथा वस्तुओं और संवेदनाओं पर अधिकांशतः नाटक और प्रहसन ही लिखे गये। कहानी-कला का प्रयोग साहित्यिक आदर्शों के अनुरूप नहीं समझा गया।

नाटक का विषय हमारी आलोचना सीमा के बाहर का विषय है, अतएव हम इसकी स्वतंत्र समीक्षा न देकर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि इस काल में नाटक साहित्य का इतना प्रसार और प्रभाव हुआ कि पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त लेखक गण छोटी-छोटी संवेदनाओं, इतिवृत्तों, घटनाओं और विषयों को लेकर प्रहसन लिखने लग गये, जिनमें देवकीनंदन (१८७०) का नाम प्रमुख है और इनकी रचनाओं में, 'रक्षा-बन्धन', 'एक-एक के तीन-तीन', 'स्त्री-चरित्र', 'वेश्या विलास', 'बैल छः टके को', 'जय नरसिंह की', 'सैकड़ों में दस-दस', और 'कलजुगी जनेऊ', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्य प्रहसन लेखकों और उनके प्रहसनों में राधाचरण स्वामी का 'बूढ़े मुँह मुँहासे, लोग देखे तमाशे' किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट', देवकीनंदन तिवारी का 'कलयुगी विवाह' और चौधरी नवलसिंह का 'देसी नाटक' तथा गोपालराय गहमरी का 'जैसा का तैसा', आदि रचनाएं प्रमुख हैं। इन प्रहसनों की संवेदनाएं वस्तुतः कहानी की संवेदनाएं हैं, लेकिन उस समय तक कहानी-कला की अवहेलना के कारण उक्त लेखकों ने इन कहानी अनुकूल संवेदनाओं से विवशतः प्रहसनों की सृष्टि की।

इन प्रहसनों की समस्याएं अथवा वर्ण्य विषय मुख्यतः सामाजिक नैतिक कुरीतियाँ हैं; जैसे, बहु-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह, वेश्यागमन, चोरी-चंडाली, अनैतिकता, पश्चिमी सभ्यता की गुलामी, धार्मिक-पाखंड और स्त्री की हीन दशा तथा उन का शोषण। संवेदना की ये इकाइयाँ शिल्प-विधि की दृष्टि से कहानी की संवेदनाएं हैं। लेकिन इस युग के लेखक तो कथा-साहित्य की दिशा में केवल नाटक और उपन्यासों की सृष्टि में व्यस्त थे। कहानी-कला के विकास की ओर इन लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया। निष्पन्न रूप से यह युग मुख्यतः भारतीय साहित्य की प्राचीन परम्पराओं का उपासक रहा और इस युग की अपनी मौलिक देन है, नाट्य-कला के साथ उपन्यास कला भी।

कहानी कला के आविर्भाव की पृष्ठ भूमि देने का श्रेय भी इस काल को है जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

उपन्यास

इस काल में नाटकों की अपेक्षा उपन्यासों का आरम्भ कुछ बाद में हुआ। इसका कारण था कि भारतेन्दु को स्वभावतः नाटकों की सृष्टि प्रिय थी। उपन्यास-साहित्य को इन्होंने मूलतः अध्ययन और प्रचार की दृष्टि से देखा था। लेकिन इस दिशा में भी भारतेन्दु की सेवा स्तुत्य है। इन्होंने ही सर्व प्रथम बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत 'राजसिंह' का अनुवाद किया, तथा अपने निर्देशन और प्रेरणा से अनेक उपन्यासों को अनूदित कराया, जैसे बाबू गदाधर सिंह द्वारा 'कादम्बरी' और, 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद पं० रमाशंकर व्यास द्वारा 'मधुमती' और बाबू राधाकृष्ण दास द्वारा 'स्वर्णलता' का अनुवाद। इस के अतिरिक्त भारतेन्दु जी दो-एक मौलिक उपन्यास जैसे एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', और 'हम्मीर-हठ', लिखने की ओर तत्पर हुए, पर ये दोनों मौलिक उपन्यास अपूर्ण ही छूट गए, लेकिन भारतेन्दु की दीक्षा और प्रेरणा से अन्य मौलिक उपन्यासकार प्रकाश में अवश्य आए। सर्व प्रथम श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास की सृष्टि की। उपन्यास की भूमिका से स्पष्ट है कि यह अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण में रचित एक कथाकृति है। लेखक ने इस में पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की है तथा इस में व्यावहारिक जीवन तत्वों को अपनाने का प्रयत्न हुआ है। इस की कथा एक रईस के जीवनवृत्त को लेकर चलती है जिस में उसके उत्थान और पतन का चित्र दिया गया है। इस की शैली पर संस्कृत के कथा-साहित्य की उपदेशात्मक प्रवृत्ति सर्वत्र स्पष्ट है। इस में कथा की वर्णनात्मकता और उस में लम्बे-लम्बे उपदेश के अंश इस की मुख्य विशेषताएं हैं। वस्तुतः 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु काल के समस्त उपन्यासों में सफल और यथार्थवादिता की प्रेरणा से लिखा गया है। इस युग के उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान वही है जो भारतेन्दु का स्थान नाटकों की दिशा में है। इन्होंने 'त्रिवेणी', (१८८८) 'स्वर्गीय कुसुम' (१८८६), 'हृदयहारिणी' (१८१०), 'लवंगलता' (१८६०) आदि उपन्यासों की सृष्टि से हिन्दी उपन्यासों की श्री वृद्धि की। इन के साथ अन्य उपन्यासकार पं० देवी प्रसाद शर्मा, राधाचरण कार्तिक प्रसाद खत्री, और गोपाल राम गहमरी के भी नाम उल्लेखनीय हैं। इन उन्यासकारों ने वस्तुतः

कहानी कला के आविर्भाव की पृष्ठ भूमि देने का श्रेय भी इस काल को है जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

उपन्यास

इस काल में नाटकों की अपेक्षा उपन्यासों का आरम्भ कुछ बाद में हुआ। इसका कारण था कि भारतेन्दु को स्वभावतः नाटकों की सृष्टि प्रिय थी। उपन्यास-साहित्य को इन्होंने मूलतः अध्ययन और प्रचार की दृष्टि से देखा था। लेकिन इस दिशा में भी भारतेन्दु की देन स्तुत्य है। इन्होंने ही सर्व प्रथम बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत 'राजसिंह' का अनुवाद किया, तथा अपने निर्देशन और प्रेरणा से अनेक उपन्यासों को अनूदित कराया, जैसे बाबू गदाधर सिंह द्वारा 'कादम्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद पं० रमाशंकर व्यास द्वारा 'मधुमती' और बाबू राधाकृष्ण दास द्वारा 'स्वर्णलता' का अनुवाद। इस के अतिरिक्त भारतेन्दु जी दो-एक मौलिक उपन्यास जैसे एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', और 'हम्मीर-हठ', लिखने की ओर तत्पर हुए, पर ये दोनों मौलिक उपन्यास अपूर्ण ही छूट गए, लेकिन भारतेन्दु की दीक्षा और प्रेरणा से अन्य मौलिक उपन्यासकार प्रकाश में अवश्य आए। सर्व प्रथम श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास की सृष्टि की। उपन्यास की भूमिका से स्पष्ट है कि यह अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण में रचित एक कथाकृति है। लेखक ने इस में पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की है तथा इस में व्यावहारिक जीवन तत्वों को अपनाने का प्रयत्न हुआ है। इस की कथा एक रईस के जीवनवृत्त को लेकर चलती है जिस में उसके उत्थान और पतन का चित्र दिया गया है। इस की शैली पर संस्कृत के कथा-साहित्य की उपदेशात्मक प्रवृत्ति सर्वत्र स्पष्ट है। इस में कथा की वर्णनात्मकता और उस में लम्बे-लम्बे उपदेश के अंश इस की मुख्य विशेषताएं हैं। वस्तुतः 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु काल के समस्त उपन्यासों में सफल और यथार्थवादिता की प्रेरणा से लिखा गया है। इस युग के उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान वही है जो भारतेन्दु का स्थान नाटकों की दिशा में है। इन्होंने 'त्रिवेणी', (१८८८) 'स्वर्गीय कुसुम' (१८८६), 'हृदयहारिणी' (१८९०), 'लवंगलता' (१८९०) आदि उपन्यासों की सृष्टि से हिन्दी उपन्यासों की श्री वृद्धि की। इन के साथ अन्य उपन्यासकार पं० देवी प्रसाद शर्मा, राधाचरण कार्तिक प्रसाद खत्री, और गोपाल राम गहमरी के भी नाम उल्लेखनीय हैं। इन उन्यासकारों ने वस्तुतः

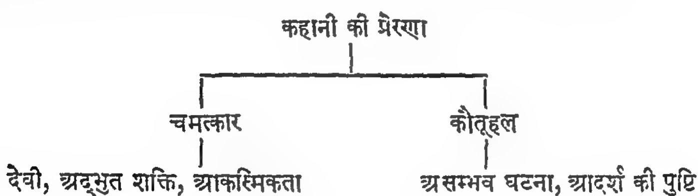
वीरेन्द्र सिंह तथा एक वजीर के लड़के कूरसिंह और राजकुमारी चन्द्रकान्ता के प्रेम में अभियान की अनेकानेक आश्चर्यजनक कथाएं हैं। संतति, में चन्द्रकान्ता की संतति के अनेक तिलस्मी करिश्मे संग्रहीत हैं।

समूचे हरिश्चन्द्र युग के कथा-साहित्य में नाटक और उपन्यासों की मौलिक सृष्टि हुई और उन दोनों कलाओं को, पर्याप्त प्राण-शक्ति भी मिली। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही बीसवीं शताब्दी में उन की दिशा में पूर्ण विकास हुआ। अतएव हरिश्चन्द्र-युग हिन्दी-साहित्य में नवोत्थान युग सिद्ध हुआ। इस युग में हिन्दी नाटक, उपन्यास, कविता और निबन्ध आदि सभी काव्य-रूपों को विकास मिला। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस साहित्यिक पुनरुत्थान और आविर्भाव-युग में हिन्दी कहानी के विकास की क्या स्थिति रही? इस नवोत्थान युग ने हिन्दी कहानी के विकास में कितनी प्राण शक्ति दी?

वस्तुतः चमत्कार और कौतूहल ही कहानी की प्रबल प्रेरणा है। कहानी अपने द्विज रूप से ही दो प्रकार से चली है—

१. दैवी प्रभाव से २. स्वाभाविकता से

कहानी की प्रेरणा का पहला स्वरूप ही भारतेन्दु युग की कथा-प्रवृत्ति की मूल देन है, जिसके सम्यक स्वरूप को हम निम्न रेखाओं में देख सकते हैं।



कहानी का दूसरा प्रकार जीवन की स्वाभाविकता से सम्बन्ध रखता है। इस का विकास भारतेन्दु-युग के उपरान्त ही आरम्भ हुआ है। कहानी कला के विकास की दृष्टि से, संसार के कहानी साहित्य के इतिहास से स्पष्ट है कि जिस देश के कलाकार जितने ही शीघ्र जीवन के यथार्थ प्रश्नों और संघर्षों के धरातल पर उतरे हैं, उतने ही शीघ्र उन में कहानी कला की वास्तविक उत्पत्ति हुई है।

भारतेन्दु युग में या उससे पूर्व ही कहानी विकास की समस्त परिस्थितियाँ उपस्थित थीं। मानव संघर्ष राजनीतिक और सामाजिक दोनों रूपों में प्रबल हो

चुका था। लेकिन फिर भी कहानी के विकास में आश्चर्य जनक विलम्ब हुआ। वस्तुतः भारतेन्दु युग आदर्श-मर्यादा का युग था। काव्य के क्षेत्र में यह एक ऐसा युग था जहाँ यथार्थ पर आदर्श का आरोप पग-पग पर होता था। दूसरी ओर तब तक भारतीय मान्यताओं में काफी रूढ़िवादिता थी, इस काल ने मूलतः नाटक उपन्यास की ही कला के माध्यम से युग संघर्षों की यथासंभव अभिव्यक्ति की, क्योंकि ये दोनों कलाएं पिछली परम्पराओं के सूत्र में थीं। इन दोनों के अनुवाद, अनुसरण का सुंदरतम पृष्ठभूमि हमारे प्राचीन साहित्य में उपस्थित था। अतएव इन कलाओं को हिंदी में आरंभ करने के लिए कोई विशेष बाधा नहीं उपस्थित हुई, लेकिन फिर भी इस युग ने हिंदी कहानी की उत्पत्ति की कुछ प्राण-शक्ति अवश्य उपस्थित की, जिसके प्रेरणा सूत्र से ही आगे हिंदी कहानी का विकास संभव हुआ।

हिन्दी कहानी की कहानी

इंशा अल्ला की, रानी केतकी की कहानी प्रयोगात्मक रूप लिखी गई थी, जिसे कलात्मक दृष्टि से कहानी के विधान का कोई भी रूप नहीं मिल सका। वस्तुतः कौतूहल तत्व के सहारे आश्रयदाता को प्रयन्न करने के लिए यह एक लम्बी कहानी गढ़ी गई है। हिंदी कहानी की सम्यक शैली की ओर प्रेरित करने का श्रेय भारतेन्दु युग को है। यह युग पत्रकारिता के आरंभ का युग था और तत्कालीन समाज को इस ओर आकर्षित करने के लिए इस युग ने मुख्यतः मनोरञ्जक शैलियों को अपनाया जिन के क्रोड़ में कहानी कला के बीज निश्चित रूप से आये।

इस तरह भारतेन्दु युग में हिंदी कहानी-उत्पत्ति की प्राणशक्ति को हम सर्वथा यहाँ की पत्र-पत्रिकाओं में पाते हैं। 'कवि वचन सुधा' (१८६७), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३), 'हरिश्चन्द्र' चन्द्रिका' (१८७४), 'हिंदी प्रदीप' (१८७७), 'ब्राह्मण' (१८८०), 'सार सुधानिधि' (१८७६), 'क्षत्रिय पत्रिका' (१८८०), और 'भारत मित्र' (१८७७) आदि मासिक-पत्रों और साप्ताहिकों में जहाँ एक ओर आधुनिक हिन्दी भाषा शैली के विकास का प्रयत्न हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इन्हीं प्रयत्नों के माध्यम से हिंदी गद्य काव्य के लघु रूपों का जन्म हो रहा था। इन लघु रूपों में निबन्ध, व्यंग चित्र, स्फुट चित्र, हास्य चित्र और स्वप्न चित्र आदि गद्य-शैलियाँ उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः इन्हीं गद्य शैलियों के अध्ययन से आगे हम देखेंगे कि भावी हिंदी कहानी का रूप किस तरह प्रकट हो रहा था।

इन पत्र-पत्रिकाओं में साधारण कोटि के सामाजिक अथवा राजनीतिक निबंध के रूप में जो लेख आते थे, वे प्रायः सम्पादकों की लेखनी से ही अभिव्यक्त होते थे, अर्थात् संपादकीय होते थे। ये संपादकीय प्रायः सामाजिक विषयों और समस्याओं पर आधारित होते थे जो बहुत कुछ कहानी की संवेदना होती थी। जैसे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका[1] का संपादकीय निबंध 'भ्रूण हत्या'—"हम सरकार से और अपने सब आर्य भाइयों से हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं इस को सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़कर सुनें, यदि सरकार कहे कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसका हमसे पहले उत्तर लें। सती होना हमारे यहाँ स्त्रियों का परम धर्म है इसको सरकार ने बल पूर्वक क्यों रोका है, क्योंकि यह धर्म प्राण से संबंध रखता है और प्रजा की प्राण रक्षा राजा को सबके पहले मान्य है। वैसे ही हम जो कहेंगे उसमें भी प्रजा के प्राण से संबंध है। अभी बनारस में दूलानाले पर से एक लड़की नल में से निकली है। निःसंदेह भगवान ने उस को अपने प्रकोर बल से बचाया है नहीं तो उसकी माता तो अपनी जान से उसे मार चुकी थी। ऐसी हत्या सारे हिंदुस्तान में यदि सब पकड़ी जाय और गिनी जाय तो प्रति महीने में एक हजार होती है, इस हत्या के दोषी कौन हैं?"

"हमारे ही आर्य गण और धर्माभिमानी लोग, यदि वह यौनर्भव संतति की निन्दा न करते उस का अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यों होती? यह हमने कभी कहा है न कहेंगे कि सबका बलात् पुनर्विवाह हो, परन्तु जो कन्या दशा में विधवा हो गई है वा जिनको कामचेष्टा हो उनका विवाह क्यों न हो: इसीलिये कि हर महीने एक सहस्र आर्य संतति नष्ट हो। हाय रे काम! अपनी स्त्री मरे पर कैसा कूदकर ब्याह कर लेती हो, पर स्त्रियों को नहीं करने देते क्योंकि इन्द्रिय दमन तुम्हीं को है उनको थोड़े ही है, सब अनर्थ हो जाय, स्त्रियाँ वेश्या हो जाँय, गर्भ गिरे बालक मरे यह बात जाहिर हो थाना पुलिस जेहलखाना सब होय पर पुनर्विवाह न होय। होय कैसे इसमें जो नाक कटेगी सच है फूटी सही जायगी आँजी न सहेंगे। सच है जबरदस्त का ठेंगा सर पर। यदि स्त्रियाँ भी प्रबल होती तो कैसे होने पाता।[2]

इसी तरह उस समय स्वतंत्र साहित्यिक निबन्धों के भी नाम पर जो

---

[1] श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड २ मार्च १८७५ संख्या ६

[2] श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, खंड २ संख्या ६ पृष्ठ १७२

लेख आते थे, उनमें भी कहानी की चित्रात्मिकता के तत्व मिले रहते थे जैसे, 'हरिश्चन्द्र, मैगज़ीन',[1] में 'प्रान्तर प्रदर्शन', "अहा हा! यह कौन सा देवता है जिसके दर्शन के हेतु मुसलमान अपना इस्लाम छोड़ और क्रस्तान अपने मन से मुँह मोड़ उन्मत्त से हो उस दीपक की द्युति के अनुराग में आकर उसके चारों ओर पतंग से उड़ा रहे हैं और ज्यूज अपने जीवन से हाथ धो बौद्ध बुद्धि खोय गान पाखंड तजि और सकल मतावलम्बी इस भुवन के हिन्दुओं की भाँति मनसा वाचा कर्मणा से उस देव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। कोई उसके ध्यान के निमित्त अपना पराया घर द्वार कुल परिवार वरन् इस संसार से विमुख हो नदी के करार पर छा रहे हैं जिसका नील वर्ण जल दर्पण सा झलकता है और वायु के सनसनाहट में छोटी-छोटी लहरें मन तरंग में आकर अपने प्रीतम सिंधु की ओर उसके मिलने के लिये पधारती हैं?

पक्षियों के बोल समीर के डोल भ्रमरों के गुंज फूलों के पुंज के बान से तो वे मूर्छित हो भूमि पर घूम ही रहे थे, इतने में क्या देखते हैं कि बैकुंठ की सारी अप्सरा रंभा, हूर-परी, मेनका, उर्वशी आदि, इधर-उधर संगमरमर और संग मूसा की सड़कों को अपने चरण कमल की धूरि से सुगंधित करती हैं। रंभाओं के रूप का प्रकाश इतना फैला कि सूर्य मारे भय के अस्ताचल के कन्दरे में जा छिपा। कोई कहते हैं कि लज्जा के मारे पश्चिम में समुद्र में जा डूबा। और शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा ऊपर चढ़ सारे ग्रह तारों और राशियों के साथ चतुराई कर सबसे पहले इनकी शोभा देखने के लिये आकाश रूपी में बंदी सा आ लटका और आकाश से सुर गण इस चाँदनी में उस वाटिका के बीचो-बीच एक चबूतरे पर जो कि लाजवर्द का बना है और जिसके चारों ओर और कोने पर फव्वारे हैं। पंक्ति की पंक्ति सोने रुपे की जड़ाऊँ चौकियों पर असंख्य चन्द्रमा बैठते देख चकोर के समान अपना जी हारने लगे। बैठते ही एक सखी अपने चारों ओर जमुर्द के वृक्षों की झलक, मूँगे के समान लाल अधर दिखाती हुई सुधा मेह बरसाती है, हे परियों तुम जानती हो, सुन्दरता क्या वस्तु है?

इस प्रश्न को सुनकर सब हँस पड़ीं और कहने लगी कि, तू अपने यौवन पर मोहित होकर पागल हो गई हो अतएव ऐसी बातें मुँह से निकालती[2] है।

---

[1] हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३२

[2] हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३४

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि प्राकृतिक चित्रण के सहारे किस तरह एक मनोरंजक गद्य-काव्य का ढाँचा खड़ा किया गया है। इस में यदि लेखक ने किसी तरह कथा-वस्तु का प्रयोग किया होता, तो यह गद्य-रचना निश्चित रूप से कहानी के समीप पहुंच गई होती।

ऐसे निबंधों और संवाददाताओं के प्रेषित पत्रों के अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग चित्र की भी अवतारणा होती थी। यह गद्य-शैली मूलतः अंग्रेजों की देन है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध 'लंदन पंच' का जन्म १८४१ में हुआ और इस शैली से उस समय इंगलैंड में अपूर्व सफलता के साथ सामयिक लेखकों, आलोचकों तथा अन्य कलाकारों की मनोवृत्ति और भाव धारा पर सुन्दर छींटें और व्यंग किये जाते थे। भारतवर्ष में यह शैली आंग्ल भारत पत्रकारिता के माध्यम से आयी तथा पहले यहाँ यह शैली बहुत असम्मानित दृष्टि से देखी जाने लगी[1]। वस्तुतः इस शैली को पहले-पहल उर्दू वालों ने अपनाई और उनकी तंज शैली, इसी का विकसित रूप है। हिन्दी में इस का जन्म, हरिश्चन्द्र मेगजीन, ने दिया और इसकी मान्यता धीरे-धीरे सब पत्र-पत्रिकाओं पर छा गई।

पाठकों की दृष्टि से उस समय बिना पंच के पत्रिकाएं आकर्षणहीन समझी जाने लगी। 'भारत मित्र', 'हिन्दी प्रदीप' और 'उचित वक्ता', आदि ने इसे खूब आगे तक बढ़ाया। संक्षेप में १८६७ से १९०० ई० तक हिन्दी गद्य साहित्य में पंच की वही मान्यता थी जितना कि आज कहानी की मान्यता है। हिन्दी प्रदीप में इस व्यंग चित्र के बहुत अच्छे-अच्छे उदाहरण मिलते हैं। छोटे-छोटे व्यंग चित्रों को यहां 'चीज़' की संज्ञा दी गई है। जैसे, चीज़, नम्बर १ "पंडित जी वर्ण विवेक पर कुछ वक्तृता कर रहे थे इतने में एक मसखरा बोल उठा पंडित जी कुत्ते की क्या जात है, हिन्दू या मुसलमान। पंडित जी ने जवाब दिया कुत्ता तो हिन्दू मालूम होता है क्योंकि जो मुसलमान होता तो दूसरे कुत्ते को अपने साथ खिलाने में न भूकता।" चीज़ नम्बर २ "भिखारिन अंधी बुढ़िया बोझ सिर पर लादे जा रही थी किसी ने पूछा बूढ़ा तुम्हारा नाम क्या है? उसने जवाब दिया दौलत। आदमी ने कहा क्या दौलत भी अंधी होती है। बुढ़िया बोली अंधी नहीं है तो क्यों मेरे घर न आई[1]?"

बड़े व्यंग चित्रों में वस्तुतः कहानी के तत्व स्पष्ट रूप से उभर आये हैं

---

[1] हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७६ ई०, पृ० ७६

लेख आते थे, उनमें भी कहानी की चित्रात्मिकता के तत्व मिले रहते थे जैसे, 'हरिश्चन्द्र, मैगज़ीन',[1] में 'प्रान्तर प्रदर्शन', "अहा हा ! वह कौन सा देवता है जिसके दर्शन के हेतु मुसलमान अपना इस्लाम छोड़ और कृस्तान अपने मत ने मुँह मोड़ उन्मत्त से हो उस दीपक की द्युति के अनुराग में आपको उसके चारों ओर पतंग से उड़ा रहे हैं और ज्यूज अपने जीवन से हाथ धो बौद्ध बुद्धि खोय गान पाखंड तजि और सकल मतावलम्बी इस भुवन के हिन्दुओं की भाँति मनसा वाचा कर्मणा से उस देव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। कोई उसके ध्यान के निमित्त अपना पराया घर द्वार कुल परिवार वरन् इस संसार से विमुख हो नदी के करार पर छा रहे हैं जिसका नील वर्ण जल दर्पण सा झलकता है और वायु के सनसनाहट में छोटी-छोटी लहरें मन तरंग में आकर अपने प्रीतम सिंधु की ओर उसके मिलने के लिये पधारती हैं ?

पक्षियों के बोल समीर के डोल भ्रमरों के गुंज फूलों के पुंज के बान से तो वे मूर्छित हो भूमि पर घूम ही रहे थे, इतने में क्या देखते हैं कि बैकुंठ की सारी अप्सरा रंभा, हूर-परी, मेनका, उर्वशी आदि, इधर-उधर संगमरमर और संग मूसा की सड़कों को अपने चरण कमल की धूरि से सुगंधित करती हैं। रंभाओं के रूप का प्रकाश इतना फैला कि सूर्य मारे भय के अस्ताचल के कन्दर में जा छिपा। कोई कहते हैं कि लज्जा के मारे पश्चिम में समुद्र में जा डूबा। और शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा ऊपर चढ़ सारे ग्रह तारों और राशियों के साथ चतुराई कर सबसे पहले इनकी शोभा देखने के लिये आकाश मध्य में बेंदी सा आ लटका और आकाश से सुर गण इस चाँदनी में उस वाटिका के बीचों-बीच एक चबूतरे पर जो कि लाजवर्द का बना है और जिसके चारों ओर और कोने पर फव्वारे हैं। पंक्ति की पंक्ति सोने रुपे की जड़ाऊँ चौकियों पर असंख्य चन्द्रमा बैठते देख चकोर के समान अपना जी हारने लगे। इतने ही एक सखी अपने चारों ओर जमुर्द के वृक्षों की झलक, मूँगे के समान लाल अधर दिखाती हुई सुधा मेह बरसाती है, हे परियों तुम जानती हो, मुहब्बत क्या वस्तु है ?

इस प्रश्न को सुनकर सब हँस पड़ीं और कहने लगी कि, तू अपने यौवन के मद में आकर पागल हो गई जो अनाप ऐसी बातें मुँह से निकालती[2] है।

[1] हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३२
[2] हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३४

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि प्राकृतिक चित्रों के सहारे किस तरह एक मनोरंजक वार्तालाप का ढाँचा खड़ा किया गया है। इस में यदि लेखक ने किसी तरह कथा वस्तु का प्रयोग किया होता, तो यह वार्तालाप निश्चित रूप से कहानी के समीप पहुँच गई होती।

ऐसे निबंधों और वार्तालापों के प्रेषित पत्रों के अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग चित्र की भी अवतारणा होती थी। यह व्यंग-शैली मूलतः अंग्रेज़ों की देन है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध 'लंडन पंच' का जन्म १८४१ में हुआ और इस शैली ने उस समय इंग्लैंड में आशातीत सफलता के साथ सामयिक लेखकों, आलोचकों तथा अन्य कलाकारों की मनोवृत्ति और भाव धारा पर सुन्दर छींटें और व्यंग किये जाते थे। भारतवर्ष में यह शैली आंग्ल भारत पत्रकारिता के माध्यम से आयी तथा पहले पहल यह शैली बहुत असम्मानित दृष्टि से देखी जाने लगी[1]। वस्तुतः इस शैली को पहले-पहल उर्दू वालों ने अपनाई और उनकी तंज शैली, इसी का विकसित रूप है। हिन्दी में इस का जन्म, 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' ने दिया और इसकी मान्यता धीरे-धीरे सब पत्र-पत्रिकाओं पर छा गई।

पाठकों की दृष्टि से उस समय बिना पंच के पत्रिकाएं आकर्षणहीन समझी जाने लगी। 'भारत मित्र', 'हिन्दी प्रदीप' और 'उचित वक्ता', आदि ने इसे खूब आगे तक बढ़ाया। संक्षेप में १८६७ से १९०० ई० तक हिन्दी गद्य साहित्य में पंच की वही मान्यता थी जितना कि आज कहानी की मान्यता है। हिन्दी प्रदीप में इस व्यंग चित्र के बहुत अच्छे-अच्छे उदाहरण मिलते हैं। छोटे-छोटे व्यंग चित्रों को यहां 'चोज़' की संज्ञा दी गई है। जैसे, चोज़, नम्बर १ "पंडित जी धर्म विषय पर कुछ वक्तृता कर रहे थे इतने में एक मसखरा बोल उठा पंडित जी कुत्ते की क्या जात है, हिन्दू या मुसलमान। पंडित जी ने जवाब दिया कुत्ता तो हिन्दू मालूम होता है क्योंकि जो मुसलमान होता तो दूसरे कुत्ते को अपने साथ खिलाने में न चूकता।" चोज़ नम्बर २ "भिखारिन अंधी बुढ़िया बोझ सिर पर लादे जा रही थी किसी ने पूछा बूढ़ा तुम्हारा नाम क्या है? उसने जवाब दिया दौलत। आदमी ने कहा क्या दौलत भी अंधी होती है। बुढ़िया बोली अंधी नहीं है तो क्यों मेरे घर न आई[1]?"

ऐसे व्यंग चित्रों में वस्तुतः कहानी के तत्व स्पष्ट रूप से उभर आये हैं

---

[1] हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७८ ई०, पृ० ७५

और इन्हें पढ़ते समय व्यंगात्मक कहानी की सुधि हो जाती है। जैसे, एक पढ़े-लिखे सभ्य महाशय बेकारी की हालत में घर बैठे पांच-सात लंगोटिया यारों से सलाह करने लगे कि यार कहाँ जाँय कौन-सा उद्यम करें जिस से रोटी चले। उन की यह बात सुन जिसे जैसा समझ पड़ा यार लोगों ने अपनी-अपनी राय जाहिर की। बाद इसके सभ्य महाशय ने भी कुछ कहना शुरू किया कि इतने में उनकी स्त्री जो किसी पुलिस कर्मचारी की बेटी थी, पर्दे के आड़ में ढोल बजाय गाने के मिस से सलाह देने लगी सो पीछे सुन लीजिये। पहले उन लंगोटिया यारों के दास्तानों को भी सुनते चलिए। एक ने कहा, यार, आप कथक्कड़ वक्ता बन जाइए। सेर खलिया पीली मिट्टी से दोनों ओर कान तक माथा मीच लीजिये तेली तमोली सूद बाबर को इकट्ठा कर असभ्य देहाती बोली में गाली गुप्ता बकी लीजिए। औरतों के लिये दो-एक छल्ला अंगूठी पहन लीजिए। जनानी बोली में खूब मटकिए यह न बन सके तो गुरु बन तन-मन-धन अर्पण कराइए। इसी तरह लंगोटिया यार गपाष्टक करते हैं चोरी बेइमानी की बातें। इस पर अंत में सभ्य की औरत गाने लगती है—

लिखाय नाही देंव्यौ पढ़ाय नाहीं देंव्यौ।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाही देंव्यौ॥

इस गाने के समाप्त होते ही लंगोटिया यार सब कहकहे मारते ताली पीट-पीट अपने घर चले गए[1]।

स्फुट चित्र और हास्य चित्र भी 'हिन्दी प्रदीप' में सर्व प्रथम आए, इन्हें यहाँ 'गपाष्टक' की संज्ञा दी गई है 'गपाष्टक' का वस्तुतः इस में एक स्वतंत्र स्तम्भ भी रहता था, जिस में एक साथ कई स्फुट हास्य चित्रों को स्थान मिलता था। यह निश्चित रूप से सम्पादक की ही लेखनी से व्यक्त होता रहा होगा। 'हिन्दी प्रदीप' के अप्रैल १८७६ वाले अंक में सर्वथा एक साथ कई ऐसे चित्र 'गपाष्टक' संज्ञा के नाम से आए हैं, जैसे —

"एक बूढ़ा मनुष्य जिसकी कमर बुढ़ापे से झुक गई थी कुबड़े की भाँति राह में चला जा रहा था। एक मसखरे ने पूछा बड़े मियाँ क्या ढूँढ़ते जाते हो। बूढ़े ने जवाब दिया, बेटा मेरी जवानी खो गई है उसी को ढूँढ़ता हूँ! मसखरे ने कहा, कि बड़े मियाँ झूठ क्यों बोलते हो, यों क्यों नहीं कहते कि कब्र के लिए जमीन ढूँढ़ रहा हूँ!"

[1]हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८१ ई०, पृष्ठ ३६।

"किसी महफ़िल में एक काली कलूटी रंडी नाच रही थी। जब नाच चुकी किसी ने पूछा, बीबी आपका इस्मशरीफ़ क्या है? बीबी ने उत्तर दिया कि जनाब बन्दी को मिसरी कहते हैं। फिर मियाँ ने कहा कि किस बेवकूफ़ ने आपका नाम मिसरी रक्खा है तुम तो शीरा हो! बीबी ने हँसकर उत्तर दिया कि खैर साहब आपको हमशीरा ही सही!"

"एक बूढ़ा कमर झुकाए लाठी लिए बाजार में चला जाता था राह में किसी ने पूछा कि यह कमान तुमने कितने में लिया है उसने उत्तर दिया कि थोड़े दिन सबर करो यह तुम्हें आप से आप मिल जायगा[1]।"

स्वप्न चित्रों में कहानी के तत्व अपेक्षाकृत सब से अधिक स्पष्ट हुए हैं और ऐसे स्वप्नों की अवतारणा विशेषकर 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', और 'हिन्दी प्रदीप' दो ही पत्रों में होती थी, लेकिन इन दोनों पत्रों में इस के रूप समान्यतः कहानी तत्व के समीप रहते थे। उदाहरण के लिए किसी में से 'स्वप्न' को ले सकते हैं—'सद्ज्ञान रूपी प्रभाकर के अंतर्ध्यान होते ही महामोह निशा आन पहुँची सारा जगत् अंधकारमय हो गया। रजनीचरों ने अपने अनुकूल समय जान एकाएक हलचल मचा दिया। वंचक लुटेरे तस्करगण निशाचल पाप अपने मनोरथ साधन में तत्पर हुए, उल्लुओं की बन आई। रुद्रगण का तो राज्य ही हो गया लेकिन समयानुकूल प्रत्येक का उद्धारत उचित ही है इसलिए उस परात्पर प्रभु ने भगवान मृगधारी न्याय सुधाकर को प्रकट किया। जिन के नीति-मय मनोहर किरणों के प्रकाश से अंधकार हट-हटकर जगत् की भलाई और उपकार का उद्योग होने लगा और सब को भरोसा हुआ कि जिस ज्ञान प्रभाकर के प्रकाश में हम लोग चैतन्य और स्वतंत्र स्वरूप थे अब वही समयानुकूल श्वेत वर्ण का न्याय सुधाकर हो के प्रकट हुआ। अब उस की शीतल मनोहर किरणों के आश्रय और सहायता से हमारे सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध हुए। फिर आलस ने हाथ पकड़ कर योग-निद्रा को सौंप दिया फिर क्या पूछना है? सम्पूर्ण इन्द्रियों के धर्म शिथिल हो गए, केवल वैर-फूट की लालसा यथावत स्थित रही। इस स्वप्नावस्था में यद्यपि अनेक प्रकार के वृत्तान्त दृष्टिगोचर हुए हैं पर इस स्थल पर वह कौतूहल लिखना चाहिए जिसमें अपूर्व और विलक्षण बातें विद्यमान हों। स्वप्नान्तर में यह चित्त चकोर चाँद की चाँदनी समझ एक चमत्कार उपवन में जा पड़ा जहाँ श्वेत रंग की मनोहर लता अपने पुष्पों से

[1] हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८७९ ई०, पृष्ठ ४२।

हिल-मिल के कटाक्ष कर रही थी। अब वाटिका की सारी छवि के वर्णन प्रयोजन दूर जा पड़ेगा इसलिए मनभावनी वाटिका की शोभा सम्पत्ति वे से लेखनी को रोक कर एक राजा समाज-वार्ता के वर्ण विन्यास में प्रवृ हूँ। अहा: क्या विचित्र सभा थी। जिसमें बड़े-बड़े सबल श्रीमन्त जिनको में सिविल सर्वेण्ट कहते हैं यूथ के यूथ विद्यमान हुए। उनके अतिरिक्त बहुत से यूरप देशी प्रधान जिन को प्रभुता का सम्राट समर्पित है ए जिन की राज्यश्री और कान्ति के आगे सूरज की किरणें दबक जाती उन के रथों के दमक-चमक के साथ मिलकर ऐसी निकलती थी जैसे घन बीच से बिजली की छटा। धन्य है। इन का पूर्वज-तप जिस के प्रभ प्रभुता के पात्र बने। धन्य है, वह देश जहाँ इन महात्माओं ने जन्म अब सुनिए, उस सभा का वृत्तान्त जब सब साहब लोग बैठ चुके तो ने सब साहबों से यह सम्भाषण किया कि आप महाशयों को हम ने इ बुलाया है कि हमारी स्थिति यहाँ बहुत थोड़ी रह गई है इसलिए ल गई कि इस भारतवर्ष में अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी का विशेष प्रचार हिन्दी संस्कृत का विस्तार न होने पावे और संयोगवश कहीं रहे तं जैसा दाल में नोन क्योंकि हिन्दी संस्कृत सुनकर मेरा जी जलता है, मैं कि प्रत्येक महानगरों में अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी की अच्छी-अच्छी नियत की जाय। यह बात सुनकर बहुत साहबों ने तालियाँ बजाई बहुते नीचा कर लिया और कई एक साहब आकाश की ओर देखने लगे[1]।

उपर्युक्त समस्त गद्य-शैलियों में किसी न किसी रूप में कहान थोड़े-बहुत बीज स्पष्टतः विद्यमान हैं, सामान्य लेखों निबंधों और व्यंग उस समय कथा-जिज्ञासु जनता को आज की हिन्दी कहानी ही जैसा आ आकर्षण दिया होगा। दूसरी ओर स्वप्न-चित्रों अथवा स्वप्न-कल माध्यम से अनेक के वर्णन संवेदनाओं के वर्णन और चित्रण निश्चि हिन्दी कहानी के विकास का सर्वप्रथम मौलिक प्रयोग कहा जा सकता उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हिन्दी कहानी कला के विव स्वप्न-चित्र-शैली शिल्प विधि के निर्माण का सर्व प्रथम मौलिक प्रयोग

सरस्वती का प्रकाशन

प्रयाग में सरस्वती का प्रकाशन (१९०० ई०) बीसवीं शताब्द

[1] हरिश्चन्द्र मैगजीन, १२ अप्रैल १८७४ ई० पृ० ९।७

साहित्यिक का अन्यतम प्रतीक है। दूसरे शब्दों में यह आधुनिक हिन्दी साहित्य की वह प्रयोग-भूमि अथवा संधि-स्थल है जहाँ एक ओर भारतेन्दु-युग की प्रेरणा से मिले हुए साहित्य के रूपों पर आधुनिक प्रयोग और आधुनिक विकास किए गए वहाँ दूसरी ओर विभिन्न साहित्य रूपों के लिए निश्चित और स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ।

दूसरी ओर इसके प्रकाशन का सब से महान् और क्रान्तिकारी प्रयत्न था, हिन्दी कहानी का आरम्भ। इस तरह अगर हम 'सरस्वती' का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास की सब से महान् घटना कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। विशेषकर हिन्दी कहानी कला की उत्पत्ति, प्रयोग और आरम्भ इन तीनों क्रमों अथवा चरणों के प्रकाश में 'सरस्वती' का नाम कहानी शिल्पविधि के आरम्भ और विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

हिन्दी कहानी का आरम्भ

भारतेन्दु युग में कहानी कला की उत्पत्ति की दिशा में जितने भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष ढङ्ग के प्रयत्न हुए, उन समस्त प्रयत्नों और गद्य-शैलियों में हिन्दी कहानी का कोई भी रूप नहीं बन सका अर्थात् उस काल में हमें कहानी ऐसी कोई काव्य वस्तु नहीं मिल सकी। निश्चित रूप से हिन्दी कहानी अपनी संज्ञा और कलात्मक रूप की प्राप्ति में केवल 'सरस्वती' का आभार वहन करेगी। वस्तुतः 'सरस्वती' के भी प्रारम्भिक वर्षों में इसे आख्यायिका और गल्प की संज्ञा दी गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमशः पहली संज्ञा संस्कृत की परम्परा की याद दिलाती है और दूसरी बंगला का प्रभाव। फिर भी कहानी के भावी रूप के निर्माण में भारतेन्दु-काल के व्यंग-चित्रों, लेखों और स्वप्न-कल्पनाओं ने इसकी प्राण-शक्ति उपस्थित की तथा यही प्राण-शक्ति वाहक सूत्र अपने विकसित रूप में 'सरस्वती' में उदित हुए। इन्हीं विकसित माध्यमों से 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी कहानी के आरम्भ में अविकल प्रयत्न और प्रयोग हुए, जिन से हिन्दी कहानी का मौलिक कलात्मक आविर्भाव हुआ।

प्रारम्भिक प्रयत्न और प्रयोग

'सरस्वती' के प्रायः प्रारम्भिक दो वर्षों में हिन्दी कहानी के आरम्भ की दिशा में मुख्यतः सात प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग हुए हैं इन प्रयत्नों और प्रयोगों का मूल्य हिन्दी कहानी शिल्पविधि की उत्पत्ति और विकास में अनन्य है।

इन में सर्व प्रथम उस प्रयत्न और प्रयोग की कहानी आती है जो शेक्सपियर के नाटकों की इतिवृत्ति की छाया पर अन्य पुरुष और वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुई हैं—जैसे, किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती'[1]। यह कहानी शेक्शपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की इतिवृत्ति की छाया लेकर लिखी गई है। इस कहानी की मुख्य प्रेरणा 'टेम्पेस्ट' की मीराण्डा की भाँति सघन वन में छिपकर अपने पिता के साथ रहती है। वह अपने यौवन-काल में सर्व प्रथम एक नवयुवक अजयगढ़ के राजकुमार चन्द्रशेखर को देखती है और फौरन उससे प्रेम करने लगती है। 'टेम्पेस्ट' के 'प्रास्पेरो' की भाँति इन्दुमती का पिता दोनों प्रेमियों के प्रेम की परीक्षा लेता है और अंत में दोनों का विवाह हो जाता है। इस तरह इन्दुमती कहानी, 'टेम्पेस्ट', की इतिवृत्ति की छाया पर एक राजपूत संवेदना के सम्मिश्रण से निर्मित हुई है। डा० श्री कृष्णलाल[2] ने इस कहानी को हिन्दी की सर्व प्रथम मौलिक कहानी कही है। 'इन्दुमती' सर्व प्रथम हिन्दी-कहानी अवश्य है, लेकिन सर्व प्रथम मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती। वस्तुतः 'सरस्वती' के उन प्रारम्भिक दो वर्षों में आई हुई ऐसी तथा अन्य प्रकार की कहानियाँ कलात्मक दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी की सृष्टि और शिल्प-विधि के निर्माण की दिशा में विभिन्न प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग हैं।

दूसरा प्रयत्न है, स्वप्न के रूप में उपस्थित की गई कहानी भारतेन्दु युग की। स्वप्न-कल्पनाओं में जहाँ हमने देखा है कि उन में कहानी तत्व लाने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ स्वप्न-कल्पनाओं को केवल साधन बनाकर कहानी की सृष्टि हुई है। लेकिन फिर भी यह प्रयत्न पिछले ही सूत्र का विकसित रूप है और इस में अधिक कहानी तत्व आ गये हैं, जैसे, केशव प्रसाद सिंह की 'आपत्तियों का पर्वत' कहानी। इस में लेखक ने स्वप्न को एक अभिव्यक्ति का साधन मानकर कहानी के मनोरंजन को सामने लाने का प्रयत्न किया है। यह कहानी प्रथम पुरुष में मैं, और हम, के प्रयोग से लिखी गई है तथा इस में कौतूहल की मात्रा पर्याप्त रूप से आई है।

इसी प्रयत्न की प्रेरणा से तीसरे प्रयोग में वह कहानी आती है जो एक सुदूर देश के काल्पनिक चरित्रों को लेकर तथा उनसे एक मौलिक संवेदना की सृष्टि से निर्मित हुई हैं। जैसे, गिरिजादत्त बाजपेई कृत 'पति का पवित्र प्रेम'।

---

[1] सरस्वती, भाग १, संख्या ६

[2] आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्री कृष्णलाल, पृ० ३२२

संक्षेप में इस की शैली का उदाहरण और इस की संवेदना यों है, इंगलैंड के दक्षिण में ससैक्स नाम का एक सूबा है, उस में समुद्र के तट पर ब्राइटन नाम का एक छोटा-सा नगर है। यहाँ त्रिमली नामक एक सौदागर के, लिली, नामक एक रूपवती कन्या थी। बचपन से ही इस से और वहाँ के एक पादरी के लड़के जेम्स से इसका प्रेम था। जब वह सोलह वर्ष की हुई तब इस से और 'वेरस्फर्ड' से खिंचाव हुआ। लेकिन यह प्रेम एकांगी था। 'लिली' हमेशा 'जेम्स' को प्यार करती थी और अंत में दोनों में विवाह भी हो गया। कुछ दिनों के बाद जब 'लिली' दो बच्चों की माँ हुई तब 'जेम्स' बीमार पड़ा और डाक्टर के अनुसार वह 'फिनिक्स' जहाज से कहीं वायु-परिवर्तन के हेतु चला गया। रास्ते में संयोग वश जहाज़ डूब जाता है और लिली उसे मृतक समझकर 'वेरस्फर्ड' से पुनर्विवाह कर लेती है। लेकिन इधर 'जेम्स' जीवित था और जब वह अस्पताल आया और उसने 'लिली' और 'वेरस्फर्ड' का पुनर्विवाह सुना, वह अपनी इन सब बातों को वहीं के डाक्टर को बताकर मर गया। लिली को इसकी सूचना मिलती है। उसे अतुल करुणा होती है। वह उसकी लाश को बहुत श्रद्धा से अपने पास रखती है, और उस पर सदैव फूल चढ़ाती है।

चौथे प्रयत्न में यात्रा वर्णन के माध्यम से कहानी-निर्माण का प्रयोग किया गया है। यह वर्णन वस्तुतः प्रथम पुरुष में चलता है और इस में कल्पित और यथार्थ दोनों प्रकार के स्थानों के वर्णनों के साथ-साथ अनेक घटनाओं के तादात्म्य से इतिवृत्त के निर्माण और निर्वाह के प्रयत्न किए गए हैं। जैसे, केशव प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा'[1] में सब कल्पित अवतारणाएं की गई हैं लेकिन फिर भी इसमें कहानी के अधिक तत्व सफलता से आए हैं तथा अंत तक पात्रों द्वारा यात्रा-वर्णन और घटना-वर्णन में मनोरंजन के तत्व मिलते हैं। कश्मीर-यात्रा[2], में वही कहानी तत्व अपेक्षाकृत अधिक सफलता से चरितार्थ हुए हैं, लेकिन इसमें पत्रात्मक-शैली का सहारा नहीं लिया गया है।

पाँचवें प्रयत्न में आत्म कहानी की शैली से कहानी की सृष्टि हुई है जैसे कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'दामोदर राव की आत्म कहानी'[3]।

इस में उत्तम पुरुष में कहानी कहने की शैली सफलतापूर्वक चरितार्थ

---

[1] सरस्वती, भाग १ संख्या ७, पृष्ठ २२७

[2] सरस्वती, भाग १, संख्या ५

[3] सरस्वती, भाग १ संख्या ८, पृष्ठ २६३

संक्षेप में इस की शैली का उदाहरण और इस की संवेदना यों है, इंगलैंड के दक्षिण में ससेक्स नाम का एक सूबा है, उस में समुद्र के तट पर ब्राइटन नाम का एक छोटा-सा नगर है। यहाँ त्रिमली नामक एक सौदागर के, लिली, नामक एक रूपवती कन्या थी। बचपन से ही इस से और वहाँ के एक पादरी के लड़के जेम्स से इसका प्रेम था। जब वह सोलह वर्ष की हुई तब इस से और 'वेरस्फर्ड' से खिंचाव हुआ। लेकिन यह प्रेम एकांगी था। 'लिली' हमेशा 'जेम्स' को प्यार करती थी और अंत में दोनों में विवाह भी हो गया। कुछ दिनों के बाद जब 'लिली' दो बच्चों की माँ हुई तब 'जेम्स' बीमार पड़ा और डाक्टर के अनुसार वह 'फिनिक्स' जहाज से कहीं वायु-परिवर्तन के हेतु चला गया। रास्ते में संयोग वश जहाज़ डूब जाता है और लिली उसे मृतक समझकर 'वेरस्फर्ड' से पुनर्विवाह कर लेती है। लेकिन इधर 'जेम्स' जीवित था और जब वह अस्पताल आया और उसने 'लिली' और 'वेरस्फर्ड' का पुनर्विवाह सुना, वह अपनी इन सब बातों को वहीं के डाक्टर को बताकर मर गया। लिली को इसकी सूचना मिलती है। उसे अतुल करुणा होती है। वह उसकी लाश को बहुत श्रद्धा से अपने पास रखती है, और उस पर सदैव फूल चढ़ाती है।

चौथे प्रयत्न में यात्रा वर्णन के माध्यम से कहानी-निर्माण का प्रयोग किया गया है। यह वर्णन वस्तुतः प्रथम पुरुष में चलता है और इस में कल्पित और यथार्थ दोनों प्रकार के स्थानों के वर्णनों के साथ-साथ अनेक घटनाओं के तादात्म्य से इतिवृत्त के निर्माण और निर्वाह के प्रयत्न किए गए हैं। जैसे, केशव प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा'[1] में सब कल्पित अवतारणाएं की गई हैं लेकिन फिर भी इसमें कहानी के अधिक तत्व सफलता से आए हैं तथा अंत तक पात्रों द्वारा यात्रा-वर्णन और घटना-वर्णन में मनोरंजन के तत्व मिलते हैं। कश्मीर-यात्रा[2], में वही कहानी तत्व अपेक्षाकृत अधिक सफलता से चरितार्थ हुए हैं, लेकिन इसमें पत्रात्मक-शैली का सहारा नहीं लिया गया है।

पाँचवें प्रयत्न में आत्म कहानी की शैली से कहानी की सृष्टि हुई है जैसे कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'दामोदर राव की आत्म कहानी'[3]।

इस में उत्तम पुरुष में कहानी कहने की शैली सफलतापूर्वक चरितार्थ

---

[1] सरस्वती, भाग १ संख्या ७, पृष्ठ २२७

[2] सरस्वती, भाग १, संख्या ५

[3] सरस्वती, भाग १ संख्या ८, पृष्ठ २६१

वर्षों के बिछुड़े हुए पति-पत्नी हैं। इस की पुष्टि स्त्री पुरुष के हाथ में एक तिल देखकर करती है।

शैली

संपूर्ण कहानी प्रथम पुरुष में कही गई है। पहले सीधे कहानीकार के मुख से कहानी आरम्भ होती है, फिर स्त्री से भेंट होने के उपरान्त कहानी का सूत्र उस स्त्री की आत्म-कथा से आगे बढ़ता है। इस के उपरान्त नायक का मित्र प्रथम पुरुष में कहानी का सूत्र बढ़ाकर पिछले सूत्र से जोड़ता है और अंत में रहस्योद्घाटन के बाद कहानी का अंत हो जाता है। कहानी अपनी कलात्मक विशेषता में कथात्मक है तथा अपने विकास क्रम में संयोगात्मक। लेकिन फिर भी इस कहानी-शैली में जिज्ञासा-कौतूहल वृत्ति को वर्णनों में इस तरह संगुम्फित किया गया है कि अंत तक कहानी में आकर्षण विद्यमान रहता है। पात्र और चरित्र-चित्रण की प्रतिष्ठा की दृष्टि से कहानी साधारण है। केवल पात्र-चरित्रों के रूप में कहानी में पिरोए गए हैं, उन के व्यक्तित्व विश्लेषण का सर्वथा अभाव है। लेकिन यहाँ हमें यह भी नहीं भूलना है कि यह कहानी की विकास दृष्टि से आदि कहानी है, फलतः इस की अपनी सीमाएँ होना स्वाभाविक भी है। वस्तुतः यह कहानी हिन्दी के एक भावी आलोचक की लेखनी से निर्मित हुई है, इसलिए इस कहानी के विकास में कहानीकार स्पष्ट रूप से आलोचक और समर्थक भी बन गया है। जब कहानी का नायक कलकत्ते पहुँच कर एक दिन सहसा अपनी पत्नी को याद करता है, कहानीकार ने जब ऐसी उक्ति कही, वहीं उस ने इस का विश्लेषण किया कि "हैं .....न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप, न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई, यह प्रेम कैसा। महाशय रुष्ट न हूजिये। इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्तव्य से घनिष्ट संबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में हो सकती है। इसकी जड़ संसार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर और प्रशस्त है। आपको संतुष्ट करने को मैं इतना और कहे देता हूँ कि इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री अर्ल आफ बेकन्स फील्ड का भी यही[1] मत है।"

इस तरह इस कहानी की शिल्प विधि में वर्णन, विश्लेषण स्थान मुख्य हैं। इसके आरम्भ, विकास और अंत का विधान संयोगों के माध्यम से हुआ है

---

[1] सरस्वती, सितम्बर १९०३, भाग ४, संख्या ६, पृ० १३६

तथा चरित्र-चित्रण घटनाओं के सहारे आकर्षण के प्रकाश में हुआ है। फिर भी इस कहानी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह हिन्दी की आदि मौलिक कहानी है तथा इस की शिल्प-विधि का निर्माण कहानी का अपना मौलिक प्रयास है। इस में कहानी के वे सब तत्व आ गये हैं, जिन के प्रकाश में यह कहानी सर्वथा उल्लेखनीय है। इस कहानी के बाद से हमें आने वाली, 'सरस्वती' की प्रायः अधिक संख्याओं में हिन्दी की और मौलिक कहानियाँ मिलने लगती हैं। दूसरी ओर अहिन्दी कहानियाँ जैसे बंगला, अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद मिलने लगते हैं। इन प्रारम्भिक विकास-सूत्र के अध्ययन में हिन्दी की इन मौलिक कहानियों का सूत्र बहुमूल्य है।

विकास-क्रम

इस विकास-क्रम में जो दूसरी कहानी आती है, वह है पंडित गिरजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी'[1] नामक कहानी। यह कहानी कलात्मक दृष्टि से पिछले व्यंग चित्र और हास्य चित्र के विकसित सूत्र में आती है तथा यहाँ कहानी का समग्र रूप सफलता से निर्मित हो गया है। कहानी की संवेदना एक ४५ वर्ष के पंडित और उनकी २० वर्ष की पंडितानी की समस्या को लेकर चलती है। दोनों में स्वभाव विरोध के रहते दाम्पत्य आकर्षण है। शैली अध्ययन के लिये एक दिन का हाल यों है। कमरे के एक कोने में जहाँ मेज कुर्सी लगी थी, पंडित जी एक कवि के ऊपर कुछ लिख रहे थे। थोड़ी ही दूर पर पंडितानी भी एक पत्र पढ़ रही थीं। पंडितानी ने उन्हें आकर्षित करने के लिए कुछ खांसा, पर पंडित जी चुप थे, फिर पंडितानी ने अपनी बात शुरू की। वे एक तोता पालने जा रही हैं। पंडित जी अपने लेख के प्रवाह में कोई विघ्न बाधा नहीं चाहते थे। दूसरी बात घर में तोते का पालना उन्हें अच्छा न लगता था, इसलिये वे बराबर मना करते थे, लेकिन पंडितानी जी अपने तर्कों पर जुटी थीं। उन्होंने बताया कि उनका तोता कैसे बोलेगा सत्य गुरु दत्त शिवदत्त दाता'।

अन्त में पंडित जी पंडितानी के प्रेम में बहकर कोई विरोध न कर सके। उन्होंने पंडितानी से प्रेमपूर्वक कहा अच्छा तुम्हारे लिए एक नहीं छः तोते आ जाँयगे, अब तो प्रसन्न हो। इस पर पंडितानी जी प्रसन्नता से फूलकर चुपचाप बैठ गई और पंडित जी ने जल्दी-जल्दी अपना लेख समाप्त कर डाला। उसी

[1] सरस्वती, सितम्बर १६०३, भाग ४, संख्या ६, पृष्ठ १६६

तथा चरित्र-चित्रण घटनाओं के सहारे आकर्षण के प्रकाश में हुआ है। फिर भी इस कहानी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह हिन्दी की आदि मौलिक कहानी है तथा इस की शिल्प-विधि का निर्माण कहानी का अपना मौलिक प्रयास है। इस में कहानी के वे सब तत्व आ गये हैं, जिन के प्रकाश में यह कहानी सर्वथा उल्लेखनीय है। इस कहानी के बाद से हमें आने वाली, 'सरस्वती' की प्रायः अधिक संख्याओं में हिन्दी की और मौलिक कहानियाँ मिलने लगती हैं। दूसरी ओर अहिन्दी कहानियाँ जैसे बंगला, अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद मिलने लगते हैं। इन प्रारम्भिक विकास-सूत्र के अध्ययन में हिन्दी की इन मौलिक कहानियों का सूत्र बहुमूल्य है।

विकास-क्रम

इस विकास-क्रम में जो दूसरी कहानी आती है, वह है पंडित गिरजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी'[1] नामक कहानी। यह कहानी कलात्मक दृष्टि से पिछले व्यंग चित्र और हास्य चित्र के विकसित सूत्र में आती है तथा यहाँ कहानी का समग्र रूप सफलता से निर्मित हो गया है। कहानी की संवेदना एक ४५ वर्ष के पंडित और उनकी २० वर्ष की पंडितानी की समस्या को लेकर चलती है। दोनों में स्वभाव विरोध के रहते दाम्पत्य आकर्षण है। शैली अध्ययन के लिये एक दिन का हाल यों है। कमरे के एक कोने में जहाँ मेज कुर्सी लगी थी, पंडित जी एक कवि के ऊपर कुछ लिख रहे थे। थोड़ी ही दूर पर पंडितानी भी एक पत्र पढ़ रही थीं। पंडितानी ने उन्हें आकर्षित करने के लिए कुछ खांसा, पर पंडित जी चुप थे, फिर पंडितानी ने अपनी बात शुरू की। वे एक तोता पालने जा रहीं हैं। पंडित जी अपने लेख के प्रवाह में कोई विघ्न बाधा नहीं चाहते थे। दूसरी बात घर में तोते का पालना उन्हें अच्छा न लगता था, इसलिये वे बराबर मना करते थे, लेकिन पंडितानी जी अपने तर्कों पर जुटी थीं। उन्होंने बताया कि उनका तोता कैसे बोलेगा सत्य गुरु दत्त शिवदत्त दाता'।

अन्त में पंडित जी पंडितानी के प्रेम में बहकर कोई विरोध न कर सके। उन्होंने पंडितानी से प्रेमपूर्वक कहा अच्छा तुम्हारे लिए एक नहीं छः तोते आ जाँयगे, अब तो प्रसन्न हो। इस पर पंडितानी जी प्रसन्नता से फूलकर चुपचाप बैठ गईं और पंडित जी ने जल्दी-जल्दी अपना लेख समाप्त कर डाला। उसी

---

[1] सरस्वती, सितम्बर १६०३, भाग ४, संख्या ६, पृष्ठ १६६

पार्वती नन्दन ने 'मेरी चम्पा'[1] के नाम से एक कहानी अवश्य लिखी लेकिन यह कहानी स्वयं लेखक के शब्दों में टामस कारलायल अनुवादित एक जर्मन कहानी की छाया के आधार पर लिखी गई है। इस के अतिरिक्त लाला पार्वती नन्दन ने एक अन्य कहानी 'नरक गुल्जार'[2] के नाम से अनूदित की है लेकिन इस का पता नहीं कि यह किस मूल अथवा स्रोत से अनूदित हुई है।

वस्तुतः इन प्रारम्भिक कहानियों के विकास का व्यापक रूप हमें १६०६ ई० की 'सरस्वती' से मिलने लगता है। इस वर्ष उदाहरणस्वरूप कुल नौ कहानियाँ आई हैं जैसे पंडित सूर्यनारायण दीक्षित कृत, 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान',[3] चाँदनी कृत 'प्रोषित पतिका',[4] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'एक के दो दो',[5] वंग महिला कृत 'कुम्भ में छोटी बहू',[6] और 'दान प्रतिदान',[7] पं० वेंकटेश नारायण कृत, 'एक अशरफी की आत्म कहानी',[8] चतुर्वेदी कृत 'भूल भुलैया',[9] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'मेरा पुनर्जन्म',[10] और भट्टाचार्य कृत, 'राजपूतनी',[11]। इन कहानियों में, 'एक अशरफी की कहानी', 'एक के दो दो', 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान' 'प्रोषित पतिका', और 'मेरा पुनर्जन्म', मौलिक कहानियाँ हैं। ये सब कहानियाँ साधारण ढंग की हैं और शिल्पविधि विकास की दृष्टि से कुछ भी आगे नहीं बढ़ सकी हैं। शेष पूर्ण अनूदित अथवा छाया-नुवादित कहानियों में 'राजपूतनी', 'भूल भुलैया', 'दान प्रतिदान', 'कुम्भ में छोटी बहू' कहानियाँ प्रायः उल्लेखनीय हैं। इनमें 'राजपूतनी' वंग भाषा के 'प्रवासी' नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र में प्रकाशित बाबू सुधीन्द्र नाथ ठाकुर के एक लेख के अनुवाद

---

[1] सरस्वती, एप्रिल १६०५, भाग ६, संख्या ४, पृ० १३२
[2] सरस्वती, सितम्बर १६०५, भाग ६ स० ६
[3] सरस्वती, भाग ७, सं० ३, पृ० १०४
[4] सरस्वती, भाग ७, सं० ५, पृ० १७४
[5] सरस्वती, भाग ७, सं० ६, पृ० २३५
[6] सरस्वती, भाग ७ सं० ६, पृ० ३४२
[7] सरस्वती, भाग ७ सं० ४, पृ० १३५
[8] सरस्वती, भाग ७ सं० १०, पृ० ३६६
[9] सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ३१
[10] सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ५६
[11] सरस्वती, भाग ७ सं० ५, पृ० १८३

पार्वती नन्दन ने 'मेरी चम्पा'[1] के नाम से एक कहानी अवश्य लिखी लेकिन यह कहानी स्वयं लेखक के शब्दों में टामस कारलायल अनुवादित एक जर्मन कहानी की छाया के आधार पर लिखी गई है। इस के अतिरिक्त लाला पार्वती नन्दन ने एक अन्य कहानी 'नरक गुल्जार'[2] के नाम से अनूदित की है लेकिन इस का पता नहीं कि यह किस मूल अथवा स्रोत से अनूदित हुई है।

वस्तुतः इन प्रारम्भिक कहानियों के विकास का व्यापक रूप हमें १६०६ ई० की 'सरस्वती' से मिलने लगता है। इस वर्ष उदाहरणस्वरूप कुल नौ कहानियाँ आई हैं जैसे पंडित सूर्यनारायण दीक्षित कृत, 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान',[3] चाँदनी कृत 'प्रोषित पतिका',[4] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'एक के दो दो',[5] वंग महिला कृत 'कुम्भ में छोटी बहू',[6] और 'दान प्रतिदान',[7] पं० वेंकटेश· नारायण कृत, 'एक अशरफी की आत्म कहानी',[8] चतुर्वेदी कृत 'भूल भुलैया',[9] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'मेरा पुनर्जन्म',[10] और भट्टाचार्य कृत, 'राजपूतनी',[11]। इन कहानियों में, 'एक अशरफी की कहानी', 'एक के दो दो', 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान' 'प्रोषित पतिका', और 'मेरा पुनर्जन्म', मौलिक कहानियाँ हैं। ये सब कहानियाँ साधारण ढंग की हैं और शिल्पविधि विकास की दृष्टि से कुछ भी आगे नहीं बढ़ सकी हैं। शेष पूर्ण अनूदित अथवा छाया-नुवादित कहानियों में 'राजपूतनी', 'भूल भुलैया', 'दान प्रतिदान', 'कुम्भ में छोटी बहू' कहानियाँ प्रायः उल्लेखनीय हैं। इनमें 'राजपूतनी' वंग भाषा के 'प्रवासी' नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र में प्रकाशित बाबू सुधीन्द्र नाथ ठाकुर के एक लेख के अनुवाद

---

[1] सरस्वती, एप्रिल १६०५, भाग ६, संख्या ४, पृ० १३२

[2] सरस्वती, सितम्बर १६०५, भाग ६ स० ६

[3] सरस्वती, भाग ७, सं० ३, पृ० १०४

[4] सरस्वती, भाग ७, सं० ५, पृ० १७४

[5] सरस्वती, भाग ७, सं० ६, पृ० २१५

[6] सरस्वती, भाग ७ सं० ६, पृ० ३४२

[7] सरस्वती, भाग ७ सं० ४, पृ० १३५

[8] सरस्वती, भाग ७ सं० १०, पृ० ३६६

[9] सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ३१

[10] सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ५६

[11] सरस्वती, भाग ७ सं० ५, पृ० १८३

वंग महिला कृत, "दुलाई वाली", प्रेमनाथभट्टाचार्य कृत, "पक्का गठि बंधन", और पं० गंगा प्रसाद अग्निहोत्री कृत "सचाई का शिखर", इन समस्त कहानियों में शिल्पविधि की दृष्टि से केवल "दुलाई वाली", कहानी महत्व पूर्ण है। कहानी शिल्प के विकास में इसका भी स्थान ऐतिहासिक है।

यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने इसी कहानी को हिन्दी की आदि मौलिक कहानी मानी है। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है, वस्तुतः इस कहानी का अध्ययन हिन्दी कहानी की शिल्पविधि के विकास के अध्ययन में महत्व रखता है। इस कहानी की संवेदना दो मित्रों के मनोरंजन पूर्ण कलात्मक मजाक के धरातल पर चली है। इलाहाबाद के वंशीधर बनारस अपनी ससुराल से दूल्हन बिदाकर मुगलसराय जंकशन से होते हुए आ रहे थे। मुगलसराय जंकशन पर उन के मित्र नवल किशोर भी अपनी पत्नी को लेकर मिलने वाले थे, लेकिन वहाँ कोई न मिला, बल्कि गाड़ी में उन्हें एक रोती हुई दूल्हन मिली। सहानुभूति और करुणावश वंशीधर जी उसे अपनी संरक्षता में लिए हुए इलाहाबाद स्टेशन पर उतरे। वहाँ उन्हें एक दुलाईवाली बुढ़िया मिली। उसी की देख-रेख में सब को छोड़कर वंशीधर जी स्टेशनमास्टर को, उस लावारिश दूल्हन के संबंध में सूचना देने गए और जब लौटकर आते हैं, तब वहाँ सब लापता थे—उन की दूल्हन भी। वंशीधर जी परेशान होकर जैसे ही आगे बढ़े उन्होंने दुलाई वाली बुढ़िया को देखा और पूछने पर वह दुलाई वाली अपना घूंघट खोलकर हंस पड़ी और वंशीधर ने देखा वह नवल किशोर ही था। वस्तुतः इस इतिवृत्त की कलात्मक सजावट ही इस कहानी की शिल्पविधि की परम विशेषता है। सम्पूर्ण कहानी विभिन्न भागों से विकसित की गई है। कहानी का आरम्भिक भाग समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करने और मुख्यतः आकर्षण और कौतूहल प्रस्तुत करने के लिए है। कहानी के दूसरे भाग में इस का फैलाव आता है। इस में एक ओर कहानी की कथावस्तु स्पष्ट होकर आगे बढ़ती है, तथा दूसरी ओर कहानी के नायक का द्वन्द्व सामने आता है। तीसरे भाग में कहानी की समस्या सामने आती है और कहानी के नायक के द्वन्द्व से मिलकर कहानी में गंभीरता और कौतूहल की सृष्टि करती है। कहानी का चौथा भाग चरम सीमा का भाग है जहाँ हमारी जिज्ञासा वृत्ति को शान्ति मिलती है। विशुद्ध शैली की दृष्टि से इस कहानी में दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—यथार्थ जीवन का चित्रण और स्वाभाविक वर्णन। यथार्थ जीवन चित्रण में दो बातें स्पष्ट हैं, पूर्ण संवेदना से मानव भावनाओं के चित्रीकरण तथा चरित्र और परिस्थिति के साधारणी

करण का प्रयत्न। स्वाभाविक वर्णनों में, स्वाभाविक कथोपकथन और कहानी की गति के अनुकूल इनके वर्णन विशेष रूप से सफल हुए हैं।

अगले वर्ष की 'सरस्वती'[1] की संख्याओं में अध्ययन की दृष्टि से कहानी सामग्री का अभाव है। इस की संख्या मार्च और अगस्त में दो कहानियाँ क्रमशः सत्यदेव कृत "कीर्तिकालिमा", और मधुमंगलकृत "भूली भटकी" आई है, तथा ये दोनों कहानियाँ विकास अध्ययन की दृष्टि से बिल्कुल नगण्य हैं। इसके बाद की 'सरस्वती'[2] में कुल पांच कहानियाँ आई हैं जैसे श्री लाला शालग्राम पंण्या कृत, "एक ज्योतिषी की आत्म कथा", श्रीमती बंग महिला कृत, "दालिया", कुन्दनलाल शाह कृत "प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण", श्री वृन्दावन लाल वर्मा कृत, "राखी बन्देभाई", और पं० शिवनारायण शुक्ल कृत, "सात सुनार"। इन समस्त कहानियों में केवल वृन्दावन लाल वर्मा कृत राखी बन्देभाई को छोड़कर शेष सब कहानियाँ किसी न किसी रूप में अनूदित हैं। सात सुनार, सम्पादक के शब्दों में—यह कहानी 'फोक टेल्स' की एक कहानी का भावार्थ है। "दालिया" टेगोर की लिखी हुई बंगला गल्प का अनु-अनुवाद है "प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण", स्वयं अनुवादक श्री शाह के शब्दों में अनुवाद मात्र है। "राखीबन्द भाई", भावी हिन्दी कहानी जगत् के उस ऐतिहासिक और मर्यादावादी कहानीकार की सृष्टि है जिसे इस दिशा में आगे चलकर अपूर्व सम्मान प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वस्तुतः वर्मा जी के भावी कहानीकार व्यक्तित्व की प्रायः समस्त विशेषताएं अपने बीज रूप में यहाँ मिल जाती हैं इस कहानी का इतिवृत्ति राजस्थान के दो राजाओं से संबंधित है जो राजकुमारी पन्ना के राखी बांधने से विकसित होती है। कहानी की आत्मा इस द्वन्द्व और संयोग पर आधारित है कि पन्ना जिस राजा को राखी भेजकर अनजानवश भाई बनाती है वही उसका प्रेमी निकलता है। इस तरह कहानी का अंत मानव आदर्श और चिरंतन द्वन्द्व के आधार पर होता है। कहानी कलात्मक रूप में वर्णनात्मक और इतिवृत्त प्रधान है। इसका प्रभाव हृदय पर पूर्णतः आदर्श भावना के साथ पड़ता है। आगे चलकर 'सरस्वती' १९१० की संख्या १० में इन की इसी शिल्पविधि की अन्य कहानी "तातार और एक वीर राजपूत" के नाम से आती है।

---

[1] सरस्वती, १९०८ ई० भाग ९, संख्या १ से १२ तक।

[2] सरस्वती, १९०९ भाग १०, संख्या १ से १२ तक।

'सरस्वती' की इतनी कहानी सेवा और प्रेरणा ने हिन्दी कहानी शिल्प-विधि के विकास में जहाँ एक ओर कहानी युग की प्रतिष्ठा की, दूसरी ओर इस ने हिन्दी प्रदेश और इस के एक-एक भाषा-भाषी तथा पाठक और लेखक के हृदय में कहानी की सत्ता की जड़ जमा दी। अब पाठक साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा कहानी के पठन-पाठन को अधिक प्रश्रय देने लगा। उस समय की यह मनोवृत्ति मुख्यतः दो कारणों से इस विशेष दिशा में बदली। वस्तुतः १९०९ और १९१० ई० के आस-पास का समय भारतीय परिस्थिति में कठिन राजनीतिक और सामाजिक असंतोष के आरम्भ का काल है। इस के पूर्व भी भारत में यह असंतोष था, लेकिन उस असंतोष में आशा थी, भाग्यवादिता का संबल था। इस समय से देश में वह असंतोष आरम्भ होता है, जिसकी जड़ में निराशा और पराजय थी। यह निराशा और पराजय की भावना भारतीय चेतना में १९१८ ई० के बाद एक कारण से और भी बढ़ जाती है कि हमें प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के उपरान्त कुछ नहीं मिलता। इस समय देश के शासक अँग्रेज हमारी सम्पूर्ण परिस्थितियों को अपने दमन-चक्र में डालकर स्वयं भावी प्रथम महायुद्ध १९१४ ई० की तैयारी में लग चुके थे। इधर भारतीय राजनीति में गांधी जी जी का अभ्युदय हो गया और देश में स्वाभिमान की लहर उठने लगी। लेकिन दूसरी ओर हमारी सामाजिक मान्यताएं कठोर निश्चित तथा स्थिर हो चली थीं और आर्थिक दृष्टि से भी हमारा पतन आरम्भ हो गया था, फलतः जीवन द्रुतगामी होने लगा था। अवकाश के क्षण सीमित हो चले थे और क्षणिक अवकाश में ही मनोरंजन के लिए कहानी की माँग बढ़ गई। इस माँग में लेखकों के स्वाभिमान और स्थितियों के प्रति असंतोष ने अपूर्व सहयोग दिया। उस समय प्रयाग और काशी हिन्दी क्षेत्र के मुख्य दो केन्द्र रहे। प्रयाग में 'सरस्वती' कहानी की इस बढ़ती हुई पिपासा को शान्त करने में असमर्थ होने लगी, इसलिए 'सरस्वती' के अतिरिक्त काशी केन्द्र से 'इन्दु' (१९०९) का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस तरह सरस्वती और इन्दु, की सामूहिक प्रेरणा ने हिन्दी कहानी जगत् में उस उज्ज्वल द्वार को खोला, जिस से कि प्रसाद (इन्दु) और गुलेरी (सरस्वती) का कहानी क्षेत्र में आविर्भाव हुआ।

'इन्दु' का प्रकाशन

हिन्दी कहानी शिल्पविधि के आरम्भ और विकास की दृष्टि से 'सरस्वती' के उपरान्त 'इन्दु' का भी स्थान कहानी साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

'झूठमूठ[1] है'। इस कहानी का भी धरातल मनोविज्ञान है, इतिवृत्त नहीं। दूसरे वर्ष के आठवें अंक में भावी हिन्दी कहानीकार श्री इलाचन्द्र जोशी कृत 'सजनवाँ'[2] नामक उन की प्रथम कहानी का प्रकाशन हुआ। सजनवाँ, कहानी में जोशी जी के भावी हिन्दी कहानीकार के व्यक्तित्व के सारे बीज विद्यमान हैं। जी० पी० श्रीवास्तव ने अपनी 'मैं न बोलूंगी', और 'झूठमूठ है', कहानी के माध्यम से जिस मनोवैज्ञानिक कहानी धारा का सूत्रपात किया उस में 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी का तादात्म्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली को बल दिया तथा इस कहानी की चिन्तन शैली काफ़ी सफलता के साथ आई। 'माला' के अगले वर्षों के अंकों में प्रसाद जी की कहानियाँ नियमित रूप से आने लगीं और इन को अधिकांश विकास कालीन कहानियाँ जैसे, 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'खंडहर की लिपि', 'प्रतिमा', 'पाप की पराजय' और 'दुखिया' आदि इन अंकों की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती', द्वारा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी[3], और इधर मन्नन द्विवेदी द्वारा 'सप्त सरोज' की भूमिका से प्रेमचन्द्र[4] के 'अभ्युदय' ने समष्टि रूप से एक नया युग द्वार खोला। वस्तुतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई तथा समूचा विकास-युग इन्हीं तीनों के व्यक्तित्व से स्थिर हो सका। इस सत्य को हम यों भी कह सकते हैं कि गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद, का अभ्युदय हिन्दी कहानी की अनन्य साधना, जो पिछले पचास वर्षों से की जा रही थी, के फलस्वरूप हैं। इन के कहानी साहित्य तथा इन की शिल्पविधि में एक ओर हिन्दी कहानी कला की स्वतंत्र सत्ता उपस्थित हुई दूसरी ओर हमें वह व्यापक भाव-भूमि मिली, जिस के आधार पर हम हिन्दी कहानियों के शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सकें।

---

[1] हिन्दी गल्प माला, भाग १ अंक ४ नवम्बर १९१८, पृष्ठ १५८

[2] वही, भाग २ अंक ८ मार्च १९२०, पृष्ठ २५६

[3] सरस्वती, अक्टूबर १९१५

[4] प्रेमचन्द्र के सप्त सरोज की भूमिका, मन्नन द्विवेदी, चौथी बार [illegible]

आविर्भाव युग

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति अ विकास की जड़ में किन-किन उद्गम-सूत्रों से इसे प्राणशक्ति मिली, तथा इस विधान पर किन-किन प्रवृत्तियों के प्रभाव पड़े, इसका विवेचन सबसे प्रमुख इस विवेचन से हम यह खोजने का प्रयत्न करेंगे कि उन समस्त प्रेरणा शक्ति के क्या-क्या रूप और स्तर हैं, जिन से हमारी इस कला का आविर्भाव अ विकास हुआ। लेकिन अध्ययन की वैज्ञानिकता और क्रमबद्धता के फलस्व हमें पहले इस के सम्यक विकास को एक सूत्रता में देख लेना है, इस के उपर हम एक स्थान पर समूचे उद्गम सूत्र का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

'झूठमूठ'[1] है। इस कहानी का भी प्रगतन मनोविज्ञान है, इतिवृत्त नहीं। दूसरे वर्ष के आठवें अंक में भावी हिन्दी कहानीकार श्री इलाचन्द्र जोशी की 'सजनवाँ'[2] नामक उन की प्रथम कहानी का प्रकाशन हुआ। 'सजनवाँ' कहानी में जोशी जी के भावी हिन्दी कहानीकार के व्यक्तित्व के सारे बीज विद्यमान हैं। जी० पी० श्रीवास्तव ने अपनी 'मैं न बोलूंगी', और 'झूठमूठ है', कहानी के माध्यम से जिस मनोवैज्ञानिक कहानी धारा का सूत्रपात किया उस में 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी का तादात्म्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली को बल दिया तथा इस कहानी की विश्लेषण शैली काफी सफलता के साथ आई। 'माला' के अगले वर्षों के अंकों में प्रसाद जी की कहानियाँ नियमित रूप से आने लगीं और इन की अधिकांश विकास कालीन कहानियाँ जैसे, 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'खंडहर की लिपि', 'प्रतिभा', 'पाप की पराजय' और 'दुखिया' आदि इन अंकों की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती', द्वारा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी[3], और इधर मन्नन द्विवेदी द्वारा 'सप्त सरोज' की भूमिका से प्रेमचन्द्र[4] के 'अभ्युदय' ने समष्टि रूप से एक नया युग द्वार खोला। वस्तुतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई तथा समूचा विकास-युग इन्हीं तीनों के व्यक्तित्व से स्थिर हो सका। इस सत्य को हम यों भी कह सकते हैं कि गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद, का अभ्युदय हिन्दी कहानी की अनन्य साधना, जो पिछले पचास वर्षों से की जा रही थी, के फलस्वरूप हैं। इन के कहानी साहित्य तथा इन की शिल्पविधि में एक ओर हिन्दी कहानी कला की स्वतंत्र सत्ता उपस्थित हुई दूसरी ओर हमें वह व्यापक भाव-भूमि मिली, जिस के आधार पर हम हिन्दी कहानियों के शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सकें।

---

[1] हिन्दी गल्प माला, भाग १ अंक ४ नवम्बर १९१८, पृष्ठ १९८

[2] वही, भाग २ अंक ८ मार्च १९२०, पृष्ठ ३२६

[3] सरस्वती, अक्टूबर १९१५

[4] प्रेमचन्द्र के सप्त सरोज की भूमिका, मन्नन द्विवेदी, चौथी बार ८,६,१९१७ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता।

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति और विकास की जड़ में किन-किन उद्गम-सूत्रों से इसे प्राणशक्ति मिली, तथा इस के विधान पर किन-किन प्रवृत्तियों के प्रभाव पड़े, इसका विवेचन सबसे प्रमुख है। इस विवेचन से हम यह खोजने का प्रयत्न करेंगे कि उन समस्त प्रेरणा शक्तियों के क्या-क्या रूप और स्तर हैं, जिन से हमारी इस कला का आविर्भाव और विकास हुआ। लेकिन अध्ययन की वैज्ञानिकता और क्रमबद्धता के फलस्वरूप हमें पहले इस के सम्यक विकास को एक सूत्रता में देख लेना है, इस के उपरान्त हम एक स्थान पर समूचे उद्गम सूत्र का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

विकास युग

*हिंदी कहानी कला को ही यह सुयोग मिल सका है कि इस का आवि-*भाव जिन साहित्यिक मनीषियों द्वारा हुआ, उन्हीं की साहित्य साधना से इस का विकास भी हुआ। यह विकास इतना व्यापक और विस्तृत था कि इस ने अपने में एक स्वतन्त्र युग की प्रतिष्ठा की। हिंदी कहानी कला के अविर्भाव में प्रेमचन्द और प्रसाद का व्यक्तित्व ही मुख्य था तथा इस के विकास की दिशा में भी इन्हीं की साधना फलीभूत हुई। इन दो महान् कथा शिल्पियों से दो पृथक् संस्थानों के निर्माण हुए, जिन के अंतर्गत अनेकानेक प्रतिष्ठित, विकास युगीन कहानीकारों ने अपनी बहुमूल्य कला कृतियाँ दीं। विकास-क्रम की दृष्टि से प्रेमचंद और प्रसाद के पहले चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अपूर्व है। इन की केवल तीन कहानियाँ 'उसने कहा था',[1] 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का कांटा'[2] वस्तुतः हिंदी कहानी कला के विकास के प्रथम युग द्वार हैं। लेकिन प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से गुलेरी का स्थान अपने में स्वतंत्र है। इन से विकास युग को एक गति अवश्य मिली, लेकिन इन से यह युग प्रेरित न हो सका। इस का एक मात्र कारण यही था कि इन्होंने कहानियाँ कम लिखीं और खोजपूर्ण लेख अधिक। ऐसे युग में प्रेमचंद और प्रसाद के आविर्भाव ने भी इन्हें पृष्ठभूमि में डाल दिया। *अतएव हिंदी कहानियों की शिल्पविधि के विकास युग के केवल दो मुख्य चरण* हैं प्रेमचंद और प्रसाद तथा समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इन की विभिन्न शिल्पविधियों और कलागत मान्यताओं ने किया।

प्रवृत्तियां

प्रेमचंद और प्रसाद की कला इस युग में दो प्रवृत्तियों के फलस्वरूप है। इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों का अनुसरण और प्रभाव विकास-युग पर हुआ। ये

---

[1] सरस्वती, अक्टूबर १६१५

[2] 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी सन् १६११ में 'भारत मित्र' में छपी थी, 'बुद्धू का काँटा' किस पत्र या पत्रिका में छपी थी, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूँ। शायद यह सन् १६११-१५ के बीच में लिखी गयी थी, गुलेरी जी की अमर कहानियाँ—सम्पादक शक्तिधर गुलेरी वक्तव्य पृ० ३

दोनों प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न थीं। प्रेमचंद मूलतः आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक थे। प्रसाद, भावमूलक परंपरा के अधिष्ठाता थे। तुलनात्मक दृष्टि से, प्रसाद की भावमूलक परंपरा को अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अपनाया और प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा में इस युग के अधिक से अधिक कहानीकार आए। व्यापक रूप में विकास युग इन्हीं दोनों की कलाओं के अनुसरण का फल है, अतएव इन की प्रवृत्तियाँ ही विकास-युग की वास्तविकत प्रवृत्तियाँ मानी जा सकती हैं, जिन्हें हम दो कोटियों में बाँट कर देख सकते हैं। वे कोटियाँ हैं—

(क) भावगत प्रवृत्ति (ख) शिल्पगत प्रवृति

भावगत प्रवृत्तियां

प्रसाद के व्यक्तित्व पर बौद्ध-दर्शन और भारतीय संस्कृत का प्रभाव बहुत अधिक था। यही कारण है कि इन में एक ओर बौद्ध दर्शन की करुणा, त्याग बलिदान था, और दूसरी ओर इन में भारतीय संस्कृति की चारित्रिक उदारता और आदर्श का अपूर्व आग्रह था। इन दोनो आग्रहों से इन का जो जीवन-दर्शन बना, उस में करुणा, प्रेम, आनन्द और आदर्श की भावना अत्यन्त तीव्र थी। इन के व्यक्तित्व में अतीत की इतनी अद्भुत प्रेरणा और भारतीय संस्कृति का इतना आग्रह प्रतिफलित हुआ कि इस के फलस्वरूप इन्हें वर्तमान की अपेक्षा अतीत की ओर जाना पड़ा और यथार्थ परिस्थितियों की अपेक्षा काल्पनिक परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा। प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियों का रहस्य यही है और इनका मूल धरातल समाज इतिहास और परिस्थित कल्पना है। कल्पना तत्व इन के समस्त काव्य रूपों का वह मूल स्रोत है, जहाँ से उन्हें सौंदर्य और शिव की अनेक प्रेरणाएं प्राप्त हुई हैं। यह भावगत वृत्ति इन के कहानी-साहित्य में पूर्ण कलात्मक और उच्च शिखर पर स्थित है, यही कारण है कि इन की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं। समाज, इतिहास और कल्पना तीनों धरातलों से निर्मित कहानियों के वर्ण्य वस्तुओं और भावों के अध्ययन से यह सत्य स्पष्ट है।

तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और शोषण को भी इन्होंने अपनी कहानियों में स्थान दिया है। अपनी गतिशील सांस्कृतिक आस्था में प्रसाद ने सामाजिक परिस्थितियों और मान्यताओं के प्रति विद्रोह और सुधार

भी लक्षित किया है। 'चूड़ीवाली' में चूड़ीवाली एक वेश्या की कथा है, लेकिन वह अपनी पवित्रता और संयम के साथ इस दुनिया से बाहर निकल कर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति विजयकृष्ण के घर में बहू बनकर रहना चाहती है और अंत में वह अपने इस संकल्प में सफल भी होती है। 'नीरा' में एक सम्पन्न धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति, एक अकिंचन, साधारण व्यक्ति की लड़की, नीरा, से विवाह कर लेता है और समाज की सारी मान्यताओं को ठुकरा देता है। इस तरह सामाजिक प्रवृत्तियों में, प्रसाद, पूर्ण आदर्शवादी हैं। इन का यह आदर्शवाद मुख्यतः प्रेम और विवाह की समस्याओं को लेकर चलता है। प्रेम-तत्व तथा प्रेम की स्थितियों में प्रसाद, स्वैर उन्मुक्त, स्वच्छंद और अलौकिक प्रेम-भाव को स्वीकार करते हैं। 'रसिया बालम', 'तानसेन', और 'सुनहला सांप', में इन्होंने सर्वथा स्वतंत्र तथा वासनारहित प्रेम को परम शाश्वत और महान स्वीकार किया है। वैयक्तिक स्थितियों में इन्होंने प्रेम और सहज आकर्षण तत्व को बहुत प्रधानता दी है और इस दिशा में इन्होंने सामाजिक और आर्थिक मान्यताओं को कुछ भी स्थान नहीं दिया है।

ऐतिहासिक धरातल से प्रसाद ने जिन वर्ण्य वस्तुओं और भाव धाराओं को चुना है उन में एक ओर विशुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति की आदर्शवादिता और स्वर्ण युग की प्रतिष्ठा है, तथा दूसरी ओर उन्होंने करुणा, बलिदान और उत्सर्ग की भावाभिव्यक्तियों से अतीत की धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक मान्यताओं को चुनौती भी दी है। प्रथम के उदाहरण में, 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', और 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों के भावपक्ष लिए जा सकते हैं और दूसरी दिशा में 'सालवती', 'देवरथ', 'आँधी', 'नूरी', आदि की भावगत प्रवृत्तियां उल्लेखनीय हैं। ये समस्त कहानियाँ जिन वेदनाओं और लक्ष्य विन्दुओं को लेकर लिखी गई हैं उन में सर्वत्र करुणा, उत्सर्ग और मूक विद्रोह की प्रवृत्ति है। इन कहानियों की भावनाएं अधिकांशतः प्रेमपूरक हैं, अर्थात् स्वच्छंद प्रेम, उत्सर्गपूर्ण मिलन और आदर्शमय विच्छेद इन की भावपूरक इकाइयां हैं, जिन पर प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों के प्रासाद की सृष्टि हुई है। वस्तुतः कल्पना का धरातल इन की समस्त कहानियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कहीं उन्होंने कल्पना में सामाजिक विद्रोह का रूप लिया है और कहीं दर्शन की गूढ़ और आदर्शवादी सृष्टि की है, जिसमें 'प्रलय' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं।

सारांशतः, प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियों में भारतीय संस्कृति और अतीत

की प्रेरणा मुख्य है, और इस में कल्पना की तीव्रता सब से अधिक है। अतएव भाव-पक्ष की दृष्टि के प्रसाद की कहानियाँ आदर्शोन्मुखी और काल्पनिक हैं जिन के लक्ष्यविंदु पर आनन्द और सौन्दर्य की अमिट आभा है।

विकास युग की दूसरी और विशिष्ट प्रवृत्ति के प्रतीक हैं, प्रेमचन्द। जहाँ, प्रसाद, की प्रवृत्ति भावमूलक थी, वहाँ प्रेमचन्द यथार्थवाद में लीन आदर्शमूलक हैं, प्रेमचन्द की यह यथार्थवादी परम्परा विकास युग की मूल आत्मा है। प्रसाद की भावमूलक परम्परा की अपेक्षा प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का प्रभाव समूचे विकास-युग और कहानीकारों पर अधिक पड़ा। अधिक से अधिक कहानीकारों ने इस परम्परा को अपनाया इसका मुख्य कारण यही था कि प्रेमचन्द की यथार्थवादी-परम्परा में उनका तत्कालीन युग उसकी समस्त मान्यताएं, परिस्थितियां और युग-चेतना का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ। तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ और उन के सुधार के प्रति उत्कट आग्रह, दलित, शोषित, निर्धन किसान मजदूर के साथ अपार सहानुभूति तथा राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा प्रेमचन्द के भावपक्ष की मुख्य इकाइयाँ थीं, तुलनात्मक दृष्टि से जहाँ प्रसाद की भावमूलक प्रवृत्तियों का मूल धरातल इतिहास, अतीत और कल्पना पर आश्रित था, वहाँ प्रेमचन्द की यथार्थमूलक प्रवृत्तियों का मेरुदंड, समाज, व्यक्ति और राष्ट्र की संवेदनाओं पर आधारित था। स्पष्ट शब्दों में प्रेमचन्द और, प्रसाद, के कलागत दृष्टिकोणों में अपार विभिन्नता थी। प्रसाद प्रेमचन्द की भाँति कहानी कला को समाज, व्यक्ति आदि की उपयोगिता और नैतिकता के आधार पर नहीं रखना चाहते। वे इस का संबंध अपने नाटक और काव्य की भाँति मनुष्य की आत्मा के लोकोत्तर आनन्द और सौन्दर्यानुभूति से जोड़ते हैं, क्योंकि प्रसाद प्रकृति के कवि हैं और वे आनन्द प्रेम को अपनी कला का वास्तविक लक्ष्य मानते हैं। प्रेमचन्द प्रकृति से समाज के आलोचक और सुधारक थे और वे अपनी इस कला को मानव जीवन की समस्याओं और अन्दोलनों की क्रान्तिकारणी शक्ति मानते हैं। प्रेमचन्द के इस यथार्थवादी दृष्टिकोण में इतनी विविधता और व्यापकता है कि मनुष्य का पूर्ण व्यक्तित्व अपनी समकालीन सामाजिकता के साथ चमक उठा है।

सामाजिक धरातल से प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम समाज के रूढ़िग्रस्त रीति-रिवाज, जाति, धर्म और परम्परा को अपनी कला का विषय बनाया है, क्योंकि मूलतः समाज की यही वे ऊँची दीवारें हैं, जिनमें मानवता कहीं अछूत के नाम से वहिष्कृत है, कहीं आर्थिक-दासता के नाम पर बन्दी है और कहीं वेश्या तथा

पतिता के नाम से अग्राह्य है, कहीं पति की उच्छृङ्खलता से दाम्पत्य जीवन में कलह की लपट उठी है, कहीं नारी ने अपने आत्मसम्मान की रक्षा और उत्सर्ग में अपनी बलि दे दी है। यथार्थवादी मनोविज्ञान ऐसी हृदयरंजक स्थितियों से होकर वस्तुवादी जगत् में अवतरित हुआ है कि हमारे सामने जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण उपस्थित हो गया है। प्रेमचन्द ने अपने प्रेमजगत् को बहुत व्यापक रूप में लिया है और व्यावहारिक आदर्श की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। उन्होंने पति-पत्नी, विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह से सम्बन्धित अनेक उत्कृष्ट कहानियों की सृष्टि की है, जिन में समस्याओं और स्थितियों के प्रति सर्वत्र सुधार का आग्रह है। कहीं-कहीं सुधार और परिवर्तन के आग्रह से उन्होंने जीवन की करुणा को बहुत सफलता से जागरित किया है। समाज की दो प्रमुख इकाइयाँ घर और संस्था में इन्होंने क्रमशः संयुक्त परिवार समस्या और किसानी, मजदूरी, नौकरी तथा जमींदारी आदि संस्थाओं को लिया है। घरों की आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ इन्होंने संयुक्त परिवार परम्परा के खोखलेपन को सर्वत्र दिखाया है। मुख्यतः मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के घर ही इस दिशा में प्रेमचन्द के विषय बन सके हैं। संस्थाओं से संबंधित संवेदनाओं में जमींदारी संस्था, पुलिस संस्था, न्यायालय संस्था आदि को उन्होंने लिया है क्योंकि ये संस्थाएं सीधे किसान वर्ग से सम्बन्धित हैं।

व्यक्तिगत भाव धरातल पर प्रेमचंद ने एक ओर व्यक्ति के चरित्र को लिया है, जहाँ सत्-असत् तथा नैतिकता और अनैतिकता का अध्ययन पूर्ण सफलता से हुआ है और दूसरी ओर व्यक्तिगत धरातल से प्रेमभाव को भी इन्होंने अपनी कहानी कला में विकसित किया है लेकिन इस का क्षेत्र प्रेमचन्द के भाव जगत् में अत्यन्त सीमित[1] है। संभवतः द्विवेदी युग की अति नैतिकता इस का एक कारण रही हो। प्रेम-भाव को इन्होंने सर्वत्र स्वस्थ दृष्टिकोण से लिया है। उस में कहीं भी छिछलापन अथवा वासना की दुर्गन्धि नहीं आ सकी है। प्रेम

---

[1] प्रेम से अभिप्राय यदि स्त्री-पुरुष के प्रेम से लें तो प्रेमचन्द में इस से संबंध रखने वाली कहानियाँ उंगली पर गिनी जा सकेंगी। नर-नारी प्रेम प्रेमचन्द जी का विषय ही नहीं रहा, उन्होंने यौन-प्रेम को विषय नहीं बनाया प्रेम के दीवाने मात्र, दीवानों के विकृत मनःसृष्टि शरत् की भाँति इन के कथानकों की प्रेरणा नहीं बन पाई।

सत्येन्द्र : प्रेमचन्द उनकी कहानीकला

को इन्होंने चरित्र और उस की नैतिकता का मापदंड माना है और उस की चरम परिणति इन्होंने विवाह में स्वीकार की है। व्यक्ति चरित्र की दिशा में प्रेमचन्द ने मनोविज्ञान को लिया है, यह मनोविज्ञान एक ओर व्यक्ति चरित्र के अध्ययन और चित्रण में पूर्ण निरपेक्ष रूप से आता है, जैसे, 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', और 'कफ़न', आदि में, दूसरी ओर यह मनोविज्ञान चरित्र की बाह्य परिस्थितियों और समस्याओं की सापेक्षता से चरितार्थ हुआ है। मनोविज्ञान की यह दूसरी विधि प्रेमचन्द की कहानी कला की मूलधारा है।

राष्ट्रीय भावधारा में प्रेमचन्द मूलतः गांधीवादी थे। अछूतोद्धार, दलित, निर्धन देहाती के साथ अपार समवेदना, सुधार तथा राष्ट्रीय भावना का जागरण इनकी कहानी कला के भाव पक्ष का एक जबरदस्त मोर्चा है। इन मोर्चों से इन्होंने गांधीवाद की प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय जागरण का जोश दिलाया है तथा झूठे विश्वासघाती राष्ट्रसेवक, दम्भी नेताओं की व्यंगात्मक आलोचना की है। प्रेमचन्द अपनी कहानी कला के उत्कर्ष-काल में साम्यवाद से भी प्रेरित हुए तथा शोषण और श्रमविभाजन के भाव-पक्ष से कहानियाँ लिखीं 'कफ़न' इस का ज्वलंत उदाहरण है। वस्तुतः आर्थिक विषमता और इस के अनेक रूप प्रेमचन्द के भावपक्ष में समाविष्ट हुए। इस विषमता को हल करने के लिए इन्होंने कभी गांधीवाद का पक्ष लिया है और कभी साम्यवाद का; प्रश्न के साथ इसका उत्तर भी है।

ऐतिहासिक धरातल से लिखी हुई कहानियों के भाव पक्ष में आदर्शवाद और प्राचीन मर्यादा की प्रतिष्ठा इन की कला की मूल प्रवृत्ति है। 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'जुगनू की चमक', और 'रानी सारंधा' आदि कहानियों में भारतीय इतिहास के राजपूत और सामंतकाल के अनेक गौरवपूर्ण आदर्श चरित्र गुंफित हैं। इस के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने भारतीय इतिहास की मुगल-कालीन कथा-वस्तुओं को भी चित्रित किया है और विलास वैभव तथा ऐश्वर्य के चित्रण के बीच इन्होंने पतन की दिशा का संकेत कर हमें जागरूक और चैतन्य होने का संदेश दिया है। इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति की पूर्ण और व्यापक सफलता आगे चलकर वृन्दावन लाल वर्मा की कहानी कला में मिली[1]।

समग्र रूप में विकास युग की भावगत प्रवृत्तियों के अन्तर्गत प्रसाद और प्रेमचन्द दोनों आदर्शवादी थे। इन दोनों प्रतिनिधि धाराओं में सुधार का

---

[1] शरणागत और कथाकार का दंड वृन्दावन लाल वर्मा।

उत्कट आग्रह है। लेकिन दोनों धाराओं की अलग-अलग दिशाएं हैं। प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियों का उद्गम सूत्र अथवा धरातल इतिहास का अतीत वैभव और कल्पना का संसार है। प्रेमचन्द का वस्तुविन्यास जन-जीवन का सुखदान और उस से परे मानव कल्याण का विराट विश्व है। परिणामस्वरूप प्रेमचन्द की प्रवृत्तियाँ तत्कालीन समाज और उस की चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भावगत प्रवृत्तियों के समान प्रसाद और प्रेमचन्द की शिल्पविधियों में भी स्पष्ट अंतर है। प्रसाद अपनी भावगत प्रेरणा के फलस्वरूप कहानियों में प्रेम सौन्दर्य और रहस्य भावना के कहानीकार हैं। भावनाओं से ओत-प्रोत कुछ विशुद्ध और सामाजिक और यथार्थवादी कहानियों को छोड़कर शेष कहानियाँ प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक कोटि में रखी जा सकती हैं। प्रतीकात्मक कहानियों का मूल धरातल कल्पना और भावुकता है, अतएव ये कहानियाँ अपने शिल्प में भावुकतापूर्ण रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। इन के कथानक में न तो इतिवृत्तात्मकता है, न संवेदना की क्रमबद्धता बल्कि उस में भावनाओं उमड़ता हुआ ज्वार है। समस्त कथा एक प्रसंग में ही नहीं केवल एक भाव के ऊपर एक पैर से खड़ी हो जाती है और उस की कला एक ही भाव के अनेक चित्रों के माध्यम से स्पष्ट होती है। अतः ऐसी कहानियों में सांकेतिकता और व्यंजना ही शैली के दो उपकरण माने जा सकते हैं।

ऐतिहासिक कहानियों में एक सूत्रता तथा विकास के अंतर्गत आदि, मध्य और अंत तीनों परिस्थितियाँ मिलती हैं। ऐसी कहानियाँ एक ओर पूर्ण विस्तृत और व्यापक होती हैं और दूसरी ओर इन की एकसूत्रता और इतिवृत्तात्मकता निश्चित होती है। 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'पुरस्कार', 'देवरथ' और 'सालवती', आदि कहानियों के कथानक उदाहरणस्वरूप लिए जा सकते हैं। इन कथानकों में अनेक प्रकार की कल्पना रंजित सूक्ष्म रेखाएं उभर उठी हैं, फिर भी उन में भावों का तारतम्य और एक सूत्रता सर्वत्र स्पष्ट है। कथानकों के आरम्भ, विकास और अंत तीनों भागों में घटनाओं की अवतारणा प्रसाद की कला की मूल विशेषता है। एकदम किसी घटना की अवतारणा से कथानक का आरम्भ होता है और इस के क्रमिक विकास के साथ साथ सम्पूर्ण कथानक विकसित होता है। इन्हीं घटनाओं में आरम्भ ही से कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति का संयुक्त प्रसाद-कला की सब से बड़ी विशेषता है। घटनाओं में

पूर्व कथा, पूर्व राग और भूमिका प्रायः बिल्कुल छिपा दी जाती है और कथानक का आरम्भ एकाएक बहुत विचित्र रूप में होता है। घटनाओं के साथ-साथ संयोग का सहारा लेने में प्रसाद को कोई आपत्ति नहीं है।

चरित्र की दिशा में प्रसाद का दृष्टिकोण बहुत ऊंचा है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में इतने ऊंचे ऊंचे व्यक्तित्व के चरित्र चित्रित हुए हैं कि उन की तुलना नहीं की जा सकती। प्रसाद स्वभावतः भावुक और सौन्दर्य प्रेमी थे और इन के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव पड़ा था, फलतः इन के चरित्रों की अवतारणा और चित्रण पर इन दोनों का प्रभाव परिलक्षित है। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इन के चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए हैं। इन के चरित्र चित्रण में बलिदान, उत्सर्ग और मूक करुणा ही मुख्य भूमिकाएं बनी हैं। दूसरी ओर भावुकता के फलस्वरूप इन के चरित्र पूर्ण और भावुक प्रेमी बने। प्रथम प्रकार में मूलतः प्रसाद के नारी चरित्र आते हैं, और द्वितीय में पुरुष-चरित्र। नारी चरित्र और उन का विश्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र बिन्दु है। यही स्त्री चरित्र अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं, ये सामाजिक बंधनों परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति विद्रोह करते हैं। स्त्री वर्ग अपने अप्रतिम रूप आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व से कहानियों का सूत्र-संचालन करती है और अपने में घात-प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के रंग छिपाए रहती है। पुरुष पात्र प्रायः स्त्री पात्रों के ही व्यक्तित्व के परिधि में घूमते रहते हैं और उन के व्यक्तित्व का विश्लेषण स्त्री चरित्रों की अपेक्षा गौण और संक्षिप्त हो गया है। पुरुष चरित्रों में चारित्रिक दृढ़ता, संवेदनशीलता और व्यक्तित्व की अन्तर्मुखी भावधारा प्रमुख विशेषताएं कही जा सकती हैं।

प्रसाद की कहानियों की शैली भारतीय नाटक प्रणाली की प्रेरणा के अंतर्गत आती है, अर्थात् इनके निर्माण में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है। यह तत्व प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों में पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। लेकिन उन की प्रतीकात्मक और गद्य गीत शैली में लिखी हुई कहानियों में यह तत्व अधिक विकसित नहीं हो पाया। प्रसाद की प्रतिनिधि कहानियों के आरम्भ में बीज के अंतर्गत कहानी के मुख्य पात्र, मूल द्वन्द्व अथवा समस्या का पूर्वाभास मिल जाता है। विकास भाग में, समस्या प्रवेश, पूर्व परिचय, द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात अवस्था क्रमों की शृंखला मिलती है। इन के विधान में घटनाओं और कार्य-व्यापारों की अवतारणा बराबर होती चलती है।

(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति (३) व्याख्या और (४) घात-प्रतिघात। प्रसाद की भाँति प्रेमचंद की चरम सीमा भाग भी फलागम तत्व के आधार पर निश्चित होता है। प्रेमचंद में अपेक्षाकृत चरम सीमा के नाम पर फलागम की प्रवृत्ति सब से अधिक सशक्त है। इस के मुख्यतः दो कारण हैं—प्रेमचंद की कहानियाँ सर्वदा लक्ष्यात्मक होती हैं, उन में एक निश्चित उद्देश्य होता है और उन के अंत पर आदर्श अथवा नीति की व्यंजना होती है। यही कारण है कि प्रेमचंद ने चरम सीमा के बाद कहानियों में प्रायः उपसंहार जोड़ा है, जिस से उन की कला की सोद्देश्यता पूर्ण रूप स्पष्ट हो जाय। शैली के रूप-विधान की दिशा में प्रेमचंद ने अन्यान्य शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं लेकिन ऐतिहासिक शैली ही उन की प्रतिनिधि शैली है।

शैली के सामान्य पक्ष में प्रेमचंद की भाषा उन की कला की मूल विशेषता है। जिस तरह प्रेमचंद यथार्थवादी धारा के कहानीकार थे, उन की भाषा शैली भी इस के अनुरूप सरल और पात्र परिस्थिति सापेक्ष हैं। इस में विविध वर्ग के पात्रों के सहज स्वर हैं। बोलचाल की भाषा से लेकर ऊँचे स्तर के गद्य तक इन की भाषा, शैली का विस्तार है। इस पर मुख्यतः उर्दू भाषा का प्रभाव होते हुए भी शुद्ध हिंदी का प्रवाह है, और दोनों के समन्वय से इन की भाषा चुस्त, चुलबुली, मुहाविरेदार, और विषय-वस्तु के साथ-साथ चलने वाली हो गयी है। इस के फलस्वरूप प्रेमचंद के कथोपकथन में अपूर्व ढङ्ग की नाटकीयता आ गई है और कहानी के विकास में कथोपकथन का सहयोग सर्वत्र लिया गया है। प्रेमचंद ने कहानियों के निर्माण-शैली में इस से अत्यधिक सहारा लिया है। देश, काल, परिस्थिति के वर्णन चित्रण में प्रेमचंद सदैव यथार्थवादी और सहज थे। रूप-वर्णन तथा दृश्य-वर्णन में भी इन का संयम और इन की व्यंजना दोनों उल्लेखनीय हैं। प्रसाद और प्रेमचंद ही विकासयुग की दो मूल प्रवृत्तियों के दो विभिन्न प्रतीक हैं। इन की विभिन्न भावगत और शिल्पगत प्रवृत्तियों में समूचा विकास युग आ जाता है, लेकिन प्रसाद की भावमूलक परम्परा को इस युग तथा आगे के कहानीकारों ने बहुत कम रूप में अपनाया है और प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा समूचे विकास युग और आगे भी बहुत जोरों से चली।

ऐतिहासिक दृष्टि से विकास युग में, प्रसाद, और प्रेमचंद की स्वतंत्र भाग के पूर्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अमर है और इन की केवल तीन कहानियों का अध्ययन अपना अलग मूल्य रखता है। अतएव प्रेमचन्द और प्रसाद के विस्तृत अध्ययन के पूर्व गुलेरी की कला का अध्ययन परम आवश्यक

(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति (३) व्याख्या और (४) घात-प्रतिघात। प्रसाद की भाँति प्रेमचंद की चरम सीमा भाग भी फलागम तत्व के आधार पर निश्चित होता है। प्रेमचंद में अपेक्षाकृत चरम सीमा के नाम पर फलागम की प्रवृत्ति सब से अधिक सशक्त है। इस के मुख्यतः दो कारण हैं—प्रेमचंद की कहानियाँ सर्वदा लक्ष्यात्मक होती हैं, उन में एक निश्चित उद्देश्य होता है और उन के अंत पर आदर्श अथवा नीति की व्यंजना होती है। यही कारण है कि प्रेमचंद ने चरम सीमा के बाद कहानियों में प्रायः उपसंहार जोड़ा है, जिस से उन की कला की सोद्देश्यता पूर्ण रूप स्पष्ट हो जाय। शैली के रूप-विधान की दिशा में प्रेमचंद ने अन्यान्य शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं लेकिन ऐतिहासिक शैली ही उन की प्रतिनिधि शैली है।

शैली के सामान्य पक्ष में प्रेमचंद की भाषा उन की कला की मूल विशेषता है। जिस तरह प्रेमचंद यथार्थवादी धारा के कहानीकार थे, उन की भाषा शैली भी इस के अनुरूप सरल और पात्र परिस्थिति सापेक्ष हैं। इस में विविध वर्ग के पात्रों के सहज स्वर हैं। बोलचाल की भाषा से लेकर ऊँचे स्तर के गद्य तक इन की भाषा, शैली का विस्तार है। इस पर मुख्यतः उर्दू भाषा का प्रभाव होते हुए भी शुद्ध हिंदी का प्रवाह है, और दोनों के समन्वय से इन की भाषा चुस्त, चुलबुली, मुहाविरेदार, और विषय-वस्तु के साथ-साथ चलने वाली हो गयी है। इस के फलस्वरूप प्रेमचंद के कथोपकथन में अपूर्व ढङ्ग की नाटकीयता आ गई है और कहानी के विकास में कथोपकथन का सहयोग सर्वत्र लिया गया है। प्रेमचंद ने कहानियों के निर्माण-शैली में इस से अत्यधिक सहारा लिया है। देश, काल, परिस्थिति के वर्णन चित्रण में प्रेमचंद सदैव यथार्थवादी और सहज थे। रूप-वर्णन तथा दृश्य-वर्णन में भी इन का संयम और इन की व्यंजना दोनों उल्लेखनीय हैं। प्रसाद और प्रेमचंद ही विकासयुग की दो मूल प्रवृत्तियों के दो विभिन्न प्रतीक हैं। इन की विभिन्न भावगत और शिल्पगत प्रवृत्तियों में समूचा विकास युग आ जाता है, लेकिन प्रसाद की भावमूलक परम्परा को इस युग तथा आगे के कहानीकारों ने बहुत कम रूप में अपनाया है और प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा समूचे विकास युग और आगे भी बहुत जोरों से चली।

ऐतिहासिक दृष्टि से विकास युग में, प्रसाद, और प्रेमचंद की स्वतंत्र भाग के पूर्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अमर है और इन की केवल तीन कहानियों का अध्ययन अपना अलग मूल्य रखता है। अतएव प्रेमचन्द और प्रसाद के विस्तृत अध्ययन के पूर्व गुलेरी की कला का अध्ययन परम आवश्यक

कथानकों का निर्माण घटनाओं और संयोगों से होता है। मुख्यतः इन का प्रारम्भ संयोगों से हुआ है। विकास, संयोगों और कार्यों से हुआ है तथा अंत के निर्माण में फिर घटना और संयोग का सहारा लिया गया है, उदाहरणार्थ, 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी के कथानक का आरम्भ साइकिल की हवा निकल जाने के संयोग से होता है। इस के विकास में कई और संयोगों का सहारा लिया गया है। रास्ते में जयदेव शरण वर्मा की भेंट एकाएक एक युवती कमला से होती है, जो उस के लिखे हुए ग्रंथ, 'सुखमय जीवन' की अनन्य पुजारिन थी। वह उन्हें अपने घर लाती है। उस के चाचा भी उन की बहुत श्रद्धा करते हैं। जयदेव शरण वर्मा और कमला में सहज आकर्षण पैदा होता है, कमला को बगीचे में अकेली पाकर वर्मा जी उससे प्रणय प्रस्ताव करते हैं और सारी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं। कमला क्रोधपूर्वक इन की उपेक्षा करती है। उस के चाचा से भी तिरस्कृत होते हैं अंत में झगड़े के ही बीच, संयोगवश जयदेव शरण के मुख से निकल जाता है, भाड़ में जाय सुखमय जीवन, उसी के मारे नाकों दम है। सुखमय जीवन के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्म भर क्वाँरा रहे। क्वाँरा की स्थिति संयोग से सारी प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं और जयदेव शरण वर्मा तथा कमल का मंगलमय संयोग होता है।

'उसने कहा था' के कथानक निर्माण में ये सत्यपूर्ण कलात्मक ढंग से चरितार्थ हुए हैं। कथानक का आरम्भ बम्बू कार्ट वालों के बीच में एक लड़का और लड़की के संयोगवश मिल जाने से होता है। लड़का अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और लड़की रसोई के लिए बड़ियां। दोनों इस तरह महीने भर कभी न कभी मिलते रहते हैं। दोनों में सहज प्रेम और अनुराग पैदा होता है तथा इस की पुष्टि केवल इन वाक्यों से हो जाती है, दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा "तेरी कुड़माई हो गई" और उत्तर वही धत् मिला, एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए उस से पूछा तब लड़की संभावना के विरुद्ध बोली हाँ हो गई। कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू: लड़की भाग गई लड़के ने घर की राह ली[1]।

फिर कथानक का विकास इस संयोग के पच्चीस वर्ष के बाद होता है। लड़का-लहना सिंह नं० ७७ राइफल जमादार होकर अंग्रेजों की ओर से फ्रांस के युद्धस्थल में मोर्चे की खाइयों में पड़ा हुआ है। पिछली बार वह अपने एक

---

[1] गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ २१।

मुकद्दमे के सिलसिले में भारत आया था और लौटते समय अपनी फौज के सूबेदार के घर गया था। वहाँ संयोगवश उसमें उसी लड़की से भेंट होती है, जो इस की आदि प्रेयसी थी, लेकिन उस समय सूबेदारनी थी। इस दर्शन से प्रेम, कर्त्तव्य में परिणत हो जाता है। सूबेदारनी ने लहना सिंह से कहा, "अब दोनों जाते हैं, मेरे भाग : तुम्हे याद है एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था, तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों (पति पुत्र) को बचाना यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ[१]।" लेकिन कथानक के इस विकास अंग की सब से बड़ी कलात्मकता इस में है कि यह विकास अंग लहना सिंह के उस स्मृति चित्र के माध्यम से सँजोया गया है, जब लहना अपने कर्त्तव्य की बलिवेदी पर सूबेदारनी के पति पुत्र की रक्षा और वीरता में मोर्चे पर घायल होकर मरणासन्न है।

कथानक के इस चरम विकास में स्मृति दृश्यों के माध्यम से इस पूर्व विकास को इतनी कलात्मकता से सँजोना, उस समय गुलेरी जी की कहानी कला का चरमोत्कर्ष है। इस के आगे प्रेमचन्द और प्रसाद के कहानी-साहित्य में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिल पाता। कथानक का चरम विकास विविध घटनाओं से होता है जैसे, बोधा का घायल होकर मोर्चे पर पड़ा रहना तथा उस के प्रति लहना का असीम प्यार और त्याग, लपटन साहब की मृत्यु और उन के वेश में दुश्मन का लपटन बन कर आना, लहना सिंह को रहस्य का ज्ञान होना, लहना सिंह द्वारा उस की मृत्यु और स्वयं लहना सिंह का घायल होना, दुश्मनों का नया आक्रमण, लहना सिंह के सीने में गोली लगना, लेकिन फिर भी सब को विदा करके स्वयं मोर्चे पर पीड़ा से विक्षिप्त हो जाना। इसी दिशा में कथानक का आरम्भ, पूर्व विकास तथा जीवन से संबधित समस्त स्मृति चित्रों का सिमट जाना, तथा कथानक का भी अंत उसकी मृत्यु घटना से ही हो जाता है। गुलेरी जी ने कथानक निर्माण में संयोग और घटनाओं के अतिरिक्त जीवन तथा कर्मक्षेत्र का साधारण, वैयक्तिक तथा व्यापक रुप भी लिया है। सुखमय जीवन का कथानक एक परिवार तथा मुख्यतः एक व्यक्ति की एक दिन की जीवन विवेचना है। 'बुद्धू का काँटा' का कथानक रघुनाथ और भगवन्ती के जीवन के प्रणय पक्ष की

[१] गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ २१।

पास बिगड़ गया था, उस समय स्वयं घोड़े की लातों से जाकर लहना ने उस का प्राण बचाया था। इस के चरित्र का दूसरा अध्याय उस समय निर्मित होता है जब एक दिन लहना ने उस से फिर पूछा कि तेरी कुड़माई हो गई, तब उस दिन उस ने कह दिया कि—हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू। तीसरा अध्याय उस समय आरम्भ होता है, जब लहना सिंह पूर्ण युवक है—नं ७७ का राइफल्स जमादार है और पच्चीस वर्षों के बाद वह अकस्मात् अपनी आदि प्रेमिका को अपनी फौज के ही सूबेदार की धर्मपत्नी के रूप में देखता है—मैं ने तेरे को आते ही पहचान लिया। अब एक काम कहती हूँ। मेरे सूबेदार और बेटा, दोनों को मैं तुम्हें सौंपती हूँ। इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ। लहना सिंह के चरित्र का चौथा और अन्तिम अध्याय उस समय खुलता है, जब वह फ्रांस में युद्ध-मोर्चे की खाई में पड़ा है। एक ओर वह अपने आराम सुख के उत्सर्ग पर घायल बोधा की सेवा सुश्रूषा करता है, दूसरी ओर अपूर्व चतुराई, बुद्धिमत्ता और वीरता के साथ दुश्मनों से लड़ता है। अंत में सूबेदारनी की बात को पूर्ण करने में अर्थात् सूबेदार और बोधा के जीवन रक्षा में वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। वस्तुतः लहना सिंह के इस तरह के आदर्शमय महान चरित्र की अवतारणा तथा इस में परम मानवीय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के ही कारण यह कहानी हिन्दी कहानी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है। इस में चरित्र-विकास चरित्र विश्लेषण तथा व्यक्तित्व प्रतिष्ठा तीनों पूर्ण कलात्मक ढंग से चरितार्थ हुए हैं।

शैली

शैली के व्यापक प्रकाश में, गुलेरी जी अपनी कहानियों की निर्माण शैली में आदि, मध्य और अंत तीनों की योजनाओं में बहुत से उदार हो गए हैं। तीनों कहानियों का आरम्भ, भूमिकाओं से होता है। ये भूमिकाएं वस्तुतः कहानी की संवेदना के पृष्ठभूमि-निर्माण के लिए लाई गई हैं। उसने कहा था' का आदि भाग अर्थात् प्रारम्भ की भूमिका कहानी की पृष्ठभूमि के अतिरिक्त प्रारम्भ ही से आकर्षण और जिज्ञासा प्रकट करने के लिए आई है तथा यह आदि भाग दोनों प्रकाश में प्रायः सफल ही है, लेकिन, 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा', इन दोनों कहानियों की भूमिकाएं कलात्मक दृष्टि से प्रायः असंगत और विस्तृत हो गई हैं। 'बुद्धू का कांटा', कहानी का

आरम्भ इस भूमिका से होता है—"रघुनाथ प प्र सा द त् त् त्रिवेदी – या रु ग ना त प र्शाद् त्रिवेदी, यह क्या ? क्या करें, दुविधा में जान है। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरवपूर्ण दावा है कि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वैसा बोला जाता है। दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारों का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं कि हमारे कहने पर चलो हमारी करनी पर मत चलो, वैसे ही जैसे हिन्दी के आचार्य लिखें वैसे लिखो जैसे वे बोलें, वैसे मत लिखो, शिष्टाचार भी कैसा ? हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरण कयापित कंठ से कहें, पर्सोत्तम-दास, और, हर्किसनलाल, और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढ़ा जाय — पुरुषोत्तम अ दास अ, और, हरिकृष्ण लाल अ।

वस्तुतः उक्त भूमिका से कहानी की संवेदना का कोई संबंध नहीं है। कहानी की संवेदना एक हीन-ग्रन्थि प्रधान युवक और एक युवती की कहानी है और यह भूमिका हिन्दी में आने वाले संस्कृत के तत्सम् शब्दों के ऊपर व्यंग के रूप में लिखी गई है। किसी भी तरह इस भूमिका का संबंध कहानी से नहीं है, लेकिन फिर भी कहानी का आरम्भ इसी शैली से हुआ है। 'सुखमय जीवन' की भूमिका भी पूर्ण रूप से कहानी की संवेदना से संगत नहीं रखती, बस नायक की मनःस्थिति की थोड़ी-सी भूमिका अवश्य कही जा सकती है। नायक परीक्षाफल के लिए बहुत उद्विग्न है, फलतः कहानी का आरम्भ इसी भूमिका से हुआ कि परीक्षा के उपरान्त परीक्षार्थी की क्या स्थिति होती है। 'उसने कहा था', की भूमिका सर्वथा कलात्मक और कहानी की संवेदना से तादात्म्य रखती है, उसमें शैली का आकर्षण है, कहानी में आरम्भिक जिज्ञासा है और कहानी में देश, काल, परिस्थिति का आंशिक चित्रण हो जाता है।

इन कहानियों का मध्य भाग, कलात्मक दृष्टि से इन का विकास भाग है। कथानक का विकास जहाँ गुलेरी जी ने मुख्यतः संयोगों से किया है, वहाँ सम्पूर्ण कहानी का विकास विविध कार्यों तथा मुख्यतः वर्णनों तथा विवेचनाओं के माध्यम से किया है। विकास क्रम अथवा विकास के इन प्रसाधनों में जिज्ञासा और कौतूहल को बढ़ाते रहना, इन की सब से बड़ी सफलता है। 'सुखमय जीवन', में इस शैली को बहुत ही कम सफलता मिली है, शेष दोनों कहानियां इस के सुन्दरतम उदाहरण है। विकास क्रम में एक सूत्रता की दृष्टि से, 'सुखमय जीवन', और 'उसने कहा था', परम सफल हैं। लेकिन,

इस का प्रयोग, इन दोनों प्रसंगों के सुन्दर उदाहरण हमें गुलेरी जी के कथोपकथनों में मिलते हैं। जैसे 'उसने कहा था', में—

"लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उस के हाथ में देकर कहा, अपनी वाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

हां देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहीं मांग लूँगा और फूलों के बूटे लगाऊँगा।"

लाड़ी होरां को भी यहाँ बुला लोगे? या वहीं दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम।

चुपकर। यहाँ वालों को शरम नहीं।

देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख, तमाकू नहीं पीते वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और मै पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं[1]।"

कथोपकथन के प्रायः समस्त रूप और शैलियाँ इन कहानियों में प्रयुक्त हैं। अर्थात् कार्यों, व्यापारों के बीच से कार्यों, व्यापारों के संकेतों के साथ तथा बड़े-बड़े और अत्यन्त छोटे-छोटे स्वाभाविक कथोपकथनों के यहाँ दर्शन होते हैं। इन समस्त रूपों और शैलियों में स्वाभाविकता ही इस की प्रमुख विशेषता रही है। इस के अतिरिक्त इस में सहज विनोद, व्यंग और जीवन के अन्य सहज तत्व मिलते हैं।

निम्नलिखित कथोपकथनों में इन तत्वों के स्पष्ट उदाहरण मिलेंगे—

तुम्हारा नाम क्या है?

भगवन्ती।

रहती कहाँ हो?

मामी के पास वही जिसने कुएं पर पानी पिलाया था।

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ चुप हो गया। फिर कुछ देर ठहर कर बोला—तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो?

तुम्हें आदमी बनाने को, जो तुम्हें बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किए का लहू बहाकर फल पा लिया, एक सलाह दे जाती हूँ।

क्या?

कल से नदी में नहाने मत आना।

---

[1] गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, वही पृ० ४१

क्यों ?

नहीं जाओगी, तो कोई बताने वाला नहीं मिलेगा।

रघुनाथ बोला, पर मनन कर बोला, अब कोई मेरी जान बचाएगा तो धोखा नहीं करूँगा, वो गाली भी सुन लूँगा।

इसलिए नहीं, मैं आज अपने घर के नहीं जाऊँगी।

तुम्हारा घर कहाँ है ?

मुझ अलहदिनों के रहने के लिए कोई घर नहीं है।[1]

लक्ष्य और अनुभूति

गुलेरी जी की तीनों कहानियाँ अनुभूति के धरातल से नहीं लिखी गई हैं बल्कि लक्ष्य के धरातल से लिखी गई हैं। इन की सृष्टि तथा निर्माण में आदर्श लक्ष्य सब से बड़ी प्रेरणा थी और अनुभूतियाँ इन में साधन तत्व के रूप में आई हैं, प्रेरणा तत्व में नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमारे पास दो सब से बड़े प्रमाण हैं। प्रथमतः कहानीकार का दृष्टिकोण अपनी इन कहानियों के निर्माण में लक्ष्यात्मक रहा है, फलतः समस्त कहानियाँ संयोग और घटना प्रधान हुई हैं। एक निश्चित आदर्श की प्रतिष्ठा के कारण से कहानियाँ लम्बी और दो विरोधी शक्तियों के साथ निर्मित हुई हैं।

समीक्षा

ये कहानियाँ लक्ष्यात्मक होती हुई भी अनुभूतियों से ओत-प्रोत हैं। व्यक्ति, समाज और वर्ग तीनों के सुन्दरतम आदर्श इन कहानियों में मिलते हैं। क्योंकि स्पष्टतः, जीवन के प्रति गुलेरी जी का दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ है। उन के साहित्य का आधार छायानुभूतियाँ नहीं हैं, जीवन की मांसल अनुभूतियाँ हैं। "जीवन में नीति और सदाचार को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए भी ये संयम के नाम पर चिढ़ने वाले आदमियों में से नहीं थे।"[2] वस्तुतः सामाजिक चेतना इन की कहानियों का प्राण है। आदर्श प्रतिष्ठा तथा नीति सदाचार, जीवन के ऊँचे मान को स्थिर करना इन कहानियों की प्रेरणाएं हैं।

---

[1] गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ २०।

[2] विचार और अनुभूति, श्री नगेन्द्र, गुलेरी जी की कहानियाँ, पृष्ठ ४६। प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद १९४४।

गांधी सब से पहले अफ्रीका के प्रश्न को लेकर महासभा में बोले और इस के उपरान्त कांग्रेस शक्तिशाली होने लगी। भारतीय शासन लार्ड कर्जन के हाथ में आया और उन्होंने, 'बंग भंग' से भारत की राष्ट्रीय उत्तेजना को भड़काया। उस समय तक प्रेमचंद ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखीं, और पाँच कहानियों का संग्रह १९०१ ई० में "सोज़ेवतन" के नाम से प्रकाशित किया। लेकिन सरकार ने उसे जब्त करके जलवा दिया। १९१२ ई० में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया, १९१३ से लेकर १९१५ ई० के बीच करांची कांग्रेस अधिवेधन में भारतीय स्वतंत्रता पर विचार हुआ, चंपारन के जिले में नील की खेती के प्रश्न पर अंग्रेजों का भारतीय किसानों पर अत्याचार बढ़ा और महात्माजी के सत्याग्रह ने उस का जबर्दस्त मुकाबिला किया। इन सब घटनाओं के फलस्वरूप प्रेमचंद ने मजदूर और किसान प्रश्न को अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया। १९१८ ई० में प्रथम महायुद्ध समाप्ति पर भारतवर्ष में शान्ति-दिवस मनाया गया। इस के आस-पास ही जालियानवाला बाग की दुर्घटना और १९२० ई० में काँग्रेस ने असहयोग के द्वारा सरकार से युद्ध ठान लिया। १९२२ ई० में टैक्स न देने का आन्दोलन छिड़ा और सरकार भारत के प्रति कठोर हुई। इस के फलस्वरूप भारतीय जनता के निम्न मध्यम वर्ग और किसान मजदूरों की दशा बहुत शोचनीय हो उठी। यह समस्त असंतोष और विक्षोभ प्रेमचंद की कहानियें में अग्नि की चिनगारियाँ बनकर फूट पड़ा। १९३० ई० में गांधीजी के नेतृत्व में नमक-कानून को भंग करने का आन्दोलन चला। दारिद्र्य और शोषण बढ़ता गया। लार्ड वेलिंगडन के कठोर शासन, अछूतों के बहिष्कार आदि प्रश्नों पर गाँधी जी ने अनशन किया। १९३५ ई० में भारतीय शासन विधान तैयार हुआ, लेकिन भारत की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गयी और उधर पश्चिम से मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ने लगा। भारतीय उद्बुद्ध चेतना इस से बहुत प्रभावित होने लगी! इसी काल में राजनीति के साहित्यक रूप 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में हुई। अनेक देशों में इस की शाखाएँ बनी। इस की स्थापना सन् १९३५ ई० में अंग्रेज लेखक ई० एम० फोस्टर के सभापतित्व में हुई, जिस का पहला अधिवेशन 'पेरिस' में हुआ। भारतवर्ष में डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योग से १९३६ ई० में इस की स्थापना हुई और इस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व प्रेमचंद ने किया। उधर शुद्ध राजनीतिक क्षेत्र में १९३६ ई० का मंत्रिमंडल बनते-बनते प्रेमचंद जी का देहावसान हो गया।

गांधी सब से पहले अफ्रीका के प्रश्न को लेकर महासभा में बोले और इस के उपरान्त कांग्रेस शक्तिशाली होने लगी। भारतीय शासन लार्ड कर्जन के हाथ में आया और उन्होंने, 'बंग भंग' से भारत की राष्ट्रीय उत्तेजना को भड़काया। उस समय तक प्रेमचंद ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखीं, और पाँच कहानियों का संग्रह १९०१ ई० में "सोज़ेवतन" के नाम से प्रकाशित किया। लेकिन सरकार ने उसे जब्त करके जलवा दिया। १९१२ ई० में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया, १९१३ से लेकर १९१५ ई० के बीच करांची कांग्रेस अधिवेधन में भारतीय स्वतंत्रता पर विचार हुआ, चंपारन के जिले में नील की खेती के प्रश्न पर अंग्रेजों का भारतीय किसानों पर अत्याचार बढ़ा और महात्माजी के सत्याग्रह ने उस का जबर्दस्त मुकाबिला किया। इन सब घटनाओं के फलस्वरूप प्रेमचंद ने मजदूर और किसान प्रश्न को अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया। १९१८ ई० में प्रथम महायुद्ध समाप्ति पर भारतवर्ष में शान्ति-दिवस मनाया गया। इस के आस-पास ही जालियानवाला बाग की दुर्घटना और १९२० ई० में काँग्रेस ने असहयोग के द्वारा सरकार से युद्ध ठान लिया। १९२२ ई० में टैक्स न देने का आन्दोलन छिड़ा और सरकार भारत के प्रति कठोर हुई। इस के फलस्वरूप भारतीय जनता के निम्न मध्यम वर्ग और किसान मजदूरों की दशा बहुत शोचनीय हो उठी। यह समस्त असंतोष और विक्षोभ प्रेमचंद की कहानियें में अग्नि की चिनगारियाँ बनकर फूट पड़ा। १९३० ई० में गांधीजी के नेतृत्व में नमक-कानून को भंग करने का आन्दोलन चला। दारिद्रय और शोषण बढ़ता गया। लार्ड वेलिंगडन के कठोर शासन, अछूतों के बहिष्कार आदि प्रश्नों पर गाँधी जी ने अनशन किया। १९३५ ई० में भारतीय शासन विधान तैयार हुआ, लेकिन भारत की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गयी और उधर पश्चिम से मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ने लगा। भारतीय उद्बुद्ध चेतना इस से बहुत प्रभावित होने लगी! इसी काल में राजनीति के साहित्यक रूप 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में हुई। अनेक देशों में इस की शाखाएँ बनी। इस की स्थापना सन् १९३५ ई० में अंग्रेज लेखक ई० एम० फौस्टर के सभापतित्व में हुई, जिस का पहला अधिवेशन 'पेरिस' में हुआ। भारतवर्ष में डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योग से १९३६ ई० में इस की स्थापना हुई और इस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व प्रेमचंद ने किया। उधर शुद्ध राजनीतिक क्षेत्र में १९३६ ई० का मंत्रिमंडल बनते-बनते प्रेमचंद जी का देहावसान हो गया।

इस तरह सप्त सरोज की कहानियों के साथ प्रेमचंद हिन्दी कहानीकार के रूप में हमारे सामने आए। इस संग्रह की कहानियाँ हैं १. बड़े घर की बेटी, २. सौत ३. सज्जनता का दंड ४. पंच परमेश्वर ५. नमक का दरोगा ६. उपदेश और ७. परीक्षा।

अध्ययन की दृष्टि से यही कहानियाँ प्रेमचंद की आदि कहानियाँ हैं, चाहे इन का उदय उर्दू के माध्यम से हुआ हो चाहे हिन्दी से। 'सप्तसरोज' कहानी-संग्रह के बाद शीघ्र ही 'नवनिधि' कहानी-संग्रह हिन्दी जगत् के सामने आया। इन दोनों कहानी संग्रहों की अधिकांश कहानियाँ १९०७ से लेकर १९२० ई० तक का 'ज़माना' की फाइलों में प्रकाशित हैं बिल्कुल इसी रूप में, कम से कम जहाँ तक शिल्पविधि का संबंध है। अन्तर केवल भाषा, शैली और एकाध कहानियों के शीर्षक-परिवर्तन तक ही सीमित है; जैसे, 'सप्तसरोज' की बड़े घर की बेटी, 'ज़माना' की बड़े घर की बेटी, 'नवनिधि' का पाप का अग्नि-कुंड 'ज़माना' का गुनाह का अग्निकुंड आदि।

यह तो हुई केवल आरम्भ के इतिहास की बात, परन्तु प्रेमचंद का कहानीकार व्यक्तित्व आगे बहुत व्यापक है। १९१७ से १९३६ ई० तक इन्होंने विभिन्न स्तरों, विभिन्न मनोभावों, शिल्पविधियों के प्रयोगों से अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इस विशाल कहानी-साहित्य की शिल्पविधि के अध्ययन में हमें कुछ निश्चित दिशाएं बनानी हैं, जिन से उन के क्रमिक अध्ययन को हम वैज्ञानिक रूप दे सकें।

ऐतिहासिक विशेषता

प्रेमचंद के समूचे कहानी-साहित्य में हमें क्रमिक विकास और अलग-अलग कलात्मक स्वर मिलते हैं, जो काल परिस्थिति सापेक्ष है। हम ऐतिहासिक दृष्टि से इन की कहानियों को तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(क) प्रथम काल : १९१७ से १९२० ई० तक।

(ख) द्वितीय काल : १९२० से १९३० ई० तक।

(ग) तृतीय काल : १९३० से १९३६ ई० तक।

इन तीनों कालों की कहानियों में क्रमशः भावात्मक और कलात्मक अंतर स्पष्ट है क्योंकि यही प्रगतिशील कलाकार की पहिचान है।

इस तरह सप्त सरोज की कहानियों के साथ प्रेमचंद हिन्दी कहानियों के रूप में हमारे सामने आए। सप्तसरोज की कहानियाँ हैं १. बड़े घर की बेटी, २. सौत ३. सज्जनता का दंड ४. पंच परमेश्वर ५. नमक का दारोगा ६. उपदेश और ७. परीक्षा।

अध्ययन की दृष्टि से यही कहानियाँ प्रेमचंद की आदि कहानियाँ हैं, चाहे इन का उद्गम उर्दू के माध्यम से हुआ हो चाहे हिन्दी से। 'सप्तसरोज' कहानी-संग्रह के बाद शीघ्र ही नवनिधि कहानी-संग्रह हिन्दी जगत् के सामने आया। इन दोनों कहानी संग्रहों की अधिकांश कहानियाँ १९०८ से लेकर १९२० ई० तक का 'ज़माना' की फाइलों में प्रकाशित हैं बिल्कुल इसी रूप में, कम से कम जहाँ तक शिल्पविधि का संबंध है। अन्तर केवल भाषा, शैली और एकाध कहानियों के शीर्षक-परिवर्तन तक ही सीमित है; जैसे, 'सप्तसरोज' की बड़े घर की बेटी, 'ज़माना' की बड़े घर की बेटी, 'नवनिधि' का पाप का अग्नि-कुंड 'ज़माना' का गुनाह का अग्निकुंड आदि।

यह तो हुई केवल आरम्भ के इतिहास की बात, परन्तु प्रेमचंद का कहानीकार व्यक्तित्व आगे बहुत व्यापक है। १९१७ से १९३६ ई० तक इन्होंने विभिन्न स्तरों, विभिन्न मनोभावों, शिल्पविधियों के प्रयोगों से अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इस विशाल कहानी-साहित्य की शिल्पविधि के अध्ययन में हमें कुछ निश्चित दिशाएं बनानी हैं, जिन से उन के क्रमिक अध्ययन को हम वैज्ञानिक रूप दे सकें।

ऐतिहासिक विशेषता

प्रेमचंद के समूचे कहानी-साहित्य में हमें क्रमिक विकास और अलग-अलग कलात्मक स्वर मिलते हैं, जो काल परिस्थिति सापेक्ष है। हम ऐतिहासिक दृष्टि से इन की कहानियों को तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(क) प्रथम काल : १९१७ से १९२० ई० तक।

(ख) द्वितीय काल : १९२० से १९३० ई० तक।

(ग) तृतीय काल : १९३० से १९३६ ई० तक।

इन तीनों कालों की कहानियों में क्रमशः भावात्मक और कलात्मक अंतर स्पष्ट है क्योंकि यही प्रगतिशील कलाकार की पहिचान है।

की अपेक्षा बहुत संकुचित हो गयी। उस में कई घटनाओं, कई रसों और चरित्रों का समावेश रुक गया। अब इस काल की कहानियां स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में—"एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस तथ्य ने उस में प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उस में व्याख्या का अंश कम संवेदना का अंश अधिक रहता है। उसकी शैली प्रवाहमयी हो गयी है। लेखक को जो कुछ कहना है वह कम से कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है।[1]"

अतः तृतीय काल में आकर कहानियाँ अपने समग्र रूप में अधिक कलात्मक और ऊँचे धरातल पर पहुँची हैं। यहाँ आकर कहानियों की घटनाओं की कोई स्वतंत्र विशेषता नहीं रह गयी है। यहाँ की कहानियाँ घटना के चक्र पर नहीं घूमती वरन् पात्रों के मनोभावों के फलस्वरूप घटनाओं की सृष्टि स्वतः होती चलती है। इस तरह यहाँ की कहानियाँ पूर्णतः यथार्थ धरातल पर आकर अपने मूल्य को उत्कृष्ट बना देती हैं। यहाँ यथार्थ धरातल और यथार्थ भाव-भूमि के पीछे आर्थिक समस्या मुख्य हो गयी है। एक तरह से यहाँ की यथार्थवादिता, मुख्यतः आर्थिक धरातल से बोल रही है, सामाजिक धरातल से नहीं, क्योंकि प्रेमचंद ने स्पष्ट रूप से देख लिया था, अनुभव कर लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओं के पीछे आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ है। प्रेमचंद के इस दृष्टिकोण के पीछे किसी भी तरह से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रेरणा नहीं थी, बल्कि यह प्रेमचंद का स्वयं का अनुभव था। वे स्वयं इस के बहुत बड़े शिकार बने रहे और ग्रामीणों तथा मजदूरों के बीच तथा मध्यम एवं निम्नवर्ग के बीच में रहकर उन्होंने इस की कटुता भी देखी थी।

अतः इस काल की कहानियाँ छोटी-छोटी हैं और उपर्युक्त समस्या के विभिन्न प्रसंगों और छोटी-छोटी सांकेतिक संवेदनाओं को समेटती हुई चली हैं।

प्रेमचंद की कहानियों की शिल्प-विधि

ऊपर हम ने मोटे रूप में प्रेमचंद की कहानियों का काल विभाजन करके उन का परिचयात्मक अध्ययन किया है। हम ने यह भी देखा है कि प्रथम काल

[1] मानसरोवर, प्रथम भाग भूमिका, प्रथम संस्करण पृष्ठ ८

में कैसी कहानियाँ थीं, मोटे ढंग में उन का क्या रूप था, फिर द्वितीय काल में, प्रथमकाल की कहानियों की अपेक्षा उन में विकास हुआ और तृतीय काल में कहानियाँ अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी।

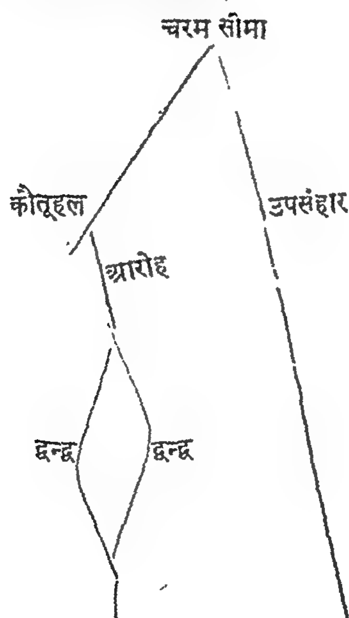
अतः प्रेमचंद की तीनों काल की कहानियों की शिल्पविधि के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए हम उपर्युक्त तीनों कालों को निम्नलिखित कोटियों में रख सकते हैं।

(क) आरम्भिक काल (ख) विकास काल (ग) उत्कर्ष काल

काल-विभाजन

यहाँ एक कोटि-विभाजन, काल-विभाजन के आधार पर हुआ है। लेकिन यह कोई ऐतिहासिक या गणित-विभाजन नहीं कि एक काल और दूसरे काल में कहानी कोटि की कोई निश्चित रेखा खींच दी जा सके। वस्तुतः उपर्युक्त काल या कोटि का निर्धारण कहानी की शिल्पविधि, कहानी के रूपों और पद्धतियों के आधार पर किया गया है। इस में ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ना ठीक नहीं, उदाहरण के लिए 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' की कुछ कहानियों का रूप, उन का ढर्रा, उन की समूची शिल्पविधि प्रायः एक-सी है। अतः इन कहानियों को क्रमशः आरम्भिक काल में रख दिया गया है। इस के बाद की कहानियों में कलागत, भावगत अन्तर और विकास दोनों स्पष्ट हैं, अर्थात् यहाँ कहानियों का कलात्मक आधार आरम्भिक कहानियों से नितांत विकसित और भिन्न है और इन से भी आगे आने वाली कहानियाँ धीरे-धीरे क्रमशः कलागत, भावगत विकास करती हुई अपने समग्र रूप में उत्कर्ष पर पहुँच गयी हैं। लेकिन यहाँ एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि अपवाद स्वरूप हर एक काल विशेष में एकाध कहानी ऐसी भी मिलेंगी जो काल-निरपेक्ष हैं, जैसे 'सप्तसरोज' की 'पंचपरमेश्वर' कहानी, 'नवविधि' की 'अमावस्या की रात्रि' नामक कहानी। यद्यपि प्रेमचंद की कहानियों के आरम्भिक काल में लिखी गयी हैं लेकिन उन का व्यक्तित्व विकासकाल की कहानियों के अनुरूप है। इसी तरह विकास काल की कहानियाँ जैसे, 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्ति का मार्ग' अपने रूपों में उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। दूसरी ओर विकास काल और उत्कर्ष काल में अपवाद स्वरूप कुछ कहानियाँ ऐसी भी मिलेंगी जिन का कलात्मक स्तर बिल्कुल नीचे उतरा हुआ दिखाई देता है। वस्तुतः यह कलाकार की सृष्टि के अपवाद हैं, स्तर के अपवाद नहीं, क्योंकि ये चीजें विशिष्ट मनोवृत्ति, चित्तवृत्ति

प्रारम्भिक कहानियों के इतने लम्बे-लम्बे कथानकों के पीछे निश्चित रूप से दो प्रेरणाएं कार्य कर रही थीं। प्रेमचन्द की इन कहानियों में आरम्भ, विकास या इन की संवेदनाएं किसी इकाई या एक भाव-बिन्दु पर नहीं आधारित थीं बल्कि इन का धरातल, विषय के एक प्रसंग के स्थान पर पूरा विषय होता था, जिस में न जाने कितनी अन्य संवेदनाएं, इकाइयां आ जाती थीं, अतः कहानी का विस्तार और उस के कथानक स्वभावतः लम्बे और विस्तृत हो जाते थे क्योंकि इन के माध्यम से उन्हें एक परिवार, एक वंश या व्यक्ति के जीवन का पूरा भाग उस में समेटना पड़ता था। दूसरी प्रेरणा थी नितान्त शिल्पविधि से संबंधित—पहले, कथानकों के प्रति प्रेमचन्द की धारणा इन विकास-क्रमों के साथ चलती थी—जैसे भूमिका, कहानी की समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह, कौतूहल, चरमसीमा और उपसंहार। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक कथानक किसी समस्या के भाव-बिन्दु को आधार मानकर, उसी एक बिन्दु से नहीं विकसित होते थे, वरन् इन के कथानक इन रेखाओं से विकसित हैं—



इतिवृत्तात्मकता

कलात्मक दृष्टि से कहानी का धर्म किसी समस्या की प्रस्तावना से लेकर उपसंहार तक की व्याख्या नहीं है, और न उस समस्या की सारी मान्यताओं को कहानी के अन्दर गूंथकर उसे इतिवृत्तात्मक बना देने ही में है, वरन् इस का धर्म है, समस्या पर थोड़ा-सा विद्युत आलोक और पाठक के मनोभावों का स्पर्श, जिस से कहानी-पाठक क्षण भर के लिए आश्चर्य चकित रह जाय — जैसे 'चेखोव' और 'मोपासाँ' की कहानियों में रहा है। लेकिन प्रेमचन्द ने अपनी आरम्भिक कहानियों में समस्या की भाव-भूमि विस्तृत ली है और कई इकाइयों को एक सूत्र में पिरोने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप उन्हें इतिवृत्तात्मक हो जाना पड़ा, तथा इस के पीछे दूसरी प्रेरणा यह भी कि वे पूरी समस्या को कथानक के रूप में वर्णन करते थे तथा आदि से अंत तक उस का पूर्ण निर्वाह करते थे, और पाठकों के सोचने के लिए कुछ नहीं छोड़ते।

प्रेमचंद की यह इतिवृत्तात्मकता दो रूपों में चरितार्थ हुई है। मुख्यतः उन्होंने जब कभी भी किसी समस्या को अपनी कहानी में बाँधना चाहा है, उस समस्या को आदि से लेकर अंत तक बाँधने की चेष्टा की है। कथानक के आदि, अंत दोनों सिरों के बीच में भी, उस समस्या से संबंधित अधिक से अधिक व्यवस्थाएं दी हैं। उदाहरण के लिए, 'बड़े घर की बेटी' में कहानी का आरम्भ गौरीपुर में गाँव के जमीन्दार बेनीमाधव के घर से होता है। वहाँ आरंभ में ही हमें बेनीमाधव सिंह के समूचे परिवार की पूरी कथा मिलती है। इन के दो बेटों-श्री कंठ सिंह, और लाल बिहारी सिंह की अवस्था, स्थिति और मनोवृत्तियों का पूरा-पूरा ब्योरा मिलता है। श्रीकंठ सिंह की धर्मपत्नी आनन्दी की कथा मिलती है। यह बड़े घर की बेटी है और इस की सारी स्थिति और मनोभाव इसी के अनुकूल है। लालबिहारी द्वारा शिकार से घर में चिड़िया आती है और उस के बनाने में तथा घी की समस्या पर परिवार में द्वन्द्व की अवतारणा होती है। भाई-भाई से मनमुटाव होता है और उस का पूरा क्रमिक विकास इतिवृत्ति ढङ्ग से दिखाया जाता है। लालबिहारी घर छोड़कर कहीं भाग जाने को तय करता है। लेकिन इसी बीच में आनन्दी के मन में देवत्व जगता है। वह लाल बिहारी को क्षमा करती है, स्नेहमयी हो जाती है और अन्त में दोनों भाइयों में प्रेम हो जाता है। फलतः बड़े घर की बेटी कहानी की इतिवृत्ति में समूचे परिवार की कहानी गई है। इस में आनन्दी, बेनीमाधव सिंह, श्रीकंठ सिंह और लाल

बिहारी सिंह राव की कहानियाँ मन का नाटकीय आयोजन आदि में गूँथ कर गूँथा गया है। कहानी के आरंभ में हम जहाँ से चले थे अंत में वहीं पहुँच जाते हैं अर्थात् बेनी माधवसिंह के शांत परिवार से हम कहानी के आरंभ में चले थे और कहानी की इतिवृत्ति के साथ-साथ हम फिर उसी शान्तिपूर्ण परिवार में आ जाते हैं। वस्तुतः इस इतिवृत्तात्मकता के पीछे किसी युग की प्रवृत्ति भी काम करती थी, अर्थात् जिस विवाद या समस्या को कहानी का भावपक्ष बनाया जाय उस का इतिवृत्तात्मक, विस्तृत और समस्त वर्णन उसमें अपेक्षित था।

सहायक कथानक

कहीं-कहीं इन प्रारंभिक कहानियों के कथानक में सहायक कथाओं की भी अवतारणा हुई है जिन के दो रूप हमें मिलते हैं। कहीं-कहीं सहायक कथानक नाटक में प्रकरी की भाँति मूल कथा के साथ थोड़ी दूर तक जाकर रुक गया है। कहीं-कहीं यह सहायक कथानक पताका की भाँति मूल कथा के साथ आदि से अन्त तक चला है। पहले के उदाहरण में हम 'पाप का अग्नि-कुण्ड' ले सकते हैं। इस में मूल-कथा के विकास की दौड़ान में एक और कथा आ जाती है। राजनन्दिनी कहानी की नायिका से एक स्त्री स्वतंत्र कहानी कहती है। शिल्प-विधि की दृष्टि से यह कथानक मूल-कथानक के बीच में स्वतंत्र रूप से संयोगवश चल पड़ती है और इस का भी रूप बिल्कुल मूल कथानक की भाँति हो जाता है। अतएव ऐसे स्थानों पर हमें अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत से उर्दू, हिंदी में अनूदित क्रमशः 'हजारदास्ता' और 'कथासरित्सागर' की याद आती है जहाँ मूल कथानक के बीच में सहसा कोई कहानी प्रसंगवश निकल आती है और मूल कथानक फिर आगे बढ़ता है। दूसरे ढंग के सहायक कथानक की अवतारणा हम 'मर्यादा की वेदी' में पाते हैं। इस में मूल कथानक राजकुमारी प्रभा और मंदार के राजकुमार को लेकर चलता है और सहायक कथानक चित्तौर के राजा भोजराज, राजकुमारी प्रभा और मीरा को लेकर।

कथानक निर्माण में विभिन्न ढङ्ग

कथानक-निर्माण की दिशा में यहाँ प्रेमचंद के कुछ विशिष्ट ढंग हैं। जिन के आधार पर उन्होंने अपनी कहानियों की सृष्टि की है:—

(क) कथासूत्र आरंभ होकर सीधे शांतरूप से आगे बढ़ रहा है, एकाएक बीच में एक घटना घटती है और कथासूत्र दो विरोधी धाराओं में बँट जाता

है, और ये दोनों विरोधी सूत्र एक दूसरे से संघर्ष लेते हुए टूट जाने को होते हैं। लेकिन सहसा एक ऐसी परिस्थिति के आने से जिस में मनोभावों की घनीभूत रेखाएँ रहती हैं, ये दोनों टूटते हुए सूत्र फिर एक में मिल जाते हैं और दोनों पूर्व स्थिति को प्राप्त होते हैं, जैसे—'बड़े घर की बेटी' और 'पंचपरमेश्वर।'

(ख) कथानक का आरंभ एक सूत्र को लेकर होता है। वहीं मूल सूत्र अपने स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ना चाहता है लेकिन परिस्थिति के आग्रह से उस में एक नयी समस्या का प्रवेश होता है जिस के फलस्वरूप मूल सूत्र स्वतः विकृत हो जाता है और अंत में यह सूत्र कारुणिक बिंदु पर समाप्त होता है। 'सौत' में गोदावरी स्वयं अपने पति को विवश करके स्वेच्छा से सौत भी बुलाती है और उस के संयोग तथा प्रतिक्रिया से गोदावरी का जीवन कारुणिक अन्त पर समाप्त होता है।

(ग) कथानक का आरम्भ दो विरोधी सूत्रों के साथ होता है। दोनों का मानसिक संघर्ष एक दूसरे की प्रतिक्रिया में बढ़ता है। एकाएक एक सूत्र दूसरे से समझौते के लिए अपने को पूर्णतः बदल देता है, लेकिन इस परिवर्तन के विकास से दूसरा विरोधी सूत्र और भी विरक्त होने लगता है। लेकिन पहला सूत्र फिर भी संयोग के लिए आशान्वित रहता है—जैसे 'प्रेम का स्वांग' में कुन्दा और उस का विरोधी पति इन दोनों सूत्रों के प्रतिनिधि हैं।

(घ) आदर्श भावभूमि से एक कथा सूत्र आगे बढ़ता है। सूत्र में दो प्रेरणाएं एक में मिली रहती हैं, एक कुछ यथार्थवाद का पुट लिए हुए, समझौते की प्रवृत्ति के साथ; लेकिन उस में मिली हुई दूसरी प्रेरणा विशुद्ध आदर्शवादी, मर्यादावादी रहती है। दोनों शक्तियां आपस में मिली हुई, अनेक विरोधी परिस्थितियों, संघर्षों का सामना करती हैं और अन्त में मर्यादा की बलिवेदी पर दोनों का सर्वस्व त्याग होता है; जैसे—'रानी सारन्धा' 'मर्यादा की वेदी' और 'विस्मृति'।

(ङ) एक सीधे-साधे मार्ग से कथा का सूत्र आगे बढ़ता है। सूत्र का नायक विरोधी शक्तियों के रहते भी अपने सत्य मार्ग पर आरूढ़ रहता है। परिणामतः उस का कभी अहित होता है; जैसे 'सज्जनता का दंड' और कभी विरोधी शक्ति ही उसके सूत्र से परिमार्जित होती है और नायक को पुरस्कृत करती है; जैसे, 'नमक का दरोगा'।

प्रायः इन्हीं उपर्युक्त कथानकों के निर्माण के ढंगों पर प्रेमचंद ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों की सृष्टि की है।

चरित्र

कहानी में चरित्र के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए हमें उस के दोनों रूपों को देखना पड़ता है— मूर्त रूप और अमूर्त रूप। मूर्त रूप में—जैसे स्त्री-पुरुष और उस के अमूर्त रूप को हम उन के मनोभावो, आचरणों आदि के माध्यम से देख सकते हैं। वस्तुतः चरित्र के इसी दूसरे; अमूर्त रूप की प्रतिष्ठा से कहानी में उत्कृष्टता आती है।

स्त्री

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री पात्र के प्रतिनिधि चरित्र हैं—'बड़े घर की बेटी' की 'आनन्दी' 'सौत' की 'गोदावरी', 'पंचपरमेश्वर' की 'खाला', 'रानो सारंधा' की 'सरंधा', 'मर्यादा की वेदी' की 'प्रभा', 'पाप का अग्निकुँड' की 'राजनन्दिनी', 'अमावश्या की रात्रि' की 'गिरजा' और 'ममता' की 'मां'। ये स्त्री-चरित्र यथार्थ भाव-भूमि और यथार्थ परिस्थितियों पर खड़े हैं लेकिन सब का सामूहिक चरित्र आदर्शवादी और मर्यादावादी है। 'मर्यादा की वेदी' की 'प्रभा' की मर्यादा इन स्त्रियों की वह परम्परागत दीवार है जहाँ ये चरित्र अपनी पिछली मान्यताओं और लोकनिन्दा से सहमे हुए पीछे खड़े हैं। "संसार में अपनी सब आशाएं पूरी नहीं होती जिस तरह यहाँ अपना जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ किन्तु लोकनिन्दा भी तो कोई चीज़ है। संसार की दृष्टि में मैं चित्तौड़ की रानी हो चुकी अब राणा जिस भाँति रक्खें उसी भांति रहूँगी। मैं अन्त समय तक उनसे जलूँगी, घृणा करूंगी, कुढ़ूँगी, जब जलन बढ़ ही जायगी विष खा लूँगी या छाती में कटार मार कर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रक्खूँगी।"[1] यहाँ स्त्री चरित्र का जीवन कितनी विपत्ति और कितनी क्रान्तियों से ओत-प्रोत है लेकिन स्त्री चरित्र कितना आदर्शवादी है कि वह इन सब के बदले में अपने को ही नष्ट करना चाहती है, जर्जर समाज और उस की मान्यताओं को नहीं। वह अपने बन्दी भवन से किसी मूल्य पर बाहर कदम नहीं रखना चाहती क्योंकि लोकनिन्दा की सब से बड़ी चिन्ता है अतः यहाँ स्त्री केवल अपनी मर्यादा—आदर्श और स्त्री लोकनिन्दा के विषय में जागरूक है, अपनी बन्दी आत्मा के लिए नहीं। 'बड़े घर की बेटी' की 'आनन्दी' कितने विरोधी परिवार में पड़ी है। यहाँ उस के

[1] नवनिधि—'मर्यादा की वेदी', पृष्ठ ६०, ६१।

मारे संस्कार मारे जा रहे हैं। विषाक्त वातावरण से उसका दम घुटा जा रहा और इस के ऊपर वह अपने देवर के हाथों पिट भी जाती है लेकिन वह मर्यादा और अपने परिवार तथा बड़े घराने की इज्जत के सामने कितना झु जाती है, किस तरह समझौता कर लेती है, क्योंकि उसे अपने नाम कमाने मोह है—"बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं बिगड़ा हुआ काम ब लेती हैं।"[1]

'सौत' की 'गोदावरी' की आत्मा में हिन्दू स्त्री की सच्ची मर्यादा है उस का ध्येय है कि किसी भी मूल्य पर पति को प्रसन्नता मिलनी चाहिए अ वह स्वयं अपनी छाती पर सौत बुलाती है। "तुम्हारे लिए मैं सौत से छा पर मूंग दलवाने के लिए तैयार हूं।" सौत घर में आ जाती है, परिस्थिति भावना-लोक से यथार्थ भूमि पर उतरती है। गोदावरी का जीवन विषाक्त ह जाता है और वह उन की प्रसन्नता की बलिवेदी पर आत्म हत्या कर लेती है फिर भी मर्यादा की साँसों के बीच कहती रहती है "स्वामी! संसार में सि आप के मेरा कोई नहीं था। मैंने अपना सर्वस्व आप के सुख की भेंट कर दि है। आपका सुख इसी में है कि मैं इस संसार से लोप हो जाऊँ। इसलिये प्राण भी आप की भेंट है। मुझ से जो कुछ अपराध हो, क्षमा कीजिएगा ईश्वर आप को सदा सुखी रक्खे"।[2]

उपर्युक्त पत्र जैसे प्रेमचंद के नारी पात्र की खुली हुई आत्मा है औ जैसे इस पत्र की प्रत्येक पंक्ति उन के स्वरूप मर्यादा, आदर्श के घोषणापत्र जिस के प्रकाश में प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों की नारी स्त्रियाँ खड़ी हैं ऐसा लगता है कि यहाँ स्त्री-चरित्र का इन मान्यताओं के पीछे प्रेमचंद की दृढ़ धारणाएँ थीं—भारतीय आर्य ललनाओं, पत्नियों का आदर्श संयुक्त परिवार आस्था और स्त्री-चरित्र के पीछे शिवं सुन्दरम् की भावना।

पुरुष

पुरुष-चरित्र भी स्त्री-चरित्र के दूसरे पहलू हैं। भावना और कर्तव्य दोनों रूपों में ये अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं तथा अपनी यथार्थ परिस्थितियों मरते-मिटते हुए भी सदैव अपने विरोधी शक्तियों से समझौता करने के लि

---

[1] सप्तसरोज—'बड़े घर की बेटी', पृष्ठ १४।

[2] सप्तसरोज, सौत, पृष्ठ १६

तत्पर है। 'बड़े घर की बेटी' में श्रीकंठसिंह और उन के छोटे भाई लालबिहारी सिंह में सर्वथा विरोध हैं। "लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का सजीला जवान था। मुखड़ा भरा हुआ चौड़ी छाती, भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठा सवेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा उसके बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्र-प्रिय गुणों को उन्होंने इन्हीं दो अक्षरों पर निछावर कर दिया था"।[१] यह तो हुई स्वभाव की बात, लालबिहारी श्रीकंठ की धर्मपत्नी को पीट भी बैठता है लेकिन फिर भी लोक-लाज मर्यादा की बलिवेदी पर वह अपने भाई को गला लगाए फिरता है। 'नमक का दरोगा' में वंशीधर कितने आदर्श दरोगा हैं। उन के सामने दो यथार्थ परिस्थितियाँ आती हैं। एक ओर नौकरी पर जाने के पहले ही पिता द्वारा उपदेश, दूसरी ओर पं० अलोपीदीन की तरफ से चालीस हजार रुपये का घूस। परन्तु दरोगा जी अपने सत्य, आदर्श और मर्यादा पर स्थिर हैं। अंत में यह आदर्श पुरस्कृत भी होता है। ठीक यही सच्चाई और कर्तव्य भावना 'परीक्षा' में भी पुरस्कृत होती है। यह तो हुई केवल ऊँचे पुरुष चरित्रों की बात, जो आरम्भ से अंत तक ऊँचे ही रहे। कुछ ऐसे भी पुरुष पात्र आए हैं जो अपने मूल रूप में नीच, प्रवंचक और धोखेबाज़ हैं। लेकिन वे भी कहानी के अंत तक सच्चे, आदर्श और पुनीत हो जाते हैं। 'उपदेश' में 'शर्मा जी', 'बड़े घर की बेटी' में 'लालबिहारी' और 'पंचपरमेश्वर' के 'जुम्मन ख़ाँ' आदि इस के ज्वलंत उदाहरण हैं।

वस्तुतः ऐसे पुरुष चरित्रों के भी पीछे प्रेमचंद की मान्यताएँ वही थीं जो उन के स्त्री पात्रों के पीछे थीं। दोनों के मूल भाव-भूमि में केवल इतना ही अन्तर है कि स्त्री-चरित्र में असंतोष क्रान्ति की भावना, पुरुष की अपेक्षा अधिक है। लेकिन स्त्रियाँ अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं और पुरुष यथार्थवादी, यद्यपि इन की प्रगतिशीलता पंगु है।

चरित्र की अपेक्षा आचरण

यहाँ की कहानियों के पात्र आचरण प्रधान हैं, चरित्र प्रधान नहीं अर्थात् इन प्रारंभिक कहानियों के पढ़ने से हमारे सामने पात्रों के आचरण का इतिहास और उस की व्यवस्था ही आती है। पात्रों के चरित्र-चित्रण या चरित्र विश्लेषण यहाँ नहीं हुआ है। 'रानी सारंधा' कहानी पढ़ने के बाद हमें

[१] मानसरोवर—'बड़े घर की बेटी', पृष्ठ १, २

रानी सारंधा के आचरण का ब्योरा ही थोड़े समय के लिये याद आता है। उस के चरित्र का आन्तरिक पक्ष हमें कहीं नहीं मिलता, इस दिशा में हमें जो कुछ मिलता है वह उस के चरित्र का बाह्य पक्ष ही है। 'परीक्षा' में जानकी नाथ का चरित्र नहीं दिखाया गया है, बल्कि उन का केवल एक आचरण मात्र दिखा कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है, कि जो व्यक्ति स्वयं घायल होकर नाले में फँसी हुई गाड़ी को बाहर निकालता है, वह कितना बहादुर है। 'सज्जनता का दंड' और 'नमक का दरोगा' में जहाँ सरदार और वंशीधर के कुछ चरित्र-चित्रण की सम्भावना भी उत्पन्न हुई है, वहाँ उन के आदर्शवाद की आँधियाँ आती है। उन के सहज मन की गुत्थियाँ परोक्ष में छिपा दी जाती हैं। इस प्रवृत्ति के भी पीछे प्रेमचंद की आदर्शवादिता ही है, जहाँ वे इन पात्रों के आचरण के माध्यम से उसे चरितार्थ करते रहते थे। इन प्रारम्भिक कहानियों के पात्र जैसे—गोदावरी, सरदार, जुम्मन शेख, गिरजा, मां आदि अपने बाह्य जगत् में अधिक स्पष्ट और अधिक मनोरंजक हैं। इसी तरह इन के मनोभाव-जगत् भी होंगे, लेकिन प्रेमचंद ने इन के अध्ययन को इन के कृत्यों और आचरणों में ही सीमित कर दिया है कि इन के आन्तरिक पक्ष में जाकर मनोभावों की अभिव्यक्ति बिलकुल नहीं हुई है। अतः पात्रों की मानवीय पूर्णता नहीं प्रकट हो सका है। पात्रों का व्यक्तित्व अस्पष्ट रह गया है, और विभिन्न चरित्रों का निजत्व नहीं स्थिर हो सका है।

शैली

यहाँ शैली का अभिप्राय दो पक्षों में लिया गया है: व्यापक और सामान्यपक्ष। जैसा कि विषय, प्रवेश में स्पष्ट कर दिया गया है, शिल्पविधि के अध्ययन में शैली का महत्व बहुत है, क्योंकि इसी के माध्यम से हम कहानी के रूप, उस के आरम्भ, विकास आदि का अध्ययन कर सकते हैं। कहानी में दृश्य, विधान, वस्तु-विधान, और व्यापार-विधान किन-किन आधारों और शैलियों पर हुआ है, ये सब बातें शैली के व्यापक पक्ष में आती हैं और कहानी में वर्णन, कथोपकथन, व्याख्या आदि का यथा ढंग है, ये बातें शैली के सामान्य पक्ष में आती हैं। इस दिशा में हम पहले शैली के व्यापक पक्ष के अंतर्गत कहानी के रूप को लेते हैं, अर्थात् कहानी के आरम्भ, विकास और चरम सीमा को।

आरम्भ

प्रेमचंद की कहानियों का आरम्भ परिचयात्मक शैली के अन्तर्गत आता

है। उस में उन्होंने दो स्थितियाँ रखी हैं। पहली स्थिति में पात्रों का पूर्ण परिचय और दूसरी में परिस्थिति का पूर्ण परिचय। वस्तुतः कहानी के आरम्भ की यह शैली प्रेमचंद की अपनी विशेष शैली है, लेकिन इस का अकलात्मक रूप इन की प्रारम्भिक कहानियों में विशेष रूप से है। यहाँ उन्होंने इस संबंध में लम्बी-लम्बी भूमिकाएं बाँधी हैं, जिस के फलस्वरूप कहीं भी पाठक की ओर से कुछ सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भूमिका सहित पात्रों के पूर्ण परिचय

इस के उदाहरण में हम 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कोई भी कहानी ले सकते हैं। 'पंचपरमेश्वर' का आरम्भ "जुम्मन शेख़ और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी, साझे में खेती होती थी, कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था जुम्मन जब हज करने गए थे तब अपना घर अलगू को सौंप कर गए थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मंत्र भी यही है[1]"।

उपर्युक्त विवरण में दोनों मित्रों का परिचय पर्याप्त है, दोनों पात्रों का आरम्भ पूर्ण है। लेकिन प्रेमचंद ने आगे बढ़कर इस की एक और भी भूमिका बाँधी है—"इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरु जी की बहुत सेवा की। खूब रिकाबियां माँजी, खूब प्याले धोये उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे शिक्षा की अपेक्षा उन्हें गुरू की सेवा-सुश्रुषा पर अधिक विश्वास था[2]।

उक्त दोनों अवतरणों में अलगू और जुम्मन दोनों पात्रों का पूर्ण परिचय हमें स्पष्ट है, हमें अपनी ओर से उन के विषय में कुछ सोचना शेष नहीं है। ठीक यही स्थिति 'मौन', 'उपदेश' 'मर्यादा की वेदी' 'पाप का अग्निकुण्ड' आदि कहानियों के पात्रों के परिचय के संबंध में है।

[1] पंच परमेश्वर : सप्त सरोज [2] वही, पृ० ४४

भूमिका युक्तिपूर्ण परिस्थिति का चित्रण

'मान सरोवर' और 'नवनिधि' की तमाम कहानियों में यह सत्य स्पष्ट है। इन में सम्भवतः शायद ही एक-आध कहानी ऐसी मिलेगी जिस में परिस्थिति निरूपण भूमिका के साथ न हो लेकिन परिस्थिति का पूर्ण चित्रण फिर भी मिलेगा। भूमिका युक्तिपूर्ण परिस्थिति के चित्रण के संबंध में प्रेमचंद की, प्रारंभिक काल में यह धारणा थी कि कहानी के आरम्भ में कहानी की परिस्थिति का पूर्ण परिचय होना चाहिये, जिस से कहानी का वातावरण और कहानी की पीठिका पाठक को पूर्ण स्पष्ट रहे। 'नमक का दरोगा' नामक कहानी इस सत्य का साक्षी है[1]। "जब नमक का नया विभाग बना और एक ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे उस का व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था तो कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे, पटवारगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़ छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इस के दारोगा पद के लिये तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फ़ारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएं और शृङ्गार रस के काव्य पढ़कर फ़ारसीदां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा कि विरह-कथा समाप्त करके मजनूं और फरहाद के प्रेम-वृतान्त को नल और नील लड़ाई तथा अमरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले।"

यहाँ कहानी की मुख्य समवेदना की सारी परिस्थिति स्पष्ट हो गई है, साथ वातावरण चित्रित हुआ है जिस के धरातल पर कहानी का निर्माण हुआ।

कहानी के सभी तत्वों का समावेश

ऐसे आरंभों में एक विशेषता यह भी है कि इन में कहानी के सभी आवश्यक तत्वों—कथानक, पात्र, समस्या, द्वन्द्वादि का समावेश मिलता है, साथ ही साथ उनके परिचय पर थोड़ा-सा प्रकाश भी। शिल्पविधि के संबंध में प्रेमचंद के ऐसे आरंभ प्रसाद के नाटकों में प्रथम अंक की याद दिलाते हैं। अध्ययन की दृष्टि से प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों के आरंभ विशेष रूप से

---

[1] मान सरोज, 'नमक का दरोगा', पृ० ६१

महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि उन में समूची कहानी के सारे तत्व बीजरूप से विद्यमान रहते हैं। उदाहरण के लिए 'सौत' कहानी का आरंभ—"पण्डित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए। पर उन के कोई संतान न हुई। जब तक उन के माँ, बाप जीवित थे तब तक वे उन से दूसरा विवाह करने के लिए आग्रह किया करते थे पर वे राजी न हुए। उन्हें अपनी पत्नी गोदावरी से अटल प्रेम था संतान से होने वाले सुख के निमित्त वे अपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट नहीं करना चाहते थे। इस के अतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे वे कहा करते थे कि संतान होने से माँ-बाप की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं जब तक मनुष्यों में यह सामर्थ्य न हो कि वह उस का भलीप्रकार पालन-पोषण और शिक्षण आदि कर सके, तबतक उसको सन्तान से देश जाति और निज का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। पहले तो कभी-कभी बालकों हँसते-खेलते देखकर उन के हृदय पर चोट भी लगती थी, परंतु अपने अनेक देश भाइयों की तरह वे भी शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। अब किस्से-कहानियों के बदले धार्मिक ग्रंथो से उन का अधिक मनोरञ्जन होता था। अब संतान का खयाल करते ही उन्हें भय-सा लगता था पर गोदावरी इतनी जल्दी निराश होने वाली न थी पहले तो वह देवी-देवता, गंडे-तावीज और यंत्र-मंत्र आदि की शरण लेती थी, परंतु जब उस ने देखा कि मैं औषधियाँ कुछ काम नहीं करती तो वह एक महोषधि की फिक्र में लगी जो कायाकल्प से कम नहीं थी उस ने महीनों-बरसों इसी चिन्ता सागर में गोते लगाते काटे। उस ने दिल को बहुत समझाया परंतु मन में जो बात समा गयी थी वह किसी तरह न निकली। उसे बड़ा भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति-प्रेम के सदृश्य अनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जायगा पर क्या वैसा हो सकता है? पन्द्रह वर्ष तक लगातार जिस प्रेम के वृक्ष की उस ने सेवा की है क्या वह हवा का एक झोंका भी न सह सकेगा? गोदावरी ने अन्त में अपने प्रबल विचारों के आगे सिर झुका ही दिया। अब 'सौत का शुभागमन करने के लिये वह तैयार हो गई थी'।[१]

उक्त वातावरण 'सौत' कहानी का आरम्भ है। इस में समूची कहानी के तत्व, बीजरूप में विद्यमान है। कथानक का बीज इस में है कि गोदावरी पंडित देवदत्त की पत्नी है विवाह हुए पंद्रह वर्ष बीत गये, उसे कोई बच्चा न हुआ और वह सब उपायों से हार कर अपनी ही छाती पर पति के सुख के लिये 'सौत'

---

[१] सप्त सरोज: 'सौत', पृष्ठ १५-१६

हुआ करती है। कहानी के सभी पात्रों का प्रवेश और परिचय बीजरूप में मिल जाता है तथा उन के मनोभावों पर भी प्रकाश पड़ गया। कहानी की मुख्य समस्या सौत और पत्नी की समस्या है, यहीं यह भी स्पष्ट हो जाता है। अतएव प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों के आरम्भ भाग अत्यन्त संश्लिष्ट ढंग के हैं। उन में एक साथ इन सारी विशेषताएं मिलती हैं। लेकिन तात्विक दृष्टि से कहानियों के ऐसे आरम्भ कलात्मक नहीं कहा जा सकते। ऐसे आरम्भों में निम्नलिखित तीन त्रुटियाँ आ जाती हैं वस्तुतः कहानी का आरम्भ ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है और जब कहानी का आरम्भ लम्बे परिचय लम्बी भूमिका में उलझा होगा, कहानी का पाठक उस से आरम्भ ही में ऊब जायगा। परिचयात्मक आरम्भ अथवा वर्णनात्मक भूमिका शैली कहानी की मुख्य सम्वेदना की प्रभाव-शक्ति को कुंठित कर देती है कहानी की आत्मा में विकास के बदले पूर्ण प्रकाश आ जाता है और कहानी में कौतूहल वृत्ति का कभी-कभी सत्यानाश हो जाता है।

विकास

यहाँ प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के कलात्मक विकास में जिन अवस्थाओं को लिया है वे 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' की प्रारम्भिक कहानियों में अत्यंत स्पष्ट हैं। 'आरम्भ और चरम सीमा' के बीच में हमें निम्नलिखित चार अवस्था-क्रम मिलते हैं जिन से प्रेमचंद ने अपनी कहानियों का विकास किया है।

(१) मुख्य घटना की तैयारी (२) मुख्य घटना निष्पत्ति
(३) व्याख्या (४) घात-प्रतिघात

'आरम्भ' अध्ययन के सम्बंध में हमने देखा है कि 'नमक का दरोगा' का आरम्भ या परिचयात्मक भाग वहाँ समाप्त होता है जहाँ अनुभवी पिता नौकरी ढूँढ़ने के लिए जाते हुए वंशीधर को सांसारिकता का पूर्ण उपदेश देकर समाप्त करते हैं—"इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया, वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनी और तब घर से चल खड़े हुए। जाते ही जाते नमक विभाग के दरोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो कुछ ठिकाना ही न था।"[1]

---

[1] सप्त सरोज, नमक का दरोगा, पृष्ठ ६२

(१) मुख्य घटना की तैयारी

उक्त परिचय में जहाँ एक ओर परिस्थितियों का स्पष्टीकरण है, वहाँ दूसरी ओर समस्या का आरम्भ भी हो जाता है तथा इस आरम्भ का सूत्र आगे बढ़ कर कहानी में मुख्य रूप से आने वाली घटना की तैयारी करने लगता है— "जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त पड़े थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आए अभी छः महीनों से अधिक न हुए थे, आचरण से अफसरों को मोहित कर लिया था अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूरब की ओर जमुना बहती थी उस पर एक बम्बों का पुल बना हुआ था। दरोगा जी किवाड़ बन्द किए मीठी नींद सोते थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गए गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वर्दी पहनी, तमंचा जेब में लिया और बात की बात में घोड़ा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल से पार जाते देखी। डाँटकर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं? थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले गाड़ीवान ने कहा, पंडित अलोपीदीन की।

कौन पंडित अलोपीदीन?

दातागंज के।

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सब से बड़े और प्रतिष्ठित जमीन्दार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे। ......पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ी वालों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले, महाराज, दरोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आप को बुलाते हैं।[१]

उपर्युक्त गद्यांश के आगे आने वाली घटना की पूरी तैयारी स्पष्ट है। एक ओर ईमानदार, अफसरों के विश्वासपात्र नमक के दरोगा वंशीधर हैं, जिन्होंने रंगे हाथ इतनी रात को अलोपीदीन की नमक की चोरी पकड़ी है, दूसरी ओर पंडित अलोपीदीन हैं, जिन्हें अपने धन, घूस पर विश्वास है।

---

[१] मान सरोवर, नमक का दरोगा, पृष्ठ ६३, ६४

जिन की धारणा हैं कि 'संसार का तो कहना ही क्या, और नीति सब लक्ष्मी का ही राज्य है—न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं। और उधर वंशीधर एक ऐसा सच्चरित्र व्यक्ति है जिस पर ऐश्वर्य की मोहनी का कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता, उस में ईमानदारी की नई उमंग है।" इस तरह से उपर्युक्त गद्यांश में आगे आने वाली घटना की पूरी तैयारी कर ली गयी है।

(२) मुख्य घटना निष्पत्ति

पंडित जी को अपनी पूँजी पर पूरा विश्वास था। वे गाड़ी से चलकर दरोगा जी के पास पहुँचे तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मिनट भर में रुपये के जोर से सारी समस्या सुलझ जायगी। लेकिन जैसे ही पंडित जी दरोगा जी के पास पहुँचे और उन्होंने घूस देने की बात चलाई, दरोगा ने कड़क कर कहा, "हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। सवेरे आपका कायदे के साथ चालान होगा। बस, मुझे बहुत बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले लो, मैं हुक्म देता हूँ।

पं० अलोपीदीन स्तंभित हो गए। गाड़ीवानों में हलचल हो गयी। किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का (उन्हें) पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, "लाला जी एक हजार का नोट बाबू साहब को भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं। वंशीधर ने गरम होकर कहा, एक हजार नहीं, एक लाश भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकता। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछल कर आक्रमण करने प्रारंभ किए। एक से पांच, पांच से दस, दस से पन्द्रह और पंद्रह से बीस हजार तक नौबत पहुँची, किन्तु वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की तरह अटल, अविचलित खड़ा था। पंडित जी घबराकर दो तीन कदम पीछे हट गए। अत्यन्त दीनता से बोले, बाह साहब ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए। मैं पचीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।

"असंभव बात है"

"तीस हजार पर"

"किसी तरह भी संभव नहीं"

"क्या चालीस हजार पर भी नहीं"

"चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है।"

हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश कातर दृष्टि से देखने लगे इस के बाद एकाएक मूर्छित होकर गिर पड़े।[1]

उपर्युक्त अवतरण में कहानी की मुख्य घटना की सारी उत्तेजना आ गई है। पंडितजी के तरकश में जितने बाण थे उन्होंने अपनी रक्षा के लिए, सब छोड़ा, लेकिन सफलता नहीं मिली। मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है, कि पण्डित जी के मस्तिष्क में दरोगा जी के इस कठिन व्यवहार की प्रतिक्रिया होगी।

(३) व्याख्या

ऐसी उत्तेजक घटना के बाद कहानी का पाठक स्वभावतः आगे घटना का विकास और सत्-असत् का घात-प्रतिघात देखना पसन्द करेगा, क्योंकि घटना की ऐसी उत्तेजना पर आकर पाठक की कौतूहल वृत्ति में अजीब-तनाव आ जाती है और वह दुनिया की सारी चीजें भूलकर घटना का अगला पहलू जल्द से जल्द देखना चाहता है। लेकिन प्रेमचंद ऐसे अवसर पर घटना का अगला पक्ष दिखाना स्थापित कर वस्तुस्थिति पर लम्बी-सी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—"दुनिया सोती थी, दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे ही देखिए तो बालक वृद्ध सबके मुंह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए वही पण्डितजी के इस व्यवहार पर टीका टिप्पणी कर रहा था; निंदा की बौछारें हो रही थीं मानों संसार के अब पाप कट गया। पानी को दूध के नाम पर बेचने वाला ग्वाला कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार, यह सबके सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे।"[2]

घटना-उत्तेजना के बाद, यह व्याख्या वस्तुस्थिति पर चाहे जितना प्रकाश डाल रही हो लेकिन इस व्याख्यांश से काहानी के प्रवाह में थोड़ी-सी स्थिरता आ गयी है, अतः भावपक्ष की दृष्टि से ऐसी व्याख्याएं घटना प्रवाह में चाहे जो मूल्य ला सकें लेकिन शैली की दृष्टि से ठीक नहीं।

---

[1] मान सरोज : नमक का दरोगा, पृष्ठ ६५, ६६, ६७

[2] मान सरोज : नमक का दरोगा पृष्ठ ६७

(४) घात-प्रतिघात

व्याख्या के उपरान्त घात-प्रतिघात का क्रम आता है। यहाँ आकर व्याख्या से पूर्व की उत्तेजित घटना फिर आगे बढ़ती है और इसके विकास में हमें कहानी का घात-प्रतिघात या कहानी का द्वन्द्व मिलता है। वहीं पिछली सत्-असत् शक्तियाँ स्पष्ट रूप से एक दूसरे को पराजित करने में तत्पर मिलती हैं। सत के पास अपनी ईमानदारी का भरोसा है, लेकिन असत् फिर अपनी तरकश में वही बाण ढूँढ़ती है और इस बार असत् की सत् पर विजय हुई। दरोगा द्वारा चलाया हुआ मुकदमा खारिज हो गया। पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक सिद्ध हुए, तथा एक ही सप्ताह के बाद दरोगा जी की मुअत्तली भी हो गयी।

लेकिन इस घात, प्रतिघात का प्रभाव दोनों पक्षों में है। दरोगा के पक्ष में, उनके वृद्ध पिता और दरोगा, दोनों इस घटना से घायल हो गए, और पंडित जी के पक्ष में इस सत्य ने उन्हें उचित मार्ग पर ला खड़ा कर दिया। क्योंकि घात-प्रतिघात क्रमशः सत् असत् का था, सामान्य तत्त्व का नहीं।

इसके उपरान्त कहानी के विकास में एक मुख्य विन्दु आता है, जिसे हम कहानी की चरम सीमा, या चरम विन्दु कहते हैं।

चरम सीमा

चरमसीमा की दिशा में, प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में दो क्रम मिलते हैं, चरमसीमा और उपसंहार चरमसीमा के अन्तर्गत प्रायः हमें दो सत्य मिलते हैं। कहीं-कहीं चरमसीमा आदर्शवाद पर टिकी मिलती है और कहीं-कहीं घटना या संयोग पर। दोनों सत्यों के उदाहरण हमें 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कहानियों की चरमसीमाओं में मिलती हैं। नमक का दरोगा कहानी की चरमसीमा आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित है। पंडित अलोपीदीन वंशीधर के दरवाजे पर आते हैं और उन्हें अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करते हैं—छः हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने के लिए बंगला नौकर चाकर मुफ्त। इसी तरह 'बड़े घर की बेटी', 'पंचपरमेश्वर', 'उपदेश', 'जुगनू की चमक', 'ममता', आदि कहानियों की चरम सीमाएं आदर्शवाद पर टिकी हुई हैं। 'पंचपरमेश्वर' में अलगू के प्रति दुश्मन का न्याय संगत होना, इतनी ऊँचाई पर जाकर निष्पक्ष न्याय देना, 'बड़े घर की बेटी', में आनन्दी का बिगड़ते हुए परिवार के प्रति इतनी [illegible]रता और

प्रेम दिखाना, उपदेश में इतने ढोंगी, प्रपंची शर्मा जी का एकाएक ऊँचा होना, आदि बातें आदर्शवाद के स्पष्ट उदाहरण है। वस्तुतः ऐसी चरम सीमाएं कहानी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती, क्योंकि न इस में स्वाभाविकता ही रह जाती है और न हमारे हृदय-मस्तिष्क पर इन का प्रभाव ही पड़ता है। घटना या संयोग की भूमिका पर चरम सीमा का चरितार्थ करना, प्रेमचंद की अन्य विशेषता है। इस के उदाहरण में 'परीक्षा', 'मर्यादा की वेदी', 'धोखा' आदि-कहानियों की चरम सीमाएं ली जा सकती हैं। 'परीक्षा' में संयोग से जानकी नाथ के पैर में हॉकी से चोट लग जाना और सब से पीछे छुटकर नाले में फँसी हुई गाड़ी को बाहर निकालना; 'मर्यादा की वेदी' में राजकुमार ने ऐंठ कर राणा पर तलवार चलाई, इतने में प्रभा एकाएक बिजली की तरह झपटकर राजकुमार के सामने खड़ी हो गयी, और प्रभा का इस तरह एकाएक मर जाना, आदि ऐसी घटनाओं पर चरम सीमा का स्थिर होना, उक्त सत्य के उदाहरण हैं।

ऐसी चरम सीमाओं का प्रभाव हृदय पर स्थायी नहीं पड़ता, वस्तुतः ऐसी चरम सीमाएं कथानक प्रधान, या घटना प्रधान कहानियों में चरितार्थ होती है, जो कहानी कला की दृष्टि से बहुत निम्नकोटि की समझी जाती हैं।

उपसंहार

चरम सीमा के बाद कहानी बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। इस के भी उपरान्त कुछ कहना तात्विक और व्यावहारिक, दोनों ढंग से कहानी शिल्प-विधि के विरुद्ध है। क्योंकि पाठक कहानी के प्रारम्भ से जिस संवेदना को पकड़े हुए उस के अन्त तक पहुँच गया, वह आगे क्यों दौड़ा जाय? उस की जिज्ञासा वृत्ति चरम सीमा पर ही समाप्त हो गयी। लेकिन प्रेमचंद ने अपनी समस्त प्रारम्भिक कहानियों में चरम सीमा के उपरान्त हमेशा कुछ न कुछ उपसंहार जोड़ा है, जैसे—

(क) दोनों भाइयों के गले मिलते देखकर (बेनीमाधव) आनन्द से पुलकित हो गए, बोल उठे, बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं। गाँव में जिसने यह वृत्तान्त सुना उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता की सराहा, "बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।"

[बड़े घर की बेटी]

(ख) अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिल का मैल धुल गया। मित्रता की मुर्झायी हुई लता फिर हरी हो गयी। [पंच परमेश्वर]

(ग) "हाँ, प्रेम के रहस्य निराले हैं, अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभा पर तलवार लेकर झपटा। प्रभा उसके साथ चलने पर राजी न थी। किन्तु वह प्रेम के बंधन को तोड़ न सकी। दोनों उस घर ही से नहीं, संसार से एक साथ सिधारे।" [मर्यादा की वेदी]

(घ) "इस घटना को भारतीय इतिहास की अँधेरी रात में 'जुगुनू की चमक' कहानी चाहिए।" [जुगुनू की चमक]

(ङ) "यह सब हो गया, किन्तु वह बात जो अब होनी थी वह न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या रहती हैं और अपनी पुत्रवधू की सूरत नहीं देखना चाहती।" [ममता]

शैली का सामान्य पक्ष

पिछले पृष्ठों में हमने शैली के अन्तर्गत कहानी की व्यापक शैली का अध्ययन किया है, जहाँ हमने कहानी के तीन भागों की रचना-विधान की दृष्टि से देखा है। जहाँ हम शैली के सामान्य पक्ष के अन्तर्गत प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में, चित्रण शैली, शोभा दृश्य वर्णन, कथोपकथन-आदि को देख सकते हैं।

चित्रण-शैली के अन्तर्गत, देश-काल परिस्थिति का चित्रण मुख्य है। यहाँ देश काल का चित्रण केवल परिचयात्मक ढंग से हुआ है, और कहीं-कहीं तो प्रेमचन्द केवल नाम लेकर आगे बढ़ गए हैं। परिस्थिति-चित्रण में अवस्था चित्रण कहीं-कहीं बहुत जोरदार और व्यंजनात्मक शब्दों में हुआ है। 'परीक्षा' में दीवान-पद के लिए आए हुए उम्मेदवारों की स्थिति और अवस्था-वर्णन श्लाघ्य है, मि० 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए ऊषा का वर्णन करते थे। मि० ब को हुक्का पीने की लत थी, पर आज कल बहुत रात गए किवाड़ बन्द करके अंधेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर द, स और ज से उन के घरों पर नौकरों के नाक में दम था, लेकिन वे सज्जन आजकल आप जनाब के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय नास्तिक थे, हौसले के उपासक थे, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पद-च्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर ल को किताबों से घृणा थी, परन्तु आज कल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ खोले पढ़ने में डूबे रहते थे। जिस से बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम होता था। शर्मा जी घड़ी रात ही से वेद मंत्र पढ़ने लगते थे और मौलवी साहब को तो नमाज और पालागन के सिवा और कोई काम न था। लोग

समझाते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।[1]

यहाँ परिस्थिति और अवस्था चित्रण कितना मार्मिक और व्यंजना लिए हुए है। एक ओर वास्तविक वस्तुस्थिति पर व्यंग है और दूसरी ओर सत्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी के चित्रण और वर्णन-शैली में इस शैली का बहुत महत्व है।

शोभा-वर्णन के माध्यम से यहाँ कहीं-कहीं बहुत अच्छे ढंग से वातावरण प्रस्तुत किया गया है। 'मर्यादा की वेदी' में राजकुमारी प्रभा के विवाह में मंडप-शोभा कितने अच्छे वैवाहिक-वातावरण का सूचक है—

"रनिवास में डोमनियाँ आनन्दोत्सव के गीत गा रहीं थीं। कहीं सुन्दरियां के हाव-भाव थे, कहीं आभूषणों की चमक-दमक, कहीं हास-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज हो रही थी। मालिन गर्व से फूली न समाती थी। धोबिन आँखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटके के सदृश्य फूली हुई थी। मंडप के नीचे पुरोहित जी बात-बात पर स्वर्ण-मुद्राओं के लिए ढुलकते थे। रानी सिर के बाल खोले भूखी-प्यासी चारों ओर दौड़ रही थीं। सबकी बौछारें सहती थी और अपने भाग्य को सराहती थी। आज प्रभा का विवाह है, बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने में आती हैं।"[2]

शोभा वर्णन जहाँ कहीं निरपेक्ष ढंग से किया गया है, वहाँ और भी उत्कृष्ट हुआ है, जैसे गाँव की शोभा—"फागुन का महीना था। आमों के बौर से महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयल की सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहानों में किसान आनन्द से उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे।" इस तरह से गाँव खलिहान पंचायत, बैठक, खेत आदि की शोभा का वर्णन बहुत ही चित्रात्मकता से किया है।

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में प्राकृतिक दृश्य वर्णन, स्वतंत्र रूप से बहुत कम मिलते हैं, और यही सत्य वस्तुतः इन की समस्त कहानियों पर लागू हो सकता है। प्राकृतिक दृश्य-वर्णन जहाँ-कहीं भी आया है वह मानव-व्यापार के साथ आया है, उसे अपना धरातल बनाकर आया है—"मध्याह्न काल था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसाने

[1] सप्त सरोज, परीक्षा, पृष्ठ १०६

[2] नवनिधि, मर्यादा की वेदी, पृष्ठ ४६

वाली प्रचंड, प्रखर वायु वन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली जा रही है। गगन मंडल इस भय से कांप रहा था। रानी सारंधा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिए पश्चिम की तरफ चली जाती थी......तालू सूखा जाता था, किसी वृक्ष की छांह और कुएं की तलाश में आंखें चारों ओर दौड़ रही थी।"[1]

आकार-प्रकार के वर्णन में प्रेमचंद बहुत दूर तक नहीं जाते थे। जितने से कहानी के विकास में उस का सहयोग होता था, उतना ही वर्णन वे देने का प्रयत्न करते थे, और वह भी बहुत सूक्ष्म और सांकेतिक शैली में—"थोड़ी देर में रागिया भीतर आया। सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कंधे पर एक मृग-चर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविन्द से तेज छिटक रहा था।"[2]

कथोपकथन

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में कथोपकथन के तीन रूप मिलते हैं और तीनों रूपों में सर्वथ तीन विकास-क्रम का आभास है। पहले प्रकार के आरम्भिक कथोपकथन वे हैं—जहाँ बीच-बीच में नाटकीय संकेत दिये गए हैं। जैसे—

धर्म सिंह—हाँ संभव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।
पृथ्वी सिंह—(जोश में) कोई हो यदि वह मेरा भाई ही हो तो भी जीता चुनवा दूँ।
धर्म सिंह—तेगा खींचो।
पृथ्वी सिंह—मैंने उसे नहीं देखा।
धर्म सिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।
पृथ्वी सिंह—(घबराकर) ये तुम...मैं...।[3]

यहाँ कथोपकथन में नाटकीयता स्पष्ट है। वस्तुतः कहानी में ऐसे कथोपकथन बहुत निम्नकोटि के समझे जाते हैं। 'जोश में' 'घबराकर' आदि निर्देशनों का प्रयोग कहानी के कथनोपकथनों में सर्वथा अकलात्मक है क्योंकि कहानी पाठन-पठन की चीज़ है, अभिनय की नहीं। विकास-क्रम में दूसरे प्रकार के कथोपकथन निम्नलिखित हैं —

---

[1] नवविधि, रानी सारंधा, पृष्ठ ३८

[2] नवविधि, 'धोखा' पृष्ठ ६४ [3] नवनिधि, पृष्ठ ७६

समझाते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।[1]

यहाँ परिस्थिति और अवस्था चित्रण कितना मार्मिक और व्यंजना लिए हुए है। एक ओर वास्तविक वस्तुस्थिति पर व्यंग है और दूसरी ओर सत्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी के चित्रण और वर्णन-शैली में इस शैली का बहुत महत्व है।

शोभा-वर्णन के माध्यम से यहाँ कहीं-कहीं बहुत अच्छे ढंग से वातावरण प्रस्तुत किया गया है। 'मर्यादा की वेदी' में राजकुमारी प्रभा के विवाह में मंडप-शोभा कितने अच्छे वैवाहिक-वातावरण का सूचक है—

"रनिवास में डोमनियाँ आनन्दोत्सव के गीत गा रहीं थीं। कहीं सुन्दरियों के हाव-भाव थे, कहीं आभूषणों की चमक-दमक, कहीं हास-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज हो रही थी। मालिन गर्व से फूली न समाती थी। धोबिन आँखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटके के सदृश्य फूली हुई थी। मंडप के नीचे पुरोहित जी बात-बात पर स्वर्ण-मुद्राओं के लिए ढुलकते थे। रानी सिर के बाल खोले भूखी-प्यासी चारों ओर दौड़ रही थीं। सबकी बौछारें सहती थी और अपने भाग्य को सराहती थी। आज प्रभा का विवाह है, बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने में आती हैं।"[2]

शोभा वर्णन जहाँ कहीं निरपेक्ष ढंग से किया गया है, वहाँ और भी उत्कृष्ट हुआ है, जैसे गाँव की शोभा—"फागुन का महीना था। आमों के बौर से महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयल की सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहानों में किसान आनन्द से उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे।" इस तरह से गाँव खलिहान पंचायत, बैठक, खेत आदि की शोभा का वर्णन बहुत ही चित्रात्मकता से किया है।

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में प्राकृतिक दृश्य वर्णन, स्वतंत्र रूप से बहुत कम मिलते हैं, और यही सत्य वस्तुतः इन की समस्त कहानियों पर लागू हो सकता है। प्राकृतिक दृश्य-वर्णन जहाँ-कहीं भी आया है वह मानव-व्यापार के साथ आया है, उसे अपना धरातल बनाकर आया है—"मध्याह्न काल था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसाने

[1] सप्त सरोज, परीक्षा, पृष्ठ १०६
[2] नवनिधि; मर्यादा की वेदी, पृष्ठ ४५

वाली प्रचंड, प्रखर वायु वन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली जा रही है। गगन मंडल इस भय से कांप रहा था। रानी सारंधा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिए पच्छिम की तरफ चली जाती थी......तालू सूखा जाता था, किसी वृक्ष की छांह और कुएं की तलाश में आंखें चारों ओर दौड़ रही थी।"[1]

आकार-प्रकार के वर्णन में प्रेमचंद बहुत दूर तक नहीं जाते थे। जितने से कहानी के विकास में उस का सहयोग होता था, उतना ही वर्णन वे देने का प्रयत्न करते थे, और वह भी बहुत सूक्ष्म और सांकेतिक शैली में—"थोड़ी देर में रागिया भीतर आया। सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कंधे पर एक मृग-चर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविन्द से तेज छिटक रहा था।"[2]

कथोपकथन

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में कथोपकथन के तीन रूप मिलते हैं और तीनों रूपों में सर्वथ तीन विकास-क्रम का आभास है। पहले प्रकार के आरम्भिक कथोपकथन वे हैं—जहाँ बीच-बीच में नाटकीय संकेत दिये गए हैं। जैसे—

धर्म सिंह—हाँ संभव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।

पृथ्वी सिंह—(जोश में) कोई हो यदि वह मेरा भाई ही हो तो भी जीता चुनवा दूँ।

धर्म सिंह—तेगा खींचो।

पृथ्वी सिंह—मैंने उसे नहीं देखा।

धर्म सिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।

पृथ्वी सिंह—(घबराकर) ये तुम...मैं...।[3]

यहाँ कथोपकथन में नाटकीयता स्पष्ट है। वस्तुतः कहानी में ऐसे कथोपकथन बहुत निम्नकोटि के समझे जाते हैं। 'जोश में' 'घबराकर' आदि निर्देशनों का प्रयोग कहानी के कथनोपकथनों में सर्वथा अकलात्मक है क्योंकि कहानी पाठन-पठन की चीज़ है, अभिनय की नहीं। विकास-क्रम में दूसरे प्रकार के कथोपकथन निम्नलिखित हैं —

---

[1] नवविधि, रानी सारंधा, पृष्ठ ३८

[2] नवविधि, 'धोखा' पृष्ठ ६४ [3] नवनिधि, पृष्ठ ७६

समझाते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।[1]

यहाँ परिस्थिति और अवस्था चित्रण कितना मार्मिक और व्यंजना लिए हुए है। एक ओर वास्तविक वस्तुस्थिति पर व्यंग है और दूसरी ओर सत्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी के चित्रण और वर्णन-शैली में इस शैली का

वाली प्रचंड, प्रखर वायु वन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली जा रही है। गगन मंडल इस भय से कांप रहा था। रानी सारंधा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिए पच्छिम की तरफ चली जाती थी......तालू सूखा जाता था, किसी वृक्ष की छांह और कुएं की तलाश में आंखें चारों ओर दौड़ रही थी।"[1]

आकार-प्रकार के वर्णन में प्रेमचंद बहुत दूर तक नहीं जाते थे। जितने से कहानी के विकास में उस का सहयोग होता था, उतना ही वर्णन वे देने का प्रयत्न करते थे, और वह भी बहुत सूक्ष्म और सांकेतिक शैली में—"थोड़ी देर में रागिया भीतर आया। सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कंधे पर एक मृग-चर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविन्द से तेज छिटक रहा था।"[2]

कथोपकथन

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों में कथोपकथन के तीन रूप मिलते हैं और तीनों रूपों में सर्वथ तीन विकास-क्रम का आभास है। पहले प्रकार के आरम्भिक कथोपकथन वे हैं—जहाँ बीच-बीच में नाटकीय संकेत दिये गए हैं। जैसे—

धर्म सिंह—हाँ संभव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।
पृथ्वी सिंह—(जोश में) कोई हो यदि वह मेरा भाई ही हो तो भी जीता चुनवा दूँ।
धर्म सिंह—तेगा खींचो।
पृथ्वी सिंह—मैंने उसे नहीं देखा।
धर्म सिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।
पृथ्वी सिंह—(घबराकर) ये तुम...मैं...।[3]

यहाँ कथोपकथन में नाटकीयता स्पष्ट है। वस्तुतः कहानी में ऐसे कथोपकथन बहुत निम्नकोटि के समझे जाते हैं। 'जोश में' 'घबराकर' आदि निर्देशनों का प्रयोग कहानी के कथनोपकथनों में सर्वथा अकलात्मक है क्योंकि कहानी पाठन-पठन की चीज़ है, अभिनय की नहीं। विकास-क्रम में दूसरे प्रकार के कथोपकथन निम्नलिखित हैं —

---

[1] नवविधि, रानी सारंधा, पृष्ठ ३८

[2] नवविधि, 'धोखा' पृष्ठ ६४ [3] नवनिधि, पृष्ठ ७६

"रामरक्षा—मूर्ख नहीं है।"

"क्या खाया है ?"

"मन की मिठाई ?"

"और क्या खाया है ?"

"मार !"

"किसने मारा ?"

"गिरधारी लाल ने"।[1]

और इस विकास-क्रम में तीसरे प्रकार के कथोपकथन ये हैं—

"वे तलवार खींचकर राणा पर झपटे। उन्होंने वार बचा लिया और प्रभा से कहा, राजकुमारी, हमारे साथ चलोगी ? प्रभा सिर झुकाए राणा के सामने आकर बोली—हां, चलूंगी। राव साहब को कई आदमियों ने पकड़ लिया था वे तड़प कर बोले—प्रभा तुम राजपूत की कन्या हो।

प्रभा की आखें सजल हो गयीं। बोली—राणा भी तो राजपूतों के कुल तिलक हैं। राव साहब ने आवेश में आकर कहा—निर्लज्जा।"[2]

विकास-क्रम का तीसरे ढंग का यह कथोपकथन पूर्ण कलात्मक और आधुनिक है। इस में एक साथ कथोपकथन मनोभावों, का चित्रण तथा कार्य कलाप और मुद्राओं का संकेत है। अतः कथोपकथन के संबंध में प्रेमचंद यहीं से पूर्ण सफल हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियाँ आदर्श को लक्ष्य-बिन्दु मानकर लिखी गयी हैं। अर्थात् कहानीकार के सृष्टि-जगत् में पहले कोई समस्या आयी और उस की प्रतिक्रियास्वरूप उस में उस के लिए एक आदर्श भावना जमी और उसी को लक्ष्य मानकर वह कहानी लिखने बैठ गया। इस भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचंद ने प्रायः अपनी समस्त प्रारम्भिक कहानियों में बल्कि प्रेमचंद की यह प्रवृत्ति उनके विकास का और कुछ-कुछ उत्कर्ष काल तक सत्-असत् दो विरोधी तत्वों को स्थान दिया और प्रायः हमेशा असत् पर सत् की विजय दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा की इस लक्ष्य-बिन्दु को लेकर इस काल की

---

[1] नवनिधि, पृ० १२३ [2] नवनिधि, पृ० २४६

तिनिधि कहानियाँ जैसे; 'बड़े घर की बेटी' 'पंच-परमेश्वर' 'नमक गा', 'उपदेश', 'परीक्षा', 'अमावस्या की रात्रि', 'पछतावा' आदि यी है।

अनुभूति मात्र के सृष्टि बिन्दु से इस काल में प्रायः कोई भी कहानी ी गयी है। अनुभूति के धरातल से लिखी हुई कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ ाँ सिद्ध होती हैं लेकिन कहानियों की यह सृष्टि प्रेरणा कहानीकार की उत्कर्ष काल में आती है। यहाँ प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के विषय- और संस्था" इन दोनों से विषय और समस्याएँ ली हैं। इन का स्वतंत्र हम भाव-पक्ष के प्रसंग में आगे करेंगे। लेकिन यहाँ शिल्पविधि की सीमा में कहानियाँ प्रायः आदर्श भावना को लक्ष्य बनाकर लिखी गयी भूति को नहीं।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ आदेश और परामर्श की कहानियाँ कहानियाँ हमें ऊँचे आदर्शों के साथ कर्तव्य-पालन के कितने उदाहरण रती हैं। फलतः इन कहानियों में एक साथ कई रस, कई इकाइयाँ। ी हैं। इन में हमारी घरेलू और संस्था जैसे जमीन्दारी, किसानी, नौकरी ते आदि की समस्याएं दी गयी हैं, लेकिन इन समस्याओं के प्रदर्शन के हाँ गुणों की ओर बढ़ने के लिए जबर्दस्त आग्रह है। इन कहानियों में हमें कुछ देर के लिए अपनी परम्परा, अपनी भारतीयता के प्रति , मोह उत्पन्न होता है। इस दिशा में हमें भारतेन्दु कालीन मुखर उपन्यास हात्म्य' और 'परीक्षा गुरु' याद आते हैं। इन उपन्यासों में भी इसी तरह के प्रति मोह और आदर्शों के ग्रहण करने के परामर्श हैं तथा इन ों में भी प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों की भाँति ऐन्द्रिक प्रेम को जान- छोड़ दिया गया है। वस्तुतः यह रीतिकाल की उत्तर काल पर काव्यात्मक था थी जो समूचे द्विवेदी युग पर थी। फलतः ये कहानियाँ चरित्र न होकर आचरण प्रधान हो गयी हैं। इस के फलस्वरूप इन कहा- ी समस्याएं भी आचरण की सीमाओं में सीमित हैं। यही कारण है कि नियाँ परिस्थितियों के वर्णन, चित्रण और उनके हल की कहानियाँ हैं। स्त कहानियों का धरातल नैतिक है, जिन में वर्णन, व्याख्या अधिक है, चोट आदि कम। फिर भी ये कहानियाँ जन-जागृति और गाँधीवादी धारा म चरण की कहानियाँ हैं। इन का मूल्य इन के भावपक्ष में अधिक है, शिल्पविधि में कम।

विकास-काल

आरम्भिक काल से विकास-काल तक आते-आते कहानी शैली और इस के रूप विधान के संबंध में प्रेमचंद की धारणा स्वयं बदल गयी। उन के इस परवर्ती-दृष्टिकोण का उदाहरण हमें विकास-काल की कहानियों में मिलने लगा और विकास-काल के दो कहानी संग्रह 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' की भूमिकाओं में प्रेमचंद ने अपनी कहानी-कला की धारणा के संबंध में थोड़ा-सा प्रकाश डाला है "आजकल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेम की कहानियाँ, जासूसी किस्से, भ्रमण वृतान्त, अद्भुत घटना, विज्ञान की बातें, यहाँ तक की मित्रों की गप-सप सभी शामिल कर दी जाती है।

(प्रेम प्रसून की भूमिका, पृष्ठ १)

इसी भाँति 'प्रेम द्वादशी' की भी भूमिका में उन्होंने विकास अवस्था की कहानियों के बारे में कहा है—"वर्तमान आखयायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन करना है और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है, उतनी ही दूषित समझी जाती है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वर्तमान गल्प-लेखक कोरी गल्पें लिखता है। जैसे 'वोस्ताने ख्याल' या 'तिलस्मे होशेरुआ' हैं। नहीं, इसका उद्देश्य चाहे उपदेश करना न हो, पर गल्पों का आधार कोई न कोई दार्शनिक तत्व या सामाजिक विवेचन अवश्य होता है। ऐसी कहानी, जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, कुतूहल का भाव न जाग्रत करे, कहानी नहीं।......यूरुप और भारतवर्ष की आत्मा में बहुत अन्तर है। यूरुप की दृष्टि सुन्दर पर पड़ती है पर भारत की सत्य पर।"

उपर्युक्त अवतरणों में विकास काल की कहानियों की शिल्पविधि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है, न कहानी—कला के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ा है। वस्तुतः शिल्पविधि कहानी के अन्तर्गत नितान्त अमूर्त तत्व है। यह एक प्रेरणा है, और कहानीकार स्वयं इसे अपनी व्याख्या में नहीं ला सकता। फिर तो प्रेमचंद कहानी के भाव पक्ष पर अधिक बल देते थे, कला-पक्ष पर कम। फलतः शिल्पविधि कहानी का एक आदर्श रूप है जो कहानीकार के अवचेतन, कभी-कभी चेतन जगत् में प्रेरणा स्वरूप विद्यमान होता है और इस के फलस्वरूप कहानी की सृष्टि होती है। इसलिये शिल्पविधि के अध्ययन के लिए हमें फिर कहानियों की ही शरण में जाना पड़ता है क्योंकि अमूर्त शिल्पविधि का मूर्त रूप कहानी है।

कथानक

आरम्भकाल की कहानियों में हमने देखा है कि यहाँ के कथानक लम्बे इतिवृत्तात्मक, छिपछला लिए हुए आये हैं। इस दिशा में यहाँ विकास हुआ है। बातें पिछली ही हैं लेकिन उन में कलागत सुधार और काँट-छाँट स्पष्ट है। कथानक अपने समग्र रूप में कहानी के अनुरूप और कलात्मक वृत्ति को संतोष देने लगे हैं। वस्तुतः यहाँ आकर स्वयं प्रेमचंद ने कहानी की लम्बाई इतिवृत्ति और घटनाबाहुल्य के विरोध में कहा है—"आख्यायिका में इस बाहुल्य की गुंजाइश नहीं। बल्कि कई सुविज्ञजनों की सम्मति तो यह है कि उसमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए।"[1]

उपर्युक्त प्रकार से प्रेमचंद ने यहाँ अपनी कहानियों के विस्तार और इतिवृत्ति में सुधार की चेष्टा की है तथा लम्बे कथानक से छोटे कथानकों की ओर जाने का प्रयत्न स्पष्ट है। 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम चतुर्थी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम पचीसी' की कहानियों तथा 'स्त्री-पुरुष', 'माता का हृदय', 'मंकू' 'मुक्ति का मार्ग' 'डिग्री के रुपये', 'वज्रपात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियों के कथानकों के सम्बन्ध में उपर्युक्त सत्य सफलता से चरितार्थ होता है। यहाँ के कथानकों में गठन और संयम दोनों निश्चित हैं। प्रायः यहां के कहानियों में उतना ही कथानक लिया गया है जितने से कहानी की मूल संवेदना सम्बन्धित है। अतएव यहीं कहानी में विस्तृत व्यापार और घटनाओं की कमी हुई है। अब कथानक अधिक से अधिक पाँच-छः मोड़ों के साथ कहानी में चरितार्थ होने लगे हैं। 'बूढ़ी काकी' के कथानक में कुल पाँच मोड़ हैं, जैसे; इस का आरम्भ, जहाँ बूढ़ी काकी का परिचयात्मक अंश कथानक के आदि में जुड़ा हुआ है। दूसरा मोड़ है, बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम का तिलक समारोह और इस अवसर पर प्रीति भोज की व्याख्या। तीसरा मोड़ है भूखी बूढ़ी काकी का स्वतः भंडारे में आ घुसना और उसकी उपेक्षा। चौथा मोड़ है, भूखी उपेक्षिता काकी का रात में मेहमानों की जूठी पत्तलें खाना और रूपा घर की मालकिन को उसे देख लेना, तथा कथानक का पाँचवा और अन्तिम मोड़ है, रूपा का सब सामग्रियों के साथ थाली सजाना और बूढ़ी काकी को खिलाना।

प्रारम्भिक काल में ऐतिहासिक कहानियों के कथानक बहुत विस्तृत और अधिक मोड़ों के हो गए। लेकिन इस काल में भी प्रेमचंद ने ऐतिहासिक

---

[1] प्रेम प्रसून, भूमिका, पृष्ठ ५

निर्माण में कुछ ऐसे कलात्मक सत्य मिलेंगे, कुछ ऐसे मूलगत ढङ्ग या पद्धतियाँ मिलेंगी, जिन के आधार पर उपर्युक्त कहानियों के निर्माण हुए हैं।

(क) कथानक का आरम्भ एक सूत्र से होता है और उस सूत्र में अपनी वर्तमान प्रेरणा होती है इस में न किसी सहायक शक्ति की आवश्यकता है न किसी विरोधी शक्ति की प्रतिक्रिया वरन् यह सूत्र स्वतः स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता है और विविध मनोभावों अन्यान्य कार्य-व्यापारों के बीच से आगे बढ़ता है लेकिन सब में एक समता और शृंखला रहती है और अंत में यह कथानक उसी स्वाभाविक दृष्टि में एक हो जाता है, लगता है; जैसे इस कथानक-निर्माण में चरम सीमा की कोई अवस्था नहीं है, न कोई व्यवस्था है न उस की कोई उपेक्षा ही है; जैसे, 'नैराश्य लीला', 'शान्ति', 'शिकारी राजकुमार'।

(ख) कथानक-सूत्र आरम्भ ही से अपने में एक समस्या लेकर चलता है आगे बढ़ते ही उस में दो विरोधी संवेदनाएं जुड़ती हैं और दोनों स्वतंत्र रूप से विकास पाती हैं। फिर दोनों संवेदनाओं की मूल शक्तियाँ अपनी सहायक शक्तियों को छोड़कर उन से क्रमशः अलग हो जाती है और अंत में दोनों बिछुड़ी हुई अपनी अपनी संवेदनाओं पर लौटते हैं लेकिन एक संवेदना की लौटी हुई शक्ति सदा के लिए टूट जाती है और दूसरी से सदा के लिए मिल जाती है जैसे 'आभूषण'।

(ग) कथानक का आरम्भ विस्तृत पृष्ठभूमि से होता है और कथानक की मुख्य संवेदना एक साधारण-सी बात पर आधारित रहती है जो कथानक की प्राथमिक समस्या भी रहती है। इस प्राथमिक समस्या के सुलझते एक अन्य संयोग के साथ अन्य संवेदना जुड़ती है और दोनों की चरम सीमाएं घटनात्मक होती हैं लेकिन कथानक अपने उत्तर भाग में वस्तुतः विकसित होता है, जैसे; 'आत्मा राम'।

(घ) कथानक सूत्र का जन्म अंधविश्वास से होता है और इस का विकास तथा चरम परिणति सब अन्ततोगत्वा उसी अंधविश्वास परंपरा पालन और विवेक शून्यता में होता है, जैसे, 'नागपूजा', 'मूठ', 'प्रारब्ध', 'पूर्व-संस्कार।'

(ङ) कथानक का आरंभ किसी व्यक्ति के आत्म-कथात्मक कथा वर्णन से होता है। वह आम कहानियों के कथानकों की भाँति उस के आत्म-वर्णन से एकसूत्रता लिए आगे बढ़ता है और अत्यन्त स्वाभाविक गति से, बिना कथानक में किसी प्रकार की कलात्मक संश्लिष्टता उत्पन्न किए चरम सीमा पर

पहुँच जाता है, जैसे, 'अज्ञ का स्वांग', 'बौड़म', 'हार की जीत', 'शाप', 'यह मेरी मातृभूमि है', 'ज्वाला मुखी' आदि।

(च) इस ढंग में वे सारी छोटी कथात्मक कहानियाँ आती हैं जिन के कथानकों का आरंभ कहानीकार द्वारा स्थिति वर्णन और समस्या उद्घाटन में होता है। कथानक समस्या लेकर आगे बढ़ता है, उस में घात-प्रतिघातों संघर्षों की चोटें लगती हैं और उन के फलस्वरूप कथानक तुरन्त अपनी स्वाभाविक चरम सीमा पर पहुँच जाता है अर्थात् कथानक अपने विकास और चरम सीमा पर पहुँचने के लिए किसी भी तरह आदर्श या सिद्धांत को न मानते हुए पूर्ण स्वाभाविक यथार्थ गति से चरम सीमा पर पहुँच जाता है और उस में किसी भी तरह का विस्तार व्याख्या या अप्रासंगिक फैलाव नहीं रहता; जैसे, 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'वज्रपात', 'बौड़म', 'दफ्तरी', 'लालफीता', 'बलिदान', 'विध्वंश' 'धर्मसंकट', 'मुक्ति का मार्ग' आदि।

इस तरह प्रेमचंद के विकास-काल की कहानियों में कथानक-निर्माण के प्रायः उपर्युक्त ढरें हैं। इन्हीं ढरों के किनारे कुछ काट-छाँट करके प्रेमचंद ने विकास काल की अपनी सारी कहानियों के कथानकों को गढ़ा है, लेकिन यहाँ एक सत्य पहले की अपेक्षा बहुत उभरा हुआ है। यहाँ इन कहानियों कथानकों का निर्माण और विकास अत्यन्त स्वाभाविक और मनोविज्ञान के अनुरूप है। इन के निर्माण और विकास में पहले की अपेक्षा संयोग और घटनाओं का सहारा कम लिया गया है।

चरित्र

आरम्भकाल की कहानियों के मुख्य चरित्र थे किसान, जमींदार, नौकर, और घर की बहुएं, माताएं तथा बूढ़ी खाला जैसी औरतें। इसी प्रकार के चरित्र इस काल में भी हमें मिलते हैं। लेकिन वहाँ इन की संख्या इन के टाइप बहुत सीमित थे तथा स्त्री-चरित्र तो बिल्कुल उभर ही नहीं सका या जैसे वे घर की चहारदीवारी और अपनी दासता में बुरी तरह जकड़े थे, लेकिन यहाँ पुरुष और स्त्री चरित्रों की सीमा और विस्तार दोनों में अन्तर आ गया है। स्त्री-पुरुष का अपना अपना व्यक्तित्व निखर कर निश्चित हो गया तथा इन का मनोविज्ञान मनोभाव अधिक उभर कर स्पष्ट हो गया है। पिछले खेवे की कहानियों में चरित्रों का अमूर्त रूप हम ने उन के आचरणों कृत्यों के माध्यम से देखा था लेकिन यहाँ पात्रों का वह रूप उन के मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण

के माध्यम से अध्ययन किया जा सकता है। चरित्र की दिशा में यही दूसरा विकास, काल के चरित्रों की पहचान है और उन की विशेषता है।

स्त्री

आरम्भ काल की कहानियों में स्त्री पात्रों का स्थान बहुत संकुचित रूप में मिला था उन का रूप उन का व्यक्तित्व बहुत ही अस्पष्ट था। स्त्रियाँ प्रायः यथार्थ की भाव-भूमि पर खड़ी रहकर सदैव आदर्शवादी और मर्यादावादी थीं। एक तरह से वे अपनी समस्याओं के संबंध में पंगु थीं। उन की जागरुकता उन की मर्यादा में सो गयी थी लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक मुखरित और स्पष्टवादिनी हुई हैं। उन्हें स्थान-स्थान पर कहानी का नायकत्व मिला है और उन के व्यक्तित्व के किनारे-किनारे कहानी की घटनाएं तथा अन्य पात्र घूमते हुए दृष्टिगोचर हुए हैं। यहाँ उन का जीवन-दर्शन बहुत ही परिवर्तित और क्रान्तिकारी है उन में विद्रोह की सफल चेतना आ गयी है। 'शंखनाद' में स्त्री ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, 'अब समझाने-बुझाने से काम नहीं चलेगा सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया।' 'आभूषण' में स्त्री ने ईश्वर को भी ललकार दिया कि ईश्वर के दरबार में पूछूँगी कि तुमने मुझे सुंदरता क्यों नहीं दी, बदसूरत क्यों बनाया' यहाँ आकर स्त्री का व्यक्तित्व पुरुष की बराबरी में आ गया है और पुरुष के अत्याचार शोषण और उस की निरंकुशता से ऊब कर स्त्री से क्रान्ति स्वर में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और निजत्व की घोषणा की है 'मुझमें जीव है, चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊँ; मुझ से यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी दुखिया समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ ऐसा क्यों करूँ संसार मुझे जो चाहे समझे मैं अपने को अभागिनी नहीं समझती। मैं अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर सकती हूँ। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाय नित्य कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रहे यह दशा मेरे लिये असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्यविधाता है स्त्री क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे क्यों उनका मुंह ताके'।[1]

अतः यहाँ आकर स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और जीवन-पूर्ण हो गयी है। पुरुष जहाँ अवसरवादी है, अपने में द्विपक्षता रखता है, कपटी और प्रतिक्रियावादी है वहाँ स्त्री बिल्कुल साफ, सीधी और स्पष्ट है वह जो सोचती

---

[1] प्रेमपचीसी, नैराश्य लीला, पृष्ठ २६२, २६३

है वही करती है और वही कहती भी है। 'ब्रह्म के स्वांग' नामक कहानी की वृन्दा इतनी सरल और भोली-भाली है कि उस की मर्यादावादिता और आदर्शपने पर उस के साम्यवादी पति खीझते हुए सदैव दुखी रहते हैं, लेकिन जब वृन्दा एकाएक सच्चे रूप में साम्यवादी बन जाती है, तब भी पति महोदय और जल-भुन उठते हैं फिर वृन्दा सोचती है कि अब वह क्या करे? अन्त में वह पुरुष के इस खोखलेपन पर कुपित होकर सोचती है, "यह घर अब मुझे कारागार लगता है किन्तु मैं निराश नहीं हूँ।"[1]

स्त्री अब यथार्थ पक्ष में यथार्थ कदम उठाती है उसी की पिछली झूठी मान्यताएं टूट जाती हैं और यह अपने वर्गसंघर्ष में पूर्णतः जागरुक हो गई है। 'ईश्वरी न्याय' में विधवा भानु कुमारी को प्रपंची और दुश्चरित सत्य-नारायण से लड़ना पड़ा है और उस ने अपने विध्वंश होते हुए गाँव को बसाया है। 'विध्वंश' कहानी में विधवा, वृद्धा संतानहीन भुनगी नामक गोंड़िन अपने शोषक जमींदार से अपने संघर्ष में प्राण दे देती है लेकिन कहती रहती है—"क्यों छोड़कर निकल जायं बारह साल खेत जोतने से असामी भी काश्तकार हो जाता मैं तो इस झोपड़ी में बूढ़ी हो गई मेरे सास ससुर और उनके बापदादे इसी झोपड़ी में रहे अब इसे जमराज को छोड़कर और कोई मुझसे नहीं ले सकता।"[2] दूसरी ओर यहाँ स्त्रियों ने अपने पथभ्रष्ट पतियों को कर्म, मार्ग पर ला खड़ा किया है अपने उजड़ते हुए घरों को भी बचाया है तथा अपने ऊँचे चरित्र से बार-बार पुरुषों को आकर्षित किया है।

इस तरह विकास काल में स्त्री चरित्रों का रूप बहुत निखर आया है ये भारतीय ललनाएं अवश्य है, लेकिन अब यथार्थ भाव-भूमि पर खड़ी होकर अपने सत् रूप को भी पहचान रही हैं।

पुरुष

यहाँ आकर पुरुष चरित्रों में भी भेद-प्रभेद होकर उन के विभिन्न रूपों में विस्तार आ गया है समाज का ऐसा कोई प्रमुख या साधारण पुरुष चरित्र नहीं, जो इस अवस्था की कहानियों में न आया हो। चमार, धोबी, माली, ओझा से लेकर तालुकेदार, बादशाह, नवाब और अंगरेज तक आ गये हैं।

---

[1] प्रेम पचीसी, ब्रह्म का स्वांग, पृष्ठ ६८ [2] प्रेम पचीसी, विध्वंश, पृष्ठ २००

पूरा नकशा हमें दे गए हैं—"दफ्तरी ने सलाम किया और उल्टे पाँव लौटा। उसके चेहरे पर ऐसी दीनता और बेकसी छायी हुई थी कि मुझे उस पर दया आ गयी। उसका इस भाँति बिना कुछ कहे-सुने लौटना कितना मार्मपूर्ण था। इसमें लज्जा थी, संतोष था, पछतावा था, उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला लेकिन उसका चेहरा कह रहा था, मुझे विश्वास है कि आप मेरी उत्तर देंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह न था।"[1]

इस काल की कई कहानियों में स्त्री और पुरुष स्वतन्त्र बैठे हुए स्वयं अपने-अपने मनोभावों का विश्लेषण हमें दे जाते हैं। 'ब्रह्म का स्वाँग' में स्त्री अपने मनोभाव स्पष्ट करती है "मैं सुपात्र ब्राह्मण की कन्या हूँ, जिसकी व्यवस्था बड़े-बड़े गहन धार्मिक विषयों पर सर्वमान्य समझी जाती है। अब मुझे धैर्य नहीं है। आज मैं इस अवस्था का अन्त कर देना चाहती हूँ। मैं इस आसुरिक भ्रष्ट जाल से निकल जाऊँगी मैंने अपने पिता की शरण जाने का निश्चय कर लिया"।[2] पुरुष दूसरी ओर अपना सच्चा मनोभाव स्पष्ट करता है 'मैं भी राष्ट्रीय ऐक्य का अनुरागी हूँ। समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीय करण पर जान देता है। किन्तु कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता कि हम मजदूरों या सेवावृत्ति धारियों को समता का स्थान देंगे, हम उनमें शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं, उनको दीनावस्था से उठाना चाहते हैं, और इसका मर्म क्या है; यह दिल में सभी समझते हैं'।[3]

अतः यहाँ आकर चरित्र की इस व्यवस्था में चरित्र अवतारणा ने दो प्रभाव डाला है। यहाँ पात्रों की मानवीय पूर्णता प्रकट हो गयी है। क्योंकि 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्तिमार्ग', 'शतरंज के खिलाड़ी' में चरित्रों की सृष्टि उन के आन्तरिक और बाह्य दोनों जगत् के मिलन-बिन्दु के धरातल पर हुई है। इन चरित्रों में इन के अलग-अलग निजत्व स्थापित हुए हैं, अतः इन चरित्रों में हम अधिक सजीवता और मानवीय तत्व पाते हैं।

शैली

शैली के अन्तर्गत, इस के व्यापक पक्ष में कहानी के तीन भाग आरम्भ, विकास और चरम सीमा का रूप हमें यहाँ निश्चित और वैज्ञानिक ढंग से

---

[1] प्रेम पचीसी : दफ्तरी, पृष्ठ ११२ [2] वही, ब्रह्म का स्वाँग, पृष्ठ ४८, ४६
[3] वही, ब्रह्म का स्वाँग, पृष्ठ, ६४

मिलने लगे हैं। इन के अलग-अलग अध्ययन में यहाँ की कहानी की समग्र शिल्पविधि पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी।

आरम्भ

विकास काल प्रेमचंद की कहानी कला का विस्तार काल है। यहाँ उन्होंने कहानियों में विभिन्न प्रयोग किए हैं, फलतः कुछ कहानियों का आरम्भ पिछले खेवे की कहानियों की भाँति है और कुछ का नितान्त नवीन है। तथा कुछ पहले से विकसित होकर कलात्मक स्तर पर आई हैं। अतः विकास काल में प्रेमचंद की कहानियों में तीन प्रकार के आरम्भ मिलते हैं—

(क) पहले की भाँति, भूमिका सहित-पात्रों और परिस्थितियों के पूर्ण परिचय के साथ—जैसे, 'आत्माराम', 'लोकमत का सम्मान' और 'नैराश्य लीला' आदि।

(ख) भूमिका रहित पात्रों—परिस्थितियों के यथावश्यक परिचय के साथ—जैसे 'दफ्तरी', 'नागपूजा', 'शंखनाद', 'विध्वंश', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि।

(ग) नितान्त, नवीन ढंग के आरम्भ—सीधे एकाएक कहानी के समस्या के साथ कहानी के आरम्भ बिना किसी प्रकार के परिचय के साथ—जैसे 'शान्ति', 'मंकू', 'वैर का अन्त' आदि।

पहले और दूसरी तरह के आरम्भ का अध्ययन हमने पिछले खेवे की कहानियों के आरम्भ के साथ किया है। तीसरे प्रकार का आरम्भ, विकास काल की नयी शैली है। इस के संबंध में प्रेमचंद ने अपनी भूमिका में सुन्दरता से एक व्याख्यात्मक भूमिका दी है। "आख्यायिका-साधारण जनता के लिए लिखी जाती है, जिसके पास न धन है न समय। यहाँ तो सरलता में सरलता पैदा कीजिए, यही कमाल है। कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है—एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।"[1]

तीसरे प्रकार के आरम्भ का यही आकर्षण है। कहानी आरम्भ होते ही एकाएक ध्रुपद की तान की भाँति पाठकों के हृदय पर स्थान पा जाती है। यही

---

[1] प्रेम प्रसून: भूमिका, पृष्ठ ४

शैली पूर्णतः विकसित होकर आगे उत्कृष्टता पर पहुँची है। फलतः कहानी-कला और शिल्पविधि के प्रकाश में प्रेमचंद की उच्च कहानियों का आरम्भ इसी कोटि में होता है। जैसे 'मैकू', कहानी का आरम्भ—"कादिर और मैकू ताड़ी-खाने के सामने पहुँचे तो वहाँ कांग्रेस के वालन्टियर झंडा लिए खड़े नजर आए। दरवाजे के इधर-उधर हजारों दर्शक खड़े थे। शाम का वक्त था इस वक्त गली में पियक्कड़ों के सिवा और कोई न था।" इसी तरह 'शान्ति' का आरम्भ—"जब मैं ससुराल आई तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का सऊर, न बातचीत करने का ढंग, सिर उठाकर किसी से बातचीत भी न कर सकती थी आँखें अपने आप झपक जाती थीं।"[1]

परन्तु विकास काल की अधिकांश कहानियों का आरम्भ, दूसरे ही ढंग पर है—भूमिका रहित पात्रों—परिस्थितियों की यथावश्यक परिचय के साथ। आरम्भ की यह कोई नवीन शैली नहीं है, फिर भी पिछले वर्ग की कहानियों के ऐसे आरम्भों में और यहाँ के ऐसे आरम्भों में अन्तर है। अन्तर केवल कलात्मक संगठन और प्रवाह का है, सामग्री और विषय का नहीं।

आरम्भ भाग में ही कहानी के सभी तत्वों का यथासम्भव समावेश करने की भी शैली यहाँ पीछे छूट गयी है। कहानियाँ आरम्भ भाग से ही सपाट न होकर नुकीली होती गयी हैं और उन में शिल्पविधिगत कुशलता आ गयी है।

विकास

आरम्भिक कहानियों के विकास के अध्ययन में हमने देखा है कि प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के विकास में चार अवस्था-क्रम रखा था—घटना की तैयारी, उत्तेजक घटना, व्याख्या और घात-प्रतिघात।

इस काल की भी कहानियों में प्रेमचंद ने उन के विकास में उपर्युक्त अवस्था-क्रमों का रखा हैं, 'आत्माराम', उस का स्पष्ट उदाहरण है। लेकिन इस काल के कहानियों के विकास में उन्होने और भी कलात्मक प्रयोग किया है, तथा विकास के इन नवीन अवस्था-क्रमों पर आधारित कहानियाँ इस काल की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यह नवीन और विकसित अवस्था-क्रम निम्नलिखित है—

(क) समस्या प्रवेश की तैयारी (ख) समस्या प्रवेश और द्वन्द का जन्म
(ग) द्वन्द्व—उत्तेजना

---

[1] प्रेम चतुर्थी : शान्ति, पृष्ठ ८०

विकास के इन अवस्था-क्रमों में कहानी कला का गुंफन और संघटन आ गया है। यहाँ न भूमिका क्रम का स्थान है न व्याख्या का। कहानी में घटना के स्थान पर समस्या और मनोभाव आ गया है। व्याख्या और भूमिका की जिम्मेदारी पाठकों के ऊपर छोड़ दी गयी है। इन अवस्था क्रमों को हम 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मंत्र', 'विध्वंस' आदि किसी भी कहानी में देख सकते हैं। उदाहरणार्थ हम 'शतरंज के खिलाड़ी' को लेते हैं।

(क) समस्या की तैयारी—"सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी है, पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को भी पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती विचारशक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें जोरों के साथ पेश की जाती थीं। इसीलिए मिर्जा सज्जादअली और मीर रौशन अली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या?"[1]

(ख) समस्या प्रवेश और द्वन्द्व का जन्म—"प्रातःकाल दोनों मित्र (मिर्जा-मीर) नाश्ता करके आसन बिछाकर बैठ जाते, और लड़ाई के दाव पेंच होने लगते। इधर राज्य में हाहाकार मचा था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौजी मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गए। यह क्या बला सिर पर आई। यह तलबी किसलिए हुई है। अब खैरियत नजर नहीं आती। घर के दरवाजे बन्द कर लिए। नौकरों से बोले—कह दो घर में नहीं हैं।"[2]

(ग) द्वन्द्व उत्तेजना—"बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल

---

[1] मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५।

[2] मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५, २५६, २६०।

गयी। उनके जाते ही मिरज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा— आइए, नवाब साहब के मातम में इस मर्सिया कह डालें। लेकिन मिर्ज़ा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे। खेल होने लगा। झुंझलाहट बढ़ती गयी। तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरज़ा बोले—किसी ने खान्दान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये। आप शतरंज क्या खेलियेगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता। मीर—ज़बान संभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूं यहां तो किसी ने आंखें दिखायी तो उसकी आंखें निकालीं। है हौसला। मिर्ज़ा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर, आइए आज दो दो हाथ हो जाए, इधर या उधर। मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है?"[1]

चरम सीमा

प्रारम्भिक कहानियों में हमें इस सम्बन्ध में दो क्रम मिले थे, चरम सीमा और उपसंहार। चरम सीमा की दिशा में यह क्रम यहाँ भी मिलता है लेकिन यहाँ कलात्मक अंतर हो गया है। पहले चरम सीमा के लम्बा-सा, कम से कम एक पृष्ठ का उपसंहार जुड़ा रहता था या अन्त में कोई उपदेशात्मक अवतरण या कहानी शीर्षक को चरितार्थ करने वाले दो तीन वाक्य जुड़े रहते थे। लेकिन यहाँ चरम सीमा में कलात्मक विकास हुआ है। उपसंहार की पुरानी प्रथा प्रायः यहाँ खत्म-सी हो गई है, वैसे प्रेमचंद ने यहाँ भी चरम सीमा के बाद हमेशा दो-तीन वाक्य जोड़ा है, अधिक नहीं। उदाहरणार्थ—'शतरंज के खिलाड़ी' की चरम सीमा है। दोनों दोस्तों ने कमर से तलवार निकाल ली। नवाबी जमाना था। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। दोनों ने पैतरे बदले। तलवारें चमकी छपछप की आवाजें आईं। दोनों जख्म खाकर गिरे और दोनों ने वहीं तड़प-कर जाने दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूंद भी आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों में शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिए"।[2]

---

[1] मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी पृ० २६३, २६४, २६५

[2] वही

गयी। उनके जाते ही मिरजा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा— आइए, नवाब साहब के मातम में हम मर्सिया कह डालें। लेकिन मिर्जा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे। खेल होने लगा। झुंझलाहट बढ़ती गयी। तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरजा बोले—किसी ने खान्दान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये। आप शतरंज क्या खेलियेगा। रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता। मीर—जबान सँभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ यहाँ तो किसी ने आँखें दिखायी तो उसकी आंखें निकालीं। है हौसला। मिर्जा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर, आइए आज दो दो हाथ हो जाएँ, इधर या उधर। मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है?"[1]

चरम सीमा

प्रारम्भिक कहानियों में हमें इस सम्बन्ध में दो क्रम मिले थे, चरम सीमा और उपसंहार। चरम सीमा की दिशा में यह क्रम यहाँ भी मिलता है लेकिन यहाँ कलात्मक अंतर हो गया है। पहले चरम सीमा के लम्बा-सा, कम से कम एक पृष्ठ का उपसंहार जुड़ा रहता था या अन्त में कोई उपदेशात्मक अवतरण या कहानी शीर्षक को चरितार्थ करने वाले दो तीन वाक्य जुड़े रहते थे। लेकिन यहाँ चरम सीमा में कलात्मक विकास हुआ है। उपसंहार की पुरानी प्रथा प्रायः यहाँ खत्म-सी हो गई है, वैसे प्रेमचंद ने यहाँ भी चरम सीमा के बाद हमेशा दो-तीन वाक्य जोड़ा है, अधिक नहीं। उदाहरणार्थ—'शतरंज के खिलाड़ी' की चरम सीमा है। दोनों दोस्तों ने कमर से तलवार निकाल ली। नवाबी जमाना था। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। दोनों ने पैतरे बदले। तलवारें चमकी छपछप की आवाजें आईं। दोनों जखम खाकर गिरे और दोनों ने वहीं तड़पकर जाने दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखो से एक बूंद भी आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों में शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिए"।[2]

---

[1] मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी पृ० २६३, २६४, २६५

[2] वही

साड़ी को छिपा लेती है। गौरा का यह निर्णय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। इस के पीछे नारीत्व और पत्नीत्व दोनों की प्रेरणा है। लेकिन इस कहानी की इस संवेदना का अंत इस पर होता है कि अंत में गौरा आदर्श में आकर अपनी सुहाग की साड़ी को भी जलाने को दे देती है। 'ईश्वरीय न्याय' में मुंशी सत्यनारायण आदि ने अंत तक भानुकुँवरि के साथ बेईमानी करनी चाही, उसे बर्बाद करने की सब चालें चली हैं लेकिन अंत में वे पूर्ण आदर्शवादी और सच्चे निकलते हैं। इस के पीछे कहानीकार किसी तरह का मनोवैज्ञानिक समर्थन या चारित्रिक कारण नहीं दिखाता, बल्कि संपूर्ण कहानी एकाएक आदर्श पर टिक जाती है।

इस काल की कुछ कहानियों का धरातल मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। कहानीकार ने जैसा संसार में देखा और जैसा देख रहा है। बूढ़ी काकी, शतरंज के खिलाड़ी, विध्वंस, नैराश्य लीला, वज्रपात, शांति, दफ्तरी आदि इन समस्त कहानियों की प्रेरणा और भावभूमि में कहानिकार की अनुभूतियाँ स्पष्ट हैं। ये कहानियाँ पूर्ण मनोवैज्ञानिक सत्य और यथार्थ पर टिकी हैं और विकास काल की ये कहानियाँ शिल्पविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

निष्कर्ष रूप में, विकास काल की कहानियाँ अपने स्वाभाविक रूप में पहले से बहुत आगे बढ़ आई है। यह विकास आचरण की प्रधानता से चरित्र की प्रधानता की ओर है और चरित्र के भी अंतर्गत हमें यहाँ पात्रों के आन्तरिक जगत् का दर्शन होता है। यहाँ कई कहानियों में मनोभावों की झाँकियाँ और मानसिक अन्तरद्वन्द्व देखने को मिला है। प्रारंभिक कहानियों का धरातल प्रायः नैतिक था, यहाँ आकर कहानियों का धरातल आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हो गया है। यहाँ प्रेमचंद जी का दृष्टिकोण भाव-जगत् की दिशा में बहुत विस्तृत मिलने लगा है। उन्होंने मनुष्य को लेकर उसके लिए अपनी कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक मोरचा खड़ा किया है और उन्होंने मानव-कल्याण का सच्चा स्वप्न देखा है।

यहाँ शिल्पविधि की सफलता के फलस्वरूप, कुछ कहानियों में रस-परिपाक अपूर्व ढंग से हुआ है। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मुक्तिमार्ग', ये सब कहानियाँ प्रेमचंद की कहानी कला के विकास-क्रम की सुन्दर सीढ़ियाँ हैं। यहाँ की कहानियों में कहीं कहीं संविधानात्मक सफलता और शिल्पविधि का सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टता पर है। कहानियों में कथानक को केवल पृष्ठभूमि या साधनमात्र बनाने की सफल चेष्टा हुई है। चरित्र, मनोभाव, कला तीनों का

कहीं-कहीं सफल संयोजना हुई है। अधिकांश कहानियों में नीति का तीखापन, लक्ष्य की अनभिव्यक्ता और शैली का प्रारंभिक अपूर्ण है।

विकास काल में प्रेमचंद ने कहानी की विभिन्न शैलियों में बहुत प्रयोग किया है। स्वगतात्मक शैली की कहानी केवल इसी काल में लिखी गई है, आगे फिर कभी नहीं। इस तरह से प्रेमचंद की कहानियों का यह काल उनकी कहानी शिल्पविधि का संक्रांति काल है, जहाँ वे एक ओर उत्कृष्टता पर पहुँच गये हैं और दूसरी ओर केवल प्रयोग के संधि-बिंदु पर खड़े मिलते हैं।

उत्कर्ष काल

इस काल में आकर प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के संबंध में यह दृष्टिकोण बनाया कि वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ, स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उस में कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक रहती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं। मगर यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है, परन्तु कहानी के पात्रों के सुख-दुख से हम जितना प्रभावित होते हैं उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते, जब तक वह निजत्व की परिधि में न आ जाय। अगर हम यथार्थ को हूबहू खींचकर रख दें, तो उसमें कला कहाँ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।[1]

वस्तुतः शिल्पविधि की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियों का विकास काल उन की कला का प्रयोगकाल था, फलतः उस काल में शिल्पविधि का जो प्रदर्शन हुआ है, वह इस काल में नहीं। इस काल से प्रेमचंद की कहानियों की शिल्पविधि निश्चित हो गई। उन की कला की रेखाएं सजीव होकर स्वयं बोलने लगीं और उन में कल्पना का यथार्थ धरातल तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ उभर आईं। यहाँ प्रेमचंद कहानी की आत्मा की ओर अधिक झुके, शिल्पविधि की ओर कम। विकास काल में वे जागरूक-चेतन शिल्पी थे, इस काल में वे जागरूक और चेतन मानव द्रष्टा हैं। जीवन के गहन विश्लेषणों के महापंडित

[1] मानसरोवर : प्रथम भाग भूमिका, पृष्ठ २-३

हैं। उन का शिल्पी व्यक्तित्व उन के अवचेतन जगत् में छिपकर सजीव रेखाओं से कहानी-कला को सँवारता जाता है। उन का चेतन मन उन रेखाओं में जीवन दर्शन, जीवन के विभिन्न प्रसंगों की अवतारणा करता चला है, जो मनोविश्लेषण जो मानव दर्शन जैसी रेखाओं में बँधने लायक हैं, उस के लिए प्रेमचन्द ने वैसे ही शिल्पविधि का प्रयोग किया है। अतएव उन के पिछले दोनों शिल्पी-व्यक्तित्व का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है।

कथानक

यहाँ प्रायः तीन धरातलों से कथानक का निर्माण हुआ है—

(क) किसी व्यक्ति या समस्या के केवल एक पक्ष को धरातल मानकर, कथानक का निर्माण करना जैसे—'कुसुम', 'गुल्लीडंडा', 'घासवाली', 'मिस पद्मा' आदि। इन धरातल पर खड़ी हुई कहानियाँ प्रायः मध्यम श्रेणी की हैं तथा इन में संवेदना की इकाई और कथानक की एकसूत्रता अपूर्व है।

(ख) किसी व्यक्ति के जीवन के लम्बे भाग को लेकर उस पर कहानी की सृष्टि करना, जैसे—'दो कब्रें', 'अलग्योझा', 'नया विवाह' आदि।

(ग) मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल पर खड़ी कहानियाँ, जैसे—'कफन', 'मनोवृत्ति', 'पूस की रात', 'नशा', और 'जादू' आदि। ऐसी कहानियों के कथानक बहुत छोटे और अपने में अत्यन्त गठित हैं—जैसे कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु ही कहानी भर में, कथानक के नाम पर सूक्ष्म रेखा बन गयी हो।

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों के लम्बे कथानक की भाँति यहाँ हम लम्बे कथानक पाते हैं, विकास काल के मध्यम श्रेणी के कथानकों की भाँति यहाँ हम मध्यम श्रेणी के कथानक पाते हैं, लेकिन कलात्मक दृष्टि से इन दोनों प्रकार के कथानकों का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है। कथानकों की एकसूत्रता, संवेदना की सफल इकाई तथा कथानक के साथ आने वाले समस्त संकेतों के सांकेतिक प्रभाव ने कहानी की आत्मा को उत्कृष्टता पर पहुँचा दिया।

प्रारम्भिक कहानियों में जीवन के लम्बे भाग को लेकर जो कथानक तैयार किये जाते थे, उन में इतिवृत्तात्मकता के साथ ही साथ भूमिका और उपसंहार की प्रवृत्ति थी। वह इतिवृत्तात्मकता नष्ट होकर प्रासंगिकता और एकसूत्रता में बदल गयी। उत्कर्ष काल में आकर जीवन स्वयं अपने विभिन्न प्रसंगों में कथानक बन गया। ये कथानक लम्बे इस कारण से हुए कि प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन, जीवन के प्रसंगों को बिना दूर तक लिए हुए चरितार्थ नहीं होता था।

अतः यहाँ कहानी की दृष्टि में लम्बे कथानकों का कोई महत्व नहीं रह गया और इन लम्बे कथानकों की यहाँ मुख्य विशेषताएं इन में थीं कि उस में अब कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं रहा। वह अब एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्श चित्रण रह गया तथा कथानक इन विशेषताओं के साधन मात्र रह गए, साध्य नहीं। इन कथानकों का महत्व केवल पात्रों के मनोभावों और प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति में है तथा कथानक में गुथी हुई घटनाओं का भी अपना कोई स्वतंत्र महत्व नहीं रह गया है। यहाँ आकर प्रेमचंद ने साफ शब्दों में कहा है, अब हम कहानी का मूल्य उस के घटना-विन्यास से नहीं लगाते। हम चाहते हैं कि पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। 'अलग्योझा' में पन्ना और रग्घू के जीवन के प्रायः तेरह वर्षों के लम्बे भाग पर कथानक फैला हुआ है। इस कथानक का विस्तार इतने मोड़ों से है—रग्घू और उस की विमाता पन्ना में स्वाभाविक द्वेष है, और यह द्वेष पन्ना की ओर से है। आठ वर्ष बाद पन्ना विधवा होती है और रग्घू अपने ऊँचे चरित्र के आग्रह से पन्ना और उस के बच्चों को अपना समझ लेता है। इस तरह दोनों फिर से प्यार-स्नेह में बँध जाते हैं। इस के बाद ही रग्घू की शादी होती है तथा उस की पत्नी मुलिया आती है और यह पन्ना से ईर्ष्या करने लगती है। इस के फलस्वरूप एक दिन पन्ना इन से अलग हो जाती है। उस की पीड़ा और प्रतिक्रिया से रग्घू बीमारी के बाद ही मर जाता है और अन्त में विधवा पन्ना विधवा मुलिया एक में मिल जाती है। वस्तुतः इस लम्बे कथानक के पीछे एक निश्चित जीवन-दर्शन की प्रेरणा है। यह कथानक इस बात को दिखाने और सिद्ध करने के लिए इतना लम्बा खींचा गया है कि यह चरितार्थ करके दिखा दिया जा सके कि अलग्योझा स्वार्थ पर आधारित रहता है, जहाँ यह नहीं है। आपस में त्याग और प्रेम की भावना है वहाँ परिवार टूट कर भी बार-बार मिलते रहते हैं। इस कथानक के विस्तार में घटने वाली घटनाएं जैसे—भोला महतो का मर जाना, रग्घू का झगड़ालू मुलिया से विवाह होना, रग्घू और पन्ना में अलग्योझा होना, इस के परिताप और शोक से रग्घू का मर जाना आदि घटनाओं का अपना कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है वरन् इन का मूल्य इन के इस साध्य प्रदर्शन में है कि मनुष्य परिस्थितियों का कितना बड़ा दास है। लेकिन वह परिस्थितियों से बहुत महान् है। अन्त में इन लम्बे कथानकों की एक विशेपता यह भी है कि इन की चरम सीमा प्रायः सदैव घटना से दूर हटकर मनोवैज्ञानिक उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित होने लगी।

एक पक्ष और प्रसंग के कथानक

विकास काल की कितनी ही कहानियों का धरातल जीवन के एक पक्ष पर आधारित है, लेकिन प्रायः उन के कथानकों के निर्माण में दो शैलियाँ आई हैं। कथानकों का विकास प्रायः घटनाओं की पारस्परिक शृंखला से हुआ है। उन की चरम सीमा पर तथा कहानी के प्रतिपाद्य विषय पर प्रायः व्याख्या और उपसंहार जोड़े गए हैं—'दफ्तरी' और 'मैकू' कहानियाँ इस के उदाहरण हैं। यहाँ जीवन के एक पक्ष से निर्मित कथानकों में इन्हीं दोनों दिशाओं में कलात्मक विकास हुए हैं। यहाँ न तो कथानकों का विकास घटनाओं के बीच से हुआ है, न कहानी के अन्त में व्याख्या या उपसंहार ही जोड़े गए हैं। कथानक का आरम्भ एकाएक विद्युत गति से हुआ है और अपने निश्चित एकसूत्रता के साथ स्वाभाविक ढंग से चरम सीमा पर खत्म हो गया। इस की एकसूत्रता में पूर्ण सफलता से एक तथ्यता आई है तथा इस एक तथ्यता ने उस में प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। उदाहरणस्वरूप—'मिस पद्मा' में एक स्वतंत्र युवती के जीवन का वैवाहिक पक्ष लिया गया है। इस के कथानक में उपर्युक्त सारी विशेषताएं स्पष्ट हैं। इस का आरम्भ वर्णन के चटपटे ढंग से हुआ है। आरम्भ ही में कथानक, कहानी की समस्या को अपनी गति में लिए हुए और कहानी की संवेदना की सारी एक तथ्यता, कहानी की सारी तीव्रता, तीखे व्यंग को लिए हुए चरम सीमा पर एकाएक समाप्त हो जाता है। यहाँ कहानी में ऐसे कथानकों का रूप ठीक उसी तरह है; जैसे, पत्थर की कसौटी पर जीवन के एक पक्ष प्रसंग रूपी खरे सोने की एक लकीर, जो आरम्भ से अंत तक सीधी है, निश्चित है, और उस में अपनी सच्चाई के तत्व भी हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के कथानक

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर खड़े हुए कथानक इस काल के उत्कृष्ट कथानक हैं। इन कथानकों का मूल्य कथानकों के प्रकाश में बहुत ही कम है। यहाँ मनोभावों की रेखा ही स्वतः कहानी के रूप से निर्मित हो गयी है और मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही समूची कहानी की शिल्पविधि के पीछे तीव्र प्रेरणा बन गयी है। ऐसे कथानकों का अब अपना कोई निजत्व नहीं है, फिर इन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना बहुत कठिन है। 'कफ़न', 'मनोवृत्ति', 'नशा' और 'जादू' आदि कहानियों के कथानक अपने में कुछ नहीं हैं। इन कथानकों का पूरा भ्रमण क्रमशः इन कहानियों के चरित्रों के मनोभावों के ऊपर चला

गया है तथा इन कथानकों में कोई कथापन नहीं पकड़ में आता। वस्तुतः ये कथानक कोई स्थूल कथानक नहीं हैं बस सूक्ष्मता से साधन मात्र हैं, या दूसरे शब्दों में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ ही कथानक-सी लगने लगती हैं।

उदाहरणार्थ, 'कफन' कहानी की मूल आत्मा यह है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में सर्वहारा कितना पतित हो सकता है। यही आत्मा इस कहानी की मनोवैज्ञानिक अनुभूति है और यही अनुभूतियाँ कहानी भर में रेखाओं के रूप में फैली हुई हैं। 'मनोवृत्ति' में ये रेखाएं और भी सूक्ष्म और बारीक हैं, उदाहरण स्वरूप, 'मनोवृत्ति' में एक सुन्दरी युवती प्रातःकाल गांधी पार्क में बिल्लौर के बेंच ऊपर गहरी नींद में सोयी पड़ी है। उस पार्क में सुबह विभिन्न प्रकार के पात्र घूमने आते हैं और सब पात्र अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उस युवती के बारे में सोचते जाते हैं। फलतः यहाँ आकर कथानक निर्माण में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ प्रधान हो गयी हैं और इस संबंध में प्रेमचंद जी का अपना विश्लेषण पूर्णतः सही उतरा है। "गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नहीं वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"[1]

कथानक-निर्माण के विशिष्ट ढंग

विकास काल के प्रकाश में प्रेमचंद ने यहाँ आकर कथानक-निर्माण के कुछ और नये ढंग प्रस्तुत किए हैं। ये ढंग पिछले कालों की भाँति जागरूक होकर नहीं निकाले गए हैं, वरन् जब कहानीकार को मानव जीवन के बाह्य से उस के अन्तर्लोक में जाना पड़ा और वहाँ से संवेदनाओं को ढूँढ़ना पड़ा, तब उसे कथानक-निर्माण में और भी कुछ संश्लिष्टात्मक ढरों को अपनाना पड़ा।

(क) कथानक सूत्र एक व्यक्ति के मनोभाव से प्रारम्भ होता है और विविध छोटी-छोटी घटनाओं के बीच से विकसित होता है और अन्त में उस कथानक का अन्त भी उस के मनोभावों में हो जाता है, जैसे—'नशा'।

(ख) कहानी सूत्र का जन्म एक कारुणिक समस्या से होता है लेकिन उस का विकास उस समस्या के अन्त से होता हुआ चरित्रों के मनोवृत्ति के तादात्म्य से जीवन के एक महान व्यंग पर समाप्त हो जाता है, जैसे, 'कफन'।

---

[1] मानसरोवर : भाग प्रथम, भूमिका, पृष्ठ ६।

एक पक्ष और प्रसंग के कथानक

विकास काल की कितनी ही कहानियों का धरातल जीवन के एक पक्ष पर आधारित है, लेकिन प्रायः उन के कथानकों के निर्माण में दो शैलियाँ आई हैं। कथानकों का विकास प्रायः घटनाओं की पारस्परिक शृंखला से हुआ है। उन की चरम सीमा पर तथा कहानी के प्रतिपाद्य विषय पर प्रायः व्याख्या और उपसंहार जोड़े गए हैं—'दफ्तरी' और 'मैकू' कहानियाँ इस के उदाहरण हैं। यहाँ जीवन के एक पक्ष से निर्मित कथानकों में इन्हीं दोनों दिशाओं में कलात्मक विकास हुए हैं। यहाँ न तो कथानकों का विकास घटनाओं के बीच से हुआ है, न कहानी के अन्त में व्याख्या या उपसंहार ही जोड़े गए हैं। कथानक का आरम्भ एकाएक विद्युत गति से हुआ है और अपने निश्चित एकसूत्रता के साथ स्वाभाविक ढंग से चरम सीमा पर खत्म हो गया। इस की एकसूत्रता में पूर्ण सफलता से एक तथ्यता आई है तथा इस एक तथ्यता ने उस में प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। उदाहरणस्वरूप—'मिस पद्मा' में एक स्वतंत्र युवती के जीवन का वैवाहिक पक्ष लिया गया है। इस के कथानक में उपर्युक्त सारी विशेषताएं स्पष्ट हैं। इस का आरम्भ वर्णन के चटपटे ढंग से हुआ है। आरम्भ ही में कथानक, कहानी की समस्या को अपनी गति में लिए हुए और कहानी की संवेदना की सारी एक तथ्यता, कहानी की सारी तीव्रता, तीखे व्यंग को लिए हुए चरम सीमा पर एकाएक समाप्त हो जाता है। यहाँ कहानी में ऐसे कथानकों का रूप ठीक उसी तरह है; जैसे, पत्थर की कसौटी पर जीवन के एक पक्ष प्रसंग रूपी खरे सोने की एक लकीर, जो आरम्भ से अंत तक सीधी है, निश्चित है, और उस में अपनी सच्चाई के तत्व भी हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के कथानक

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर खड़े हुए कथानक इस काल के उत्कृष्ट कथानक हैं। इन कथानकों का मूल्य कथानकों के प्रकाश में बहुत ही कम है। यहाँ मनोभावों की रेखा ही स्वतः कहानी के रूप से निर्मित हो गयीं हैं और मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही समूची कहानी की शिल्पविधि के पीछे तीव्र प्रेरणा बन गयी है। ऐसे कथानकों का अब अपना कोई निजत्व नहीं है, फिर इन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना बहुत कठिन है। 'कफ़न', 'मनोवृत्ति', 'नशा' और 'जादू' आदि कहानियों के कथानक अपने में कुछ नहीं हैं। इन कथानकों का पूरा धरातल क्रमशः इन कहानियों के चरित्रों के मनोभावों के ऊपर चला

गया है तथा इन कथानकों में कोई कथापन नहीं पकड़ में आता। वस्तुतः ये कथानक कोई स्थूल कथानक नहीं हैं बस सूक्ष्मता से साधन मात्र हैं, या दूसरे शब्दों में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ ही कथानक-सी लगने लगती हैं।

उदाहरणार्थ, 'कफन' कहानी की मूल आत्मा यह है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में सर्वहारा कितना पतित हो सकता है। यही आत्मा इस कहानी की मनोवैज्ञानिक अनुभूति है और यही अनुभूतियाँ कहानी भर में रेखाओं के रूप में फैली हुई हैं। 'मनोवृत्ति' में ये रेखाएं और भी सूक्ष्म और बारीक हैं, उदाहरण स्वरूप, 'मनोवृत्ति' में एक सुन्दरी युवती प्रातःकाल गांधी पार्क में बिल्लौर के बेंच ऊपर गहरी नींद में सोयी पड़ी है। उस पार्क में सुबह विभिन्न प्रकार के पात्र घूमने आते हैं और सब पात्र अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उस युवती के बारे में सोचते जाते हैं। फलतः यहाँ आकर कथानक निर्माण में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ प्रधान हो गयी हैं और इस संबंध में प्रेमचंद जी का अपना विश्लेषण पूर्णतः सही उतरा है। "गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नहीं वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"[1]

कथानक-निर्माण के विशिष्ट ढंग

विकास काल के प्रकाश में प्रेमचंद ने यहाँ आकर कथानक-निर्माण के कुछ और नये ढंग प्रस्तुत किए हैं। ये ढंग पिछले कालों की भाँति जागरूक होकर नहीं निकाले गए हैं, वरन् जब कहानीकार को मानव जीवन के बाह्य से उस के अन्तर्लोक में जाना पड़ा और वहाँ से संवेदनाओं को ढूँढ़ना पड़ा, तब उसे कथानक-निर्माण में और भी कुछ संश्लिष्टात्मक ढरों को अपनाना पड़ा।

(क) कथानक सूत्र एक व्यक्ति के मनोभाव से प्रारम्भ होता है और विविध छोटी-छोटी घटनाओं के बीच से विकसित होता है और अन्त में उस कथानक का अन्त भी उस के मनोभावों में हो जाता है, जैसे—'नशा'।

(ख) कहानी सूत्र का जन्म एक कारुणिक समस्या से होता है लेकिन उस का विकास उस समस्या के अन्त से होता हुआ चरित्रों के मनोवृत्ति के तादात्म्य से जीवन के एक महान व्यंग पर समाप्त हो जाता है, जैसे, 'कफन'।

---

[1] मानसरोवर : भाग प्रथम, भूमिका, पृष्ठ ६।

(ग) कथानक का धरातल एक स्थूल व्यक्ति होता है, लेकिन उस का विकास उस स्थूल व्यक्ति को देखने वाले विभिन्न पात्रों के हृदयों में उन की मनोवृत्तियों के माध्यम से होता है। जैसे—'मनोवृत्ति'।

(घ) कथानक का मूल सूत्र बिलकुल परोक्ष में छिपा रहता है। उस का परिचय अन्य दो व्यक्ति आपसी बातों में दे देते हैं। फिर विभिन्न पात्रों के माध्यम से वह परीक्षा मूल सूत्र सामने आता है और अन्त में उस की परिसमाप्ति मूल सूत्र से संबंधित पात्रों के मनोभावों में होती है, जैसे, 'कुसुम'।

(ङ) कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त दो व्यक्तियों के कथोपकथन में होता है। यह ढंग नाटकीय ढंग से भी आगे है क्योंकि यहां घटना की न कोई व्याख्या है न घटना की अवतारणा, बस दो व्यक्तियों के कथोपकथनों में उस की परिसमाप्ति हुई है, जैसे, 'जादू'।

(च) कथानक का जन्म, विकास और अन्त तीनों पात्रों के माध्यम से होता है बीच में कोई स्थूल पात्र नहीं आता, जैसे, 'दो सखियाँ'।

(छ) कथानक का आरम्भ वर्णन से, समस्याओं का उलझनों के प्रवेश से और विकास विभिन्न घटनाओं के चरितार्थ से होता है तथा अन्त मुख्य चरित्र मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर होता है। कथानक-निर्माण का यह ढंग जीवन के लम्बे भाग के आधार पर विकसित किए हुए कथानकों के संबंध में हुआ है, जैसे, 'दो कब्रें', 'लैला', 'अलग्योझा', 'तीतर', 'नया विवाह', 'बेटों वाली विधवा', 'गुल्ली डंडा', 'शान्ति', 'ईदगाह', 'दिल की रानी' और 'नेउर' आदि।

चरित्र

विकास काल में ही स्त्री-पुरुष दोनों का चरित्र अपने-अपने रूप में निश्चित हो चुका था। दोनों स्पष्ट रूप में अपनी निर्बलताओं और महानताओं के समय हमारे सामने आ गए थे। यहाँ आकर दोनों चरित्रों में और भी अधिक विकास हुआ है। स्त्री चरित्र अपने दोनो रूपों में आए हैं—अति आधुनिक भी और मर्यादावादी भी, लेकिन दोनों का धरातल पहले से भी यथार्थतम हो गया है। पुरुष चरित्र के संबंध में यह सत्य पूर्णतः चरितार्थ हुआ है।

स्त्री

विकास काल की कहानियाँ जैसे—'नैराश्य लीला', 'शंखनाद' और 'शान्ति' में स्त्री-चरित्र का नितान्त क्रान्तिकारी रूप आया है। ये सब स्त्री-चरित्र

बिल्कुल सीधे और स्पष्ट हैं। फलतः इन में स्त्री सुलभ चरित्र का लोच नहीं है। उत्कर्ष काल में आकर स्त्री के दोनों रूप समान मिलते हैं। 'मिस पद्मा' में स्त्री चरित्र अति आधुनिक दृष्टिकोण से आया है। स्त्रियाँ संश्लिष्टात्मक मनोभावों और चरित्रों की अधिक हो गयी हैं, लेकिन प्रेमचंद ने सर्वत्र उन का मनोविश्लेषण किया है। उन की वास्तविकता भी देखी है। मिस पद्मा एम० ए० एल०-एल० बी० पास होकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती हुई वकालत कर रही है। इन में रूप है, यौवन है और धन भी है। पद्मा को विलास से तो घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से, क्योंकि इन के जीवन का दृष्टिकोण था कि भोग में कोई नैतिक बाधा नहीं, इसे वह देह की एक भूख समझती थी। इस भूख को किसी भी साफ-सुथरी दूकान से शान्त किया जा सकता है। यह तो हुआ मिस पद्मा के चरित्र का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण। लेकिन इस व्यक्तित्व की स्पष्टता और स्वाभाविकता इस में है कि वह प्रसाद नामक एक युवक से अपनी सारी कमजोरियों के साथ लिप्त हो जाती है और इसे वहाँ अपने सारे सिद्धान्त, सारे कानून भूल जाते हैं, वह फिर स्त्री बनकर पुरुष से पराजित होती है। उस का बहुत बुरा परिणाम होता है फलतः यहाँ आधुनिक चरित्र भी अपने पूर्ण स्वाभाविक और यथार्थ रूप में आया है। दूसरी ओर 'कुसुम' में कुसुम, एक अत्यन्त परम्परावादी; आदर्श पत्नी है, लेकिन उस का पति उस से घृणा करता है, और पति-उपेक्षिता कुसुम का दृष्टिकोण है—"मेरे देवता आप हैं, मेरे गुरु आप हैं, मेरे राजा आप हैं। मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और फूल के लिए कर्तव्य और व्रत की भेंट अंचल में सजाए आप की सेवा में आयी हूँ।"[1] लेकिन जब पति अन्त तक उस की उपेक्षा ही करता है, तब इस स्त्री में व्यावहारिकता का दूसरा दृष्टिकोण आता है, जो प्रतिक्रिया स्वरूप नितान्त स्वाभाविक और यथार्थ है। वह क्रोधित होकर कह डालती है, "ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना स्वार्थी इतना दंभी इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा"।[2] इस तरह उत्कर्ष काल में आकर प्रेमचंद के स्त्री चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और अत्यन्त यथार्थ हैं, तथा मानव सुलभ तमाम चढ़ाव-उतार, परिस्थितियां, मनोभावों से अनुप्राणित हैं। आरम्भिक काल

---

[1] मानसरोवर भाग २, कुसुम, पृष्ठ १२

[2] मनसरोवर भाग २, कुसुम, पृष्ठ २४

के स्त्री चरित्र जहाँ पूर्ण आदर्शवादी थे विकास काल में वे ही एक लकीर पर जाते हैं अर्थात् अगर वे क्रान्तिकारी हैं, तो अन्त तक क्रान्तिकारी हैं, प्रगतिवादी या आदर्शवादी हैं, तो अन्त तक वे उसी रूप में रहेंगे। वे साँचे में ढले हुए, उनमें मानव सुलभ लोच कम था, लेकिन यहाँ स्त्री चरित्र, विशुद्ध रूप से मनोभाव-मनोविज्ञान के प्रतिनिधि हैं।

पुरुष

चरित्र का यही पूरा प्रकाश पुरुष चरित्र पर भी चरितार्थ होता है इन के भी चरित्र में वही उत्कर्ष है। आरम्भ की कहानियों में पुरुष चरित्र सपाट था, एकांगी था, विकास काल में वह यथार्थ की ओर झुका उन में अपने आदर्श का मोह था, अतः वह सच्चे रूप में हमारे सामने नहीं आ सका। जैसे आत्माराम आदि से लेकर विकास तक यथार्थ है, लेकिन अन्त में वह आदर्शवादी के परदे में छिप जाता है। इस चरित्र का विकास हमें 'शतरंज के खिलाड़ी' के पुरुष में अवश्य मिला। इन चरित्रों का बहुत कुछ भाग हमारे सामने अवश्य आया, लेकिन अन्त में उन की ऐतिहासिक मर्यादा उन्हें हमारे जीवन से बहुत दूर भगा ले जाती है। 'मुक्ति-मार्ग' के भी पुरुष पात्र बहुत यथार्थ और हम से बहुत नजदीक थे लेकिन उन का भी अन्त आदर्शवाद के परदे में होता है। वस्तुतः यहाँ प्रेमचंद का दृष्टिकोण ही जिम्मेदार था, लेकिन उत्कर्ष काल में वही पुरुष, वही निम्न वर्ग का सर्वहारा चरित्र 'कफन' में आकर अपनी मृतक पतोहू और पत्नी के कफन के लिए चंदे में मिले हुए पैसों से शराब पी डालता है, मजे उड़ा डालता है, और अन्त में अपने निम्नतम चरित्र के धरातल पर खड़ा होकर कहने लगता है—"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढकने का चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर क्या, कफन चाहिए, कफन तो लाश के साथ जल ही जाता है।"[1]

पुरुष चरित्र की यह स्वाभाविकता, यह सच्चापन, प्रायः सब वर्गों के चरित्रों में मिलता है, 'गुल्ली डंडा' के इंजीनियर में भी, 'एक आंच की कसर', के उच्चकोटि के नेता में भी, 'पूस की रात' में हलकू किसान और 'खुचड़' के कुन्दन लाल में भी। ये सब पुरुष, पात्र अपने सच्चे मनोवैज्ञानिक रूप में हमारे सामने उपस्थित हुए हैं, इन में हम अपनापन पाते हैं। इन की एक-एक कमजोरियाँ, उतार-चढ़ाव सब हमारी ही हैं, लगता है कि उत्कर्ष काल के ये पुरुष

---

[1] कफ़न और शेष रचनाएं, कफ़न, पृष्ठ १०

चरित्र हमारे व्यक्तित्व के दर्पण हैं। हम ही वे चरित्र हैं जो इस काल की कहानियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

चरित्र चित्रण और मनोवैज्ञानिक अनुभूति

ऐसे समूचे चरित्र की अवतारणा के पीछे प्रेमचंद की कला की केवल एक प्रेरणा कार्य कर रही है। उन्होंने जहाँ अपने आरम्भिक काल की कहानियों में व्यक्तित्व की अपेक्षा आचार को लिया था वहाँ विकास काल की कहानियों में आचरण की अपेक्षा चरित्रों को लिया तथा उन के मनोभावों की दुनिया में प्रवेश किया था। वहाँ, उत्कर्ष काल में आकर वे चरित्रों के स्थान पर उन की मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों पर उतर आए। चरित्र विकास की दिशा में प्रेमचंद की प्रगति बाह्य जगत् से अन्तर्जगत की ओर थी और वे क्रमशः स्थूलता से मनोभावों की सूक्ष्मता की ओर गए। यही कारण है कि उन के चरित्र आरम्भ से यहाँ अपने सच्चे यथार्थ रूप में हमारे सामने आ गए। इन चरित्रों को न अपने परिचय की आवश्यकता थी, न व्यवस्था की इन की आवश्यकता पूर्व काल में हुआ करती थी, जब चरित्र अपने सामने परदा रख कर हमारे सामने आते थे। यहाँ तो ये स्वयं अपने यथार्थतम रूप में हमारे सामने खड़े हो गए हैं। भूखे पात्र, कफन के चंदे के रुपये से शराब पीने लगे, गोश्त खाने लगे। पूस की रात में वस्त्राहित हलकू किसान जाड़े से काँपता हुआ अपने कुत्ते को अपने अंक में लेकर सो गया। यहाँ चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएं सब बहुत पीछे छूट गयीं, क्योंकि वे सब झूठी थीं, उपदेशात्मक थीं। यहाँ के चरित्र कहानी के चरित्रों की भांति अपने सच्चे रूप में आये।

इस तरह उत्कर्ष काल में आकर समूचे स्त्री-पुरुष चरित्र, सच्चे मानव हृदय, मानव विज्ञान के दर्पण हो गए हैं। वे पूर्णतः सफल रूप से हमारी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व करने लगे। उन में स्वाभाविक मानव चरित्र का-सा आरोह-अवरोह आ गया। वे हमारी सारी निर्बलताओं, कुंठाओं के चित्र बन गए। यही कारण है कि उत्कर्ष काल की कहानियाँ प्रायः चरित्र प्रधान हुई हैं। इस प्रधानता में जहाँ एक ओर प्रेमचंद मानव समाज, मानव व्यक्तित्व के महान कहानीकार हुए हैं वहाँ उनके चरित्र भी सजीव और अमर हुए हैं।

शैली

इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में हमें तात्विक दृष्टि से पहले की

भाँति, कहानी के तीनों भाग अलग-अलग नहीं मिलते। वैसे तो हर गल्प का आरम्भ, विकास और अन्त होना ही है, लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से इन कहानियों में इन का निरूपण कठिन हो गया है। ये कहानियाँ एक चित्र की भाँति हो गयी हैं, जिन में उन का आरम्भ विकास, अन्त तीनों एक होकर आपस में मिल गए हैं।

पहले की भाँति का आरम्भ भाग यहाँ कहानियों में विकास भाग से अलग नहीं है एक में मिला हुआ है। वरन् आरम्भ ही यहाँ विकास के गर्भ में बोलने लगा, क्योंकि यहाँ प्रेमचंद के शब्दों में अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन गयीं। वस्तुतः अनुभूति या मनोवैज्ञानिक सत्य का कोई आरम्भ या उस का कोई भी रूप पकड़ में नहीं आ सका, फलतः इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में कोई अलग आरम्भ ढूँढ़ना कठिन है। यहाँ कहानी अपनी शिल्पविधि में बहुत संयम और अत्यन्त गठन के साथ आई है तथा कला के संयम में उस के सारे अंग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करके एकात्म स्तर पर पहुँच गए हैं।

वैसे अध्ययन की दृष्टि से अगर हम यहाँ की कहानियों के बाह्य पक्ष को लें, तो हमें विकास काल की कहानियों की भाँति यहाँ भी आरम्भ मिलेंगे--परिचय के साथ कहानियों का आरम्भ जैसे-अलग्योझा, प्रेरणा, ईदगाह, दिल की रानी और घर जमाई आदि। भूमिका रहित पात्रों और परिस्थितियों के आवश्यक परिचय के साथ-जैसे मिस पद्मा, लूटड़, पूस की रात, नशा और गुल्ली-डंडा; यहाँ एक नवीनतम ढंग का आरम्भ मिलता है—पत्रों और डायरी के पृष्ठों से कहानी के आरम्भ जैसे-क्रमशः जादू, दो सखियाँ, और पंडित मोटे राम की डायरी, आदि।

आरम्भ काल में कहानियों के आरम्भ भाग को छोड़कर हमने उन के विकास में पाँच अवस्था क्रमों को देखा था—१ : परिचय : २ : घटना की तैयारी : ३ : उत्तेजक घटना : ४ : व्याख्या : ५ : घात-प्रतिघात। वस्तुतः उत्कर्ष काल की कहानियों में कलात्मक ढंग से सम्पूर्ण कहानी अपने में एक समूचा विकास क्रम है। अतएव यहाँ विकास के अवस्था-क्रम अपेक्षाकृत संकुचित हो गए हैं, जैसे, १ : परिचय और घटना की तैयारी : २ : उत्तेजक घटना : ३ : घात-प्रतिघात। यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों में विकास क्रम की व्याख्या की आवश्यकता अब नहीं रही। इस के स्थान पर कहानी में व्यंजना आ गयी

हैं जो कहानी में सर्वत्र व्याप्त मिलेगी। उदाहरण के लिए हम विकास के इन अवस्था-क्रमों को 'कफ़न' नामक कहानी में देख सकते हैं।

(१) परिचय और घटना की तैयारी : "झोंपड़ी के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे अलाव के सामने चुपचाप बैठे हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-पीड़ा से पछाड़ खा रही थी।......घीसू ने कहा—मालूम होता है बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख आ। माधव चिढ़कर बोला—मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देख कर क्या करूँ?

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना काम चोर था कि आध घंटे काम करता तो घंटे भर चिलम पीता। इसी लिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी।[1]"

(२) उत्तेजक घटना : "सवेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा तो उसकी स्त्री ठंडी हो गयी थी। माधव दौड़ा हुआ घीसू के पास आया, फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गयी। कहीं से अनाज मिला; कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू बाजार से कफ़न लाने चला इधर लोग बाँस काटने लगे[2]।"

(३) घात-प्रतिघात : "बाजार में पहुँचकर घीसू बोला—लकड़ी तो उसे जलाने भर को मिल गयी है—क्यों माधव?

माधव बोला—हाँ लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए। तो चलो कोई हलका-सा कफ़न ले लें हाँ और क्या? लाश उठाते-उठाते रात हो जायगी। रात को कफ़न कौन देखता है।

कैसा बुरा रिवाज है कि जीते जी तन ढाकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।

कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है। और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपये पहले मिल जाते तो कुछ दवा-दारू कर लेते। दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज

---

[1] कफ़न और शेष रचनाएं, कफ़न, पृष्ठ १, २

[2] कफ़न और शेष रचनाएं, कफ़न, पृष्ठ ८, ६

की दूकान पर गए, कभी उस दूकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी।"[1]

चरम सीमा

इस संबंध में इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में दो विशेषताएं स्पष्ट हैं। मूलतः यहाँ की कहानियों की चरम सीमाएं मनोवैज्ञानिक अनुभूति के सत्य पर प्रतिष्ठित हुई हैं। फलतः ये चरम सीमाएं नितान्त स्वाभाविक हुई हैं इन में किसी भी तरह का उपसंहार या उपदेश नहीं जोड़ा गया है। कफ़न की चरम सीमा इस का स्पष्ट उदाहरण है।

"तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गए। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहु जी, एक बोतल हमें भी दे देना। इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आयीं और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे। कई कुंजियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

घीसू बोला—कफ़न लाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता। लेकिन लोगों को जवाब क्या देंगे। लोग पूछेगें नहीं? कफ़न कहाँ है?

घीसू हँसा—अबे कह देगें कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा लेकिन फिर वही रुपये देगें। और दोनों खड़े होकर गाने लगे।

'ठगिनी क्यों नैना झमकाए।...ठगिनी...

फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी कूदे भी। गिरे भी मटके भी। भाव भी बनाए। अभिनय भी किए। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।"

उपर्युक्त चरम सीमा का आधार न कोई घटना है न कोई संयोग, बल्कि यह चरम सीमा मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। फलतः ऐसी चरम सीमाओं का विस्तार इतना फैल जाता है, नहीं तो एक पंक्ति में चरम सीमा प्रतिष्ठित हो जाती।

शैली के सामान्य पक्ष की दिशा में यहाँ और भी विकास हुआ है।

---

[1] कफ़न और शेष रचनाएं, कफ़न, पृष्ठ १०

विकास काल में प्रायः ३ प्रकार की विभिन्न शैलियों की कहानियाँ मिली हैं इसके अन्त में आकर उन रूपों के अतिरिक्त और भी कुछ नयी शैलियों की कहानियाँ आती हैं।

(क) डायरी शैली में लिखी हुई—जैसे, पंडित मोटेराम की डायरी।
(ख) पत्रात्मक शैली में लिखी हुई—जैसे, दो सखियाँ।
(ग) चित्रण और वर्णन के संयोग से—जैसे, कुसुम।

कहानी की इन शैलियों के अतिरिक्त उत्कर्ष काल की प्रतिनिधि कहानियों में परिस्थिति चित्रण और घटना वर्णन का स्तर बहुत कलात्मक हो गया है। शैली में सरलता, भावात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाले वर्णन तथा चित्रण की रेखाएँ काफी स्पष्ट हो गयी हैं। ये सीधी तिरछी टेढ़ी होकर परिस्थितियों के अन्तराल में पैठकर वर्णन उपस्थित करने लगी हैं। फलतः बाह्य वर्णनों और चित्रणों में मनोविज्ञान आ गया है। घटना वर्णनों में बाह्य जगत् के चित्रण के साथ मनःस्थिति की आन्तरिक अभिव्यक्ति बिल्कुल साफ हो जाती है जैसे 'विलनहारी का कुआँ', में एक बालिका का घटना चित्रण इतना सरल और मनोवैज्ञानिक है, "बालिका की वह भोली चितवन, याचनामय करुण छवि देखकर उसका मातृ हृदय मानो वात्सल्य स्नेह से स्पंदन करने लगा था। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएँ, ममता, आशीर्वाद, मानो विभूति मात्र अनुराग मानो उसकी आँखों से निकल कर उस बालिका को उसी भाँति रंजित कर देता था जैसे, इंदु का प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है। पर उस बालिका के भाग्य में मातृप्रेम के सुख न बदे थे।"[1]

रूप और छवि वर्णनों में प्रेमचंद ने विकास काल ही में बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी। उन में इस दृष्टि से चित्रात्मकता तथा अत्यन्त सूक्ष्मता से तथ्यों की अभिव्यक्ति में कमाल हासिल हो गया था। यहाँ उन की लेखनी में और सौम्यता—ज़ोर और निखार आ गया है। अब उन के वर्णनों में रूपक प्रतीक और उपमाओं के सहज संयोग होने लगे हैं। इन रेखाओं में सुंदर उभार आ गया है, और उन पर कल्पना तथा मिश्र रंगों के संयोग का सुन्दर अनुपात आ गया है। इन के उदाहरण हमें इस काल की सब प्रतिनिधि कहानियों में मिलेंगे। 'लैला' नामक कहानी में लैला के रूप छवि का वर्णन "लैला के रूप लालित्य की कल्पना करनी हो तो उषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना

[1] मानसरोवर भाग २, विलनहारी का कुआँ, पृष्ठ २००

कीजिए जब नील गगन स्वर्ण प्रकाश से रंजित हो जाता है। बसन्त की कल्पना कीजिए जब बाग में रंग-रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुलें गाती हैं। लैला के स्वर लालित्य की कल्पना करनी हो तो—चांदनी की स्वच्छ कांति की कल्पना कीजिए जो निशा की निस्तब्धता में तारों की गर्दनों में बजती हुई सुनाई देती है।[1]" यहाँ छवि वर्णन अभिधात्मक शैली में न होकर पूर्णतः कल्पनात्मक और व्यंजनात्मक शैली में हुआ है। यहाँ की रेखाएँ उपमा कल्पना व्यंजना और विभिन्न रंगों में डूबकर सम्पूर्ण चित्र को उभार रही हैं। यही उत्कर्ष काल की कहानियों की विशेषता और पहचान है।

दृश्य वर्णनों में भी कल्पना अंकन और व्यंजना से ही इन की रेखाएँ उभारी गयी हैं जैसे, "सामने चंद्रमा के मलिन प्रकाश में ऊँची पर्वत मालाएँ अनन्त के स्वप्न की भाँति गंभीर रहस्यमय संगीतमय मनोहर मालूम होती है। इन पहाड़ियों के नीचे जलधारा की एक रौप्य रेखा ऐसी मालूम होती थी मानो उन पर्वतों का समस्त सगीत, समस्त गांभीर्य सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्वल प्रवाह में लीन हो गया।[2]"

कथोपकथन

कथोपकथन की दिशा में विकास काल की प्रतिनिधि कहानियों में उत्कृष्ट ढंग के कथोपकथन के उदाहरण मिले हैं। फलतः शैली की दृष्टि से उसमें और विशेषता लाना और क्या हो सकता है यह बात और है कि यहाँ प्रेमचंद के कथानकों में अधिक व्यंग वाक्पटुता सूक्ष्मता और ईमानदारी आ गयी है। कथोपकथन से कथोपकथन का निकलना एक वाक्यों का दूसरे वाक्य का पृष्ठभूमि बन जाना यहाँ के कथोपकथनों की विशेषता है। इस काल की प्रतिनिधि कहानियाँ, जैसे—कफ़न, गुल्लीडंडा, पूस की रात, मिस पद्मा, नशा, कामना तरु, लैला, कुसुम आदि में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं। जैसे, कफ़न में—

"घीसू बोला—कफ़न लगाने से क्या मिलता है? आखिर जल ही तो जाता है। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला—मानों देवताओं को अपनी निस्पृहता का साक्षी बना रहा हो। दुनिया का दस्तूर है नहीं तो लोग बांभनों को

---

[1] मानसरोवर भाग ३, लैला, पृष्ठ १४८

[2] मानसरोवर भाग ४, सुहाग का शव, पृष्ठ २०२

इसको अपने हाथों दे देते। कौन देखता है, परलोक में मिलता है कि नहीं। बड़े आदमियों के पास धन है फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?

लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं। कफ़न कहाँ है।

घीसू हँसा—अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा लेकिन फिर वही देंगे रुपये[1]।"

वैसे इस काल की कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जो विशुद्ध ढंग से कथोपकथनात्मक हैं उन का आरम्भ, विकास, अन्त तीनों कथोपकथनों से ही हुआ है जैसे—डाकू इत्यादि।

लक्ष्य और अनुभूति

विकास काल में प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के लक्ष्य के संबंध में कहा था—"हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है। क्योंकि—कुछ देर के लिए तो हमें इन कुत्सित व्यवहारों से अलग रहना चाहिए, नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है[2]।"

उत्कर्ष काल में आकर उन की कहानियों के लक्ष्य में आमूल परिवर्तन हो गया—"कहीं हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अंग दिखाना है। यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्व निकले वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो[3]।"

अतएव अपने-अपने लक्ष्यों के कारण क्रमशः विकास काल की कहानियों का प्रायः घटना संयोग, विचित्रता की ओर बढ़ता रहा और उत्कर्ष काल की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों की ओर। कफ़न, नशा, पूस की रात, मिस पद्मा, कुसुम आदि कहानियाँ मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर लिखी गयी हैं। प्रेमचंद को गरीबी, शोषण और पूस की रात की ठंडक की अनुभूति थी। उन्होंने उसी अनुभूति की प्रेरणा से कफ़न और पूस की रात के कथानक को गढ़ा और उन में उन्हीं सच्ची अनुभूतियों को वाणी दे दी अथवा अनुभूतियाँ ही घनीभूत होकर कहानी की रेखाओं में अभिव्यक्त हो गयीं और इन कहा-

---

[1] कफ़न और शेष रचनाएँ, पृष्ठ ११ आरम्भ, संस्करण १९३७

[2] प्रेमप्रसून—भूमिका, पृष्ठ ६

[3] मानसरोवर प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ५

नियों के माध्यम से प्रेमचंद ने मानवता के शाश्वत प्रश्नों को उठाया है। यहाँ इन कहानियों में न कोई चलती घटना है न संयोग बल्कि यहाँ प्रेमचंद ने मानववाद और मानवता के चिरंतन संघर्षों और प्रतिक्रियाओं को स्पर्श किया है। अतः यहाँ की कहानियों का लक्ष्य यथार्थ चित्रण और मानव हृदय का विश्लेषण है। जो भावनाएँ जो संघर्ष जो कुंठाएं मनुष्य के मन में भर रही हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति इन कहानियों की आत्मा है।

यहाँ प्रेमचंद की व्याख्या स्वयं सिद्ध हो जाती है, कहानी में कई रंगों, कई चरित्रों, और कई घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा। वह अब केवल एक आत्मा का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्शी चित्रण है। गल्प का आधार अब घटना नहीं मनोविज्ञान की अनुभूति है और सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है।

समग्र रूप में यहाँ आकर हमें प्रेमचंद की कहानियों में वह अन्त वह वाणी मिलने लगी जो हमारे यथार्थ जीवन का अन्त और वाणी है और इन वाणी तथा अन्त के पीछे वर्तमान आर्थिक, सामाजिक मान्यताओं के प्रति उन की विद्रोही भावना कार्य कर रही है। इस विद्रोह क्रान्ति की चेतना को उन्होंने कभी हलकू के मुख से कहलवाया है, "तकदीर की खूबी है मजूरी हम करें मजा दूसरे लूटें" और कभी घीसू के मुख से, "वह न बैकुण्ठ जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे जो गरीबों को दोनों हाथ से लूटते हैं, अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।" प्रेमचंद ने यहाँ जिन समस्याओं को लिया है उन को मुख्यतः आर्थिक धरातल पर चढ़ाकर देखा है। यहाँ आकर प्रेमचन्द ने सिद्ध करके देख लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओं के पीछे आर्थिक व्याख्या का मुख्य हाथ है। समस्या के भी प्रसंगों में प्रेमचंद ने यहाँ किसान, मजदूर, सेवक, प्रोफेसर आदि की समस्याओं को लिया है और सब के पीछे आर्थिक कुव्यवस्था के प्रश्नों को मुख्य रूप से उठाया है। विशुद्ध सामाजिक समस्याओं के प्रसंग में उन्होने मुख्यतः विवाह और प्रेम की समस्याएं ली हैं जिन पर मिस पद्मा, कुसुम, दो कब्रें, अलग्योझा ऐसी अमर कहानियों की सृष्टि हुई है।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के आधार पर खड़ी हुई कहानियाँ इस काल की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं क्योंकि इन का संबंध घटना या संयोग से न होकर मानवता से है, मानवता के चिर प्रश्नों और शाश्वत संवेदनाओं से है।

प्रेमचन्द की कहानियों पर एक विहंगम दृष्टि

पिछले पृष्ठों में प्रेमचन्द की कहानियों की विशेषताओं के अध्ययन में, सर्वांश रूप से कहानी के दो पक्ष, १. भाव पक्ष २. भाषा पक्ष पर प्रकाश नहीं पड़ सका है। वस्तुतः कहानी के रूप निर्माण में भाव पक्ष और भाषा पक्ष ही मुख्य साधन हैं, एक तन की आत्मा है, एक तन का शरीर या अभिव्यंजना। इन दोनों का संयोग भी बहुत अन्योन्याश्रित है। भाव, भाषा के ही माध्यम से व्यक्त होता है और भाषा का सम्पूर्ण रूप भाव है और दोनों का कलात्मक समन्वय कहानी का प्राण है।

भाव पक्ष

प्रेमचन्द की कहानी में भाव पक्ष की जितनी विभिन्नता और व्यापकता है, उतनी हिन्दी के और किसी कहानीकार में नहीं है, मोटे रूप से इन का भाव पक्ष ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, व्यक्तिगत दिशाओं में फैला हुआ है।

ऐतिहासिक भाव पक्ष की दिशा में प्रेमचन्द जी बहुत सीमित थे। वस्तुतः उन की कहानियों के भाव पक्ष का मूलाधार वर्तमान समाज और व्यक्ति था, इतिहास नहीं। प्रेमचन्द ने अपने प्रारम्भिक काल में रानी सारन्धा, राजा हरदौल, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगनू की चमक और धोखा कहानियाँ ऐतिहासिक भाव पक्ष से लिखी थीं। इन कहानियों के भाव पक्ष में ऐतिहासिक सत्य ढूँढना बिल्कुल अप्रासंगिक है। रानी सारन्धा की सृष्टि तो निश्चित रूप से इतिहास, कल्पना और लोक कथा, सारन्धा महाराज की गाथा के संयोग से हुई है। राजा हरदौल, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगनू की चमक, और धोखा का आधार इतिहास के राजपूत और मराठा काल से सम्बन्धित है। यहाँ इतिहास के गौरव पूर्ण घटनाओं को लेकर उन पर अपनी कल्पना और मर्यादा के पुट से प्रेमचन्द ने इन कहानियों में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से की है। अतीत के भावों में जहाँ उन्माद और जीवन मिलता है वहाँ स्वर्ण पृष्ठों से हमें फिर एक बार चेतन्य और जागरूक होना पड़ता है। इस के अनन्तर प्रेमचन्द ने इतिहास के मुसलमान काल के वैभव ऐश्वर्य और पतन के भाव पक्ष से शतरंज के खिलाड़ी, वज्रपात, दिल की रानी और लैला कहानियों की सृष्टि की। इन कहानियों में ऐतिहासिक मनोभावों और मर्यादाओं को व्यंग से अधिक प्रतिष्ठित किया गया है, कथा वर्णन और प्रशंसा से कम। इन ऐतिहासिक कहानियों में पहले की अपेक्षा कलात्मकता अधिक है, भावों

प्रेमचन्द की कहानियों पर एक विहंगम दृष्टि

पिछले पृष्ठों में प्रेमचन्द की कहानियों की विशेषताओं के अध्ययन में, संक्षेप रूप से कहानी के दो पक्ष, १. भाव पक्ष २. कला पक्ष पर प्रकाश डाला जा चुका है। वस्तुतः कहानी के रूप निर्माण में भाव पक्ष और कला पक्ष ही प्रधान तत्व हैं, एक तत्व की आत्मा है, एक तत्व का शरीर या अस्तित्व। इन दोनों का संबंध भी अटूट अन्योन्याश्रित है। भाव, कला के ही माध्यम से व्यक्त होता है और कला का मूर्त रूप भाव है और दोनों का कलात्मक सामंजस्य कहानी का प्राण है।

भाव पक्ष

प्रेमचन्द की कहानी में भाव पक्ष की जितनी विविधता और व्यापकता है, उतनी हिन्दी के और किसी कहानीकार में नहीं है, मोटे रूप से इन का भाव पक्ष ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, व्यक्तिगत दिशाओं में फैला हुआ है।

ऐतिहासिक भाव पक्ष की दिशा में प्रेमचन्द जी अधिक सीमित थे। वस्तुतः उन की कहानियों के भाव पक्ष का मूल उद्गम समाज और व्यक्ति था, इतिहास नहीं। प्रेमचन्द ने अपने आरम्भिक काल में रानी सारंधा, राजा हरदौल, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगनू की चमक और धोखा कहानियाँ ऐतिहासिक भाव पक्ष से लिखी थीं। इन कहानियों के भाव पक्ष में ऐतिहासिक सत्य ढूँढना बिल्कुल अप्रासंगिक है। रानी सारंधा की सृष्टि तो निश्चित रूप से इतिहास, कल्पना और लोक कथा, सारंधा महाराज की संवेदना के संयोग से हुई है। राजा हरदौल, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगनू की चमक, और धोखा का आवरण इतिहास के राजपूत और सामंत काल से सम्बन्धित है। यहाँ इतिहास के गौरव पूर्ण घटनाओं को लेकर उन पर अपनी कल्पना और मर्यादा के पुट से प्रेमचन्द ने इन कहानियों में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से की है। अतीत के भावों में जहाँ उन्माद और जीवन मिलता है वहाँ स्वर्ण पृष्ठों से हमें फिर एक बार चैतन्य और जागरूक होना पड़ता है। इस के अनन्तर प्रेमचन्द ने इतिहास के मुसलमान काल के वैभव ऐश्वर्य और पतन के भाव पक्ष से शतरंज के खिलाड़ी, वज्रपात, दिल की रानी और लैला कहानियों की सृष्टि की। इन कहानियों में ऐतिहासिक मनोभावों और मर्यादाओं को व्यंग से अधिक प्रतिष्ठित किया गया है, कथा वर्णन और प्रशंसा से कम। इन ऐतिहासिक कहानियों में पहले की अपेक्षा कलात्मकता अधिक है, भावों

...जैक और व्यक्तिगत भाव धाराएं अपने अपूर्व विस्तार और विभिन्नता में ...ाँ फैली हुई हैं, इन के धरातलों पर प्रतिष्ठित प्रेमचन्द की कहानियाँ उन भावों के प्रेम-मूर्ति रूप हैं।

भाषा पक्ष

प्रेमचंद अपनी कहानियों में भाव पक्ष के इतने विस्तार और प्रसार में जाने से क्यों और कैसे समर्थ हुए ? इस का एक ही उत्तर है, प्रेमचन्द भाव और अनुभूति के साथ ही साथ भाषा के भी बहुत बड़े बादशाह थे। उनके भाषा पक्ष में अरबी, फ़ारसी फिर इन के संयोग से उर्दू, दूसरी ओर हिन्दी स्टैण्डर्ड हिन्दी, फिर बोल-चाल की हिन्दी और फिर उर्दू और हिन्दी के सुन्दर समन्वय से हिन्दुस्तानी, ये तीन दिशाएं अपूर्व हैं। प्रेमचन्द का भाषा पक्ष इतना समृद्ध और विशाल था कि उस में पंडित भी अपने अनुकूल भाषा पा जाता था, मौलवी भी, जज वकील भी, और गाँव के गरीब किसान मजदूर भी। अतः प्रेमचन्द की कहानी की भाषा में कहीं ठेठ उर्दू, कहीं फ़ारसी मिश्रित उर्दू, कहीं हिन्दी मिश्रित उर्दू, कहीं हिन्दुस्तानी, कहीं संस्कृत गर्भित हिन्दी कहीं प्रान्तीय और प्रादेशिक शब्दों के सुन्दर समन्वय से भाषा मिलती है अर्थात् प्रेमचन्द वातावरण और पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं।

'दिल की रानी' में उर्दू भाषा का रूप—"तुम कहते हो, ख़ुदा ने तुम्हें ऐश करने के लिए पैदा किया है। मैं कहता हूँ यह कुफ्र है ख़ुदा ने इंसान को बन्दगी के लिए पैदा किया है और इसके खिलाफ़ जो कोई कुछ कहता है वह काफ़िर है, जहन्नुमी है। रसूले पाक, हमारी जिन्दगी को पाक करने के लिए, हमें सच्चा इंसान बनाने के लिए थे, आए थे, हमें हराम की तालीम देने के लिए नहीं तैमूर दुनिया को इस कुफ्र पाक कर देने का बीड़ा उठा चुका है। रसूले पाक के कदमों की क़सम, मैं बेरहम नहीं हूँ ज़ालिम नहीं हूँ, ख़ूँख़ार नहीं हूँ, लेकिन कुफ़्र की सज़ा मेरे ईमान में मौत के सिवा कुछ नहीं है।"

'रसिक संपादक' में, हिन्दी भाषा का रूप—"और कविताएं तो हृदय की हिलोरें, विश्व वीणा की अमर तान, अनन्त की मधुर वेदना, निशा का नीरव गान होते थे। प्रशंसा के साथ दर्शनों उत्कृष्ट अभिलाषा भी प्रकट की जाती थी। यदि कभी आप इधर से गुजरें तो मुझे न भूलिएगा ज़िसने ऐसी कविता की सृष्टि की है, उसके दर्शनों का सौभाग्य मुझको मिला तो, अपने धन्य मानूँगा।"

'बेटों वाली विधवा' में, हिन्दुस्तानी भाषा का स्वरूप—"पर ज्यों-ज्यों

समय बीतने लगा, उस पर हकीकत खुलने लगी; इस घर में उसकी हैसियत नहीं रही जो दस बारह दिन पहले थी। संबंधियों के यहाँ से न्योते में शक्कर, मिठाई, दही, अँचार आदि आ रहे थे बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई उससे पूछने नहीं आता।"

इस तरह प्रेमचन्द भाषा के बहुत बड़े धनी थे। जैसी आवश्यकता होती स्वाभाविकता लाने के लिए वे उसी तरह की भाषा का प्रयोग करते, वैसे प्रेमचन्द की भाषा, हिन्दुस्तानी है—स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा, पर इन भाषा में प्रेमचन्द ने भाषा को चुस्ती, मुहावरों की सजावट, कहावतों और सूक्तियों के अपूर्व समन्वय से अपना व्यक्तित्व डाल दिया है और इस अनोखी भाषा को लोगों ने 'प्रेमचन्दी भाषा' की संज्ञा दी है।

प्रेमचन्द और आदर्शवाद

प्रेमचंद के तीनों कहानी काल में आदर्शवाद के तीन पहलू मिलते हैं। अपने प्रारम्भिक काल में वे पूर्णतः आदर्शवादी थे। प्रेमचन्द की यह आदर्श-वादिता यहाँ कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा, आदि कई दिशाओं में प्रतिष्ठित हुई है। अतः आदर्शवादिता की इन्हीं विभिन्न इकाइयों विभिन्न भाव-भूमियों पर प्रारम्भिक काल की कहानियाँ खड़ी की गई हैं, सप्त सरोज, नव निधि, और प्रेम पचीसी, संग्रह की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। इस आदर्श भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचन्द ने इन कहानियों में द्विपक्षता-सत् और असत् दो विरोधी पक्षों को प्रतिष्ठित किया है तथा हमेशा असत् पर सत् की जीत दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई है। इसी सत्य के धरातल पर बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश, परीक्षा, अमावस्या की रात्रि और पछतावा, आदि कहानियाँ निर्मित हुई हैं तथा यहाँ सर्वत्र, किसी न किसी तरह असत् पर, सत्, की विजय दिखाई गई है।

विकास काल में आकर प्रेमचन्द का आदर्शवाद यथार्थ की ओर झुक गया और दोनों के समन्वय से उन की कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई। विकास काल की कहानियों के लक्ष्य बिन्दु को बताते हुए प्रेमचन्द ने स्वयं प्रेम प्रसून, की भूमिका में कहा है, "हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।" ईश्वरी न्याय, महातीर्थ, धर्म संकट, बौड़म, बैर का अंत, सुहाग की साड़ी, मूढ़, लाल फीता, आत्माराम आदि कहानियों की

समय बीतने लगा, उस पर हकीकत खुलने लगी; इस घर में उसकी हैसियत नहीं रही जो दस बारह दिन पहले थी। संबंधियों के यहाँ से न्योते में शक्कर, मिठाई, दही, अँचार आदि आ रहे थे बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई उससे पूछने नहीं आता।"

इस तरह प्रेमचन्द भाषा के बहुत बड़े धनी थे। जैसी आवश्यकता होती स्वाभाविकता लाने के लिए वे उसी तरह की भाषा का प्रयोग करते, वैसे प्रेमचन्द की भाषा, हिन्दुस्तानी है—स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा, पर इन भाषा में प्रेमचन्द ने भाषा को चुस्ती, मुहावरों की सजावट, कहावतों और सूक्तियों के अपूर्व समन्वय से अपना व्यक्तित्व डाल दिया है और इस अनोखी भाषा को लोगों ने 'प्रेमचन्दी भाषा' की संज्ञा दी है।

प्रेमचन्द और आदर्शवाद

प्रेमचंद के तीनों कहानी काल में आदर्शवाद के तीन पहलू मिलते हैं। अपने प्रारम्भिक काल में वे पूर्णतः आदर्शवादी थे। प्रेमचन्द की यह आदर्शवादिता यहाँ कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा, आदि कई दिशाओं में प्रतिष्ठित हुई है। अतः आदर्शवादिता की इन्हीं विभिन्न इकाइयों विभिन्न भाव-भूमियों पर प्रारम्भिक काल की कहानियाँ खड़ी की गई हैं, सप्त सरोज, नव निधि, और प्रेम पचीसी, संग्रह की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। इस आदर्श भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचन्द ने इन कहानियों में द्विपक्षता-सत् और असत् दो विरोधी पक्षों को प्रतिष्ठित किया है तथा हमेशा असत् पर सत् की जीत दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई है। इसी सत्य के धरातल पर बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश, परीक्षा, अमावस्या की रात्रि और पछतावा, आदि कहानियाँ निर्मित हुई हैं तथा यहाँ सर्वत्र, किसी न किसी तरह असत् पर, सत्, की विजय दिखाई गई है।

विकास काल में आकर प्रेमचन्द का आदर्शवाद यथार्थ की ओर झुक गया और दोनों के समन्वय से उन की कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई। विकास काल की कहानियों के लक्ष्य बिन्दु को बताते हुए प्रेमचन्द ने स्वयं प्रेम प्रसून, की भूमिका में कहा है, "हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।" ईश्वरी न्याय, महातीर्थ, धर्म संकट, बौड़म, बैर का अंत, सुहाग की साड़ी, मूढ़, लाल फीता, आत्माराम आदि कहानियों की

लेने जाते हैं वहाँ एकाएक अपनी सारी झूठी मर्यादाओं मान्यताओं को भूल कर अपनी आत्मा की यथार्थतम भूमि पर उतर पड़ते हैं।

इस तरह कहानीकार प्रेमचन्द अपनी कहानियों के आरम्भ में विशुद्ध आदर्शवाद लेकर चले थे उन के विकास काल में वही आदर्शवाद यथार्थोन्मुख हो गया और उत्कर्ष काल में प्रेमचन्द पूर्ण यथार्थवादी हो गए। इस भाँति किसी एक कहानीकार में आदर्श यथार्थ का सुन्दर समन्वय और इन दोनों से एकाएक दूर हट कर यथार्थ की प्रतिष्ठा देखना हिन्दी कहानी-साहित्य में अनोखी घटना है।

उपसंहार

प्रेमचन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को एक दृष्टि में देखने से हमें प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य में सब से बड़े और कृती व्यक्ति लगते हैं। उन से हम एक ही विन्दु पर कल्पना आदर्श, यथार्थ और लोकमंगल भावना का सुन्दरतम समन्वय पाते हैं।

उन के कहानीकार व्यक्तित्व-निर्माण में पश्चिम और पूर्व, प्राचीन और आधुनिक कहानी कला के समन्वय का सुन्दरतम प्राणप्रतिष्ठा हुई है। पश्चिम के प्रतिनिधि कहानीकार जोला, मोपांसा चेखव, टालस्टाय, हार्डी, स्टीवेंसन, बाल्जाक, गाल्र्सवर्दी, वेनेट, और हेनरी आदि को कहानियों को उन्हों ने पढ़ा था और उन से कहानी-कला सीखी थी तथा उस कहानी-कला में भारतीय आत्म भाव और युगमन को इतनी सफलता से पिरोया कि आश्चर्य होता है। फ्रांस का यथार्थवाद और टालस्टाय का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इन के व्यक्तित्व निर्माण के विशिष्ट तत्त्व थे।

भारत का प्राचीन कथा साहित्य पंचतन्त्र और कथा सरित्सागर के अतिरिक्त उन्हों ने अरबी, फ़ारसी से 'दास्ताने अमीर हाम्जा' और 'बुस्ताने ख्याल' को खूब पढ़ा था और इन से प्राचीन परम्परा की कथा-शैली और कहानी-शिल्प को देखा था। पूरब की आधुनिक कहानी-कला की दिशा में टैगौर और आंशिक रूप में प्रभातकुमार जैसे कहानीकारों से प्रभावित हुए थे और उन की कला से भी कुछ सीखा था। लेकिन अध्ययन की इन सारी श्रेणियों से प्रेमचन्द अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व में सब से महान और सब से अलग थे, उन्हों ने अपनी कहानियों में जिस निजत्व की प्रतिष्ठा की है वह हिन्दी कहानी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

प्रेमचन्द संस्थान के कहानीकार

पिछले पृष्ठों में प्रेमचन्द की कहानी-कला के अध्ययन से स्पष्ट है कि इन की शिल्पविधि कुछ मुख्य विशेषताओं से निर्मित हुई है। इन शिल्पगत विशेषताओं में इतनी सहज स्वाभाविक कलात्मक प्रेरणा और प्राणशक्ति रही है कि प्रेमचन्द की धारा में प्रायः इन का अनुकरण युग प्रवर्तित हुआ है। विकास युग के अधिकांश कहानीकार निश्चित रूप से इसी शिल्पविधि के ही प्रकाश में कहानी-साहित्य की सृष्टि करते रहे। वस्तुतः प्रेमचन्द की कहानी-शिल्पविधि की ये मुख्य विशेषताएं संक्षेप में गिनाई जा सकती हैं—कथानक निर्माण में क्रमबद्धता, इतिवृत्तात्मकता तथा संयोग घटनाओं की प्रेरणा, चरित्र व्यवस्था में प्रायः यथार्थ और विरोधी तत्वों का समावेश अथवा चरित्र प्रतिष्ठा में मनोवैज्ञानिकता इन का मुख्य आधार रहा है, शैली के व्यापक प्रकाश में प्रेमचन्द की कहानियों का आरम्भ, विकास और चरम सीमा का निर्माण क्रमशः भूमिकात्मक और परिचयात्मक, घटनात्मक तथा वर्णनात्मक होता है। चरम सीमा सोद्देश्यता तथा संयोग घटनाओं के फलस्वरूप से आती है। लेकिन इन की स्वाभाविकता पर प्रायः शंका नहीं उपस्थित की जा सकती। शैली की सामान्य दिशा में प्रेमचन्द की कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक कथात्मक ही हैं। यद्यपि उन्होंने अन्यान्य शैलियों को भी अपनाया है। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण कहानी-साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्हों ने कभी भी जागरूक होकर कहानी-शिल्पविधि को उतना महत्व नहीं दिया है जितना कि इस के भाव पक्ष को। अर्थात् विशुद्ध शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियाँ और उन की शिल्पविधि उस राजपथ की भांति है जिस से कोई भी निरापद सहज रूप से लक्ष्य तक पहुँच सकता है। लक्ष्य और अनुभूति की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियों की सृष्टि सदैव एक अनिश्चित लक्ष्य और सोद्देश्यता को लेकर हुई है। अनुभूति, वस्तुतः प्रेरणा तत्व में न आकर चरित्र-चित्रण तथा चरित्र-निर्माण में प्रयुक्त हुई है। अतएव शिल्पविधि के इन तत्वों और अंगों से प्रेमचन्द की कहानी-कला के एक स्वतंत्र संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है और इस संस्थान में, प्रभाव, प्रेरणा आदि की दृष्टि से हिन्दी के अधिकांश कहानीकारों को शिल्पगत दिशा और अभिव्यक्ति का माध्यम मिला है।

विश्वम्भर नाथ जिज्जा

भाव पक्ष की दृष्टि से जिज्जा की कहानियाँ प्रसाद संस्थान में आती हैं। लेकिन विशुद्ध शिल्प की दृष्टि से इन की कहानियाँ प्रेमचन्द संस्थान में ही आती

है। इन की प्रारम्भिक कहानियों में विदीर्ण[1] हृदय तथा विकास की कहानियों में परदेशी[2] आदि कहानियाँ ली जा सकती हैं। विदीर्ण हृदय की एक वस्तु का निर्माण दो सखियों के संयोगात्मक मिलन से होता है। न जाने कब बिछुड़ी हुई सखी अपनी बीती हुई करुण कहानी कहती है और अंत में विश्राम करके मर जाती है, तथा अपनी सखी को विदीर्ण हृदया के रूप में तड़पती छोड़ जाती है। परदेशी में, विधवा जमुना के दरवाजे पर संयोग वश एक परदेशी, काशी, सूर्य, ग्रहण, स्नान के संबंध में आकर टिकता है। जमुना भाववश उसे अपना हृदय दे डालती है, लेकिन एक दिन परदेशी एकाएक न जाने कहाँ चला जाता है, फिर कभी नहीं लौटता, इस तरह ये दोनों कहानियाँ वर्णनात्मक ढंग से कही गई है। इन के विकास-क्रम पर संयोग घटना के तत्त्व स्पष्ट हैं, तथा इन की सोद्देश्यता भी उभरी हुई है।

जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी में हास्यरस के कहानीकार, जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियाँ इन्दु, और गल्पमाला के माध्यम से आईं। इन्दु की पिकनिक कहानी इन की प्रारम्भिक कला के उदाहरण में रखी जा सकती है, जिस में इन्होंने वर्णनात्मकता, घटनाओं, संयोगों द्वारा रोचकता और हास्य लाने का प्रयत्न किया है। गल्प-माला, की दो कहानियाँ, मैं न बोलूँगी[3] और भूठमूठ[4] में केवल घटना-क्रमों के सहारे हास्य की निष्पत्ति हुई हैं। ये दोनों कहानियाँ इन की विकसित कला के उदाहरण हैं। आगे चलकर लम्बी दाढ़ी, कहानी संग्रह में इन की कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो गया है। लेकिन इन समस्त कहानियों में सर्वथा संयोगों, विविध विरोधी परिस्थितियों के निर्माण में अवांछनीय कटाक्ष और अतिरंजित वर्णनों, प्रसंगों की अवतारणा हुई है। फलतः इन की कला का स्तर कुछ गिर गया है। शिष्ट हास्य का सर्वथा अभाव रह गया है। इस का सब से बड़ा कारण, इन की चरित्र-चित्रण कला का दोष है। इन्होंने प्रायः चरित्रों अप्रासंगिक और अस्वाभाविक प्रसंगों, परिस्थितियों में चल कर कहानी में हास्य, विनोद लाने का

---

[1] इन्दु, १९१५ ई० कला ६, खंड २ किरण १

[2] मधुकरी, प्रथम खंड

[3] हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक २

[4] हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक ४

प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इन के चरित्रों से हमारा न तो साधारणी-करण हो पाता है, न हम में उन के प्रति संवेदना या सहानुभूति ही उत्पन्न हो पाती है। इस दिशा में प्रेमचन्द की कुछ हास्य प्रधान कहानियाँ, जैसे, बूढ़ी काकी, और मोटेराम शास्त्री, आदि बहुत सफल कहानियाँ हैं।

राजा राधिकारमण सिंह

भाषा, शैली और वर्णन, प्रणाली में राजा राधिकारमण सिंह में बहुत प्रवाह है। शिल्पविधान में इन की कहानियाँ प्रेमचन्द की कला से बहुत प्रभावित हैं। ये प्रेमचन्द के आरम्भ काल से आज तक बराबर कहानियाँ लिखते आ रहे हैं, लेकिन कहानियाँ अपनी शिल्पविधि में प्रेमचन्द संस्थान से बाहर नहीं जा सकी हैं। इस के उदाहरण में गाँधी टोपी, और कुसुमांजलि कहानी संग्रह से कहानियाँ ली जा सकती हैं। कथा-वस्तु के निर्माण में इन्हों ने घटनाओं और इतिवृत्तात्मकता का बहुत सहारा लिया है। फलतः इन की कहानियाँ बहुत लंबी, विस्तृत हो गई हैं, जैसे गाँधी टोपी कहानी, ४५ पृष्ठों की कहानी है। इन की कहानियों की सोद्देश्यता और आदर्शवादिता सर्वत्र स्पष्ट है। दरिद्र नारायण, इस हाथ से दे उस हाथ से ले, बिजली, मरीचिका आदि कहानियाँ उस के उदाहरण हैं। निर्माण-शैली में, कहानियों में बार-बार घटना-चक्रों का सहारा लिया गया है। इन की कहानियों की प्रेरणा बिन्दु प्रायः सामयिक समस्याएं तथा सामाजिक स्थितियाँ रही हैं। इन्हीं की संवेदना से इन की कहानियों का निर्माण होता है, जिन में स्वभावतः वर्णनात्मकता, घटना-क्रमों को मुख्य साधन बनाना पड़ा है।

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक

कौशिक जी की कहानी-कला में पूर्ण रूप से प्रेमचन्द कला का प्रति-निम्बित्व हुआ है। इस का अध्ययन हमें इन के दो प्रतिनिधि कहानियों यह प्रतिमा और ताई, कहानियों के शिल्पविधान में मिल सकता है। यह प्रतिमा और ताई दोनों कहानियों की संवेदनाएं पारिवारिक धरातल से ली गई हैं। इन में पति-पत्नी, दो चरित्रों को लिया गया है, लेकिन यह प्रतिमा में जहाँ पति पत्नी के सहज प्रेमनिष्ठा की समस्या है वहाँ ताई में पति-पत्नी दूसरे के बच्चे के प्रति स्नेह वात्सल्य की समस्या है। यह प्रतिमा में कथानक निर्माण चमेली और उस के पति के वैवाहिक जीवन को लेकर कथासूत्र के रूप में आरम्भ होता है, कथानक का विकास उन के गृहस्थी के विविध क्षेत्रों में होकर

अंत में चमेली की मृत्यु पर जाकर समाप्त होता है। शैली के व्यापक रूप में कहानी की निर्माण-शैली दोनों में दो तरह की हैं। वह प्रतिमा में प्रथम पुरुष में कहानी की अभिव्यक्ति हुई है तथा ताई अन्य पुरुष शैली में, लेकिन दोनों कहानियाँ सर्वथा वर्णित और कथित हैं, व्यंजित नहीं। ताई कहानी की समस्या अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक समस्या है। रामजी दास अपने भतीजे मनोहर को शिशुवत् और पुत्रवत् प्यार देते हैं। इस से उन की पत्नी रामेश्वरी को स्पर्द्धा होती है। यद्यपि वह भी अपने अवचेतन रूप में उसे मातृत्व और स्नेह की भावना देती रहती है लेकिन इस पर ईर्ष्या जलन की भावना एक मोटा पर्दा डाले रहती है। फलतः संपूर्ण कहानी में स्पर्द्धा और सहज स्नेह का अंतर्द्वन्द्व होता रहता है। लेकिन शैली के सामान्य पक्ष में इस मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व की भी अभिव्यक्ति वर्णनों द्वारा हुई है अर्थात् कहानी के विकास और निर्माण के लिये सब कुछ कहानीकार को ही कहना पड़ा है। वस्तुतः दोनों कहानियों में यथार्थ और आदर्श का संघर्ष सफलता से व्यक्त हुआ है और इन दोनों कहानियों के अंत में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा भी स्पष्ट है। अतएव ये कहानियाँ एक ओर इतिवृत्तात्मक हुई हैं, दूसरी ओर इन का विकास संयोगों और कार्यों के माध्यम से हुआ है। कहानी का विकास भाग और चरम सीमा के उपरान्त भी सोद्देश्यता भूमिका और उपसंहार के रूप में बार-बार उभर आई है। वह प्रतिमा और ताई, दोनों में दो विरोधी भावधारा के चरित्रों को अंत में आदर्शवादी दिखाया गया है। दोनों का आपस में समन्वय सिद्ध किया गया है। वस्तुतः इसी सोद्देश्यता की प्रेरणा से इन की कहानी कला में उपर्युक्त सभी तत्त्व आए हैं।

पंडित ज्वालादत्त शर्मा

पंडित ज्वालादत्त शर्मा, अपनी कहानियों में इन का कथा शिल्पी व्यक्तित्व समाज सुधारक और जीवन संघर्षों के चित्रीकरण में स्पष्ट है। इन की समस्त कहानियां मुख्यतः वर्णनात्मकता के माध्यम से आई हैं जिसे हम शैली की दृष्टि से ऐतिहासिक शैली कह सकते हैं।

कहानियों के विकास तथा चरम सीमा में संयोगों और दैवी घटनाओं का उपयोग अप्रत्याशित ढंग से हुआ है। इन दोनों तत्त्वों के सहारे इन्हों ने अपनी कहानियों में यथार्थ संघर्ष और सामाजिक परिस्थितियों, रूढ़ियों के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा की है। विधवा, अनाथ बालिका और दर्शन आदि इन की प्रसिद्ध कहानियाँ इस के उदाहरण हैं।

गोविन्द वल्लभ पन्त

गोविन्द वल्लभ पन्त अपने भावात्मक पक्ष में, वस्तुतः प्रसाद के व्यक्तित्व के समीप हैं। जूठा आम, और मिलन मुहूर्त शीर्षक कहानियों में पन्त जी की कवित्वपूर्ण शैली और भावुकता-प्रदर्शन से वातावरण बहुत काव्यमय हो गया है। लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से पंत जी की कहानियाँ प्रेमचन्द संस्थान के अन्तर्गत आती हैं। जूठा आम, में कहानी के कथानक का विकास दैवगत संयोग से होता है। माया और कहानी के 'मैं' में सच्चा आकर्षण है, एक तरह से ये दोनों अव्यक्त ढंग से एक दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। एक दिन माया आम चूस रही थी, अचानक उसके मुँह से आम चूसते चूसते उस की गुठली मुँह से निकल गई। माया को एकाएक यह ध्यान हुआ कि वह गुठली मैं, के चौके में गिरेगी। फलतः माया उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है और गुठली के साथ वह भी चौके में गिर कर मर जाती है। मैं, उस गुठली को माया के प्रेम का प्रतीक मानकर, अपने जीवन से वैराग ले लेता है। कालान्तर में उसी गुठली द्वारा एक पेड़ खड़ा होता है और वह उसकी छाया तथा फल के संतोष से अपना जीवन व्यतीत करता है। कहानी सोद्देश्य लिखी गई है और कहानी के निर्माण में आदर्शवादिता का भी पुट स्पष्ट है। मिलन मुहूर्त की संवेदना ऐतिहासिक है। इस में उपगुप्त और वासव दत्ता को लेकर प्रेम की संवेदना को पूर्ण इतिवृत्तात्मक ढंग से कहानी अभिव्यक्त हुई है। तैमूर लंग अंधा, सबसे बड़ा रत्न, आदि कहानियाँ भी इन की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

सुदर्शन

प्रेमचन्द संस्थान में सुदर्शन वस्तुतः प्रमुख प्रतिनिधि कहानीकार हैं। प्रेमचन्द की भाँति इन का भी उदय उर्दू से हुआ है। फलतः इन की भी कला में स्वाभाविक भाषा शैली, यथार्थ चरित्र चित्रण और कहानी में वर्णनात्मकता के साथ ही विश्लेषण तत्त्व भी सफलता से चरितार्थ हुए हैं। इन की कहानी के धरातल में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और चरित्रों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा, दोनों विशिष्ट ढंग से प्रतिफलित हुए हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द संस्थान में प्रेमचन्द के बाद, सुदर्शन को सब से अधिक लोकप्रियता मिली। इतना ही नहीं, बल्कि इन्हों ने प्रेमचन्द जी की कहानी-कला की धारा में अपनी ओर से प्राणशक्ति भी दी है। शिल्पविधि के प्रकाश में इन्हों ने कई ढंगों से कहानियाँ लिखीं। इन की कुछ कहानियाँ मुख्यतः आदर्श प्रतिष्ठा के धरातल से लिखी गई हैं,

जिन में कथानक यथार्थ जीवन के पहलुओं को छूता हुआ आगे बढ़ता है, आदर्श से परस्पर द्वन्द्व होता है तथा अंत में आदर्श की स्थापना होती है। इस में दो विरोधी भावधारा के चरित्रों का विश्लेषण, इस की सब से बड़ी विशेषता है। हार की जीत, इस वर्ग की कहानियों की प्रतिनिधि कहानी है। कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक संवेदना को लेकर निर्मित हुई है, जिन में एक ओर राजा महराजा सम्राट आदि चरित्रों की कहानी मिलती है, दूसरी ओर उन के प्रकाश में सामान्य चरित्रों की विशिष्ट कहानियाँ मिलती हैं। पहली प्रकार की कहानियाँ अपने निर्माण और विकास में बहुत लम्बी कहानियाँ हो गई हैं। इन्हें विभिन्न प्रकरणों में विकसित लघु उपन्यास कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, जैसे, पत्थरों का सौदागर, फरऊन का प्रेम, ये दोनों कहानियाँ क्रमशः १८ : १२ अनुच्छेदों में समाप्त हुई हैं ऐसी कहानियों की वर्णनात्मकता ही इन की कलात्मक विशेषता है तथा मानव हृदय की चिरंतन सत्यता के चित्र इन के भावात्मक आकर्षण हैं। एथेन्स का सत्यार्थी इस का सुन्दर उदाहरण है। सुदर्शन के अधिकांश कहानियाँ दैनिक जीवन की विविध इकाइयों के धरातल से लिखी गई हैं ऐसी कहानियों में व्यक्ति और समाज की सामान्य से सामान्य नगण्य घटनाओं, समस्याओं तथा जीवन की विरोधी परिस्थितियों को अभिव्यक्ति मिली हैं। वस्तुतः इन धरातलों से लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और सूक्ष्म मनोविश्लेषण की ओर अग्रसर हुई हैं। इन में कथावस्तु, चरित्र और उद्देश्य तीनों का सुन्दर तादात्म्य हुआ है। सूरदास, मास्टर, आत्माराम, सदासुख, संन्यासी और हेर फेर, इस वर्ग की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द संस्थान के विकास में इन्हों ने कुछ नये शिल्पगत प्रयोग भी किए हैं। विभिन्न पात्रों के मुख से आत्म-कथन करा कर तथा कहानी की विभिन्न घटनाओं, विकास-क्रमों के आत्म-वर्णनों से सम्पूर्ण कहानी गठित निर्मित होती है। इस कहानी शिल्प में चरित्रों का आत्म-विश्लेषण, कथानक की सूक्ष्मता, कहानी की समस्या में द्वन्द्व का प्राधान्य आदि कलात्मक विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। कवि की स्त्री और दो मित्र ये इस शिल्पविधान की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा

प्रेमचन्द ने अपनी 'नव निधि' की ऐतिहासिक कहानियों द्वारा जिस निर्माणत्मान और आदर्शवादिता की प्रतिष्ठा की थी, उस का पूर्ण विकास वृन्दावन लाल वर्मा की कहानी-कला द्वारा हुआ। वर्मा जी की प्रारम्भिक कहानियाँ

रानी रूठ गई[1] तथा तातार और एक वीर राजपूत सरस्वती के विशुद्ध द्विवेदी युगीन कहानियां हैं। इन कहानियों की कला पूर्ण रूप से प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों राजा हरदौल, रानी सारंधा और मर्यादा की वेदी आदि से मिलती है। वस्तुतः इसी कला का विकास उत्तरोत्तर वर्मा जी की ऐतिहासिक कहानियों में होता गया तथा इस का चरम विकास आगे चल कर वर्मा जी के कलाकार का दंड, ईनाखाँ बेगम, शेरशाह का न्याय, सौन्दर्य प्रतियोगिता, और खजुराहो की दो मूर्तियां आदि ऐतिहासिक कहानियों में मिलता है। इन समस्त कहानियों की शिल्पविधि पूर्ण रूप से प्रेमचन्द संस्थान के अंतर्गत है, अर्थात् वर्णनात्मकता, वही इतिवृत्तात्मकता, वही विरोधी चरित्रों की अवतारणा अन्त द्वन्द्व और अंत में आदर्श की प्रतिष्ठा। यहाँ यह अवश्य उल्लेखनीय है कि वर्मा जी ने अपनी इन ऐतिहासिक कहानियों में प्रेमचन्द से बहुत आगे बढ़ कर ऐतिहासिक तथ्य और उसकी निष्ठा का प्रतिपालन अपूर्व ढंग से किया है। इन कहानियों में प्रसाद की भांति ऐतिहासिक वातावरण, केवल कल्पना भावुकता और कवित्व पूर्ण शैली से नहीं किया गया है, बल्कि इन के वातावरण के पीछे कहानीकार ने सर्वत्र ऐतिहासिक तथ्य, खोज और स्वाभाविकता को अपनी कला का साधन बनाया है। अतएव इन कहानियों की कला में ऐतिहासिक संवेदन शीलता पूर्ण सफलता से व्यक्त हुई है। इधर वर्मा जी ने सामयिक समस्याओं तथा जीवन के प्रति दिन की संवेदनाओं को लेकर सफल सामाजिक कहानियां लिखी हैं। शरणागत, कटा फटा झंडा, सिरंगे वाली राखी, हमीदा, मालिश, पांडी और अपनी बीती, आदि कहानियां इन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कहानियों का शिल्पविधान ऐतिहासिक कहानियों से बिल्कुल भिन्न है। इन में कथानक का न वह विस्तार है, न इतिवृत्तात्मकता। चरित्रों के मनोविश्लेषण की ओर सफल प्रयत्न हुआ है, तथा ये कहानियां निश्चित रूप से चरित्र प्रधान हो गई हैं। कहानियों की निर्माण शैली में वर्णनों, घटनाओं की अपेक्षा कथोपकथनों, व्यंजनाओं तथा मनोवैज्ञानिक आरोह-अवरोह को साधन बनाया गया है। चरम सीमा भी संयोग घटनाओं से हट कर प्रायः स्वाभाविक स्थितियों पर आधारित हुई है, लेकिन इन कहानियों में भी वर्मा जी की आदर्शवादिता, चरित्र के प्रति महान् निष्ठा, तथा मानवता की विराट भावना सर्वत्र व्यंजित है। इन कहानियों की भी सृष्टि में निश्चित रूप से सोद्देश्यता और आदर्शवादिता दो मुख्य प्रेरणाएं हैं।

---

1. सरस्वती भाग १० सितम्बर १९०९ संख्या ९

प्रेमचन्द जी की कहानी कला की विकास कालीन धारा में, आगे चल-कर हिन्दी में, अनेक कहानीकार आए जिन की कहानीकला के मुख्य धरातल में व्यक्तिगत, सामाजिक समस्या अथवा अवस्था विशेष, घटना विशेष, मानसिक प्रवृत्ति विशेष, आदि इकाइयाँ मूल रूप से आती हैं। इन कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' ऋषभ चरण जैन, सत्य जीवन वर्मा, श्रीराम शर्मा 'राम' अन्नपूर्णा नन्द तथा परिपूर्णानंद वर्मा कृष्णानंद, मोहनलाल महतो 'वियोगी' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार मुख्य रूप से आते हैं। इन में से भी भगवती प्रसाद वाजपेयी, मस्त जी, श्रीराम शर्मा 'राम' और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार वर्तमान काल में अपनी इस कला के उत्कृष्ट और प्रतिनिधि कहानीकार हैं। वाजपेयी जी और मस्त जी की कहानी कला इस के उदाहरण में सदैव रखी जा सकती है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी की कहानी कला उक्त सत्य के प्रकाश में सब से उच्च कोटि में आती है। इन की प्रारम्भिक और आज की कहानियों को पढ़ कर निश्चित रूप से लगता है कि इन के व्यक्तित्व का निर्माण एक ओर शरद्चन्द्र तथा दूसरी ओर प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के सुन्दर तादात्म्यो से हुआ है। इन्हों ने हास्योन्मुख जीवन की विविध इकाइयों को अपनी उच्च कला में संजो कर अपूर्व ढंग से मानव संवेदना को स्पर्श किया है। खाली बोतल, अँधेरी रात, मैना, हार जीत, ट्रेन पर, इन्द्रजाल, आदि कहानियों की संवेदनाएँ हमारे सामाजिक क्षेत्र तथा उस की विशिष्ट स्थितियों से सुनी गई हैं। यही कारण है कि इन संवेदनाओं से निर्मित कहानियाँ भावोद्रेक और लक्ष्य की तीव्रता के फलस्वरूप कहीं-कहीं प्रतीकात्मक हो गई हैं, जैसे खाली बोतल। यह कहानी समाप्त होते हुए सामंतशाही दृष्टिकोण और मनोभावों का प्रतीक है। वाजपेयी जी की शिल्पविधि इन कहानियों में अत्यन्त पुष्ट और पूर्ण है अपनी सोद्देश्यता में इन कहानियों के शिल्पविधान पूर्ण सफल हुए हैं।[1]

---

[1]. इनकी कहानियों की तुलना मुक्तक काव्य से की गई है जिस में सोने की तौल जैसी सफाई और राई रत्ती तुली हुई डाँड़ी होती है। आवश्यकता से अधिक एक शब्द नहीं होता। :: खाली बोतल की भूमिका, वाजपेयी जी की कहानियाँ लेखक, श्री नंददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ९

इलाचन्द्र, जोशी, की कहानियों में मनोविज्ञान की सूक्ष्म और रहस्यात्मक व्याख्या का प्रयत्न हुआ है। अज्ञेय जी की भी कहानियाँ वैयक्तिक और विशिष्ट तथा दोनों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के विभिन्न रूप में दीख पड़ते हैं। अश्क की हर कहानी का विश्लेषण, किसी व्यक्ति के समस्त जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रकाश में देखा गया है और मनोविज्ञान [illegible] को बहुत स्वाभाविक और व्यापक पृष्ठभूमि दी गई है। जैसे, [illegible], [illegible], आदि कहानियों के विश्लेषण के पीछे यही मनोवैज्ञानिक [illegible] होती हैं। [illegible] भी [illegible] कहानियों में [illegible] और [illegible] सामाजिक [illegible] के आधार पर [illegible] होकर अपनी विशेषता के अनुरूप [illegible] प्रस्तुत कर रहे हैं।

अन्य कहानीकार

इस [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] को [illegible] कर रहे हैं। सामाजिक परिस्थिति तथा सामाजिक [illegible] [illegible] हो [illegible] भी कहानियों का मूल [illegible] है। [illegible] [illegible], और [illegible] की कहानियाँ, [illegible] [illegible] की दृष्टि से [illegible] [illegible] और [illegible] की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] के ही [illegible] से [illegible] हुआ है। [illegible] की [illegible] के [illegible] और [illegible] दोनों [illegible] [illegible] में [illegible] हुए हैं। [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] इन कहानियों की [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] में इन दोनों [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] जी की कहानी कला में [illegible] का इतना [illegible] [illegible] है कि इन की कहानियाँ [illegible] [illegible] की [illegible] एक [illegible] [illegible] की भाँति [illegible] [illegible] होती हुई [illegible] [illegible] है। कहानियों के [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] को बहुत [illegible] दी गई है। [illegible] [illegible] जी की कहानी कला में [illegible] [illegible] [illegible] आ गई है। सामाजिक [illegible] के [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], आदि कहानियों में [illegible] से [illegible] है। [illegible] की कहानियों में इन की कला का [illegible] [illegible] देखने को मिलता है। यहाँ [illegible] का [illegible] [illegible] मानसिक स्थिति और सामाजिक समस्याएँ बन गई हैं। [illegible] की [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] को [illegible] हुई है। [illegible] की कहानियों में [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] आ रही है उस में [illegible] के स्थान पर विश्ले-षणात्मक [illegible] अधिकाधिक आ रहा है। [illegible] [illegible] के [illegible] कहानीकार

श्रीराम शर्मा 'राम' और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार भी हैं। श्रीराम शर्मा 'राम' शिल्पविधि में प्रेमचन्द के विकास-कालीन कहानियों के आगे नहीं बढ़ सके हैं, यद्यपि उन्होंने हिन्दी कहानी साहित्य की अपार सेवा की है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार इस वर्ग के समस्त कहानीकारों में अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक प्रतिभा के कहानीकार हैं। इन्होंने प्रेमचन्द संस्थान में सुदर्शन की भाँति अपनी मौलिक प्रतिभा का सहयोग दिया है।

वस्तुतः प्रेमचन्द संस्थान में आने वाले मुख्यतः उक्त कहानीकारों में अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा और सीमाएँ भी हैं। उन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रेरणाओं से भी कहानियाँ लिखी हैं। यही कारण है कि इन में भावात्मक विभिन्नता और प्रसार दृष्टिगत हैं लेकिन शिल्पविधान की सीमा में उक्त सभी कहानीकार किसी न किसी रूप में प्रेमचन्द संस्थान में हैं, तथा यह संस्थान हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास युग और उन्नति का गौरव पूर्ण संस्थान है।

जयशंकर प्रसाद

प्रसाद के साहित्यिक संस्कार

प्रसाद का जन्म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और [illegible] हुआ था। भारतेन्दु की मृत्यु के बाद ही दो साल पश्चात् इन का जन्म हुआ। प्रसाद जी की आस्था थी, जिस के [illegible] धीरे धीरे [illegible] और [illegible] का पूर्ण विकास हुआ। इसके [illegible] नहीं थे, [illegible] और [illegible] के पढ़ने की ओर [illegible] थी। [illegible] के हृदय में प्राचीन संस्कृति की [illegible] और [illegible] की [illegible] ने [illegible] प्राप्त किया। इन सभी बातों का [illegible] से [illegible] हुआ, जो [illegible] उत्तरोत्तर [illegible] हुआ। [illegible] के [illegible] में इन की [illegible] थे, [illegible] और साहित्यिक और [illegible] के [illegible] रहे थे, [illegible] और इन की [illegible] प्रतिभा [illegible] रही थी, इन दोनों ने इनके एक [illegible] साहित्यिक संस्कार का रूप लिया, जिस की व्याख्या [illegible] थी, "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिस का संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्त होती है, वह निःसंदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है, इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है, वह एक द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है"[1]। इस तरह प्रसाद के इसी साहित्यिक संस्कार ने उन के काव्य की [illegible] भावनाओं को [illegible] दिया। बाद में [illegible] कामायनी, नाटक, कहानी, उपन्यास, [illegible] और [illegible] में इन का [illegible] विशुद्ध [illegible] और [illegible] दो [illegible] इन के साहित्यिक संस्कारों ने इस रूप में इन को [illegible] कर दिया था।

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबंध—प्रसाद, पृष्ठ १७, १८

यह सत्य प्रसाद के मन में निश्चित हो गया था कि काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है और साहित्य का आरम्भ काव्य मय है और काव्य का द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। काव्य की इन्हीं परिष्कृत भावनाओं में प्रसाद की कहानियों का उद्गम होता है, अतएव इन की कहानियां आज की कहानी कला या उन की शिल्पविधि पर सफलता से नहीं कसी जा सकती, क्योंकि इन का संस्कार बिल्कुल स्वतंत्र और अपना है। इन का समूचा भावपक्ष काव्यात्मक है। इन कहानियों के पीछे जो प्रेरणा और भावविन्दु है, वह एक ओर गीत काव्य के समीप हैं, और दूसरी ओर नाटक के समीप, जो कहानियाँ छोटी हैं, उन सब के पीछे प्रसाद के गीत तत्व की प्रेरणा कार्य कर रही है। ऐसी छोटी कहानियाँ प्रायः कहानियाँ न होकर शिल्पविधि की दृष्टि से गद्यगीत हो गई हैं; जैसे, प्रतिध्वनि, प्रलय, कला, और, प्रतिमा आदि विशुद्ध भाव पक्ष की दृष्टि से ये कहानियाँ रहस्यवादी और रूपकात्मक भी हुई हैं।

प्रसाद की बड़ी कहानियाँ भाव विन्दु से प्रेरित न होकर विचार विन्दु या कार्य विन्दु से अंकुरित हुई हैं। इन्द्रजाल, स्वर्ग के खंडहर में, जैसी कहानियाँ एक विशिष्ट इतिवृत्त लिए हुए हैं। इन कहानियों के पीछे गीतकाव्य से आगे खंडकाव्य और महाकाव्य की प्रेरणा है।

दूसरी ओर प्रसाद की जितनी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, प्रायः उन सब के पीछे नाटकीय प्रेरणा है। यही कारण है कि, आकाश दीप, आंधी, सालवती, देवरथ, पुरस्कार, और नूरी आदि कहानियाँ पढ़ते समय नाटक अधिक लगती हैं, कहानी कम, इन कहानियों का सामुहिक प्रभाव भी हमारे ऊपर पूर्ण नाटक सा पड़ता है, क्योंकि इन कहानियों की सारी संवेदनाएँ, सारी परिस्थितियाँ नाटकीय हैं। प्रसाद की जीवन तिथियों को लेकर अगर हम उक्त कहानियों के स्रोत ढूँढ़े तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि इन का संबंध क्रमशः प्रसाद के गीत, महाकाव्य और नाटक रचना के प्रेरणा, काल से है, जैसे १९३६ ई० में कामायनी महाकाव्य की सृष्टि और उसी समय, इन्द्रजाल, कहानी की रचना, १९३१ ई० में चन्द्रगुप्त नाटक और आंधी, पुरस्कार, कहानियों की सृष्टि, १९२९ ई० में एक घूँट, एकांकी नाटक की रचना तथा आकाश दीप, कहानी का निर्माण; १९१३ ई० में, कानन कुसुम, तथा प्रेम पथिक गीतकाव्यों की रचना तथा उसी समय प्रतिध्वनि, प्रतिमा, प्रलय, प्रसाद, कहानियों की सृष्टि।

इस तरह प्रसाद की कहानियों की सृष्टि और उन का उद्गम काव्य और नाटक की परिष्कृत भावनाओं में हुआ है, कहानी कला की सामान्य सीमा में

नहीं । फलतः प्रसाद कहानियों की शिल्पविधि के अध्ययन में हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा ।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

१९१० ई० तक हिन्दी मासिक पत्र प्रकाशन अपने प्रारम्भिक काल में था । १९०० ई० से पूर्व के हिन्दी पत्रों जैसे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, और हरिश्चन्द्र मैगज़ीन में प्रायः किसी न किसी रूप में विद्यमान थीं, परन्तु उन में स्वाभाविक जीवन से निकट संबंध रखने वाली कहानी जैसी कोई कलात्मक वस्तु नहीं प्रकाशित हो रही थी, वस्तुतः तब तक न कोई हिन्दी में मौलिक कहानीकार था और न तब तक हिन्दी में कहानी का कोई निश्चित विकास ही हो सका था । १९०० ई० से सरस्वती का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और इसी में सब से पहले हिन्दी कहानियों का सूत्रपात हुआ । यह सूत्रपात, चाहे शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिकाओं के रूप में हुआ, चाहे संस्कृत नाटक के कथानकों के आधार पर, परन्तु यह सिद्ध है कि इससे पहले कहानी कला का विकास सरस्वती द्वारा हुआ । इस भाँति १९०७ ई० सतत आगे प्रत्येक अंक में इस का प्रकाशन होने लगा और हिन्दी मासिक पत्रों में एक मात्र सरस्वती का स्थान विशिष्ट हो गया ।

सरस्वती-सम्पादक आचार्य द्विवेदी और प्रसाद में मतभेद होने के कारण सरस्वती द्वारा प्रसाद को उतना प्रोत्साहन और सम्मान नहीं मिलता था जितना मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय और सनेही को । इस की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रसाद ने अपने स्वतंत्र मासिक पत्र 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ किया । १९०९ ई० में इस का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ और एक ही वर्ष बाद इन्दु, उच्चकोटि का साहित्यिक मासिक घोषित हुआ । प्रसाद इस में बराबर लिखने लगे । उन की कविता, लेख और कहानियाँ उसमें आने लगी । प्रसाद की सर्व प्रथम कहानी ग्राम, इसी में १९११ में प्रकाशित हुई, इस के अतिरिक्त प्रसाद, हिन्दी गल्प माला (१९१८ ई०) के जन्म काल से ही उस के लेखक और समर्थक भी रहे तथा उन की कहानियाँ बराबर, इन्दु, हिन्दी गल्प माला, और माधुरी के माध्यम से आने लगीं ।

प्रसाद की समन्वयात्मक भावना

प्रसाद के व्यक्तित्व का मूल धरातल समन्वय है । कल्पना वृत्ति ही

प्रसाद के समस्त काव्य रूपों का मूल स्रोत है जहाँ भाव पक्ष और शैली पक्ष का संगम है। कल्पना की आधार भूमि पर जब आदर्श तत्व के साथ संगीत का संयोग होता है तब प्रसाद की काव्य सृष्टि होती है और जब उस कल्पना में दर्शन और अतीत का संयोग होता है, तब नाटक की सृष्टि होती हैं, तथा जब कौतुक और मनोविज्ञान का संयोग होता है, तब कहानी की सृष्टि होती है। प्रसाद का साहित्य कल्पना, आदर्श, परिष्करण, संगीत, दर्शन, अतीत और मनोविज्ञान के समन्वयात्मक धरातल पर स्थिर है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद के समस्त काव्य रूपों के आधार तत्व एक से हैं केवल उन के सामान्य पक्षों और रूपों में विभिन्नता है। यही कारण है कि प्रसाद की कहानियां कहीं उनके गीत तत्व से अधिक प्रेरित होकर गद्य गीत हो गई है, कहीं नाटकों के अधिक तत्व लेकर नाटकीय शैली में उतर आई हैं। वस्तुतः इन सब के पीछे प्रसाद की उदार साहित्यिक चेतना और उन की समन्वयात्मक भावना कार्य कर रही है।

गीत में कल्पना और अनुभूति, खंडकाव्य अथवा महाकाव्य में कल्पना, अनुभूति और व्यापकता का तादात्म्य सर्वथा अपेक्षित है। लेकिन कहानी में कल्पना का प्राणबिन्दु कहाँ तक उत्कृष्ट कहानी की सृष्टि में साथ देगा, यह चिन्त्य है। यही कारण है कि प्रसाद की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और कहानी का सर्वथा भावात्मक होना कहानी कला से दूर हट कर काव्य के पास पहुँचने वाली बात हो जाती है। इस दिशा में भावात्मक कहानियों को कहानी शिल्पविधि की कसौटी कसना उन्हें कहानी कला के माध्यम से देखना, कठिन हो जाता है, क्योंकि इस तरह शिल्पविधि का रूप और अधिक अमूर्त्त और संवेद्य हो जाता है। दूसरी ओर, यह सत्य है कि भावात्मक कहानियाँ अपेक्षाकृत समस्या को मूलाधार बनाकर नहीं लिखी जातीं, बल्कि ऐसी कहानियाँ विशेष वृत्ति या चित्तवृत्ति में लिखी जाती हैं, सामान्य स्थिति में, किसी भौतिक या यथार्थ समस्या को लेकर कम। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक ढंग से भावात्मक कहानी में भावुक उत्तेजना, सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कहानीकार में काव्योद्गार की लहरें पैदा करती हैं और इसी के प्रकट प्रवाह में कहानी का आरम्भ होता है, बाद में अन्य तत्व जैसे कथानक, पात्र आदि साधन स्वरूप स्वयं धीरे-धीरे आ जाते हैं और कहानी के निर्माण में अपना योग दे जाते हैं। वैसे सम्पूर्ण कहानी की अंतर्चेतना में यही काव्योद्गार और सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कार्य करती रहती है। इसलिए प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ केवल दो ढंगों से होता है या तो (१) सौन्दर्यानुभूति में डूब कर प्रकृति चित्रण के साथ, या (२) दो

प्रसाद के समस्त काव्य रूपों का मूल स्रोत है जहाँ भाव पक्ष और शैली पक्ष का संगम है। कल्पना की आधार भूमि पर जब आदर्श तत्व के साथ संगीत का संयोग होता है तब प्रसाद की काव्य सृष्टि होती है और जब उस कल्पना में दर्शन और अतीत का संयोग होता है, तब नाटक की सृष्टि होती हैं, तथा जब कौतुक और मनोविज्ञान का संयोग होता है, तब कहानी की सृष्टि होती है। प्रसाद का साहित्य कल्पना, आदर्श, परिष्करण, संगीत, दर्शन, अतीत और मनोविज्ञान के समन्वयात्मक धरातल पर स्थिर है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद के समस्त काव्य रूपों के आधार तत्व एक से हैं केवल उन के सामान्य पक्षों और रूपों में विभिन्नता है। यही कारण है कि प्रसाद की कहानियां कहीं उनके गीत तत्व से अधिक प्रेरित होकर गद्य गीत हो गई है, कहीं नाटकों के अधिक तत्व लेकर नाटकीय शैली में उतर आई हैं। वस्तुतः इन सब के पीछे प्रसाद की उदार साहित्यिक चेतना और उन की समन्वयात्मक भावना कार्य कर रही है।

गीत में कल्पना और अनुभूति, खंडकाव्य अथवा महाकाव्य में कल्पना, अनुभूति और व्यापकता का तादात्म्य सर्वथा अपेक्षित है। लेकिन कहानी में कल्पना का प्राणविन्दु कहाँ तक उत्कृष्ट कहानी की सृष्टि में साथ देगा, यह चिन्त्य है। यही कारण है कि प्रसाद की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और कहानी का सर्वथा भावात्मक होना कहानी कला से दूर हट कर काव्य के पास पहुँचने वाली बात हो जाती है। इस दिशा में भावात्मक कहानियों को कहानी शिल्पविधि की कसौटी कसना उन्हें कहानी कला के माध्यम से देखना, कठिन हो जाता है, क्योंकि इस तरह शिल्पविधि का रूप और अधिक अमूर्त्त और संवेद्य हो जाता है। दूसरी ओर, यह सत्य है कि भावात्मक कहानियाँ अपेक्षा कृत समस्या को मूलाधार बनाकर नहीं लिखी जातीं, बल्कि ऐसी कहानियाँ विशेष वृत्ति या चितवृत्ति में लिखी जाती हैं, सामान्य स्थिति में, किसी भौतिक या यथार्थ समस्या को लेकर कम। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक ढंग से भावात्मक कहानी में भावुक उत्तेजना, सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कहानीकार में काव्योद्गार की लहरें पैदा करती हैं और इसी के प्रकट प्रवाह में कहानी का आरम्भ होता है, बाद में अन्य तत्व जैसे कथानक, पात्र आदि साधन स्वरूप स्वयं धीरे-धीरे आ जाते हैं और कहानी के निर्माण में अपना योग दे जाते हैं। वैसे सम्पूर्ण कहानी को अंतर्चेतना में यही काव्योद्गार और सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कार्य करती रहती है। इसलिए प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ केवल दो ढंगों से होता है या तो (१) सौन्दर्यानुभूति में डूब कर प्रकृति चित्रण के साथ, या (२) दो

प्रसाद के समस्त काव्य रूपों का मूल स्रोत है जहाँ भाव पक्ष और शैली पक्ष का संगम है। कल्पना की आधार भूमि पर जब आदर्श तत्व के साथ संगीत का संयोग होता है तब प्रसाद की काव्य सृष्टि होती है और जब उस कल्पना में दर्शन और अतीत का संयोग होता है, तब नाटक की सृष्टि होती हैं, तथा जब कौतुक और मनोविज्ञान का संयोग होता है, तब कहानी की सृष्टि होती है। प्रसाद का साहित्य कल्पना, आदर्श, परिष्करण, संगीत, दर्शन, अतीत और मनोविज्ञान के समन्वयात्मक धरातल पर स्थिर है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद के समस्त काव्य रूपों के आधार तत्व एक से हैं केवल उन के सामान्य पक्षों और रूपों में विभिन्नता है। यही कारण है कि प्रसाद की कहानियां कहीं उनके गीत तत्व से अधिक प्रेरित होकर गद्य गीत हो गई है, कहीं नाटकों के अधिक तत्व लेकर नाटकीय शैली में उतर आई हैं। वस्तुतः इन सब के पीछे प्रसाद की उदार साहित्यिक चेतना और उन की समन्वयात्मक भावना कार्य कर रही है।

गीत में कल्पना और अनुभूति, खंडकाव्य अथवा महाकाव्य में कल्पना, अनुभूति और व्यापकता का तादात्म्य सर्वथा अपेक्षित है। लेकिन कहानी में कल्पना का प्राणबिन्दु कहाँ तक उत्कृष्ट कहानी की सृष्टि में साथ देगा, यह चिन्त्य है। यही कारण है कि प्रसाद की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और कहानी का सर्वथा भावात्मक होना कहानी कला से दूर हट कर काव्य के पास पहुँचने वाली बात हो जाती है। इस दिशा में भावात्मक कहानियों को कहानी शिल्पविधि की कसौटी कसना उन्हें कहानी कला के माध्यम से देखना, कठिन हो जाता है, क्योंकि इस तरह शिल्पविधि का रूप और अधिक अमूर्त्त और संवेद्य हो जाता है। दूसरी ओर, यह सत्य है कि भावात्मक कहानियाँ अपेक्षाकृत समस्या को मूलाधार बनाकर नहीं लिखी जातीं, बल्कि ऐसी कहानियाँ विशेष वृत्ति या चित्तवृत्ति में लिखी जाती हैं, सामान्य स्थिति में, किसी भौतिक या यथार्थ समस्या को लेकर कम। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक ढंग से भावात्मक कहानी में भावुक उत्तेजना, सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कहानीकार में काव्योद्गार की लहरें पैदा करती हैं और इसी के प्रकट प्रवाह में कहानी का आरम्भ होता है, बाद में अन्य तत्व जैसे कथानक, पात्र आदि साधन स्वरूप स्वयं धीरे-धीरे आ जाते हैं और कहानी के निर्माण में अपना योग दे जाते हैं। वैसे सम्पूर्ण कहानी की अंतर्चेतना में यही काव्योद्गार और सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कार्य करती रहती है। इसलिए प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ केवल दो ढंगों से होता है या तो (१) सौन्दर्यानुभूति में डूब कर प्रकृति चित्रण के साथ, या (२) दो

पात्रों के कवित्व पूर्ण कथोपकथनों के साथ। शैली की यही विशेषता प्रसाद की समस्त कहानियों के विकास क्रमों में मिलती जाती है।

कहानियों की शिल्प-विधि का अध्ययन

प्रसाद जी का कहानी काल १९११ ई० से आरम्भ होकर १९३७ ई० तक फैला हुआ है। इन छब्बीस वर्षों की लम्बी साहित्य-साधना में उन्होंने कुल उनहत्तर कहानियाँ लिखी हैं, जो क्रमशः, छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, और इन्द्रजाल, कहानी संग्रहों में संग्रहीत हैं। अध्ययन की दृष्टि से इन्हें हम तीन कालों में बाँट सकते हैं—

(१) प्रथम काल १९११ से १९२२ ई० तक
(२) द्वितीय काल १९२३ से १९२९ ई० तक
(३) तृतीय काल १९३० से १९३७ ई० तक

इन तीनों कालों में कहानियों का धरातल क्रमशः बदलता गया है और सापेक्षिक दृष्टि से इन कहानियों में प्रसाद की कहानी कला का आरम्भ, विकास और उत्कर्ष भी स्पष्ट है। प्रसाद की पहली कहानी ग्राम से लेकर उनकी अंतिम कहानी सालवती, तक कहानियों की शिल्पविधि में वस्तुतः उतने मोड़ नहीं हैं जितने उनके भाव पक्ष में। सच तो यह है कि प्रसाद की कहानियाँ अपेक्षाकृत शिल्पविधि प्रधान नहीं हैं भाव प्रधान हैं और हिन्दी कहानी साहित्य में केवल प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिन की कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है शिल्पविधि की अनुवर्तिनी नहीं।

प्रथम काल

प्रथम काल में प्रसाद की, छाया, और प्रतिध्वनि, कहानी संग्रहों की कहानियाँ आती हैं। ये सब कहानियाँ छब्बीस हैं तथा शैली की दृष्टि से एक ओर जहाँ वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक हैं, वहाँ दूसरी ओर विषय की दृष्टि से प्रेम, सौन्दर्य और करुण भावना, को लिए हुए हैं। कहानियों का यही रूप क्रमशः इन के द्वितीय और तृतीय काल की कहानियों में मिलता है लेकिन तीनों कालों की कहानियों में स्तरगत अंतर है।

कथानक

छाया, और प्रतिध्वनि, की कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक हैं तथा कुछ काल्पनिक, और दोनों तरह की कहानियों का धरातल भावुकता पूर्ण है। फलतः

काल्पनिक कहानियाँ रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। भावुकता के प्राधान्य से कथानक इतिवृत्त मात्र बन कर रह गया है यदि हम इतिवृत का अध्ययन करें तो हमें तीन तथ्य मिलेंगे—(१) रेखाचित्र-सी कहानियों के इतिवृत्त केवल प्रसंग के रूप में आते हैं और प्रसंगों में भी एक भाव ही उस का प्राण होता है, स्थूल समस्या नहीं, जैसे· प्रतिध्वनि, में भावना ही कहानी की आत्मा है, (२) कहानियों के कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हुए हैं क्योंकि वे विभिन्न भावचित्रों के माध्यम से ही चरितार्थ होते हैं। अतः इन में संकेत और व्यंजना प्रमुख है। अघोरी का मोह, गुदड़ी में लाल, और करुणा की विजय, आदि कहानियों के कथानकों में यह सत्य पूर्णतः स्पष्ट है। इन कहानियों के कथानक जीवन के अलग-अलग प्रसंग हैं और उन प्रसंगों में भी एक विशिष्ट भावना अधिक प्रधान है, घटना कम। फिर भी व्यंजना के माध्यम से इन कहानियों की संवेदनाएं स्पष्ट हो जाती हैं और उन में गुँथे हुए भाव-चित्र भी सार्थक प्रतीत होते हैं। कहानी के इतिवृत्त में गद्य गीत, की शैली प्रभाव बन जाती है। (३) गद्यगीत के उदाहरण में, प्रलय, प्रतिमा, दुखिया, कलावती की शिक्षा, आदि कहानियाँ आती है। अतः इन के कथानकों को अध्ययन की रेखाओं में बाँधना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि ये पूर्णतः दोनों तथ्यों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। कलावती की शिक्षा में कथानक के नाम पर केवल इतना ही है श्यामसुन्दर और कला एक ही टेबुल पर पढ़ रहे हैं। श्यामसुन्दर अपना उपन्यास लिखने में निमग्न हो जाता है और कला पलंग पर बैठ कर एक चीनी पुतली लेकर स्वगत कथन करने लगती है, "और कृतज्ञ होना दासत्व है। चतुरों ने अपना कार्य प्रधान करने का इसे अस्त्र बनाया है। इसीलिए इस की ऐसी प्रसंशा की है कि लोग इस की ओर आकर्षित हो जाते हैं किन्तु है यह दासत्व। यह शरीर का नहीं किन्तु अंतरात्मा का दासत्व है। इस कारण कभी-कभी लोग बुरी-बुरी बातों का भी समर्थन करते हैं, प्रगल्भता आज जो बड़ी बाढ़ पर है, बड़ी अच्छी वस्तु है, उस के बल से मूर्ख भी पंडित समझे जाते हैं, इस का अच्छा अभ्यास करना, जिस में तुम को कोई मूर्ख न कह सके, कहने का साहस ही नहीं। पुतली, तुमने रूप का परिवर्तन भी छोड़ दिया है, यह और भी बुरा है। सोने के कोर की साड़ी तुम्हारे मस्तक को अभी भी ढके है, तनिक इस में खिसका दो। बालों को लहरा दो। लोग लगें पैर चूमने, प्यारी पुतली, समझो न!" इस के बाद श्यामसुन्दर और कला दोनों प्रेम से गले मिल जाते हैं।

वस्तुतः यह गद्यगीत है और कहने के लिए ढाई पृष्ठों की कहानी, जिस में हमें यही कला का स्वगत कथन मिलता है शेष कुछ नहीं। ज्ञात होता है कि प्रसाद के मन में एक सूक्ष्म भाव उठा, उसे उन्होंने कला के मुख से उस में स्वगत कथन में अभिव्यक्त कर दिया और उसे कहानी के नाम पर एक अन्य स्थिर चरित्र श्यामसुन्दर से जोड़ दिया। इस वर्ग की कुछ लम्बी कहानी जैसे, प्रलय, में कथानक अनेक भाव-चित्रों के माध्यम से आगे बढ़ा हुआ है वहाँ कथानक और भी दुर्बोध हो गया है, क्योंकि प्रसाद ने इसे संश्लिष्ट बना कर अपने दर्शन और रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रलय का कथानक इतने भाव-चित्रों के अंतराल में चलता है (क) हिमावृत चोटियों की श्रेणी, अनन्त आकाश के नीचे क्षुब्ध समुद्र : उपत्यका की कन्दरा में, प्राकृतिक उद्यान में खड़े हुए एक युवक और एक युवती (ख) सूर्य का अलात चक्र के समस्त शून्य में भ्रमण और उस के विस्तार का अग्नि स्फुलिंग वर्षा करते हुए आश्चर्य संकोच : हिमटीलों का नवीन महानदों के रूप में पलटना, भयानक ताप से शेष प्राणियों का कलटना महाकापालिक के चिताग्नि साधन का वीभत्स दृश्यः प्रचंड आलोक और उन का अंधकार (ग) भयानक शीत, दूसरे क्षण असह्य ताप, वायु के प्रचंड झोकों में एक के बाद दूसरे की अद्‌भुत परम्परा, घोर गर्जन, ऊपर कुहासा और वृष्टि, नीचे महर्णव के रूप में अनन्त द्रवराशि, पवन, उंचासों गतियों से समग्र पंच महाभूतों को आलोड़ित कर उन्हें तरल परमाणुओं के रूप में एक वट वृक्ष केवल एक नुकीले शृंग के सहारे स्थित है। प्रभंजन के प्रचंड आघातों से सब अदृश्य हैं। एक डाल पर वही युवक और युवती। (घ) युवती के मुखमंडल का स्पष्ट प्रतिविम्ब मात्र रह जाना और युवक का एक रमणीय तेज पुंज बनना उपर्युक्त भाव-चित्रों के अंतराल में चला हुआ कथानक कितना अमूर्त्त है : इस के विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि पुरुष, जो ब्रह्म का रूपक है, और युवती माया का प्रतीक है, दोनों एक स्थान पर खड़े हैं। ब्रह्म सृष्टि के लिए प्रलय लाता हैं और इस प्रलय के उपरान्त ब्रह्म और माया एकात्म रूप हो जाते हैं। वस्तुतः भाव-चित्रों से निर्मित इन गद्यगीतों को कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। इन का मूल्य और इन की कला के पीछे भाव की प्रधानता है। घटनाओं की तारतम्यता की नहीं।

ऐतिहासिक कहानियों के कथानक के उदाहरण में हम, छाया की कहानियाँ जैसे, सिकंदर की शपथ, जहाँनारा, अशोक, गुलाम, और चित्तौर उद्धार आदि को ले सकते हैं। इन कहानियों के कथानकों में एकसूत्रता तथा इन के

विक्रम का आदि, मध्य, अंत तीनों भाग मिलते हैं। सिकंदर की शपथ में कथानक का विकास कई मोड़ों से हुआ है। इस में कथा-प्रवाह और एकसूत्रता दोनों का समन्वय इन मोड़ों से स्पष्ट हो जायगा (क) सिकंदर भारतीय वीरों के साथ अफ़गानिस्तान के एक दुर्ग को घेरे हुए पड़ा है ख) रात को दुर्ग के नीचे एक प्रहरी सरदार टहल रहा था, सिकंदर ने उसे मार डाला और दुर्ग से नीचे गिराई हुई एक डोर के सहारे वह दुर्ग पर चढ़ जाता है और वह सरदार के पत्नी के प्रकोष्ठ में पहुँच जाता है (ग) अपने पति के मृत्यु से पत्नी का दुखी होना लेकिन शीघ्र ही दोनों में प्रेम-संधि हो जाती है। संधि में सिकंदर इस बात की शपथ लेता है कि भारतीय सैनिक अपने देश लौट जाँय। (घ) लेकिन सिकंदर अपनी शपथ के विरुद्ध उन भारतीय सैनिकों को नहीं छोड़ता और उन्हें मृत्यु के घाट उतार देता है।

यहाँ कथानक की रेखाएँ बहुत ही स्पष्ट हैं। इस की एकसूत्रता और संगुम्फन दोनों निश्चित हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में जितनी कहानियाँ सरलता के साथ केवल भावों को आधार मानकर लिखी गई हैं उन के कथानक छोटे और सांकेतिक होते हुए भी गद्यगीतों के कथानकों की अपेक्षा स्पष्ट हैं और उन की निश्चित कथा—इकाई और उन की संवेदना भी स्पष्ट है। [illegible], अघोरी का मोह, और, करुणा की विजय, आदि के कथानक। परन्तु जो कहानियाँ केवल भाव-दर्शन के धरातल पर भाव-चित्रों के माध्यम से लिखी गई हैं, उन के कथानक अमूर्त, अस्पष्ट और संश्लिष्ट हुए हैं; जैसे प्रलय का कथानक। जो ऐतिहासिक या सामाजिक कहानियाँ किसी निश्चित संवेदना और विषय को लेकर लिखी गई हैं, उन के कथानक सब से अच्छे ढंग से निर्मित हुए हैं। उन में एकसूत्रता, प्रवाह आदि तत्त्व पूर्ण सफलता से आ गए हैं; जैसे, [illegible], अशोक, चंदा, और ग्राम आदि कहानियों के कथानक।

चरित्र

प्रसाद की कहानियों का धरातल बहुत ही ऊँचा है और इस धरातल का [illegible] प्रधानतः इन के चरित्रों के व्यक्तित्व की ऊँचाई है। इस व्यक्तित्व की [illegible] जो उच्च कोटि के चरित्रों के दर्शन होते हैं, वहाँ सब से बड़ी [illegible] है कि प्रसाद जी इन के माध्यम से मानव तत्त्व के चिर [illegible] करते हैं यहीं प्रसाद की कहानियों का धरातल बहुत [illegible] है।

प्रसाद के व्यक्तित्व पर सबसे गहरा प्रभाव बौद्ध दर्शन का था और वे स्वयं स्वभावतः भावुक; सौन्दिर्यनिष्ठ और प्रेमी थे; फलतः इन के चरित्र अवतारणा पर क्रमशः दो प्रभाव पड़े। एक ओर बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इन के चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए और दूसरी ओर भावुक और प्रेमी। पहला प्रभाव मुख्यतः स्त्री चरित्र पर है और दूसरे प्रभाव के अंतर्गत पुरुष पात्र आते हैं। फलतः समग्र रूप में प्रसाद की कहानियों के चरित्र, प्रेम, करुणा, आदर्श, बलिदान विद्रोह, क्षमा आदि रेखाओं से निर्मित हैं। वस्तुतः यह सत्य प्रसाद के समूचे कहानी-साहित्य के चरित्रों के संबंध में हैं। वैसे हम तीनों कालों के चरित्रों के विकास क्रम को अलग-अलग देखेंगे और उन में हम स्तर की विभिन्नता पाएँगे!

स्त्री

'समग्र रूप से प्रसाद की कहानियों में स्त्री चरित्र की तीन दिशाएँ हैं। पहली दिशा में वे स्त्री पात्र आते हैं जो हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं। दूसरी दिशा के स्त्री पात्र वे हैं जो आधुनिक परिस्थितियों के जीते-जागते उदाहरण हैं और जिन के हृदय में सामाजिक बंधनों और मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह है। तीसरी दिशा में वे स्त्री पात्र आते हैं जो प्रेमाख्यान के विस्तार से प्रेम के नशे में सदा डूबे रहते हैं। इस के अतिरिक्त प्रसाद के स्त्री चरित्रों की दो मूलगत विशेषताएँ हैं। प्रायः स्त्रियाँ रूप और यौवन के आदर्श की अनुगामिनी होती हैं तथा अपने रूप की मादकता से सर्वत्र जादू डालती चलती हैं। वे स्वभावतः त्याग, बलिदान प्रिय होती हैं और अपने अंतर में सर्वदा प्रेम, करुणा, वेदना की मौन कराह लिए रहती हैं।

कलात्मक दृष्टि से प्रसाद के स्त्री चरित्रों के संबंध में सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन के नाटकों तथा काव्यों की भाँति स्त्रियाँ ही यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों की नियामका और संचालिका हैं यहाँ वे मुख्यतः पुरुषों की अपेक्षा अधिक जाग्रत और जीवन पूर्ण हैं। प्रायः इन के व्यक्तित्व की परिधि में पुरुष पात्र ही गतिमान हैं, लेकिन ये स्त्री शक्तियाँ कभी पुरुष को पतन की ओर नहीं ले जातीं, वरन् पुरुषों को सर्वथा कर्त्तव्य का ज्ञान कराती हुई उन में जीवन फूँकती चलती हैं।

प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में स्त्री चरित्र की उपर्युक्त विशेषताएँ अपने बीज रूप में मिलती हैं। जहाँनारा, की जहाँनारा, अशोक, की तिष्यरक्षिता,

चित्तौर उद्धार की राजकुमारी आदि स्त्रियाँ हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों की प्रतीक हैं। इन में चरित्र का उत्कर्ष और बलिदान दोनों क्षमताएँ स्पष्ट हैं। यहाँ सर्व प्रथम, हमें अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करने वाली स्त्री चन्दा मिलती है। नारी के कोमल हृदय में इस तरह कठोरता और क्रान्ति की ज्वाला का दर्शन होता है चन्दा ने कहा—"हाँ लो मैं मरती हूँ। इसी छूरे से तूने हमारे सामने हीरा को मारा था, यह वही छूरा है, यह तुझे दुख से निश्चय छुड़ाएगा। इतना कह कर चन्दा ने रामू के बगल में छुरा उतार दिया वह छटपटाया, इतने ही में शेर का मौका मिला, वह रामू पर टूट पड़ा और उस की इति कर आप भी वहीं गिर पड़ा[1]।" भावुक स्त्रियों के प्रेम के नशे में झूमती हुई प्रेमी के गले में बाहें डालती हैं—"अभिमान ही होता तो प्रयास करके तुम से क्यों मिलती। जाने दो, तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम से अब यह माँगती हूँ कि अब कुछ न माँगू, चाहे इस के बदले मेरी समस्त कामना ले लो," युवती ने गले में हाथ डालकर कहा।

समस्त कहानियों की स्त्रियां युवती हैं और अपने रूप-यौवन से पुरुषों को आकर्षित कर रही हैं, जैसे तानसेन, की सौसन, चन्दा, की चन्दा, ग्राम, की ग्राम बालिका, रसिया बालम, की सुमुखि, सुन्दरी विमुक्त कुन्तला, राजकुमारी, पाप की पराजय, की नीला; ये सब स्त्रियाँ अपूर्व सुन्दरी और नव यौवना हैं। ये इन्द्रनील की पुतली फूलों से सजी हुई झरने के उस पार पहाड़ी से उतर कर बैठी हैं : उन के सहज कुंचित केश से वन्य कुरुवक की कलियाँ कूद-कूद कर जल लहरियों से क्रीड़ा कर रही हैं। यद्यपि रंग कंचन के समान नहीं फिर भी गठन साँचे में ढली हुई हैं, आकर्षक विस्तृत नेत्र नहीं, तो भी उन में एक स्वाभाविक राग है।

इन स्त्री चरित्रों में करुणा का पुट भी स्पष्ट है। दुखिया की नायिका, करुणा की विजय, की रामकली, चन्दा, की चन्दा, जहाँनारा, की जहाँनारा, रसिया बालम, और सिकंदर की शपथ, की क्रमशः राजकुमारी और सरदारनी सब, किसी न किसी भाँति करुणा की आह में डूबी हुई हैं।

पुरुष

प्रसाद के कहानी-साहित्य में, उन के पुरुष चरित्र भी स्त्री चरित्रों की भाँति अपनी कुछ मूलगत विशेषताओं के साथ आते हैं। दो बातों में पुरुष चरित्र

---

[1] छाया, चन्दा, पृष्ठ २७ तृतीय संस्करण, संवत् १९८६

प्राकृतिक स्तर से स्त्री चरित्रों के पूर्णतः अनुकूल हैं, अर्थात् पुरुष का एक वर्ग यहाँ भी अत्यन्त भावुक और प्रेमनिष्ठ है तथा यहाँ भी पुरुष चरित्र प्रायः युवक और सुन्दर व्यक्तित्व के हैं। उन में भी प्रेम और त्याग की भावना स्पष्ट है। लेकिन पुरुष चरित्रों की सब से बड़ी विशेषता है, उन के चरित्र का अनोखापन। इस अनोखेपन के प्रकाश में, प्रसाद की कहानियों में कुछ ऐसे प्रतिनिधि पुरुष मिलते हैं जो समस्त हिन्दी कहानी साहित्य में अद्भुत हैं जैसे, नूरी का प्रेमी याकूब, वेला का उपासक गोली, लैला का रामेश्वर, चम्पा का बुद्धगुप्त और सालवती का अभय। इन पुरुष चरित्रों का अनोखापन इन के व्यक्तित्व में है तथा इन के व्यक्तित्व की विशेषता तीन धरातलों पर है। वे धरातल हैं (१) चारित्रिक दृढ़ता (२) संवेदनशीतलता और (३) उन के व्यक्तित्व की अंतर्मुखी भाव धारा जिस में विद्रोह, तड़प और कोई न कोई ऐसी स्वस्थ कुंठा अवश्य स्थान किए रहती हैं, जिस में करुणा की बहुत हल्की-हल्की रेखाएं छिपी होती हैं।

प्रारम्भिक कहानियों में पुरुष पात्र उक्त रेखाचित्र की दिशा में अपने प्राथमिक रूप में मिलते हैं। तानसेन का तानसेन, रसिया बालम का युवक, कलावती की शिक्षा का श्यामसुन्दर आदि चरित्र भावुक और प्रेमी हैं। रसिया बालम की भावुकता और राज कुमारी के प्रति उसका प्रेम कितना नाटकीय है। युवक अपनी उंगली के खून से पत्र लिख कर राजकुमारी के पास ले जाता है। हरदम राजकुमारी की खिड़की की ओर देखता हुआ पागल बना है। अंत में उस प्रेम की बलि के वेदी पर वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। इस सबंध में यह भी स्मरणीय है कि ऐसे युवक में भी बहुधा एकाकी और प्रेम के नशे में झूमते मिलेंगे कहीं तालाब के किनारे वंशी बजाते हुए, कही खंडहर में कोई चित्र देखते हुए और कहीं नीले आकाश की ओर निहारते हुए वे ऐसे लगते हैं जैसे उनकी दुनिया में प्रेम है और वे एक मात्र प्रेम के पुजारी हैं। अतएव ये पुरुष चरित्र बहुधा काव्य प्रेमी और कला प्रेमी हो गए हैं और अपनी कोमल प्रवृत्तियों के कारण ये चारों ओर से संवेदना और श्रद्धा के पात्र बनते गए हैं। क्योंकि इन पुरुष पात्रों में आरम्भ ही से मानवीय संवेदना और शील का इतना विस्तार मिलता है कि उन में अजीब आकर्षण उपस्थित हुआ है। रसिया बालम, का रसिया, तानसेन का रामप्रसाद, चन्दा का प्रेमी, गुलाम का कादिर, पत्थर की पुकार, का शिल्पी, उस पार का योगी का नन्दलाल, खंडहर की लिपि, का युवक आदि पुरुष चरित्र सर्वथा काल्पनिक चरित्र हैं। लेकिन इन काल्पनिक चरित्रों में भी प्रसाद जी ने इस कला से मानवीय संवेदना और शील

की प्रतिष्ठा की है कि ये सब पुरुष चरित्र इतने आकर्षक लगते हैं। इन का सब से बड़ा रहस्य यही है कि प्रसाद जी आगे इन पात्रों में किसी न किसी भाँति अंतर्द्वन्द्व उपस्थित कर देते हैं और उस अन्तर्द्वन्द्व में करुणा की एक स्पष्ट रेखा खींच देते हैं।

प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री पुरुष चरित्रों में दो वर्ग हैं। जो कहानियाँ सर्वथा काल्पनिक प्रतीकात्मक अथवा रहस्यवादी ढंग की हैं, जैसे प्रसाद, प्रतिमा, खंडहर की लिपि, उस पार का योगी, और प्रलय, आदि इन कहानियों के स्त्री पुरुष पात्र अधिक छायावादी ढंग के हो गए हैं। फलतः उन चरित्रों को व्यक्तित्व प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है लेकिन जिन चरित्रों की अवतारणा यथार्थ और कल्पना के संयोग से हुई है उन में अपेक्षाकृत व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के अतिरिक्त उन के मनोभावों के उदाहरण मिलते हैं।

इस तरह इन प्रारम्भिक कहानियों में चरित्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में नहीं मिलते, वे सर्वथा एकांगी हैं। इस का सब से बड़ा कारण यह है कि इस काल की प्रायः अधिकांश कहानियाँ कल्पना के धरातल से लिखी गई हैं।

फिर भी यहाँ की कहानियाँ चरित्रों के बाह्य पक्ष के धरातल पर बहुत कम टिकी हैं। यहाँ की कहानियों का मूल धरातल चरित्रों के मनोभाव हैं और इस मनोभाव के केन्द्र-बिन्दु प्रेम है। इसी प्रेम के किनारे मानव संवेदना और शील मिलता रहता है। इस के उदाहरण में ग्राम, गूदड़ साईं, अघोरी का मोह, पत्थर की पुकार, दुखिया, जहाँनारा, शरणागत आदि कहानियों के चरित्र स्मरणीय हैं।

शैली

प्रसाद की कहानियों की निर्माण-शैली भारतीय नाटक प्रणाली के प्रकाश में है अर्थात् प्रसाद की कहानियों में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है। यह सत्य एक ओर जहाँ प्रसाद की लम्बी कहानियों में विशेषकर उन की प्रतिनिध ऐतिहासिक कहानियों में मुखरित मिलता है वहाँ दूसरी ओर यही सत्य उन की छोटी और भावपूर्ण कहानियों में बहुत स्पष्ट और सूक्ष्म हो गया है। इन कहानियों में सर्वत्र आदि से लेकर अंत तक प्रश्न और कौतूहल बिखरा हुआ मिलता है तथा कहानी के अंत में फिर वही प्रश्न उभर पड़ता है जो कहानी में बीज रूप से विकसित होता हुआ फलागम की ओर आ रहा था। यही कारण है कि प्रसाद की ये छोटी कहानियाँ गद्यगीत का रूप लेकर रहस्यात्मक हो गई हैं।

उपर्युक्त प्रथम तथ्य प्रसाद की कहानियों में नहीं मिलेगा और मिलेगा भी तो अविकसित रूप में। वस्तुतः यहाँ की कहानियों का आरम्भ विकास और चरम सीमा प्रसाद की कहानी कला के आरम्भिक रूप का उदाहरण है। अपेक्षाकृत छोटी कहानियों के संबंध में उपर्युक्त द्वितीय तथ्य अवश्य चरितार्थ होता है।

आरम्भ

' प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ प्रायः दो शैलियों से हुआ है। या तो उन का आरम्भ प्राकृतिक चित्रण या दृश्यों के वर्णन से होता है, या दो पात्रों के नाटकीय कथोपकथन से।

यहाँ प्रारम्भिक कहानियों में इन के उदाहरण स्पष्ट हैं। दुखिया नामक कहानी का आरम्भ, "पहाड़ी, देहात, जंगल के किनारे गाँव और बरसात का समय। वह भी उषा काल। बड़ा मनोरम दृश्य था। रात की वर्षा से आम के वृक्ष सराबोर थे। अभी पत्तों पर से पानी ढुलक रहा था। प्रभात के स्पष्ट होने पर भी धुंधले प्रकाश में सड़क के किनारे आम वृक्ष के नीचे एक बालिका कुछ देख रही थी। 'टप' से शब्द हुआ, बालिका उछल पड़ी, गिरा हुआ आम उठा कर अंचल में रख लिया"।[1] "यह छोटा-सा सरोवर क्या ही सुन्दर है। सुहावने जामुन के वृक्ष चारों ओर से घेरे हुए हैं। × × × संध्या हो चली है। विहग कुल कोमल कलरव करते हुए अपने नीड़ की ओर लौटने लगे हैं। अंधकार अपना आगम सूचित करता हुआ वृक्षों की ऊँची टहनियों के कोमल किसलयों को धुंधले रंग का बना रहे है। पर सूर्य की अंतिम किरणें अभी अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहतीं। वे हवा के झोकों से हटाई जाने पर भी अंधकार के अधिकार को विरोध करती हुई सूर्यदेव की उंगलियों की तरह हिल रही हैं"।[2]

इस तरह के प्राकृतिक चित्रण और दृश्य वर्णन शैली के आरम्भ में, चन्दा, ग्राम, रसिया बालम, शरणागत, गुलाम, प्रसाद, उस पार का योगी, आदि कहानियों में मिलते हैं दूसरे प्रकार की आरम्भ शैली में कथोपकथन आरम्भ आते हैं जैसे अघोरी का मोह, का आरम्भ—

"आज तो भैया, मूँग की बरफी खाने को जी नहीं चाहता, यह साग तो बड़ा ही चटकीला है : मैं तो :"

"नहीं-नहीं जगन्नाथ, उसे दो बरफी तो जरूर ही दे दो।"

---

[1] प्रतिध्वनि, दुखिया, पृष्ठ ५९ [2] छाया, तानसेन, पृष्ठ १-२

"न-न : क्या करते हो :, मैं गंगा जी में फेंक दूँगा।"

"लो तब तो मैं तुम्ही को उलटे देता हूँ", ललित ने कह कर किशोर की गर्दन पकड़ ली। दीनता से मोती और प्रेम भरी आँखों से चन्द्रमा की ज्योति में किशोर ने ललित की ओर देखा।

इसी भाँति पत्थर की पुकार का आरम्भ, नवल और विमल दोनों बात करते हुए टहल रहे थे। विमल ने कहा—

"साहित्य सेवा भी एक व्यसन है।"

"नहीं मित्र : यह तो विश्व भर की एक मौन सेवा समिति का सदस्य होना है।"

"अच्छा तो फिर बताओ, तुमको क्या भला लगता है? कैसा साहित्य रुचता है?

"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

तात्विक दृष्टि से कहानी के इन आरम्भों में मूल संवेदना तथा कथासूत्र का बीज निहित होना चाहिए। लेकिन इन कहानियों की आरम्भ शैली में प्रायः वह बीज निश्चित रूप से हर कहानी में नहीं मिलता, वरन् कुछ ही कहानियों में आ सका है, जैसे तानसेन के आरम्भ में कहानी की मूल संवेदना के बीज हैं "संध्या हो गई। कोकिल बोल उठा एक सुन्दर कोमल कंठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया।" कथोपकथनात्मक आरम्भ शैली की दिशा में कहानी का बीज, पत्थर की पुकार में मिल जाता है—"अतीत, और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

वस्तुतः आरम्भ में कहानी के बीज की निश्चित प्रतिष्ठा द्वितीय और तृतीय काल की कहानियों में मिलती है। यहाँ बीज की प्रतिष्ठा अपने प्रयोग काल में है, फलतः इसे अध्ययन की दृष्टि में बाँधना बहुत कठिन हो जाता है।

विकास

इस काल की कहानियों में प्रायः अधिक कहानियाँ बहुत छोटी और कला की दृष्टि से गद्यगीत की भाँति हैं। ऐसी कहानियों में विकास-क्रम का अध्ययन वैज्ञानिक ढङ्ग से नहीं हो सकता। इस के पीछे मुख्य कठिनाई तो यह है कि ये गद्यगीत हैं, कहानी नहीं। इन का धरातल केवल एक भाव है, एक अनुभूति है, समस्या या संवेदना नहीं, तथा यही एक भाव, एक अनुभूति समूची कहानी में

इस तरह से गुँथी रहती है जैसे गीत में एक वृत्ति या संगीत, जिस का आरम्भ, विकास सब एक ही में होता है, अलग से नहीं देखा जा सकता।

कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ हैं उन में भी विकास-क्रम का कोई वैज्ञानिक रूप नहीं है। यह बात दूसरी है कि इन कहानियों में समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह-अवरोह, आदि मोटे ढङ्ग से मिल जाता है, वस्तुतः प्रसाद जी अपनी कहानियों के इस काल में प्रयोगवादी थे, उन की दृष्टि में स्वयं कहानी की कोई निश्चित शिल्पविधि या कला स्थिर नहीं हो सकी थी। फलतः इन कहानियों को एक निश्चित विकास क्रम की कसौटी पर कसना अनुचित होगा। इस दृष्टि से हम उन की कहानियों के द्वितीय काल से एक निश्चित और वैज्ञानिक विकास-क्रम पाते हैं।

चरम सीमा

समग्र रूप में प्रसाद की कहानियों की चरम सीमा अत्यन्त भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक होती है। इस में कभी-कभी कलात्मकता का इतना सुन्दर पुट मिलता है कि मन सहसा झकझोर दिया जाता है। तभी प्रेमचन्द जी ने कहा था कि प्रसाद की कहानियों का अन्त, अपने ढङ्ग का निराला होता है बड़ा ही भावपूर्ण ध्वन्यात्मक और सहसा पाठक का मन झकझोर देता है, वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है।

चरम सीमा की यह कलात्मक प्रवृत्ति हमें प्रसाद के प्रथम काल की कहानियों में ही मिलने लगती है। इस काल की प्रायः अधिकांश कहानियों की चरम सीमा चरित, उत्कर्ष और मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रतिष्ठित हुआ है; जैसे, तानसेन, ग्राम, प्रसाद, पत्थर की पुकार, अघोरी का मोह, आदि कहानियों की चरम सीमाएँ। लेकिन यहाँ गद्यगीत सी कहानियों की चरम सीमाएँ और भी रहस्यात्मक और कलापूर्ण हुई हैं। इन में चरम सीमा पर वही प्रश्न बार-बार मिलता है जिसे लेकर कहानी का प्रारम्भ हुआ था। इस के उदाहरण में, प्रलय और कलावती की शिक्षा, आदि कहानियाँ स्मरणीय रहेंगीं। व्यापक रूप से प्रसाद की कहानियों में उन की चरम सीमाएँ निम्नलिखित रेखाओं में व्यक्त हो सकती हैं।

"न-न : क्या करते हो :, मैं गंगा जी में फेंक दूँगा।"

"लो तब तो मैं तुम्ही को उलटे देता हूँ", ललित ने कह कर किशोरी की गर्दन पकड़ ली। दीनता से मोती और प्रेम भरी आँखों से चन्द्रमा की ज्योति में किशोर ने ललित की ओर देखा।

इसी भाँति पत्थर की पुकार का आरम्भ, नवल और विमल दोनों बात करते हुए टहल रहे थे। विमल ने कहा—

"साहित्य सेवा भी एक व्यसन है।"

"नही मित्र : यह तो विश्व भर की एक मौन सेवा समिति का सदस्य होना है।"

"अच्छा तो फिर बताओ, तुमको क्या भला लगता है? कैसा साहित्य रुचता है?

"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्पित करता है।"

तात्विक दृष्टि से कहानी के इन आरम्भों में मूल संवेदना तथा कथासूत्र का बीज निहित होना चाहिए। लेकिन इन कहानियों की आरम्भ शैली में प्रायः वह बीज निश्चित रूप से हर कहानी में नहीं मिलता, वरन् कुछ ही कहानियों में आ सका है, जैसे तानसेन के आरम्भ में कहानी की मूल संवेदना के बीज हैं "संध्या हो गई। कोकिल बोल उठा एक सुन्दर कोमल कंठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया।" कथोपकथनात्मक आरम्भ शैली की दिशा में कहानी का बीज, पत्थर की पुकार में मिल जाता है—"अतीत, और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्पित करता है।"

वस्तुतः आरम्भ में कहानी के बीज की निश्चित प्रतिष्ठा द्वितीय और तृतीय काल की कहानियों में मिलती है। यहाँ बीज की प्रतिष्ठा अपने प्रयोग काल में है, फलतः इसे अध्ययन की दृष्टि में बाँधना बहुत कठिन हो जाता है।

विकास

इस काल की कहानियों में प्रायः अधिक कहानियाँ बहुत छोटी और कला की दृष्टि से गद्यगीत की भाँति हैं। ऐसी कहानियों में विकास-क्रम का अध्ययन वैज्ञानिक ढङ्ग से नहीं हो सकता। इस के पीछे मुख्य कठिनाई तो यह है कि ये गद्यगीत हैं, कहानी नहीं। इन का धरातल केवल एक भाव है, एक अनुभूति है, समस्या या संवेदना नहीं, तथा यही एक भाव, एक अनुभूति समूची कहानी में

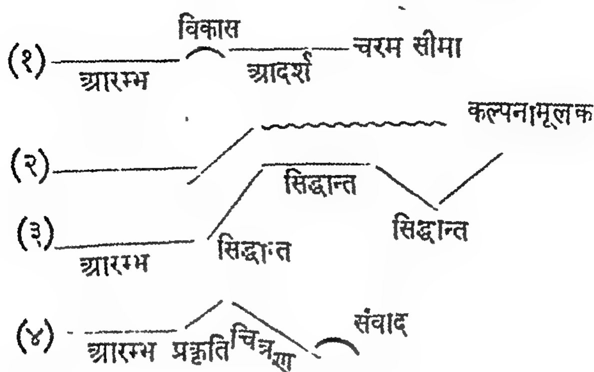
इस तरह से गुँथी रहती है जैसे गीत में एक वृत्ति या संगीत, जिस का आरम्भ, विकास सब एक ही में होता है, अलग से नहीं देखा जा सकता।

कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ हैं उन में भी विकास-क्रम का कोई वैज्ञानिक रूप नहीं है। यह बात दूसरी है कि इन कहानियों में समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह-अवरोह, आदि मोटे ढङ्ग से मिल जाता है, वस्तुतः प्रसाद जी अपनी कहानियों के इस काल में प्रयोगवादी थे, उन की दृष्टि में स्वयं कहानी की कोई निश्चित शिल्पविधि या कला स्थिर नहीं हो सकी थी। फलतः इन कहानियों को एक निश्चित विकास क्रम की कसौटी पर कसना अनुचित होगा। इस दृष्टि से हम उन की कहानियों के द्वितीय काल से एक निश्चित और वैज्ञानिक विकास-क्रम पाते हैं।

चरम सीमा

समग्र रूप में प्रसाद की कहानियों की चरम सीमा अत्यन्त भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक होती है। इस में कभी-कभी कलात्मकता का इतना सुन्दर पुट मिलता है कि मन सहसा झकझोर दिया जाता है। तभी प्रेमचन्द जी ने कहा था कि प्रसाद की कहानियों का अन्त, अपने ढङ्ग का निराला होता है बड़ा ही भावपूर्ण ध्वन्यात्मक और सहसा पाठक का मन झकझोर देता है, वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है।

चरम सीमा की यह कलात्मक प्रवृत्ति हमें प्रसाद के प्रथम काल की कहानियों में ही मिलने लगती है। इस काल की प्रायः अधिकांश कहानियों की चरम सीमा चरित, उत्कर्ष और मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रतिष्ठित हुआ है; जैसे, तानसेन, ग्राम, प्रसाद, पत्थर की पुकार, अघोरी का मोह, आदि कहानियों की चरम सीमाएँ। लेकिन यहाँ गद्यगीत सी कहानियों की चरम सीमाएँ और भी रहस्यात्मक और कलापूर्ण हुई हैं। इन में चरम सीमा पर वही प्रश्न बार-बार मिलता है जिसे लेकर कहानी का प्रारम्भ हुआ था। इस के उदाहरण में, प्रलय और कलावती की शिक्षा, आदि कहानियाँ स्मरणीय रहेंगी। व्यापक रूप से प्रसाद की कहानियों में उन की चरम सीमाएँ निम्नलिखित रेखाओं में व्यक्त हो सकती हैं।



कथोपकथन

शैली के सामान्य पक्ष में कथोपकथन का अध्ययन मुख्य स्थान ग्रहण करता है। क्योंकि कहानी में व्यावहारिक दृष्टि से वर्णन और कथोपकथन के ही माध्यम से समूची कहानी अपनी अभिव्यक्ति पाती है। प्रारम्भिक काल की कहानियों में कथोपकथन का रूप अपने समुचित कलात्मक स्तर पर है। क्योंकि प्रसाद जी मुख्यतः नाटककार और कवि थे, अतः उनकी कहानियों में आरम्भ ही से किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं होने पाई थी। प्रसाद को कथोपकथन तीन रूप ग्रहण करते हैं। स्वतंत्र कथोपकथन, कार्यों के रूप से कथोपकथन और मनोभावों के संकेतों के साथ कथोपकथन, छाया और प्रतिध्वनि की कहानियों में मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

प्रसाद की कहानियों का मुख्य लक्ष्य, सत्य-दर्शन, त्याग, उत्सर्ग और करुणा है, क्योंकि उन के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव था। दूसरी ओर स्वभावतः प्रसाद भावुक और संवेदनशील व्यक्ति थे। यही कारण है कि उन के व्यक्तित्व का अणु-अणु दया, क्षमा, स्नेह और प्रेमादि तत्वों से अभिभूत था। तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और दुख को पल-पल पर देख कर उन का हृदय भर आता था और वे उस की अभिव्यक्ति अतीत काल में जाकर वहाँ की कारुणिक संवेदनाओं, प्रसंगों के माध्यम से या कल्पना-लोक के कथा-प्रसंगों के माध्यम से करते थे, जिस में सदैव करुणा का पुट रहता था।

प्रथम काल की कहानियों में करुणा के साथ-साथ सत्य-दर्शन का लक्ष्य

स्ट है। लेकिन सामाजिक कहानियों में यह करुणा अपने स्थायी भाव शोक ा आगे नहीं बढ़ पाई है। ग्राम, में मुख्य संवेदना, का अंत इसी लक्ष्य पर माप्त होता है—"स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दुख हुआ ात विशेष बीत चुकी थी, अतः रात्रि यापन करके, प्रभात में मलिन तथा श्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके बताए हुए पथ से वह चले गए। ारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करने वाले, तथा उस के प्राण प्रिय पति ा उसे विच्छेद करा कर इस भाँति दुख देने वाले कुन्दनलाल मोहनलाल के ही पेता थे।"[1] लक्ष्य की यही स्थिति, अघोरी का मोह, पाप का पराजय, पत्थर की पुकार, उस पार का योगी, और दुखिया आदि कहानियों में मिलती है। लेकिन अपवाद स्वरूप रसिया बालम और करुणा की विजय, में कारुणिक लक्ष्य असफलता से स्पष्ट है। रसिया बालम, राजकुमारी के प्रेम में विष पी लेता है और उस के ऐसे प्रेम के उत्कर्ष पर राजकुमारी भी उस के हाथ से अवशेष विष को पी लेती है।

यहाँ की ऐतिहासिक कहानियों को पढ़ने से यह अवश्य प्रकट है कि इन का निर्माण प्रायः कारुणिक लक्ष्य को ही लेकर हुआ है। इस का पूर्ण विकास हमें द्वितीय और तृतीय काल की ऐतिहासिक कहानियों में मिलता है, लेकिन प्रारम्भ की ऐतिहासिक कहानियों में करुणा की प्रतिष्ठा आगे की ऐतिहासिक कहानियों में करुणा की प्रतिष्ठा से भिन्न है। यहाँ प्रारम्भिक कहानियों में करुणा की निष्पत्ति कहानी की चरम सीमा पर किसी घटना के घटने में अधिक होती है और आगे की कहानियों में सम्पूर्ण वातावरण आदि से विकास तक, करुणा से अभिभूत रहता है, चाहे उस का अंत अथवा चरम सीमा संयोगात्मक ही क्यों न हो। इस संबंध में इस काल की ऐतिहासिक कहानियों में, सिकन्दर की शपथ, गुलाम, अशोक, आदि कहानियों के चरम लक्ष्य स्मरणीय हैं।

प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ केवल एक अनुभूति के धरातल पर लिखी गई हैं अर्थात् उन के निर्माण में एक निश्चित अनुभूति की ही प्रेरणा है, लक्ष्य की नहीं। प्रसाद की इस अनुभूति का केन्द्र-बिन्दु, सौन्दर्यानुभूति और प्रेमानुभूति है। यही कारण है कि प्रसाद जी की कहानियों में प्रेम की पीड़ा इतनी प्रबल हो गई है कि इस का रूप हमें सूरदास के प्रेमगीतों और जायसी के प्रेमाख्यानकों के समीप ले जाता है। अतः प्रसाद जी ने जितनी कहानियाँ इस प्रेम

---

१ छाया, ग्राम, पृष्ठ ४०

की गहरी अनुभूति से और सौन्दर्य मन्थन के बीच से लिखी है उन में अपेक्षाकृत अधिक प्रभविष्णुता और गहराई आ गई है। इस दृष्टि से आंधी, न्यारा, ग्राम गीत, दासी, नूरी, सालवती, और आकाश दीप, प्रसाद जी की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

यहाँ प्रथम काल की कहानियों में जितनी भी कहानियाँ काल्पनिक हैं, उन में अपेक्षाकृत अनुभूति की ही प्रेरणा है, जिस से वे कहानियाँ इतनी सुन्दर लगती हैं; जैसे, तानसेन, प्रलय, मदन मृणालिनी, और रसिया वालम आदि कहानियाँ।

समीक्षा

प्रसाद की प्रथम काल की कहानियाँ परिस्थिति प्रधान हैं अर्थात् यहाँ कहानियों का धरातल मुख्यतः परिस्थितियों का विभिन्न प्रसंग है, अतः यहाँ संवेदना और मनोविज्ञान गौण हैं और परिस्थितियों का चित्रण प्रधान हो गया है। इस काल की गद्यगीत जैसी कहानियों को छोड़ कर शेष कहानियाँ विभिन्न परिस्थितियों के प्रसंगों की प्रतिकृति मात्र हैं चन्दा, ग्राम, सिकन्दर की शपथ, जहाँनारा, अघोरी का मोह, और करुणा की विजय, इन समस्त कहानियों में विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण है और इन्हीं विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण में इन कहानियों की विशेषता है।

चन्दा, में प्रेम परिस्थिति है जहाँ चन्दा की भावना परिधि में दो प्रेमी रामू और हीरा हैं। लेकिन चन्दा और हीरा एक दूसरे से प्रेम करते हैं और दोनों एक दूसरे से शादी करने वाले हैं, लेकिन रामू इस बीच में खलनायक का काम करता है और सारी परिस्थिति कारुणिक हो जाती है। ग्राम, आर्थिक परिस्थिति के धरातल पर लिखी हुई कहानी है। यहाँ एक ग्राम में दो निरीह किसान हैं जिनकी सारी सम्पत्ति और सुख जमींदार ने हड़प ली है। एक दिन परिस्थिति वश उसी जमींदार का उदार लड़का मोहनलाल उसी गाँव में उसी किसान के घर आ पहुँचता है और परिस्थिति में तीव्रता आ जाती है। सिकन्दर की शपथ और जहाँनारा में नैतिक परिस्थिति है, जहाँ सिकन्दर और औरंगजेब क्रमशः भारतीय हिन्दू योद्धाओं और जहाँनारा को यातना पहुँचाते हैं। अघोरी का मोह और करुणा की विजय में क्रमशः मनोभावों की परिस्थिति और दारिद्रिक परिस्थिति का चित्रण है जो आदि से अन्त तक हमारे सामने अपने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता रहता है। शिल्पविधि की दृष्टि से, यही कारण है कि इस काल की कहानियों के विकास में संयोग और घटनाओं का सहारा बहुत लिया गया है।

द्वितीय काल

प्रथम काल में, छाया, और, प्रतिध्वनि की कहानियाँ एक दूसरे से भिन्न थीं। छाया, में ऐतिहासिक और प्रेम-कथाएँ हैं, तथा कहानी कला की दृष्टि से ये कहानियाँ प्रसाद की कला की प्रारम्भिक अवस्था के उदाहरण हैं। प्रतिध्वनि, की कहानियाँ प्रायः कहानियाँ न होकर गद्यगीत और रेखाचित्र हैं। इन में जीवन के विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं की भावात्मक झाँकियाँ हैं।

आकाश दीप, की कहानियाँ प्रसाद के द्वितीय काल की कहानियाँ हैं, ये संख्या में कुल उन्नीस हैं। ये सारी कहानियाँ प्रेम के प्रसंगों के साथ आई हैं। लेकिन यहाँ प्रेम का धरातल अपनी पूर्ण विशालता और गंभीरता के साथ हैं। आकाश दीप, स्वर्ग के खंडहर, ममता, सुनहरा सांप, देवदासी, बनजारा, चूड़ीवाली, प्रणय चिह्न, और बिसाती, आदि प्रेम की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। अध्ययन की दृष्टि से ये प्रेम कहानियाँ छाया की कहानियों की विकास दशा में रखी जा सकती हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त और आकाश दीप की शेष कहानियाँ पुनः गद्य गीतों और रेखाचित्रों के विकास-क्रम में आई हैं; जैसे, हिमालय का पथिक, प्रतिध्वनि, कला, समुद्र संतरण, वैरागी, अपराधी, और रूप की छाया। अध्ययन की दृष्टि से ये कहानियाँ प्रतिध्वनि की कहानियों की विकास दिशा में रक्खी जा सकती हैं। अतः समग्र रूप में, आकाश दीप की कहानियों में दो दिशाएं आई हैं। छाया के विकास-क्रम की दिशा में आने वाली कहानियाँ कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट हुई हैं और प्रतिध्वनि के विकास-क्रम में आने वाली कहानियाँ साधारण ही रह गई हैं। यद्यपि यहाँ पहले की अपेक्षा कहानी के तत्त्व अधिक आए हैं और सम्पूर्ण कला में विकास हुआ है।

कथानक

इस काल की कहानियों में दो तरह के कथानक मिलते हैं अर्थात् आकाश दीप, स्वर्ग के खण्डहर, ममता, सुनहला साँप, बंजारा, चूड़ी वाली, प्रणय चिह्न, और बिसाती, कहानियों के कथानक लम्बे और नाटकीय तत्व के साथ आए हैं। दूसरी ओर हिमालय के पथिक प्रतिध्वनि कला समुद्र संतरण, वैरागी, अपराधी, और रूप की छाया, कहानियों के कथानक छोटे और प्रासंगिक हुए हैं।

यहाँ लम्बे कथानकों में दो प्रकार के कलात्मक सौन्दर्य उपस्थित हुए हैं। इन कथानकों में अपेक्षाकृत बड़ी संवेदनाएँ अपने कई प्रसंगों के साथ गुँथी हुई

आई हैं। फिर भी इन कथानकों की सब से बड़ी विशेषता इस में है कि इन में भाव की और इकाई एकसूत्रता सर्वत्र है। आकाश दीप, की मुख्य इकाई है। प्रेम और कर्तव्य का संघर्ष और इसी संघर्ष में इस कहानी की एकसूत्रता भी है तथा इसी के किनारे-किनारे ये जितने प्रसंग आए हैं वे संकेत और व्यंजना के माध्यम से हमारे सामने प्रकट हुए हैं; जैसे, चम्पा, चम्पा नगरी की एक बालिका थी। उस के पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। चम्पा माता के देहावसान के उपरान्त अपने पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। एक दिन चम्पा के पिता दस्युओं के आक्रमण से मारे गए और युवती चम्पा से मणिभद्र ने घृणित प्रस्ताव किया जिसके विद्रोह में चम्पा बन्दी हुई। वस्तुतः इतने प्रसंग मुख्य संवेदना और कथासूत्र के पृष्ठभूमि में आए हैं। मुख्य संवेदना के साथ इतने प्रसंग आए हैं। बुद्ध गुप्त ही वह दस्यु था जिस ने चम्पा के पिता की हत्या की और इधर चम्पा और बुद्धगुप्त से प्रेम होता है तथा इस के फलस्वरूप प्रेम और कर्तव्य में संघर्ष छिड़ता है। बुद्धगुप्त का जावा, सुमात्रा, बाली का अधिकारी होना। वस्तुतः ये प्रसंग मुख्य संवेदना में और भी तनाव और गंभीरता उपस्थित करते हैं तथा सब से बड़ी बात इन प्रसंगों में यह है कि इन के माध्यम से मुख्य संवेदना में अंतर्द्वन्द और घात-प्रतिघात की अवतारणा हुई है तथा समग्र रूप से प्रसाद की कहानी कला में नाटकीय तत्व की प्रतिष्ठा हुई हैं। फलतः ऐसे कथानकों की इकाई एकसूत्रता इतनी बलवती और कलात्मक हुई है कि कहानियों के आरम्भ ही से पाठक की जिज्ञासा-वृति पर कहानी की संवेदना पूर्ण अधिकार प्राप्त कर अंत तक पाठक को कौतूहल से अभिभूत किए रहती है। पाठक कहानी के अंत पर भी पहुँच कर उस इकाई से छुट्टी नहीं पाता वरन् उस के सामने एक नई समस्या आ जाती है और वह स्वयं उसके सुलझाने में लग जाता है।

ऐसे कथानकों का अन्यतम सौन्दर्य इस में है कि एक लम्बी-सी संवेदना और कथासूत्र को एक छोटे-से इतिवृत्त में समेट देना, तथा उस में भी कौतूहल का चमत्कार पैदा करते रहना। प्रत्यक्ष रूप से आकाश दीप के कथानक का सूत्र इतना ही है। एक महाजल पोत से संबंधित एक अन्य नाव में चम्पा और बुद्ध-गुप्त दोनों बन्दी हैं। दोनों अपनी कुशलता और पराक्रम बंधन मुक्त हो जाते हैं और उन की नाव एक दिन एक नये द्वीप पर पहुँचती है। वहाँ चम्पा और बुद्ध-गुप्त एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, लेकिन इसी बीच चम्पा को स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धगुप्त ही वह दस्यु है जिसने उस के पिता की हत्या की है। चम्पा में अंतर्द्वन्द्व बढ़ते हैं और बुद्धगुप्त अंत में चम्पा को अप्राप्य समझ कर निस्स-

नार भाग लौट आता है। लेकिन इतने से इतिवृत्त में आकाश दीप की और भी बड़ी संवेदना और कथासूत्र समाया हुआ है।

ऐसे कथानकों के निर्माण में प्रसाद ने बिल्कुल नये कथानक तंत्र की सहायता ली है। इन तंत्र-निर्माण में नाटकीयता, वर्णनात्मकता, व्यंजना और संदर्भ की सामुहिक सहायता ली गई है। इस दिशा में सब से बड़ी विशेषता इस बात में है कि ये कथानक न तो अधिक इतिवृत्तात्मक हो सके हैं न वर्णनात्मक। वस्तुतः ऐसे कथानकों का निर्माण प्रसाद जी ही द्वारा संभव था क्योंकि प्रसाद के व्यक्तित्व में एक ही साथ नाटककार, गीतकार और उपन्यासकार की प्रतिभा थी। फलतः उन्हें जिस कथानक का आरम्भ समस्या और द्वन्द्व के साथ करना हुआ, वहाँ उन्होंने अपनी नाटकीय प्रतिभा से कथोपकथन की अवतारणा कर दी और कथानक का आरम्भ समस्या की तीव्रता से हुआ; जैसे, आकाश दीप, सुनहला साँप, और चूड़ीवाली के आरम्भ में कथानक का आरम्भ तथा उन्हें जिस कथानक का आरम्भ समस्या की पृष्ठभूमि सौन्दर्य के साथ करना हुआ वहाँ उन्होंने काव्यात्मक वर्णनों से कथानक का आरम्भ किया; जैसे, ममता, स्वर्ग के खंडहर में और विसाती ऐसे कथानकों के निर्माण में प्रसाद जी ने दो शैलियाँ अपनायी हैं। कथोपकथनों से कहानी आरम्भ करके कथानक में द्वन्द्व पैदा करना और इस के उपरान्त वर्णन द्वारा वस्तुस्थिति को व्याख्या द्वारा नहीं बल्कि संकेतों द्वारा स्पष्ट करते चलना, फिर कथोपकथनों द्वारा अंतर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति और सांकेतिक वर्णनों से कथानक को चरम सीमा पर पहुँचा देना। कथानक निर्माण का यह अवस्था-क्रम 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप', 'विसाती' और 'चूड़ीवाली' आदि कहानियों में मिल जायगा। दूसरी शैली है, वर्णन और चित्रण से कथानक का आरम्भ करना और समस्या का प्रवेश तथा कथोपकथनों द्वारा उस के अंतर्द्वन्द्वों को उभारते हुए कथासूत्र को चरम सीमा पर पहुँचा देना। कथानक निर्माण का यह अवस्था-क्रम और ममता, स्वर्ग के खंडहर में और बनजारा, आदि कहानियों में मिलेगा।

इन दोनों शैलियों से निर्मित कथासूत्रों में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठापना पूर्ण सफलता से हुई है। फलतः इन कथानकों में भारतीय नाटक प्रणाली का अनुमोदन भी हुआ है, क्योंकि प्रसाद जी मूलतः अपने नाटकों के कथानक-निर्माण में इसी प्रणाली से प्रायः आकर्षित थे। उन्हों ने अपने समस्त नाटकों में इस का सक्रिय अनुमोदन किया है।

उपर्युक्त तथ्य की परीक्षा के लिए हम, आकाश दीप, और चूड़ीवाली

कहानी को ले सकते हैं। आकाशदीप में दोनों बंदियों का जलयान में बन्धनों और एक दूसरे को बंधन मुक्त कर देना बीज है। चम्पा द्वीप में इन दोनों का पाँच वर्ष का रहना और चम्पा का प्रेम बुद्धगुप्त के [illegible] करना विकास है और चम्पा का उस द्वीप पर अकेली रह जाना और बुद्धगुप्त का भारतवर्ष लौटना फलागम है। चूड़ीवाली में चूड़ीवाली का बहू जी को चूड़ी पहनाते समय बहू के पति के संबंध में विनोद में यह कहना, "आप ही कहती थीं न कि सरकार को ही पहनाओ तो जरा उनसे पहनने के लिए कह दीजिए", यह बीज है। सरकार का चूड़ीवाली वेश्या पुत्री से प्रेम हो जाना और चूड़ीवाली का इन्हें पति के रूप में पाने के लिए उस की साधना, त्याग आदि विकास है तथा चूड़ीवाली और सरकार का अंत में संयोग हो जाना फलागम है।

दूसरे ढंग के कथानक जो छोटे और प्रासंगिक हैं, उन में उपर्युक्त प्रणाली नहीं मिलती। वस्तुतः इन कथानकों में दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं। यहाँ कथानकों का निर्माण व्यंजनाओं से हुआ है घटनाओं से नहीं तथा इन कथानकों का मूल्य रूपकात्मक अधिक है कथात्मक कम। ऐसे कथानकों के उदाहरण में हम कला नामक कहानी के कथानक को देख सकते हैं। इस का कथानक इन व्यंजनाओं से निर्मित हुआ है कला एक युवती है, कालेज में पढ़ती है तथा रूपनाथ और रसदेव इस के प्रेमी हैं। एक दिन कला अपनी पढ़ाई समाप्त कर कालेज छोड़ देती है और इधर रूपनाथ तथा रसदेव कला के प्रेम में क्रमशः चित्र और गीत बनाने लगते हैं। सहसा एक दिन कला अभिनेत्री के रूप में रंगमंच पर दिखाई देती है। रूपनाथ उसे देख कर अपनी चित्रकला को भूल जाता है और कला से पराजित होकर भाग जाता है। रसदेव सुनता है कि कला उसी की बनाई हुई एक गीत गा रही है, फिर दोनों का संयोग हो जाता है। वस्तुतः यह इति-वृत्तिपूर्ण रूपकात्मक है। इस की संवेदना को लेकर कहानी को कथा बनाया जा सकता है। लेकिन यहाँ प्रसाद जी ने जान बूझ कर इसे अस्पष्ट और अमूर्त्त बनाने की चेष्टा की है। ऐसी कहानियों के पीछे प्रसाद के व्यक्तित्व का गीत तत्व अधिक प्रधान हो गया है, यही कारण है कि ये कहानियाँ गद्यगीत हो गई हैं और इस के कथानक टूटे हुए विश्रृंखलित और रूपकात्मक हो गए हैं!

इस काल की एक कहानी, देवदासी में प्रसाद जी ने कथानक का निर्माण पत्रात्मक शैली में किया है, लेकिन कथानक-निर्माण की वह शैली बहुत सफल नहीं है और आगे फिर कभी इस शैली का दर्शन नहीं हुआ है।

चरित्र

पिछले पृष्ठों में चरित्र अवतारणा के संबंध में हमने बौद्ध दर्शन और प्रसाद के सौन्दर्यनिष्ठ और भावुक व्यक्तित्व की चर्चा की थी। वह तथ्य यहाँ की कहानियों की चरित्र अवतारणा पर पूर्णतः स्पष्ट है। यहाँ के चरित्रों का गंभीर और कारुणिक व्यक्तित्व सुन्दरता से प्रतिष्ठित हो गया है तथा चरित्रों की सौन्दर्यनिष्ठा और उन का प्रेमतत्व दोनों अपनी सुन्दर सीमा पर पहुंच गए हैं। यहाँ चरित्र अपने भाव जगत् अपनी आन्तरिकता में अधिकाधिक एक दूसरे के समीप हैं अर्थात् प्रायः समस्त चरित्र अंतर्द्वन्द्वों से अभिभूत हो गए हैं। उन की वाह्य क्रियाशीलता उन के आन्तरिक अंतर्द्वन्द्वों की अपेक्षा बहुत ही सीमित है। चरित्र प्रायः अपने अंतर्लोक में जितने महान्, जितने संघर्ष रत हैं, उतने अपने वाह्य पक्ष में नहीं। इस का मूल से प्रधान कारण यह है कि यहाँ की कहानियों में प्रायः समस्त प्रतिनिधि चरित्र अपने कारुणिक व्यक्तित्व में मौन हैं, वे तिल-तिल पर घुलते रहते हैं और अपने अंतर्लोक के छायाचित्रों में ही अपना संतोष ढूंढ़ते रहते हैं। यही एक मात्र कारण है कि, चम्पा, ममता, मीना, गुल, और देवपाल, रुद्रदेव, सुदर्शन, विलासी, और बनजारा, आदि चरित्र काव्य और नाटक के चरित्र अधिक हो गए हैं, कहानी के कम।

स्त्री

जैसा कि पहले कहा गया है मूलतः प्रसाद के स्त्री चरित्र सदैव युवती, सुन्दर और आकर्षक होते हैं। इस का प्रमाण हमने प्रथम काल की कहानियों में ही पा लिया है।। इस काल की भी स्त्रियाँ सुन्दर आकर्षक नवीन इन्दुकला-सी, आलोकमयी आँखों की प्यास बुझाने वाली तो हैं ही, लेकिन इनके व्यक्तित्व के दो पक्ष करुणा और भावुकता दोनों यहाँ अपूर्व ढंग से प्रतिष्ठित हुए हैं। अर्थात् प्रसाद के ही शब्दों में यहाँ की सभी स्त्रियाँ अपने मन में वेदना, मस्तक में आँधी, शरीर में यौवन और आँखों में पानी की बरसात लिए हुए आई हैं।

ममता, कहानी में मुख्य स्त्री पात्र ममता युवती है। उस का यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा है, उस के लिये कुछ अभाव होना असंभव है, क्योंकि वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता है परन्तु वह विधवा है है। हिन्दू विधवा, संसार में सब से तुच्छ निराश्रय प्राणी, लेकिन इस स्त्री चरित्र की करुणा यहीं नहीं समाप्त होती, बल्कि यह कारुणिक व्यक्तित्व और भी कारुणिक होता है। इस के एक मात्र पिता की हत्या होती है, ममता भिक्षुणी हो

जाती है, महल से निकल कर झोपड़ी में रहने लगती है और अंत में अपूर्व करुणा से भर जाती है। स्वर्ग के खंडहर, में बालिका का शुभ्र शरीर मलिन वस्त्र में दमक रहा था। नासिका मूल से कानों के समीप तक भ्रू युगल प्रभाव-शालिनी रेखाएँ और उसकी छाया में दो उनींदे कमल संसार से अपने को छिपा लेना चाहते थे। लेकिन उस का विरागी सौन्दर्य, शरद के शुभ्र घन के हलके आवरण में पूर्णिमा के चन्द्र-सा आप ही लज्जित था। इस तरह यहाँ स्त्री चरित्र की अवतारणा अनुपम सौन्दर्य विराग और करुणा के संधि-बिन्दु पर हुआ है और अधिकांश स्त्री पात्र साधना रत, एकाकी जीवन, व्यतीत करती हुई हमारी समस्त संवेदना और पूरी सहानुभूति को स्वतः अपने में खींच लेती हैं। यहाँ की कहानियों में स्त्रियाँ ही मूलरूप से केन्द्र-बिन्दु बन कर उपस्थित हुई हैं, जिनके किनारे-किनारे कहानी की समस्त रेखाएँ समस्त क्रियाएँ घूमती रहती हैं। इन में इतनी प्रभविष्णुता आ गई है कि पुरुष चरित्र इन की छाया से लगने लगते हैं। इस प्रभविष्णुता और बलशाली स्त्री व्यक्तित्व के पीछे प्रसाद जी ने तीन रहस्य छिपाया है फलतः ये कहानियाँ स्त्री प्रधान हैं और अधिकांश रूप में इनका नायकत्व स्त्रियों को ही मिला है। यहाँ स्त्री पात्रों में प्रसाद जी ने मुख्यतः चरित्र को लिया है, आचरण को नहीं कहीं-कहीं चरित्र में ही डूब कर, उन्होंने स्त्री की आन्तरिकता को लिया है तथा इस आंतरिकता में उन्होंने उन अंतर्द्वन्द्वों तथा घात-प्रतिघात को लिया है, जो शाश्वत और चिरन्तन हैं जैसे प्रेम और कर्त्तव्य, प्रतिशोध और क्षमा। "विश्वास कदापि नहीं बुद्धगुप्त : जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ : मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ····· चम्पा रो पड़ी। लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपने समस्त प्रतिशोधों, कटु अनुभूतियों और अंतर्द्वन्द्वों के बावजूद भी चारित्रिक रूप में महान सिद्ध हुई हैं। चम्पा कहती है, बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिला कर मेरे लिए शून्य एक है प्रिय नाविक तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो, इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" मीना अपनी भावुकता में कितनी ऊँची बातें करती है—"वही स्वर्ग तो नरक है, जहाँ प्रियजनों से विच्छेद है। वही रात्रि प्रलय की रात्रि है, जिस की कालिमा में विरह का संयोग है। वह यौवन निष्फल है जिस का हृदयवान् उपासक नहीं। वह

मदिरा ढलढल है, सार है, जो उन मधुर अधरों की उच्छिष्ट नहीं। वह प्रणय विषाक्त छुरी है, जिस में कपट है।"

इन स्त्री चरित्रों की प्रतिष्ठा इतनी रंगीन, भावुक और कोमल रेखाओं से हुआ है कि हम इन के आकृतिक व्यक्तित्व को कभी नहीं भूल सकते, क्या इन के शौर्य रूप में, क्या कोमल और कारुणिक रूप में "मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूँ, मुझे किसी टूटी डाल पर अंधकार बिता लेने दो। इस रजनी विश्राम का मूल्य अंतिम तान सुनाकर जाऊँगी।" फिर भी ये स्त्रियाँ स्थान-स्थान पर कर्म प्रधान हैं। अपनी क्रियाशीलता में कहीं प्रतिहिंसा के लिए प्रस्तुत हुई हैं, कहीं पुरुष को पाने के लिए नूरीवाली-सी अपूर्व साधिका बन गई हैं और अपनी साधना तपस्या से पुरुष को पा गई हैं।

यहाँ स्त्री चरित्रों में जातिगत और वर्गगत विभिन्नता अवश्य आई है लेकिन मूलतः सब स्त्रियाँ एक सी तरुण, आकर्षक और सुन्दरी हैं चाहे वे विधवा हों, चाहे कुमारी, चाहे नायिका, जातिगत और वर्गगत प्रभेदों, कुमारियाँ, रानियाँ, धीवर बालाएँ, वेश्या पुत्री, कोल कुमारी, मालिन, संपेरिन, देवदासी, दासी, भिक्षुणी, भिखारिन आदि स्त्री चरित्र आए हैं।

पुरुष

प्रथम काल की कहानियों में पुरुष चरित्र अपनी संवेदनशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और अंतर्मुखी भावधारा में प्रारम्भिक अवस्था में थे। यहाँ इन दिशाओं में पुरुष पात्र बहुत आगे बढ़ आए हैं। लेकिन फिर भी पूर्ण रूप से उन का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। इस के दो कारण हैं। मूलतः आकाश दीप की कहानियाँ स्त्री प्रधान हैं अर्थात् स्त्री यहाँ केन्द्र-बिन्दु हैं, कार्यों और घटनाओं की प्रेरणा है, अतः यहाँ पुरुष पात्र दब से गए हैं और उन का चरित्र गौण हो गया है। जिन दो-तीन कहानियों में पुरुष पात्रों को प्रधानता भी मिली है वे कहानियाँ प्रायः रहस्यात्मक और अस्पष्ट रह गई हैं। फलतः पुरुष पात्रों को व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा उचित ढंग से नहीं हो सकी है और अगर कहीं प्रतिष्ठापना हुई भी है तो हिमालय के पथिक की भाँति, पुरुष पात्र मनुष्य न रह कर देवता हो गए हैं। हिमालय के पथिक की नूरी में पथिक को देवता बनाया है फिर भी यहाँ के पुरुष पात्र प्रथम काल के पुरुष पात्रों से बहुत आगे हैं। आकाश-दीप का बुद्धगुप्त कितना साहसी और संवेदनशील है। वह तूफानी समुद्र की लहरों में बन्दी चम्पा और अपने को बंधन मुक्त करता है, एक नए द्वीप की

"बहू जी जरा देख तो लीजिए।"

ऐसे आरम्भ में प्रसादजी की कहानी कला की दो विशेषताएँ बहुत ही स्पष्ट हैं। यहाँ कहानी के प्रारम्भ में आकर्षण और कौतूहल वृत्ति की प्रतिष्ठा सब से प्रमुख विशेषता के रूप में आती है। दूसरे ऐसे आरम्भ में समस्या, चरित्र और द्वन्द्व की प्रतिष्ठापना हो जाती है। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में जो कार्य उन के प्रथम अंक देते हैं वही कार्य इन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे आरम्भों से लिया है। यहाँ कहानी के मुख्य पात्र, मुख्य द्वन्द्व आदि के संकेत का सांकेतिक परिचय मिल जाता है। 'आकाश दीप' के उपर्युक्त आरम्भ के उतने की कथोपकथनों में, कहानी के प्रमुख पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त का प्रवेश है; दोनों की समस्त परिस्थितियों का परिचय है तथा दोनों के चरित्रों की ओर संकेत है और सब से बड़ी विशेषता इन उक्त कथोपकथनों में यह है कि इन के अक्षर-अक्षर में कौतूहल, जिज्ञासा व्याप्त है।

दूसरी आरम्भ शैली पिछली ही शैली का विकसित रूप है। यहाँ कला, नामक एक स्वतंत्र कहानी में, इस शैली की दिशा में चित्रण और वर्णन के स्थान पर परिचयात्मक शैली आई है। उस के पिता ने बड़े दुलार से उस का नाम रखा था, कला, नवीन इन्दु कला-सी वह आलोकमयी और आँखों को प्यास बुझाने वाली थी। विद्यालय में सबकी दृष्टि उस सरल बालिका की ओर घूम जाती थी, परन्तु रूपनाथ और रसदेव उस के विशेष भक्त थे। कला भी कभी-कभी उन दोनों से बोलती थी, अन्यथा वह एक सुन्दर नीरवता ही बनी रहती थी[१]।

विकास

आकाश दीप की प्रतिनिधि कहानियों में प्रसाद ने चार अवस्था-क्रमों को रखा है (१) समस्या प्रवेश (२) परिचय (३) द्वन्द्व का जन्म (४) घात-प्रतिघात। वस्तुतः ये विकास-क्रम उन छोटी कहानियों में नहीं मिलेंगे जो रहस्यात्मक हैं और गद्यगीत की शैली में लिखी गई हैं।

ये विकास-क्रम, आकाश दीप, ममता, स्वर्ग के खंडहर में, बनजारा, चूड़ीवाली, और बिसाती, आदि कहानियों में स्पष्ट रूप से मिलेंगे। आकाश-दीप में समस्या प्रवेश, समुद्र में हिलोरें उठने लगीं दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया दूसरे का बंधन खोलने का

---

[१] आकाश दीप,कला, पृ० ८४।

प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरों के स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा, स्नेह का असम्भावित आलिंगन दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गए। दूसरे वन्दी ने हर्षातिरेक से उसे गले से लगा लिया, सहसा उस वन्दी ने कहा, यह क्या तुम स्त्री हो ?

"क्या स्त्री होना पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है ?" तुम्हारा नाम ?

"चम्पा"

इस के उपरान्त परिचय क्रम आता है। इस क्रम में परिस्थिति परिचय, पात्र परिचय, दोनों मुख्य रूप से आते हैं और दोनों परिचय प्रायः एक में मिले हुए आते हैं; जैसे—

"तुम्हे इन लोगों ने वन्दी क्यों बनाया ?"

"मणिक मणिभद्र की पाप वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इसी नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ, अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से वही बना दी गई", चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा : परन्तु दुर्भाग्य से जल-दस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?" इस के उपरान्त द्वन्द्व के जन्म का क्रम आता है।

"तो चम्पा : अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।" नहीं-नहीं तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण, और ज्वलनशील है भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश दीप व्यंग कर रहे हो। नाविक : उस प्रचंड आँधी में प्रकाश की एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे मुझे स्मरण है। जब मैं छोटी थी मेरी पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस

समय वह प्रार्थना करती, "भगवान : मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते, साध्वी तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है। वह गद्गद हो जाती। मेरी माँ : आह नाविक: यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता : वीर पिता की मृत्यु करके निष्ठुर जलदस्यु हट जाओ : सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भी रुग्ण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

"यह क्या चम्पा ? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही और इस के उपरांत घात-प्रतिघात का क्रम आता है।

"विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त : जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी। उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जल दस्यु : तुम्हें प्यार करती हूँ।" चम्पा रो पड़ी।

"चुप रहो महानाविक : क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा"।

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा : वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती : बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय : आह : तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा : यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ इसमें सन्देह है। आह : किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।" महानाविक उच्छ्वास में विकलता थी फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी ?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश दीप।"

चरम सीमा

अधिकांश कहानियों की चरम सीमाएं मनोवैज्ञानिक अनुभूति और

मनोभावों के उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हुई हैं; जैसे, आकाश दीप, सुनहला साँप, चूड़ीवाली, भिखारिन, प्रतिध्वनि, कला, विसाती, बनजारा, आदि इस काल में दो ही एक कहानियाँ जैसे हिमालय का पथिक, और स्वर्ग-के खंडहर में, ऐसी हैं जिन की चरम सीमा संयोग या घटना पर आधारित हैं।

पहले प्रकार की चरम सीमा में मनोभावों के चरम उत्कर्ष के साथ-ही साथ प्रसाद जी ने अंत में दो एक प्रतियाँ और जोड़ कर नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है; जैसे, आकाश दीप, ममता, और स्वर्ग के खंडहर में, विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से कुछ चरम सीमाएँ नितान्त रहस्यवादी ढंग की अस्पष्ट और अनिश्चित-सी हो गई हैं जैसे, रमला, ज्योतिष्मती की चरम सीमाएँ। कुछ चरम सीमाएं व्यंजनात्मक और ध्वनि प्रधान हुई हैं जैसे विसाती, देवदासी, और, प्रतिध्वनि आदि इन के अतिरिक्त अधिकांश चरम सीमाएं ऐसी भी हैं जो जिज्ञासा और प्रश्न-विन्दु पर समाप्त हुई हैं, जहाँ से पाठक को फिर से एक नए सिरे से एक नई समस्या को सुलझाना पड़ता है जैसे बनजारा, हिमालय का पथिक और स्वर्ग के खंडहर में।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में प्राकृतिक दृश्य और शोभा वर्णन यहाँ पहले की अपेक्षा उत्कृष्ट ढंग से हुआ है। वस्तुतः इन दोनों की अवतारणा कहानी के प्रयः प्रत्येक क्रम पर होता है और इस तरह सम्पूर्ण कहानी में सुन्दर वातावरण प्रस्तुत करने के लिए दृश्य चित्रण और शोभा वर्णन बार-बार आया है। इस से कहीं-कहीं कहानियों में व्यंजना और लाक्षणिकता आ गई है। स्वर्ग के खंडहर में, प्राकृतिक दृश्य कितना अनुपम है। "वन्य कुसुमों की झालरें सुख शीतल पवन से विकम्पित होकर चारों ओर झूल रही थी, छोटे-छोटे करनी की कलाएं कतराती हुई बह रही थी। लता वितानों ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएं शिल्प रचना पूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनाती जिसमें पागल कर देने वाली सुगंध की लहरें नृत्य करती थीं। स्थान-स्थान पर कुंजों और पुष्प शाखाओं का समारोह, छोटे-छोटे विश्राम गृह, पान-पात्रों में सुगंधित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल फूलवाले वृक्षों के झुरमुट दूध और मधु की नहरों के किनारे गुलाबी बादलों का क्षणिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रंग मंच, पुलकित वृक्ष फूलों पर मधु मक्खियों की भन्नाहट, रह-रह कर पक्षियों के हृदय में चुभने वाली तान, मणि-दीपों पर लटकती हुई पुलकित मालाएं।"

इन प्राकृतिक चित्रणों में प्रसाद की कल्पमयी रेखाओं ने कल्पना के पंख लगा कर और कितने विभिन्न रंगों के अनुपात से ऐसे अनुपम चित्रों को उपस्थित किया है। यहाँ प्राकृतिक चित्रण सम्पूर्ण चित्रात्मकता और व्यंजना के साथ प्रस्तुत हुआ है। इस में वातावरण निर्माण की अद्भुत शक्ति सन्निहित हुई है। कहानी में ऐसे प्राकृतिक चित्रण जहाँ एक ओर घटनाओं, क्रिया-कलापों के लिए पृष्ठभूमि और वातावरण प्रस्तुत करते हैं वहाँ कहानी में इन की अवतारणा कथासूत्र के आरम्भ और विकास-क्रमों के लिए सुन्दर पीठिका के लिए भी हुआ है। यही कारण है कि एक एक कहानी में ऐसे प्राकृतिक चित्रण बार-बार आए हैं।

शोभा वर्णनों में ये रेखाएं और सूक्ष्म तथा अंतर्मुखी हुई हैं। ये रेखाएं, शोभा रूप के वर्णनों में वस्तुस्थिति के केवल बाह्य स्तर को छूकर नहीं लौट आतीं, वरन् उस के अन्तरतम में पैठ कर उस के शाश्वत और चिरंतन रूप की अभिव्यक्ति करती हैं। "एक धीवर कुमारी समुद्र तट से कगारों पर चढ़ रही थी, जैसे पंख फैलाये तितली नील भ्रमरी-सी उसकी दृष्टि एक क्षण के लिए कहीं नहीं ठहरती थी। श्याम सलोनी सी गोधूली-सी वह सुन्दरी सिकता में अपने पद चिह्न छोड़ती हुई चली जा रही थी। सायंकाल का समुद्रतट उसकी आँखों में दृश्य के उस पार की वस्तुओं का रेखाचित्र खींच रहा था, जैसे वह जिसको नहीं जानता था, उसको कुछ-कुछ समझने लगा हो, और वही समझ, वही चेतना एक रूप रखकर सामने आ गई। उसके अधरों में मुसकान, आँखों में व्रीड़ा और कपोलों पर यौवन की आभा खेल रही थी, जैसे नील मेघ खंड के भीतर स्वर्ण किरण अरुण का उदय।"

यह रूप सौन्दर्य कितनी काव्यात्मक, और सुन्दर रेखाओं से बाँधा गया है, इस में भावभूमि कल्पना और भाव किस स्तर से घनीभूत हैं, कहा नहीं जा सकता, यही कारण है कि प्रसाद की कहानियों के सारे चरित्र मुख्यतः स्त्री चरित्र परम सुन्दर और अद्भुत रेखाओं से निर्मित हुए हैं, फलतः ये चरित्र महाकाव्य, खंडकाव्य के चरित्र लगते हैं, कहानी के कम।

कथोपकथन

कलात्मक दृष्टि से, आकाश दीप, की कहानियों में कथोपकथन का मूल्य बहुत है, क्योंकि प्रायः समस्त कहानियाँ मुख्यतः इसी के माध्यम से विकसित की गई हैं, यही कारण है कि कुछ कहानियों में बहुत लम्बे-लम्बे कथोपकथन आ

गए हैं; जैसे, स्वर्ग के खंडहर में, बिसाती, और आकाश दीप, आदि में, यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों का आरम्भ भी कथोपकथन से ही हुआ है और प्रायः समस्त कहानियों की मुख्य संवेदनाएँ वर्णनों या चित्रणों के माध्यम से अभिव्यक्ति न पाकर सर्वथा कथोपकथनों के ही माध्यम से निर्मित हुई हैं।

शिल्प की दृष्टि से इन कथोपकथनों की शैली विशुद्ध ढंग से नाटकीय है। यही कारण है कि, आकाश दीप, समुद्र संतरण, स्वर्ग के खंडहर में, बनजारा, बिसाती, आदि कहानियों के कथोपकथनात्मक अंश पढ़ते समय ऐसा लगने लगता है कि हम कोई प्रसाद जी के नाटक को पढ़ रहे हैं, कहानी को नहीं; जैसे, "मैं भूल जाता हूँ मीना : हाँ मीना : मैं तुम्हें मीना नाम से कब तक पुकारूँ और मैं तुम्हें तुमको गुल कहकर क्यों बुलाऊँ ?"

"क्यों मीना : यहाँ भी तो हम लोगों को सुख ही है, है न : अहा क्या ही सुन्दर स्थान है, हम लोग जैसे एक स्वप्न देख रहे हैं, कहीं दूसरी जगह न भेजे जायँ, तो क्या ही अच्छा हो।"

"नहीं गुल, मुझे पूर्व स्मृति विकल कर देती है। कई बरस बीत गए वह माता के समान दुलार, उस उपासिका की स्नेहमयी, करुणा भरी दृष्टि आँखों में कभी-कभी चुटकी काट लेती है, मुझे तो अच्छा नहीं लगता बन्दी होकर रहना तो स्वर्ग में भी। अच्छा तुम्हें यहाँ रहना नहीं खलता।"

"नहीं मीना : सबके बाद जब मैं तुम्हें अपने ही पास पाता हूँ तब और किसी आकांक्षा का स्मरण ही नहीं रह जाता, समझता हूँ कि तुम गलत समझते हो।"

वस्तुतः कहानी में कथोपकथन की उक्त शैली की कोई अच्छी शैली नहीं है, इन की उत्कृष्टता नाटकों में ही चरितार्थ होती है, कहानी में नहीं क्योंकि नाटक मूलतः दृश्य काव्य है, लेकिन कहानी में कार्य, घटना और वर्णन के बीच से कथोपकथनों को प्रस्तुत करना पड़ता है क्योंकि कहानी मूलतः पठन-पाठन की वस्तु है। इस शैली से कहानी में प्रवाह चित्रात्मकता व्यंजना तो बनी ही रहती है, इस के अतिरिक्त कहानी में गढ़न और स्वाभाविकता रहती है। पात्र अपने कथोपकथनों के समय किन-किन भाव भंगिमाओं में बदलते रहते हैं, उन में क्या-क्या क्रियाएं हो रही हैं, आदि सब का उल्लेख कथोपकथनों के साथ होते रहना चाहिए, फलतः स्वतन्त्र कथोपकथनों की अवतारणा केवल नाटकों में ही शोभा पाते हैं, कहानी में नहीं।

लक्ष्य और अनुभूति

लक्ष्य-बिन्दु पर यहाँ बौद्ध दर्शन का प्रभाव बहुत सुन्दरता से मुखरित हो आया है। प्रारम्भिक कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु पर प्रायः करुणा की सृष्टि थी, अर्थात् अधिकांश कहानियाँ करुणा प्रतिष्ठा के लक्ष्य से लिखी थी। वस्तुतः बौद्ध दर्शन से प्रसाद जी ने दो महान् सत्य ढूंढ निकाला नारी शक्ति की महानता और उन का सम्मान तथा मानव जीवन की करुणा और मानव के प्रति क्षमा, दया, और प्यार।

इन्हीं सत्यों के ऊपर प्रसाद जी की कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु का निर्माण हुआ है और इसी लक्ष्य-बिन्दु से, आकाश दीप, की सारी कहानियाँ लिखी गई हैं। आकाश दीप, चूड़ीवाली, देवदासी, स्वर्ग के खंडहर में, इन कहानियों की सृष्टि नारी चरित्र की महानता और उस की आत्मा के कारुणिक धरातल पर हुई है। स्वतंत्र रूप से मानव जीवन की करुणा दिखाने लिए, ममता, बनजारा, और बिसाती, कहानियों की रचना हुई है। मानव के प्रति क्षमा, दया और प्यार के लक्ष्य को लेकर भिखारिन, अपराधी, वैरागी, कहानियाँ लिखी गई हैं।

इन के अतिरिक्त, आकाश दीप की कुछ कहानियाँ विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों के धरातल पर निर्मित हुई हैं। उस अनुभूति का मुख्य केन्द्र है, प्रेम, वस्तुतः इसी प्रेमानुभूति की ही प्रेरणा से रची हुई कहानियाँ यहाँ प्रायः गद्य-गीत हुई हैं; जैसे, समुद्र संतरण, प्रणय चिह्न, रूप की छाया, ज्योतिष्मयी, रमला समुद्र संतरण की प्रेमानुभूति स्पष्ट ढंग से छायावादी गीत की प्रेरणा-सी लगने लगती है। "वेला से दूर चारों ओर जल आँखों में नहीं धवल पात्र, कानों में अस्फुट संगीत, सुदर्शन तैरते-तैरते थक चला था सङ्गीत और वंशी आ रही थी। एक छोटी मछली पकड़ने की नाव आ रही थी। पास आने पर देखा, धीवर बाला वंशी बजा रही है और नाव अपने मन से चल रही है।

धीवर बाला ने कहा, "आओगे ?"

लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा, "कहाँ ले चलोगी ?"

पृथ्वी से दूर जल राज्य में, जहां कठोरता नहीं केवल शीतल कोमल और तरल आलिंगन है, प्रवंचना नहीं सीधा आत्मविश्वास है। वैभव नहीं सरल सौन्दर्य है।

अतः ऐसी कहानियों में गीत तत्व अधिक आ गए हैं और कहानी तत्व जैसे लुप्त हो गए हैं। क्योंकि उत्कृष्ट कहानी अवश्य अनुभूतियों पर आधा-

रित होती है लेकिन वह मनोवैज्ञानिक अनुभूति किसी समस्या सूत्र के साथ आती है। वैसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि केवल अनुभूति और भाव संयोग से गीत की सृष्टि होती है, कहानी की नहीं।

समीक्षा

आकाश दीप की कहानियाँ मुख्य रूप से संवेदनात्मक कहानियाँ हैं, यहाँ परिस्थितियाँ गौण हैं और संवेदना की तीव्रता सब से अधिक हैं। संवेदनाएँ मुख्य रूप से प्रेम के केन्द्र-विन्दु से चारों ओर फैली हैं। फलतः यहाँ कहीं प्रेमी-प्रेमिका को लेकर नारी-पुरुष के प्रेम के चिरन्तन सत्य और प्रश्न को छुआ है, कहीं उपेक्षिता के प्रति प्रेम दिखा कर प्रेमियों को सदा के लिए अलग करके उन्हें मूक रहने की शिक्षा दी है। इस तरह प्रेम के धरातल चारों ओर बिखरी हुई संवेदनाएँ आकाशदीप, की कहानियों की आत्माएं हैं जो 'ममता' ऐसी विधवाओं भिखारिन, सँपेरिन, धीवर बाला, और चूड़ीवाली विलासिन ऐसी उपेक्षिताओं को अपने में समेटे हुए हैं।

वस्तुतः ये संवेदना जन्य कहानियाँ प्रसाद के कहानी-साहित्य की एक अमूल्य निधि हैं, जिस में विशुद्ध प्रेम जन्य कहानियाँ जैसे आकाश दीप, बनजारा, स्वर्ग के खंडहर में, बिसाती, आदि उतकृष्ट हैं।

तृतीय काल

यह काल प्रसाद की कहानी कला का चरम उत्कर्ष काल है। इसलिए नहीं कि इस काल में अपेक्षाकृत बहुत कहानियाँ लिखी गई हैं, बल्कि इस काल में प्रसाद जी अपनी सृष्टि के प्रयोग काल (१९२९ ई०) से आगे बढ़ कर जीवन को जितनी गहराई से देखा है, जीवन के अनेकानेक भाव-भंगिमाओं का जितना गंभीर और पूर्ण चित्र उपस्थित किया है, वह स्तुत्य है। इस काल की लिखी हुई कुल कहानियाँ पचीस हैं, और इन पचीस कहानियों में प्रसाद जी ने मानव दर्शन, मनोभावों, अनुभूतियों को अपनी कला में जितनी ईमानदारी से संजोया है वह अमूल्य है। छाया, प्रतिध्वनि, की कहानियाँ तरुण रोमांटिक कवि के भाव चित्र हैं। आकाश दीप, की कहानियाँ विकसित होकर जीवन के प्रति एक जागरूक भावात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं। लेकिन इस काल की कहानियों में जीवन-दर्शन की पैठ और कलात्मक स्तर की ऊँचाई, दोनों का संयोग अपूर्व है।

कथानक

यहाँ भी भी कहानियाँ दो तरह की हैं। कुछ कहानियाँ लम्बी और विस्तृत हैं। ये प्रायः ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं और अपने समग्र रूप में बहुत लम्बी कहानियाँ हो गई हैं; जैसे, आंधी, पुरस्कार, नीरा, दासी, इन्द्रजाल, नूरी, गुंडा, देवरथ, और सालवती, इन कहानियों के कथानक बहुत लम्बे और अनेकानेक मोड़ों के साथ निर्मित हुए हैं। इन के रूप को देख कर, ये नाटक की कथावस्तु लगते हैं, और वस्तुतः इन की संवेदनाएँ नाटक सृष्टि के लिये अधिक उपयुक्त और स्वाभाविक हैं। यहाँ दूसरी प्रकार की कहानियाँ वे हैं जो यथार्थ भावभूमि पर, स्केच, की शैली में लिखी गई हैं। उन के कथानक अत्यन्त छोटे और आधुनिक शिल्पविधि की दृष्टि से अत्यन्त सफल कथासूत्र हैं। मधुआ, घीसू, बेड़ी, ग्रामगीत, विजया, अमिट स्मृति, छोटा जादूगर, परिवर्तन, संदेह, भीख, चित्र मन्दिर, अनबोला, में कथासूत्र की लघुता और प्रासंगिकता ने इन में बहुत कलात्मकता ला दी है।

पहले प्रकार के लम्बे कथासूत्रों के पीछे, प्रसाद जी की एक मुख्य प्रेरणा कार्य कर रही थी। वे एक समूचे युग, एक समूची भावधारा के बाँधने में अपनी संवेदनाओं को इतना विस्तृत कर देते थे कि कहानी की भावभूमि बहुत लम्बी-चौड़ी हो जाती थी। यह सत्य, देश काल, परिस्थिति तीनों दिशाओं में चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए, सालवती में, पूरा एक युग समाया हुआ है। वज्जियों के कुल की मर्यादा और गरीबी, सालवती और उस के वृद्ध पिता धवल यश की दयनीय स्थिति, कर्मकांडियों की महत्ता, विदेह, वज्जि, लिच्छिवि, और मल्लों की कीर्तिरेखा, धवल यश, और उस का वस्तुवादी दृष्टिकोण, कुल अभिमान, उसकी मौत, सालवती और उस से कुल पुत्रों की भेंट, जनपद और वसंतोत्सव सुन्दरी निर्वाचन युद्ध, सालवती और अभय का प्रेम, द्वन्द्व, युद्ध अभिमान सालवती की पुत्रोत्पत्ति, नवजात शिशु की उपेक्षा, अभय का शिशु पाना और आठ वर्ष बाद अभय और सालवती का संयोग। इन मोटी रेखाओं के बीच में कथासूत्र का विस्तार अपने में दार्शनिक प्रवचन, वादविवाद, अभिसंधि आदि को समेटे हुए है। इसी तरह आंधी, इन्द्रजाल, और पुरस्कार में कथासूत्र विभिन्न रेखाओं में फैलकर समूचे युग का दर्पण बन गया है। लेकिन यहाँ इतिवृत्तात्मकता में प्रासंगिकता अधिक प्रधान है, कथा की पूर्णता नहीं। यही कारण है कि ये कहानियाँ इतने लम्बे कथासूत्र के रहते भी

ाकर्पण और कलात्मक हैं क्योंकि इन के विकास में कौतूहल और जिज्ञासा के च बहुत कलात्मक ढङ्ग से कथासूत्र में पिरोए गए हैं।

छोटे कथानकों में यह भावभूमि बहुत सीमित और अति सांकेतिक हो ग है। यहाँ कथासूत्र आधुनिक कहानियों जैसा है और इस में जीवन की ार्थ समस्याओं को लिया गया है। अतएव इन कथासूत्रों में एक ओर गठन और दूसरी ओर कलात्मक तेजी। यही कारण है कि ऐसे कथासूत्रो में प्रायः माजिक संवेदनाएँ ही पिरोई गई हैं। इन कथासूत्रों में प्रसाद जी ने पहले की ाँति भारतीय नाटक प्रणाली की दिशा में बीज, विकास और फलागम की तिष्ठा नहीं की है।

प्रसाद जी ने लम्बे ऐतिहासिक इतिवृत्तियों में कहीं-कहीं पूर्व कथा, पूर्व त्र को पृष्ठभूमि में छिपा कर, सूत्र को बहुत आगे से उठाया है और कथासूत्र विकासावस्था पर पहुँच कर उन्होंने पृष्ठभूमि में डाले हुए कथासूत्र का कलात्मक ाभ उठाया है; जैसे, आंधी के कथासूत्र में लैला, एक बिलोची तरुणी एक ंदू तरुण रामेश्वर से प्रेम करती है। वस्तुतः यह प्रेम दोनों में कब, कैसे, किन रेस्थितियों में पैदा हुआ, कैसे इस का इस भाँति विकास सम्भव हुआ, इस का त्र हमें कहानियों में कहीं नहीं, वरन् कथासूत्र बहुत आगे बढ़ कर विकसित प्रेम धरातल पर चलने लगता है। कथानक-निर्माण में प्रसाद जी की यह शैली रम सुन्दर और कलात्मक हैं छोटे कथासूत्रों में यह शैली कही नहीं है : यहाँ थासूत्र बिल्कुल सीधा और स्पष्ट है।

चरित्र

यहाँ चरित्र अपनी पिछली पूर्ण प्रवृत्तियों और व्यक्तित्व की मुख्य ाशेपताओ में परम स्पष्ट है, और अपनी चारित्रिक सीमाओं पर कलात्मक ढङ्ग प्रतिष्ठित हुए हैं। स्त्री पात्रों का अपूर्व आकर्षण, परम सौन्दर्य तथा उन का ारुणिक व्यक्तित्व बहुत ही उत्कृष्ट है। पुरुप पात्र अपनी भावुकता, सौन्दर्य-ेष्ठा के साथ-साथ कर्मवादिता पर भी स्थिर हैं अर्थात् प्रसाद के बौद्ध दर्शन, ावि दर्शन और जीवन दर्शन के पूर्ण समन्वय पर, यहाँ के चरित्रों की अव-ारणा हुई है।

त्री

यहाँ स्त्री चरित्र रूप, यौवन और विलास के सुन्दरतम संधि-विन्दु पर ातिष्ठित हुए हैं। इन्द्रजाल की बेला, का व्यक्तित्व रूप और यौवन की कितनी

२८

रङ्गीन और मादक रेखाओं से निर्मित है। "बेला, साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक पिंड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहती। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।" नूरी, में नूरी स्त्री चरित्र में प्रसाद की ये रेखाएँ और भी बलवती हुई हैं "और भी आज पहला ही अवसर था, जब उसने केशर कस्तूरी और अम्बर से बसा हुआ यौवन पूर्ण उद्वेलित आलिंगन पाया था। उधर किरणें भी पवन के एक झोंके के साथ किसलयों को हिलाकर घुस पड़ी। नूरी, कश्मीर की कली थी। सिकरी के महलों में उसके कोमल चरणों की नृत्यकला प्रसिद्ध थी। उस कलिका का आमोद मकरंद अपनी सीमा से मचल रहा था।"

इस के साथ ही साथ यहाँ स्त्रियों में कर्मशीलता, शौर्य, और निर्भीकता भी आई है। ये सतेज और भावुक स्त्रियाँ जहाँ एक ओर भावुकता और प्रेम में डूबी हुई हैं वहाँ दूसरी ओर प्रेम, चरित्र और आदर्श की बलि-वेदी पर अपने को उत्सर्ग भी किया है। यह सत्य सब तरह की सब देश काल परिस्थिति की स्त्रियों के प्रति चरितार्थ हुआ है, चाहे वह ईरानी, चाहे वह बलूची युवती हो, या ग़ज़नी की सुरबाला, या कोहकाफ़ की परी हो।

प्रसाद जी ने क्यों स्त्री चरित्र अवतारणा में इतने विभिन्न देश काल की स्त्रियों को लिया है! प्रसाद जी ने अपने स्त्री दर्शन में दुनिया की सारी स्त्रियों को स्त्रीत्व के एक ही धरातल से देखा है और सब के व्यक्तित्व निर्माण में एक ही प्रेम, त्याग, क्षमा, भावुकता, सौन्दर्य, और मादकता है। क्योंकि प्रसाद जी ने यहाँ अन्यान्य देश, जाति वर्ग की स्त्रियों को कला और मूर्ति की दृष्टि से देखा है, यहाँ सर्वत्र समन्वय ही समन्वय है, और जो भारतीय स्त्री मूर्ति सौंदर्य का ही एक रूप है फलतः उस से कभी अलग नहीं हैं—"मैं उसके मुख को कला की दृष्टि से देख रहा था कला की दृष्टि, ठीक बौद्ध कला, गांधार कला, द्रविणों की कला इत्यादि नाम से भारतीय मूर्ति सौन्दर्य के अनेक विभाग जो हैं[1]।"

हाँ स्त्री चरित्र की अवतारणा और स्त्री समग्र रूप की व्यवस्था प्रायः [illegible] से हुई है, और वह [illegible] अंतर्द्वन्द्व। इसी अंतर्द्वन्द्व के [illegible] के चारों ओर प्रतिशोध, [illegible] दया, प्रेम, बलिदान और

सहनशीलता की रेखाएँ खिंची हुई हैं। इस के उदाहरण में आँधी की लैला, दासी की फिरोजा, ग्रामगीत की रोहणी, नीरा की नीरा, पुरस्कार की मधूलिका, इन्द्रजाल की बेला, देवरथ की सुजाता और सालवती ज्वलंत उदाहरण हैं।

पुरुष

द्वितीय काल की कहानियों तक पुरुष चरित्र के व्यक्तित्व की पूर्ण प्रतिष्ठा और उन के निजत्व का प्रतिनिधित्व नहीं हो सका था। उस का मुख्य कारण था कि आकाश दीप तक की कहानियाँ स्त्री प्रधान हैं उन के चरित्र के ही केन्द्र-बिन्दु से ही सारी कहानियाँ विकसित हुई हैं।

इस काल में भी, यद्यपि स्त्री चरित्र ही उभरा हुआ है, लेकिन यहाँ पुरुष चरित्र को भी समानता दी गई है। आँधी, पुरस्कार, सालवती, देवरथ और इन्द्रजाल में स्त्री चरित्र के समान ही पुरुष चारित्र को प्रधानता मिली है।

पुरस्कार, में राजकुमार अरुण मधूलिका का प्रकाश है, उस का पुरस्कार है, फलतः उस की कर्मशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और संवेदनशीलता अपूर्व है। सालवती का अभय, उस का पुरुष व्यक्तित्व, उसका प्रेम, उस का अभिमान, विजय, वैशाली आगमन से शिशु स्वीकृति और उसकी अन्य चारित्रिक महानता सब ने एक बिन्दु पर मिल कर, पुरुष चरित्र को परम उत्कृष्ट बनाया है, तभी यह सत्य बार-बार मस्तिष्क में घूमता है कि इस काल के पुरुष चरित्र, यहाँ के स्त्री चरित्र के समान ही अपने निजत्व और व्यक्तित्व को स्वयं प्रतिष्ठित करके प्रेम, त्याग, बलिदान और अपने चारित्रिक दृढ़ता में अनोखे सिद्ध हुए हैं। नूरी, का प्रेमी याकूब, बेला का उपासक गोली, सालवती का प्रेमी अभय, सुजाता का प्राण आर्यमित्र, मधूलिका का स्वर्ग अरुण, आदि पुरुष चरित्र इन दिशाओं में सदा अमर रहेंगे।

इस के पूर्व की कहानियों के पुरुष चरित्र अपेक्षाकृत भावुक और तरुण रोमांटिक तथा केवल प्रेम स्वप्नों में दृढ़ थे। यही कारण है कि उन के पुरुषगत व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा पिछली कहानियों में नहीं हो सकी हैं। परन्तु यहाँ गुंडा का ननकू सिंह ऐसा प्रतिनिधि पुरुष चरित्र है कि इस से पुरुषत्व और पुरुष के दायित्व को गर्व हो सकता है कितनी विधवाएँ उस की दी हुई धोती से अपना तन ढकती हैं। कितनी लड़कियों को व्याह-शादी होती है। कितने अनाथ हुए लोगों की इस के द्वारा रक्षा होती हैं। अंत में अंग्रेजी से काशी के सम्मान की रक्षा तथा चेत सिंह को बचाने में वह बीसों तिलंगों की सङ्गीन में अविचल खड़ा, तब तक तलवार चलाता है जब तक उस के शरीर का एक-एक अंग कट कर

जमीन पर नहीं गिर जाता है। इस के अतिरिक्त यहाँ मधुआ, नीरा, बेड़ी, विजया, भीख, संदेह आदि में कहानियाँ मूलतः पुरुष चरित्र की कहानियाँ हैं। यहाँ पुरुष के मनोभावों उस की सीमाओं उस की निरीहता और संघर्षों को लेकर ये कहानियाँ निर्मित हुई हैं।

अतएव इस काल में आकर प्रसाद के पुरुष चरित्र में नव व्यक्तित्व, नव निजत्व तथा चरित्र की पूर्णसत्ता प्रतिष्ठित हो सकी है, जिस की कमी इस के पूर्व की कहानियों में खटक रही थी। स्त्री-पुरुष चरित्र के समान अवतारणा और सृष्टि से इस काल की कहानियों में प्रसाद की कहानी-कला का परम उत्कर्ष सिद्ध हो सका है, नहीं तो शिल्पविधि की दृष्टि से प्रसाद जी का मूल्य, एक कहानीकार की दृष्टि से बहुत नीचे चला जाता है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष में यहाँ की भी ऐतिहासिक, काल्पनिक और भावुक कहानियों का रूप पिछली ही शैली के अंतर्गत है। यहाँ केवल यथार्थवादी कहानियों की आरम्भ शैली में नवीनता आई है। नीरा, बेड़ी, भीख, संदेह, विजया, और परिवर्तन आदि में कहानी का आरम्भ बिलकुल स्वाभाविक और यथार्थ गति से हुआ है, और ऐसे आरम्भों में कहानी शैली के तत्व अधिक निखर सके हैं। जैसे भीख का आरम्भ—

"खपरैल की दालान में, कम्बल पर मिन्ना के साथ बैठा हुआ बृजराज मन लगा कर बातें कर रहा था। सामने ताल में कमल खिल रहे थे। उस पर से भीनी-भीनी महक लिए हुये पवन धीरे-धीरे उस झोपड़ी में आता और चला जाता। *मा कहती थी मिन्ना ने केशों को बिखराते हुए कहा। क्या कहती थी?*"

विजय का आरम्भ—"कमल का सब रुपया उड़ चुका था सब संपत्ति बिक चुकी थी। मित्रों ने खूब दलाली की, न्यास जहाँ धरा वहीं धोखा हुआ जो उसके साथ मौज मङ्गल में दिन बिताते थे, रातों को आनन्द लेते थे वे ही उसकी जेब टटोलते थे। उन्होंने कहीं पर, कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा, सुख भोग के जितने आविष्कार थे, साधन भर सबका अनुभव लेने का उत्साह ठंढा पड़ चुका था। *बच गया था एक रुपया।*"

इस के अतिरिक्त यहाँ प्रथम पुरुष के वर्णनों से बेड़ी और चित्रवाले पत्थर कहानियों का आरम्भ हुआ है, चित्र वाले पत्थर का आरम्भ—

"मैं संगमहल का कर्मचारी था। उन दिनों मुझे विंध्य शैल माला के एक उजाड़ स्थान में सरकारी काम से जाना पड़ा। भयानक वनखंड के बीच

पहाड़ी से हट कर एक छोटी-सी डाक बङ्गलिया थी। मैं उसी में ठहरा था। वहीं की एक पहाड़ी में एक प्रकार का रङ्गीन पत्थर निकलता था। मैं उसकी जाँच करने और तब तक पत्थर की कटाई बन्द करने के लिये गया था।"

विकास

विकास क्रम में यहाँ की भी प्रतिनिधि कहानियों में वही द्वितीय काल के अवस्था-क्रम रखे गए हैं—समस्या प्रवेश, परिचय द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात। लेकिन यहाँ की कहानियों में पहले की अपेक्षा घात-प्रतिघात पर अधिक बल दिया गया है। सालवती, आँधी, देवरथ आदि कहानियों का लक्ष्य-बिन्दु, घात-प्रतिघात है, शेष विकास की और अवस्थाएं वस्तु, साधन या प्रयोजन मात्र हैं। फलतः इन कहानियों में घात-प्रतिघात को भी स्पष्ट रूप से हम दो स्थितियों आरोह, अवरोह में बाँट कर देख सकते हैं।

आँधी में समस्या का प्रवेश लैला का पत्र है। परिचय है लैला का बलूची भोली-भाली युवती होना, द्वन्द्व का जन्म है बिना समझे-बूझे लैला का रामेश्वर से प्रेम करने लगना। घात प्रतिघात में दो स्थितियाँ समान रूप से पूर्ण मुख्यता लिए हुए आती है। आरोह में अंतर्द्वन्द्व इन क्रमों से आगे बढ़ता है। लैला के पास रामेश्वर ने जो हिन्दी में पत्र भेजा था, उस में लैला के प्रेम को अपनी असमर्थता प्रकट करके अस्वीकार किया था। लेकिन लैला ने उस पत्र को जिस व्यक्ति से पढ़वाया, उस ने लैला के विश्वास की रक्षा के लिए झूठ बोल दिया कि उस ने लिखा है कि मैं तुम को प्यार करता हूँ। अब यह द्वन्द्व दो दिशाओं में विकास पाने लगता है। लैला उधर अपने प्रेम में पागल रहती है। पत्र-पाठक रामेश्वर का दोस्त है, वह रामेश्वर और उस की धर्मपत्नी मालती तथा उस के तीन बच्चों को खूब जानता है। वे सब आपस में कितने सुखी और प्रसन्न हैं, इसे भी वह खूब जानता है। उसे, यह भी मालूम है कि उस बलूची युवती को जब इस झूठ का पता चलेगा, तब मालती का क्या होगा। लैला उन से चाहे जो प्रतिशोध ले सकती है। उसी स्थान पर रामेश्वर संयोग वश अपने परिवार के साथ वायु-परिवर्तन के लिए आता है। अन्तर्द्वन्द्व का आरोह पत्र-पाठक के हृदय में और बढ़ता है, तथा इस अन्तर्द्वन्द्व के आरोह का चरम-बिन्दु वहाँ होता है जहाँ पत्र-पाठक लैला से सत्य का उद्घाटन करता है।

"उस चिट्ठी में लैला : मैंने उसमें कुछ झूठ कहा था।"

"झूठ" : लैला की आँखों में बिजली निकलने लगी थी।

"हाँ लैला ! इसमें रामेश्वर ने लिखा था कि मैं तुमसे नहीं चाहता, मुझे चाल चलते हैं ।"

"तो, तुम झूठे दगाबाज ! कहती हुई लैला अपनी छुरी की ओर देखती हुई दाँत पीसने लगी ।" इस के उपरान्त विकास-क्रम में अवरोह की स्थितियाँ आती हैं । लैला रामेश्वर से भेंट करती है, लैला रामेश्वर ही से अपने प्रेम-पत्र को पढ़ाती है । रामेश्वर से उस पत्र को फाड़ने के लिए कहती है और रामेश्वर उसे सचमुच फाड़ देता है । लेकिन लैला का चरित्र अपनी सच्चाई, अपनी दृढ़ता, विश्वास, त्याग, क्षमा के मिलन-बिन्दु पर आकर महान हो जाता है । घात-प्रतिघात की यही स्थितियाँ सालवती, देवरथ और पुरस्कार, आदि कहानियों में मिलेगी ।

यहाँ कुछ कहानियों में विकास-क्रम के अनुपात में असंतुलन आ जाने से कहानी के पूर्वार्द्ध में, इस की इकाई नष्ट हो गई है, इन्द्रजाल इस का उदाहरण है यह विकास-क्रम गठित न होने के कारण कहानी में आकस्मिकता उत्पन्न हो गई है । इस के अतिरिक्त यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ कथानक प्रधान और प्रसंग विस्तार के कारण संयोग और घटना के सहारे विकसित हुई हैं ।

चरम सीमा

यही कारण है कि यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों की चरम सीमाएं घटना अथवा संयोग पर प्रतिष्ठित हुई हैं, जैसे आँधी की चरम सीमा—"आँधी रुक गई थी मैंने देखा कवि पीपल की बड़ी-सी डाल कटी पड़ी थी, और लैला उसके नीचे दबी हुई अपनी भावनाओं की सीमा प्यार कर चुकी है ।" देवरथ की चरम सीमा—"देवरथ विस्तीर्ण राजपथ से चलने लगा । उसके दृढ़ चक्र धरणी की छाती में गहरी लीक तुलते हुए आगे बढ़ने लगे । उस जन-समुद्र में सुजाता आन पड़ी और एक क्षण में उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा ।"

कुछ कहानियों की चरम सीमाओं के उपरान्त छोटे-छोटे उपसंहार भी जुड़े मिलते हैं; जैसे, "चित्र मंदिर में मानव जीवन के उस काल का वह स्मृति चिह्न जब कि उसके अपने हृदय लोक में संसार के दो प्रधानों की प्रतिष्ठा की थी आज भी सुरक्षित हैं ।"

उस प्रान्त के जंगली लोग उसे राजा-रानी की गुफा और ललित कला के खोजी उसे पहला चित्र मंदिर कहते हैं ।" आँधी में "आज भी मेरे हृदय हृदय में आँधी चला करती है और उसमें लैला का मुख बिजली की तरह कौंधा करता है ।"

शैली का सामान्य पक्ष

प्राकृतिक दृश्य का वर्णन और चित्रण पहले की अपेक्षा यहाँ और गंभीरता से हुआ है। इस में सूक्ष्मता, चित्रात्मकता और भावाभिव्यंजना आई है चित्रण और वर्णन की दोनों रेखाएँ अलग-अलग कल्पना और भावों को समेटने में समर्थ हुई हैं। प्राकृतिक चित्रणों की अवतरणा यहाँ भी मुख्यतः कहानियों में वातावरण प्रस्तुत करने के लिए हुई है। इस के अतिरिक्त यहाँ प्राकृतिक वर्णन मानव मनोभावों को व्यंजनाओं के भी लिए हुआ है। यही कारण है कि यहाँ चित्रण की रेखाएँ कल्पना संकेतों और व्यंजनाओं से अभिभूत हो गई है। "सदा नीरा अपनी गंभीर गति से, उस घने साल के जंगल से कतरा कर चली जा रही है। सालों की श्यामल छाया उसके जल को और भी नीला बना रही है। परन्तु वह इस छाया दान को अपनी छोटी-छोटी वीचियों से मुस्करा कर टाल देती है, उसे तो ज्योत्सना से खेलना है। चैत की मतवाली चाँदनी परिमल से लदी थीं। उसके वैभव की यह उदारता थी कि उसकी कुछ किरणों को जंगल के किनारे की फूस की झोपड़ी पर बिखरना पड़ा।"

मुख्यतः यह प्राकृतिक चित्रण कहानी के गंभीर पृष्ठभूमि के लिए किया गया है तथा इस चित्रण में स्थिति की स्वाभाविकता और दृश्य की झाँकी भी सुन्दरता से प्रस्तुत की गई है।

शोभा वर्णन में यहाँ आकृति शोभा और रूप शोभा दोनों का वर्णन अपूर्व ढंग से हुआ है। सालवती में, कुल पुत्रों की आकृति शोभा "कुछ गंभीर विचारक से वे युवक देव, गंधर्व की तरह रूपवान थे, लम्बी चौड़ी हड्डियों वाले व्यायाम से सुन्दर शरीर पर दो एक आभूषण और काशी के बने हुए बहुमूल्य उत्तरीय, रत्न जटित, कटिबंध में कृपाणी। लच्छेदार बालों के ऊपर सुनहरे पतले पटबंध और वसंतोत्सव के प्रधान चिह्न स्वरूप दूर्वा मधूक पुष्पों की सुरचित मालिका। उनके मांसल भुजदंड कुछ-कुछ आसवपात से अरुण नेत्र, ताम्बूल रंजित सुन्दर अधर रूप शोभा का वर्णन भी इसी प्रकार नितान्त कलात्मक है। सुजाता की रूप शोभा—"दो-तीन रेखाएँ भाल पर, काली पुतलियों के समीप मोटी और काली बरौनियों का घेरा, घनी आपस में मिली रहने वाली भौंहें और नास पुट के नीचे हल्की-हल्की हरियाली उस तापसी के गोरे मुह पर सचल अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रकट करती थी।

कथोपकथन यहाँ और विकसित होकर पूर्ण कलात्मक और सफल हुए

हैं। उन में नाटकीयता के साथ ही साथ कहानीपने की भी कला आ गई है। यद्यपि नाटकीयता यहाँ भी प्रधान है।

लक्ष्य और अनुभूति

यहाँ की कहानियों के लक्ष्य विन्दु पर करुणा, त्याग और बलिदान की भावनाएं अपूर्व ढंग से व्यक्त हुई हैं, इस काल की प्रायः समस्त ऐतिहासिक कहानियाँ ऐसी कारुणिक संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं कि वे अपने लक्ष्य-विन्दु पर न जाने कितनी करुणा उत्सर्ग की सुगंधि बिखेर देती हैं। यहाँ की कहानियाँ जो मुख्यतः किसी समस्या के धरातल पर लिखी गई हैं; जैसे, आँधी, सालवती और देवरथ, ऐसी कहानियों में वस्तुतः लक्ष्य ही ने कथा-सूत्र को जन्म दिया है। यही कारण है कि प्रसाद जी ने करुण उत्सर्ग और त्याग को दिखाने के लिए बार-बार इतिहास से कथासूत्र को ढूँढ़ निकाला है, और अगर इतिहास पृष्ठों में उन्हें कोई उचित संवेदना नहीं मिल सकी है तो उन्हों ने अपनी कल्पना में उन संवेदनाओं की सृष्टि की जिन से उन के लक्ष्य प्रतिष्ठित हो सकें। इस संबंध में प्रसाद की सब से बड़ी कला यह है कि उन की ऐसी कहानियाँ मुख्यतः समस्या और अंतर्द्वन्द्व प्रधान हो जाती हैं और समूची कहानी से एक मूक विद्रोह, चरित्र की महानता और उत्सर्ग की आवाज गूँजने लगती है। अतः यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ आँधी, पुरस्कार, इन्द्रजाल, देवरथ, सालवती, नूरी, आदि के निर्माण के पीछे करुणा, उत्सर्ग, नारी चरित्र की महानता का लक्ष्य-विन्दु है, जो क्रमशः अलग-अलग लोकों से अपने अनुरूप कथा-सूत्रों को जुटा लेती है, और कथा-सूत्रों से चरित्र और चरित्र की कर्मशीलता तथा अंतर्द्वन्द्वों से सम्पूर्ण कहानी बन जाती है।

फलतः यहाँ की कहानियाँ समस्या प्रधान कथा-सूत्रों के होते हुए भी मूलतः अनुभूति प्रधान हैं, क्योंकि इन कहानियों की सृष्टि का एक मात्र कारण प्रसाद की तद्विषयक अनुभूतियाँ ही थीं।

समीक्षा

इस काल की कहानियों का व्यापक धरातल मनोविज्ञान हुआ है और संवेदनाएँ तथा परिस्थितियाँ इस की अनुवर्तिनी हुई हैं। ऐसा संभव, केवल एक कारण से हो सका है, जहाँ मनोविज्ञान जीवन के विस्तृत क्षेत्र के तादात्म्य स्थापित करके आया है, वहाँ हमारे समाज, इतिहास और संस्कृति तीनों का संधि-स्थल प्रतिष्ठित हुआ है।

सामाजिक मनोविज्ञान के धरातल से लिखी मधुआ, घीसू, बेड़ी, विजया, अमिट स्मृति, भीख आदि कहानियों में आधुनिक समाज, इस का मनोविज्ञान और व्यक्ति की विरोधी स्थितियों में जीवन स्वयं अपनी जैसी अभिव्यक्ति देता रहता है—"मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुंवरसाहब की ओवर कोट के लिए खेल में दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा नहीं रख सका था। रोटी बनती तो कैसे ?" यही धरातल हमारे इतिहास के मनोविज्ञान के भी पीछे से और स्पष्ट शब्दों में रो लेता है। सालवती, का वृद्ध पिता कहता है "आर्थिक पराधीनता ही संसार में दुख का कारण है। मनुष्य को इससे मुक्ति पानी चाहिए, इसलिए मेरा उपास्य स्वर्ण है।" हमारी संस्कृति तथा मनोविज्ञान के तत्व दया, त्याग, क्षमा, सत्य आदि हैं और इन की परीक्षा क्रमशः देवरथ, सालवती, दासी, पुरस्कार, आदि कहानियों में सफलता से हुई है।

प्रसाद का आदर्शवाद

प्रसाद के सम्पूर्ण कहानी साहित्य में आदर्श की प्रतिष्ठा उन के लक्ष्य की सब से बड़ी विशेषता है। यह आदर्शवाद समाज, दर्शन और व्यक्ति तीनों क्षेत्रों में समान रूप से व्यंजित हुआ है।

सामाजिक क्षेत्र में प्रसाद जी का आदर्शवाद अपनी दो विशेषताओं में मिलता है। कहीं पुरातन की मर्यादा का समर्थन और कहीं सामाजिक मान्यताओं के प्रति क्रान्ति। लेकिन इन दोनों विशेषताओं में प्रसाद जी अपने सदैव दृष्टिकोण में उदार और प्रगतिशील रहे हैं। पुरातन मर्यादाओं में उन्हों ने अपने आदर्शवाद के अंतर्गत केवल प्रेमतत्व को लिया है, जो वस्तुतः एक महान और चिरंतन आदर्श का प्रतीक है। रसिया बालम, तानसेन, और सुनहरा साँप में इन्हों ने स्वतंत्र प्रेम को इस प्रकार महान और शाश्वत बताया है कि उस में स्वस्थ, प्राकृतिक प्रेरणा और स्वर्गिक आकर्षण है, जो प्रेम ऐसे वासना रहित धरातल से चरितार्थ होता है वह सदैव महान होता है। वस्तुतः प्रेम विवाह की यह स्वस्थ कसौटी हमारे पुरातन समाज की कसौटी है। इस धरातल पर प्रसाद की कहानियों में कितने स्त्री-पुरुष पात्र एक दूसरे को सामाजिक रूप से पाने के लिए अपने आप को उत्सर्ग कर देते हैं। चन्दा की चन्दा, रसिया बालम की राजकुमारी, आँधी की लैला और देवरथ की सुजाता इस परम्परा के महान प्रतीक हैं। सामाजिक मान्यताओं के विद्रोह में प्रसाद जी ने प्रेम और अर्थ

दोनों को बराबर महत्व दिया। चूड़ीवाली और नीरा में समाज की झूठी मान्यताओं के विरुद्ध सफल विद्रोह है। चूड़ीवाली एक विलासिनी नर्तकी की कन्या थी, लेकिन वह सच्चे प्रेम हृदय को लिए समाज की गृहस्थी में वह किसी की वधू बनकर रहना चाहती है, तथा वह विजयकृष्ण के चरित्र से मुग्ध होकर उन्हें ही अपना पति बनाना चाहती है। इसलिए वह चूड़ीवाली के रूप में अपने को छिपा कर विजयकृष्ण से प्रेम करती है और अंत में दोनों समाज के विरुद्ध एक दूसरे से शादी कर लेते हैं। नीरा में एक धनी रूपवान व्यक्ति एक अकिंचन, वयोवृद्ध, अपाहिज व्यक्ति की एक मात्र लड़की नीरा से ब्याह कर लेता है। इस तरह समाज के क्षेत्र में प्रसाद जी का आदर्शवाद प्रेम और विवाह के दो केन्द्र-बिन्दुओं से प्रतिष्ठित हुआ है।

दर्शन के क्षेत्र में प्रसाद जी का आदर्शवाद वैदिक और बौद्ध दर्शन के धरातल पर प्रतिष्ठित हुआ है। वैदिक दर्शन में ब्रह्म और माया के पारस्परिक संबंध का आदर्श प्रलय कहानी में चरितार्थ हुआ है, जहाँ शाश्वत, निरंकार और अद्वैत ब्रह्म अपने अस्तित्व के लिए सर्वदा स्वयं अपने को व्यक्त करता रहता है। ब्रह्म का तांडव नृत्य होता है और माया उन में विश्व की प्राचीनता और रमणीयता, स्वर्ण और प्रलय सब एक साथ देखती है और अंत में नये सृष्टि के आरम्भ के लिए ब्रह्म और माया का आनन्दमय मिलन होता है अखंड शान्ति, आलोक आनन्द।

इस के अतिरिक्त वैदिक दर्शन के अन्य भी अंग हैं। प्रकृति और नियति। इसी नियति की शक्ति में सारी प्रकृति सारा ब्रह्मांड संचालित है। इसी को कामायनी में प्रसाद जी ने इस तरह कहा है,—"कर्म चक्र-सा घूम रहा है, यह गोलक, बन नियति प्रेरणा"। वस्तुतः इसी नियति के आदर्श को प्रतिष्ठित करने के ही फलस्वरूप प्रसाद की कहानियों में स्थान-स्थान पर अप्रत्याशित संयोग और दैवी घटनाएं आई हैं तथा पात्र मरते गए हैं, क्योंकि प्रसाद जी का विश्वास है कि सब एक परोक्ष सत्ता, नियति के हाथ के कंदुक हैं, मानव चरित्र स्वयं अपने में कुछ नहीं हैं।

बौद्ध दर्शन का सारभूत तत्व है करुणा, सत्य, और उत्सर्ग। बौद्ध दर्शन का यह आदर्श मुख्यतः प्रसाद की समस्त कहानियों की आत्मा है। आंधी, आकाश दीप, देवरथ, नूरी, दासी, ग्रामगीत, आदि कहानियाँ तो इस आदर्श के अमर प्रतीक हैं।

व्यक्ति के क्षेत्र में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी

पात्रों में अधिक हुई हैं। प्रसाद के समस्त कहानी-साहित्य में उन के नारी पात्र क्षमा, दया, प्रेम और उत्सर्ग की आदर्शमयी प्रतिमाएँ हैं, जो संसार के किसी भी कहानी-साहित्य में नहीं मिल सकतीं। आकाश दीप की चम्पा, पुरस्कार की मधूलिका और सालवती, की सालवती जनहित लोकमंगल भावना से अभिभूत, प्रेम की अमर देवियाँ भी हैं।

पुरुष पात्र के माध्यम से जिस आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, उस में पुरुषों का शौर्य, बलिदान और चारित्रिक दृढ़ता मुख्य तत्व हैं। पुरुष पात्रों के चरित्र ये तत्व बार-बार प्रसाद की कहानियों में आदर्श पर प्रतिष्ठित हुए हैं। पुरुष पात्रों में आदर्श के एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि हुई है। वीरता, जिस का धर्म, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये हुए निर्बलों की सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए हुए घूमना उन का बाना था। आदर्श के इस प्रकाश में हमें ननकू सिंह का गुंडा, सालवती का अभय, पुरस्कार का अरुण, नूरी का याकूब, इन्द्रजाल का गोली, और दासी का बलराज और अहमद प्रतिनिधि पुरुष पात्र हैं, जिन के निर्माण में प्रसाद जी ने व्यक्ति के क्षेत्र में अपने आदर्शवाद को प्रतिष्ठित किया है।

प्रसाद की भाषा

प्रसाद के कहानी-साहित्य में इन की भाषा का अध्ययन दो धरातलों में बाँट कर किया जाता है। प्रथम प्रसाद की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों की भाषा और द्वितीय प्रसाद की समाजिक कहानियों की भाषा। वस्तुतः इन दोनों दिशाओं की भाषा दो स्तरों की है।

प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जो भाषा शैली के बहुत धनी थे। कहानी की संवेदना के समान और उस में वातावरण प्रस्तुत करने के अनुरूप उन के पास परम समृद्धिशाली भाषा थी। संस्कृत के तत्सम शब्दों से लेकर हिंदी प्रदेश के ग्रामीण शब्द तक उन की भाषा-शैली में फैले थे। अतएव उन की ऐतिहासिक या सांस्कृतिक कहानियों में भाषा की काव्यात्मकता सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और कलात्मक ऐश्वर्य विशेष रूप से मिलता है। इस में एक ओर भाषा की लाक्षणिकता, व्यंजकता के साथ ही साथ उपमा रूपक की प्रचुरता मिलती है तथा दूसरी ओर विभिन्न रंगों और रसों में डूबे हुए शब्दजाल मिलते हैं। आकाश दीप की भाषा, "सामने शैल माला की चोटी पर हरियाली में विस्तृत

जल देश में, नील पिंगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्न लोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण जल का कुहुक स्फुट हो उठा। जैसे, मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का। किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य हो कर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण लिया।"

उपर्युक्त गद्यांश में रस स्निग्ध भाषा अपने स्वाभाविक और सरल रूप से प्रयुक्त हुई है। इस में कलात्मक संयम और भाषा शैली की सजीवता से प्रसाद जी ने हमारी सामाजिक संवेदनाओं, समस्याओं और अनुभूतियों को वाणी का रूप दिया है। मधुआ, में माया का रूप कितना स्वाभाविक और सजीव है—
"शराबी उसका हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ गली में ले गया। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेल कर बालक को लिए हुए भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जला कर वह फटे कम्बलों के नीचे से कुछ खोजने लगा।"

इस तरह प्रसाद की भाषा शैली में एक ओर प्रतिदिन की बोली जाने वाली सजीव भाषा का संयोग है और दूसरी ओर उस में प्रसाद के कवि, नाटककार और निबन्धकार व्यक्तित्व की भाषा शैली की प्रतिभा आ मिली। फलतः प्रसाद की कहानी भाषा शैली में कवि की कल्पना, नाटककार का विश्लेषण और निबन्धकार के चिंतन, तीनों का सुन्दर समन्वय है।

प्रसाद की मौलिकता

कहानीकार प्रसाद का व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी कहानीकारों में सर्वथा अनूठा है। कुछ आलोचकों का तो कहना है कि प्रसाद जी की कहानियाँ निश्चित कहानी शिल्पविधि से बहुत दूर हटकर लिखी गई हैं। यह बात सर्वथा अवैज्ञानिक है। वस्तुतः कहानीकार प्रसाद जी के व्यक्तित्व में दो आधारभूत चेतना बहुत शक्तिशाली ढंग से कार्य कर रही थी। उन की आत्मा की सच्ची आवाज उन की, पत्थर की पुकार, नामक कहानी में स्पष्ट ढंग से मुखरित है—
"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।" प्रसाद जी अपनी आत्मा की इस पुकार से बहुत ही पिपासित और प्रेरित थे। फलतः उन्होंने अपनी कहानियों में सहज प्रेरणा के प्रति विश्वासघात नहीं किया; वरन् सर्वदा इस प्रेरणा से वे कहानियों की सृष्टि करते गए।

दूसरी बात प्रसाद जी ने कहानी को कहानी के तात्विक धरातल से बहुत कम लिया। उन के मन में जो भी कैसी भावनाएं उठीं, उन के अनुरूप या तो उन्होंने इतिहास से कोई कथासूत्र ढूंढ़ निकाला या अपने कल्पना लोक से उन की सृष्टि कर ली और उन में अपनी सहज अनुभूतियों और भावनाओं को पिरो दिया। यही कारण है कि उन की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और भावात्मक कहानियों की अपनी स्वतंत्र शिल्पविधि होती है। वे सर्वथा अपने एक-एक रूप में स्वतंत्र और मौलिक होती हैं। अतएव प्रसाद जी कहानियों में घटना के प्रस्तुत करने में, चरित्र-चित्रण और चरित्र-निर्माण में, सिद्धान्त-प्रतिपादन और वातावरण की अवतारणा में वे बिल्कुल मौलिक सिद्ध हुए हैं।

घटना को प्रस्तुत करने में प्रसाद जी की तीन विशेषताएं हैं—घटना की अवतारणा के पहले उस के ही अनुरूप वर्णन या चित्रण की एक पीठिका प्रस्तुत होती है। दूसरी विशेषता यह है कि घटनाओं के ही माध्यम से प्रसाद जी अपनी कहानियों में नाटकीयता और अंतर्द्वन्द्व की सृष्टि करते हैं; जैसे, आकाश दीप, इन्द्रजाल, और नूरी की घटनाएं।

चरित्रों का निर्माण प्रसाद जी ने सदैव कल्पना, अनुभूति और आदर्श के तादात्म्य से किया है। फलतः प्रसाद के चरित्र एक ओर भावुक, परम सौन्दर्यनिष्ठ, आकर्षक और प्रायः यथार्थ मानव से कुछ ऊपर उठे हुए होते हैं, तथा दूसरी ओर उन में अंतर्द्वन्द्व, करुणा और उत्सर्ग के तत्व इतने घनीभूत रहते हैं कि उन्हें पूर्ण रूप से समझना मुश्किल हो जाता है उन के चरित्र की अंतर्मुखी प्रवृत्ति ही उन्हें अमर बना देती है तथा समस्त चरित्रों में बहुत समानता भी आ जाती है। चरित्र-चित्रण की प्रमुख शैली, प्रसाद जी ने नाटकीय शैली रखी है, अर्थात् घटना और कथोपकथन के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण।

प्रसाद जी की कहानियों में दो शैलियों से सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। मुख्यतः उन्हों ने पात्रों के मुख से सिद्धान्तों को कहलवाया है तथा कहीं-कहीं स्वतंत्र वर्णनों में भी इस का प्रतिपादन हुआ है; जैसे, सालवती के वर्णनों में।

वातावरण का निर्माण प्रसाद की कहानी-कला की सब से बड़ी मौलिकता है। मुख्यतः ऐतिहासिक और भावात्मक कहानियों में वातावरण का निर्माण आश्चर्यजनक रूप से हुआ है। प्रसाद ने दो शैलियों से वातावरण का निर्माण किया है। कहानी की मुख्य संवेदना आरम्भ होने के पूर्व, कहानी के आरम्भिक वर्णनों द्वारा और पात्रों के नाटकीय कथोपकथनों द्वारा वातावरण की सृष्टि करना प्रसाद जी

की प्रधान कला है। इस के अतिरिक्त दृश्य विधान, रूप वर्णन, और भाव चित्रों के भी माध्यम से इन्होंने वातावरण की सृष्टि की है।

इस तरह प्रसाद जी की मौलिकता कहानी के भाव पक्ष में ही सीमित न रह कर कहानी के कलापक्ष में विशेष रूप से अपनी प्रेरणा दे रही थी। प्रसाद जी की कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य में सब से अलग और स्वतंत्र शिल्पविधि के रूप में है। इस के मूल में प्रसाद जी के व्यक्तित्व के कवि, नाटककार, और उपन्यासकार तीनों रूपों का सुन्दरतम तादात्म्य स्थापित हुआ है। इस अपूर्व सन्धि-बिन्दु से जितनी कहानियां की सृष्टि हुई है, उन पर दर्शन, कल्पना, और अनुभूति की गहरी छाप है।

प्रसाद संस्थान के कहानीकार

कहानी-कला की जिन शिल्पगत विशेषताओं से प्रेमचन्द्र संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, उस से कुछ अंतर पर कला के नये माप-दंडों पर प्रसाद की कहानी-कला निश्चित हुई है। मूलतः प्रसाद की कहानी-कला के तत्व वे ही हैं, जिन के माध्यम से प्रेमचन्द संस्थान बना है, लेकिन अन्तर इतना ही है कि प्रसाद की कला की दिशा, लक्ष्य और स्तर विभिन्न हैं। वस्तुतः यह कलात्मक विभिन्नता प्रसाद और प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन अथवा जीवन के प्रति दृष्टि-कोण के अन्तर के कारण उत्पन्न हुई है। प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा जन-जीवन के प्रतिनिधि कहानीकार थे। उन की कला का लक्ष्य जीवन था। इस की वर्तमान सभ्यता वर्तमान परिस्थितियों और संस्कारों का संघर्ष था। प्रसाद जी भी इसी धरातल पर खड़े थे, लेकिन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भिन्न था। उन के जीवन-दर्शन में करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श की भावना में अत्यन्त तीव्र थी। फलतः इन की भावना में, संस्कार में अतीत की अद्भुत प्रेरणा, इतिहास और संस्कृति का इतना आग्रह था कि इस के फल-स्वरूप उन्हें करुणा, प्रेम सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श का प्रतिष्ठा के लिए बार-बार वर्तमान से अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों में जाना पड़ा है। कभी-कभी अपनी प्रेरणा की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ी है। इस तरह इन की कहानी-कला का लक्ष्य करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, आदर्श-प्रतिष्ठा तथा पाठक के समाने जीवन के किन्हीं ऐसे विशिष्ट प्रकरणों को रख देना था, जिन में उन के जीवन-दर्शन की कोई न कोई इकाई अवश्य ही प्रतिफलित होती है। अतएव जहाँ प्रेमचन्द संस्थान में कथानक-निर्माण यथार्थ

की प्रधान कला है। इस के अतिरिक्त दृश्य विधान, रूप वर्णन, और भाव चित्रों के भी माध्यम से इन्होंने वातावरण की सृष्टि की है।

इस तरह प्रसाद जी की मौलिकता कहानी के भाव पक्ष में ही सीमित न रह कर कहानी के कलापक्ष में विशेष रूप से अपनी प्रेरणा दे रही थी। प्रसाद जी की कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य में सब से अलग और स्वतंत्र शिल्पविधि के रूप में है। इस के मूल में प्रसाद जी के व्यक्तित्व के कवि, नाटककार, और उपन्यासकार तीनों रूपों का सुन्दरतम तादात्म्य स्थापित हुआ है। इस अपूर्व सन्धि-बिन्दु से जितनी कहानियां की सृष्टि हुई है, उन पर दर्शन, कल्पना, और अनुभूति की गहरी छाप है।

प्रसाद संस्थान के कहानीकार

कहानी-कला की जिन शिल्पगत विशेषताओं से प्रेमचन्द्र संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, उस से कुछ अंतर पर कला के नये माप-दंडों पर प्रसाद की कहानी-कला निश्चित हुई है। मूलतः प्रसाद की कहानी-कला के तत्व वे ही हैं, जिन के माध्यम से प्रेमचन्द संस्थान बना है, लेकिन अन्तर इतना ही है कि प्रसाद की कला की दिशा, लक्ष्य और स्तर विभिन्न हैं। वस्तुतः यह कलात्मक विभिन्नता प्रसाद और प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन अथवा जीवन के प्रति दृष्टि-कोण के अन्तर के कारण उत्पन्न हुई है। प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा जन-जीवन के प्रतिनिधि कहानीकार थे। उन की कला का लक्ष्य जीवन था। इस की वर्तमान सभ्यता वर्तमान परिस्थितियों और संस्कारों का संघर्ष था। प्रसाद जी भी इसी धरातल पर खड़े थे, लेकिन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भिन्न था। उन के जीवन-दर्शन में करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श की भावना में अत्यन्त तीव्र थी। फलतः इन की भावना में, संस्कार में अतीत की अद्भुत प्रेरणा, इतिहास और संस्कृति का इतना आग्रह था कि इस के फल-स्वरूप उन्हें करुणा, प्रेम सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श का प्रतिष्ठा के लिए बार-बार वर्तमान से अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों में जाना पड़ा है। कभी-कभी अपनी प्रेरणा की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ी है। इस तरह इन की कहानी-कला का लक्ष्य करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, आदर्श-प्रतिष्ठा तथा पाठक के समाने जीवन के किन्हीं ऐसे विशिष्ट प्रकरणों को रख देना था, जिन में उन के जीवन-दर्शन की कोई न कोई इकाई अवश्य ही प्रतिफलित होती है। अतएव जहाँ प्रेमचन्द संस्थान में कथानक-निर्माण यथार्थ

चतुरसेन शास्त्री

प्रसाद संस्थान के कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री का नाम सब से पहले आता है। इन्हों ने, दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी, नूरजहाँ का कौशल, सिंहगढ़ विजय, वसन्त, पूर्णाहुति और भिक्षा आदि कहानियों का निर्माण, कल्पना और इतिहास के इतने रूमानी धरातल से किया है कि ये कहानियाँ सदा अमर रहेंगी। इन कहानियों के कथानक निर्माण में क्रम-बद्ध स्वाभाविक घटनाओं के घटने का प्रमुख हाथ है। दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी में कथानक का आरंभ बेगम सलीमा और उस की प्यारी बांदी को लेकर होता है। इस का विकास इस घटना से होता है कि बांदी सलीमा को शराब पिलाती है और जब बेगम नशे में बेहोश हो जाती है, तब उस के भरे यौवन को वह बांदी जो स्त्री के वेश में वस्तुतः उस का प्रेमी था, चुम्बन लेता है। उसी समय संयोग वश वहाँ बादशाह उपस्थित हो जाते हैं और सब कुछ देख लेते हैं। इस संयोग से कथानक में नाटकीय विकास होता है। चरित्र अवतारणा में बांदी और सलीमा इतिहास के भी पर्दे में पूर्ण काल्पनिक हैं, जिन की सृष्टि, सौंदर्य, प्रेम और बलिदान की रेखाओं से हुई है। इन में बांदी का व्यक्तित्व चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व का प्रतीक है। कहानी का आरम्भ पूर्ण सफल और स्वाभाविक शाही वातावरण के साथ होता है तथा इस की चरम सीमा पर आदर्श की प्रतिष्ठापना स्पष्ट है। सामाजिक कहानियाँ जैसे दे खुदा के राह पर, में भी इसी तरह कल्पना, नाटकीय स्थितियों, संयोग और आदर्श आदि तत्वों का आपस में अद्भुत तादात्म्य उपस्थित हुआ है।

रायकृष्ण दास

'कल्पना और भावुकता की प्रेरणा से रायकृष्ण दास ने इतिहास और अतीत के धरातल से कहानियाँ लिखी हैं'। अंतःपुर का आरम्भ की संवेदना प्रागैतिहासिक काल से ली गयी है और कल्पना के प्रकाश में यह चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि वस्तुतः स्त्री पुरुष में स्वाभाविक भेद कैसे हुआ, जिस के फल स्वरूप अंतः पुर का आरम्भ हुआ। कथानक-निर्माण जङ्गल निवासी स्त्री-पुरुष के बीच में एक सिंह को देख कर होता है। उस दिन पुरुष ने स्त्री को गुफा में ही रोक कर सिंह के शिकार को चलने लगा। लेकिन उस दिन अकेला क्यों? कथानक का विकास इसी द्वन्द्व को लेकर होता है, जिस से कहानी में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है।

"क्यों! मुझे ले चलने में हिचकते हो?"

"नहीं तुम्हारी रक्षा का ख्याल है।"

"क्यों, आज तक किसने मेरी रक्षा की है?"

"हाँ, मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकती।"

"पर... ?"

"मेरा जी डरता है।"

"क्यों ?"

"तुम सुकुमारी हो।"

अतएव पुरुष अपनी प्रिया को उस दिन सर्व प्रथम गुफा के अंतःपुर में छोड़ कर अकेले शिकार पर जाकर सिंह को मारता है और नारी गुफा द्वार के सहारे खड़ी रहती है। उस का आधा शरीर लता की ओट में था। वहीं से वह अपने पुरुष के पराक्रम को देख रही थी, आनन्द की कूके लगा रही थी। हाँ, उसी दिन अंतःपुर का आरम्भ हुआ था। कहानी-निर्माण का उद्देश्य इस से स्पष्ट है। गहुला, कहानी में कथानक का निर्माण इतिहास के पृष्ठों और कल्पना के रंगों से हुआ है। इस के विकास में घटना और संयोगों का परम कलात्मक संबंध जुड़ा है। हूण अधिपति तोमारल के राज्य में मंदसोर के क्षत्रप हेमनाभ और राजकुमारी गहुला में प्रेम था। गहुला उसे हर विदा-क्षण में एक नील कमल देती। हेमनाभ उसे एक सुगन्धित रेशमी कपड़े में लपेट कर, सुवर्ण सूत्र से बाँधकर सुन्दर मंजूषा में रखता जाता था। प्रत्येक पर स्वर्ण की एक मुद्रा भी बनवा कर ग्रन्थित कर देता। इन मुद्राओं पर पाने की तिथि और संवत् अंकित होते। संयोगवश एक बार हूण राजा ने मंदसोर प्रान्त का कर न देने के कारण दमन किया, लूटा, मारा तथा इसी में हेमनाभ की भी मृत्यु हो गई। सब लूट का सामान राजा के सामने उपस्थित होता है। सामान में हेम की वह स्वर्ण मंजूषा भी थी, जिसे गहुला ने देखते ही अपने लिए पसन्द किया। लेकिन जब वह उसे खोलती है और पूर्व स्मृति तथा हेमनाभ के अव्यक्त पवित्र प्रेम से बेहोश हो जाती है। "प्रसन्नता की प्राप्ति" में कथावस्तु अत्यन्त सूक्ष्म और भावात्मक है। इस में एक मूर्ति-निर्माता के चरित्र का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। चित्रकार कितने वर्षों से अपने चित्र में प्रसन्नता की अभिव्यक्ति देने के प्रयत्न में लगा था, पर बार-बार असफल हो रहा था। अंत में वह अपने बच्चे में सच्ची प्रसन्नता को पा लेता है। अंतःपुर का आरम्भ, गहुला और प्रसन्नता की प्राप्ति इन तीनों कहानियों में चरित्र अवतारणा भावुकता और कल्पना के धरातल पर हुई है। इन में मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व का आकर्षण सफलता से व्यक्त

हुआ है, इन कहानियों के विकास और अंत में नाटकीय [illegible] [illegible] गए हैं।

बेचन शर्मा 'उग्र'

'उग्र जी का कहानीकार व्यक्तित्व प्रसाद संस्थान में सब से अधिक आकर्षक है। इन की कला में नवीन भाषा शैली प्रयोग और वर्णन चमत्कृतता है। इन्होंने प्रसाद जी की भाँति तीन तरह की कहानियां लिखी हैं। प्रथम, कल्पना और भावुकता के आधार पर व्यंजनात्मक एवं प्रतिकात्मक कहानियां, द्वितीय केवल भावुकता के आधार से गद्यगीत से मिलती-जुलती कहानियां तथा नाटकीय स्थिति के प्रकाश में जीवन के किसी सूक्ष्म पहलू के रेखाचित्र में बांधना। इन के उदाहरण में क्रमशः देशभक्त तथा, मुक्ता, संगीत समाधि तथा, मोको चुनरी की साध, और चौड़ा छूरा तथा रेशमी आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। देशभक्त और मुक्ता में कथानक-निर्माण, कल्पना और रागात्मक तत्त्वों से हुआ है, दैवी अमूर्त शक्तियों के माध्यम से, संगीत समाधि, तथा मोको चुनरी की साध, में कथानक-निर्माण, घटनाओं तथा मूर्त स्थितियों के साथ हुआ है। मोको चुनरी की साध में, तुलसा एक आठ साल की लड़की की शादी होती है और वह अनजान मड़वे में चुनरी पाकर गाती फिरती है।

मोको चुनरी की साध।
मोको चुनरी की साध॥

संयोग वश बारात में दुलहे को सांप डँस लेता है, भोली तुलसा विधवा हो जाती है। उस के सुहाग के सब वस्त्रादि छीन लिए जाते हैं वह बीमार पड़ती है, और चुनरी-चुनरी रटती रहती है। माँ समाज की परवाह न करके उसे चुनरी पहना देती है, लेकिन फिर भी तुलसा मर जाती है। ऐसी कहानियों की सृष्टि के पीछे सोद्देश्यता सब से अधिक तीव्र ढंग से अभिव्यक्त हुई है। पहली प्रकार की कहानियों में जीवन के प्रति आदर्शवाद की प्रेरणा है। दूसरी प्रकार की कहानियों का धरातल व्यक्तिगत और समाजिक समस्याएँ हैं। लेकिन इन के भी निर्माण में कल्पना भावुकता के फलस्वरूप के कहानियाँ अविकसित रह गई हैं। इस का सब से बड़ा कारण है, उग्र जी के व्यक्तित्व का स्वच्छंद होना। चरित्र अवतारणा में उग्र जी की भावुकता, काल्पनिकता, तथा भाषा शैली और रूप छवि वर्णन में इन की मौलिकता और कवित्व शक्ति पूर्ण आकर्षक है। मुक्ता, में माया चरित्र की अवतारणा और उस के व्यक्तित्व वर्णन में इन तत्त्वों का सौंदर्य

एक ही साथ व्यक्त हुआ है—"प्रवालद्वीप की राजकुमारी, का नाम था प्रियतम लता चोरी से चुने जाने पर मुग्धा के कपोलों पर जो तम सुक विखर जाती है, वह वैसे ही सुन्दरी थी। वसंत के मंद-मदिर मलया मधुर झोंकों से क्षुब्ध होकर जो मुकुल मंडली विकस पड़ती है, गु खिल कर नाच उठती है; वह वैसी ही भोली थी।" फलतः शिल्पविधि से उग्र जी का स्थान प्रसाद संस्थान में सदा अमर रहेगा, क्योंकि उन्हों की कहानी-कला के तत्वों से पूर्ण प्रेरणा लेकर, उन से आप ने व्यक्तित्व क अभिव्यक्ति की है।

वाचस्पति पाठक

कलात्मक दृष्टि से पाठक जी का कहानीकार व्यक्तित्व प्रेमचन्द प्रसाद संस्थान के संधि-बिन्दु पर आधारित है। इन में प्रसाद की संवेदनशीलता और प्रेमचन्द की यथार्थवादिता, मनोविश्लेषण का इतन तादात्म्य स्थापित हुआ है कि इन की कहानी-कला में एक अलग आक कागज की टोपी, पूर्णाग, कल्पना, आदि कहानियाँ पाठक जी की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं, इन में कथानक-निर्माण मुख्यतः घटनाओं, सं धरातल पर न होकर मानव हृदय की संवेदनाओं और अनुभूतियों से हु चरित्र-चित्रण को ही लेकर इन की कहानियों का आरम्भ होता है। च मनोवेगों, और चारित्रिक द्वन्द्व के विकास में इन की कहानी की सृष्टि ह चरित्र अवतारणा में संवेदनशीलता और अनुभूति दोनों की मुख्य प्रेर है। यही कारण है कि इन की प्रायः समस्त कहानियाँ चरित्र प्रधान चरित्र विश्लेषण और विकास में परिस्थिति जन्य कसक, टीस, करुणा क वेग रहता है कि प्रत्येक कहानी के अंत पर पहुँच कर पाठक का हृद संवेदना, अनुभूति से अभिभूत हो जाता है। इस के उदाहरण में कल्पना, कागज की टोपी, और, पेंशीवाला, कहानियाँ कभी भुलाई सकती। इन्हों ने प्रायः उपेक्षित, कारुणिक और दुखी चरित्रों को लेकर क का निर्माण किया है।

विनोद शंकर व्यास

प्रसाद जी की भावुकता का पूर्ण प्रभाव विनोद शंकर व्यास के शिल्प विधान पर पड़ा है। इन की छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियों में र रेखाचित्र और कहानी, तीनों के तत्व मिलते हैं। प्रायः अधिकांश क

हुआ है, इन कहानियों के विकास और अंत में नाटकीय तत्व विशेष रूप से आए हैं।

बेचन शर्मा 'उग्र'

उग्र जी का कहानीकार व्यक्तित्व प्रसाद संस्थान में सब से अधिक आकर्षक है। इन की कला में नवीन भाषा शैली प्रयोग और सर्वत्र स्वच्छंदता है। इन्हों ने प्रसाद जी की भाँति तीन तरह की कहानियाँ लिखी हैं। प्रथम, कल्पना और भावुकता के आधार पर व्यंजनात्मक एवं प्रतिकात्मक कहानियाँ, द्वितीय केवल भावुकता के आधार से गद्यगीत से मिलती-जुलती कहानियाँ तथा नाटकीय स्थिति के प्रकाश में जीवन के किसी सूक्ष्म पहलू के रेखाचित्र में बाँधना। इन के उदाहरण में क्रमशः देशभक्त तथा, मुक्ता, संगीत समाधि तथा, मोको चुनरी की साध, और चौड़ा छूरा तथा रेशमी आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। देशभक्त और मुक्ता में कथानक-निर्माण, कल्पना और रागात्मक तत्त्वों ने हुआ है, दैवी अमूर्त शक्तियों के माध्यम से, संगीत समाधि, तथा मोको चुनरी की साध, में कथानक-निर्माण, घटनाओं तथा मूर्त स्थितियों के साथ हुआ है। मोको चुनरी की साध में, तुलसा एक आठ साल की लड़की की शादी हो है और वह अनजान मड़वे में चुनरी पाकर गाती फिरती है।

मोको चुनरी की साध।
मोको चुनरी की साध॥

संयोग वश बारात में दुलहे को सांप डँस लेता है, भोली तुलसा हो जाती है। उस के सुहाग के सब वस्त्रादि छीन लिए जाते हैं वह बीमार है, और चुनरी-चुनरी रटती रहती है। माँ समाज की परवाह न करके उसे पहना देती है, लेकिन फिर भी तुलसा मर जाती है। ऐसी कहानियों की स पीछे सोद्देश्यता सब से अधिक तीव्र ढंग से अभिव्यक्त हुई है। पहली प्रका कहानियों में जीवन के प्रति आदर्शवाद की प्रेरणा है। दूसरी प्रकार की नियों का धरातल व्यक्तिगत और समाजिक समस्याएँ हैं। लेकिन इन के निर्माण में कल्पना भावुकता के फलस्वरूप के कहानियाँ अविकसित रह गई इस का सब से बड़ा कारण है, उग्र जी के व्यक्तित्व का स्वच्छंद होना। चर् अवतारणा में उग्र जी की भावुकता, काल्पनिकता, तथा भाषा शैली और छवि वर्णन में इन की मौलिकता और कवित्व शक्ति पूर्ण आकर्षक है। मुक्ता, माया चरित्र की अवतारणा और उस के व्यक्तित्व वर्णन में इन तत्त्वों का सौंदर्

एक ही साथ व्यक्त हुआ है—"मगधराज की राजकुमारी, का नाम था ममता। मिलन तथा चोली में छुने आने पर मुग्धा के कपोलों पर जो तप्त सुवर्ण प्रभा बिखर जाती है, वह वैसे ही सुन्दरी थी। वसंत के मंद-मदिर मलयानिल के मधुर झोंकों से क्षुब्ध होकर जो मुकुल मंजरी विकसित पड़ती है, गुण और विश्व पर मान उड़ती है; वह वैसी ही भोली थी।" फलतः शिल्पविधि की दृष्टि से उग्र जी का स्थान प्रसाद संस्थान में सदा अमर रहेगा, क्योंकि इन्हों ने प्रसाद की कहानी-कला के तत्वों से पूर्ण प्रेरणा लेकर, उन से अपने व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति की है।

वाचस्पति पाठक

कलात्मक दृष्टि से पाठक जी का कहानीकार व्यक्तित्व प्रेमचन्द और प्रसाद संस्थान के संधि-बिन्दु पर आधारित है। इन में प्रसाद की भावुकता, संवेदनशीलता और प्रेमचन्द की यथार्थवादिता, मनोविश्लेषण का इतना सुन्दर तादात्म्य स्थापित हुआ है कि इन की कहानी-रचना में एक अलग आकर्षण है। कागज की टोपी, मुरदाम, फललना, आदि कहानियाँ पाठक जी की कला की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं, इन में कथानक-निर्माण मुख्यतः घटनाओं, संयोगों के धरातल पर न होकर मानव हृदय की संवेदनाओं और अनुभूतियों से हुआ है। चरित्र-चित्रण को ही लेकर इन की कहानियों का प्रारम्भ होता है। चरित्र के मनोवेगों, और चारित्रिक द्वन्द्व के विकास में इन की कहानी की सृष्टि होती है। चरित्र अवतारणा में संवेदनशीलता और अनुभूति दोनों की मुख्य प्रेरणा रहती है। यही कारण है कि इन की प्रायः समस्त कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं, तथा चरित्र विश्लेषण और विकास में परिस्थिति जन्य संघर्ष, टीस, करुणा का इतना वेग रहता है कि प्रत्येक कहानी के अंत पर पहुँच कर पाठक का हृदय मानव संवेदना, अनुभूति से अभिभूत हो जाता है। इस के उदाहरण में सुहाग, फललना, कागज की टोपी, और, फेरीवाला, कहानियाँ कभी भुलाई नहीं जा सकती। इन्हों ने प्रायः उपेक्षित, कारुणिक और दुखी चरित्रों को लेकर कहानियों का निर्माण किया है।

विनोद शंकर व्यास

प्रसाद जी की भावुकता का पूर्ण प्रभाव विनोद शंकर व्यास के कहानी-शिल्प विधान पर पड़ा है। इन की छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियों में गद्यगीत, रेखाचित्र और कहानी, तीनों के तत्व मिलते हैं। प्रायः अधिकांश कहानियाँ

करुणा और मानवीय संवेदना को लक्ष्य बना कर लिखी गई हैं तथा कहानियों के विकास में अनुभूति की प्रेरणा मुख्य है। इन की शिल्पविधि की प्रतिनिधि कहानियाँ कल्पनाओं का राजा, विधाता, और अपराध, आदि में कथानक-निर्माण घटना संयोग से न होकर स्वाभाविक भाव-विकास और चरित्र-विश्लेषण के आधार पर हुआ है। अतएव पाठक जी की भाँति व्यास जी की भी कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं, कथानक प्रधान नहीं। चरित्र अवतारणा में भी चारित्रिक द्वन्द्व की तीव्रता इन की कहानियों में मुख्य रूप से है। कल्पनाओं के राजा कहानी की सृष्टि इस के नायक के मानसिक द्वन्द्व के आधार पर हुई हैं। कहानी का आरम्भ नायक के परिचयात्मक परिच्छेद से होता है। इस का विकास एक क्रिया-कलाप से होता है कि नायक एक वेश्या के कोठे पर जाता है। उसे खूब शराब पिलाता है और स्वयं भी पीता है और अपने मानसिक आवेग की कथा कह कर वापस लौट आता है। अतः इस कहानी का अंत वेश्या की मानसिक प्रतिक्रिया पर होता है। व्यास जी ने प्रायः अपनी कहानियों में सामान्य चरित्रों को न लेकर विशिष्ट चरित्रों को लिया है। लेकिन उन में व्यास जी ने पूर्ण कलात्मकता से मानवीय संवेदना और अनुभूति की प्राण-प्रतिष्ठा की है। विशुद्ध शैली के प्रकाश में इन्हों ने प्रायः कथोपकथनात्मक ऐतिहासिक पत्रात्मक और शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं।

इन के अतिरिक्त प्रसाद संस्थान में चंडी प्रसाद 'हृदयेश', और कमला-कान्त वर्मा, यमुनादत्त वैष्णव का भी नाम उल्लेखनीय है। उक्त समस्त कहानियाँ प्रसाद संस्थान में आती हैं। इन की कला पर प्रसाद की शिल्पविधि का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रभाव है। लेकिन इस के यह तात्पर्य नहीं कि इन कहानीकारों का अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः सब में अपना-अपना व्यक्तित्व और मौलिक प्रतिभा है। यह सत्य प्रेमचन्द और प्रसाद दोनों संस्थानों के कहानीकार के सम्बन्ध में लागू है।

संक्रान्ति युग

प्रेमचन्द और प्रसाद हिन्दी कहानी-कला के दो मुख्य प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। इन के विभिन्न संस्थानों ने कहानी शिल्पविधि के विकास में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। प्रसाद की भावमूलक कला और प्रेमचन्द की यथार्थ मूलक कला प्रवृत्ति में सामाजिक कुरीतियों के प्रति सुधार का आग्रह, पराजय पतन के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा और दुखी पीड़ित मानवता के प्रति अथाह संवेदना आदि इन के भाव-पक्ष की मुख्य विशेषताएं थीं। दूसरी ओर कथा-विधान में इतिवृत्त का स्पष्ट रूप, घटना का प्राधान्य, शैली की सरलता, सुगमता, सोद्देश्यता और लक्ष्य का स्पष्ट होना उन की शिल्पगत कसौटी थी। अतएव प्रेमचन्द और प्रसाद की कला केवल दो प्रवृत्तियों की प्रतीक हैं और समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इन्हीं दोनों की धाराएं करती रहीं।

लेकिन संक्रान्ति युग में अनेक प्रवृत्तियाँ भी प्रस्फुटित हुईं, क्योंकि संक्रान्ति युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अपूर्व विस्तार और प्रसार हुआ, फलतः युग की अनेकानेक प्रवृत्तियों का इस में स्थायी होना स्वाभाविक था। विकास-युग में साधारण मनोविज्ञान और गाँधीवाद ही दो मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं। प्रेमचन्द अपनी कहानी कला के अंतिम वर्षों में अवश्यमेव कुछ और युगीन प्रवृत्तियों के सम्पर्क में आए लेकिन उन का प्रतिनिधित्व उन में न हो सका। संक्रान्ति युग में इन नवीन प्रवृत्तियों ने जीवन-दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण में सर्वथा नूतन अध्याय उपस्थित किया तथा इन से कहानी-कला में अपूर्व विस्तार परिवर्तन हुआ और विविध प्रयोगों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।

कहानी कला में युगीन प्रवृत्तियाँ

युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः दो क्षेत्रों में बाँटी जा सकती हैं: सांस्कृतिक और सामयिक। सांस्कृतिक क्षेत्र में जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान ये दो धाराएं हैं। सामयिक क्षेत्र में साम्यवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) और यौनवाद दो प्रवृत्तियाँ हैं। वस्तुतः ये समस्त प्रवृत्तियाँ इतनी शक्तिशाली क्रान्तिमूलक और युग सापेक्ष हैं कि इन के प्रभाव और इन की प्रेरणा से हिन्दी कहानी साहित्य का स्वर्ण युग द्वार खुलता है।

दर्शन

यहाँ दर्शन का अभिप्राय तात्विक अर्थ में न होकर व्यावहारिक जीवन-दर्शन से है अर्थात् नैतिक प्रश्नों, मानदंडों और भारतीय आदर्शवादिता का वह रूप जो इस युग में कहानी-कला का उपजीव्य रहा। प्रेमचन्द में यह जीवन-दर्शन मुख्यतः गांधीवाद से प्रेरित था और प्रसाद के जीवन दर्शन में बौद्ध धर्म की करुणा और प्राचीन संस्कृति की आदर्शमूलक स्फूर्ति थी। इस युग में गांधीवाद के विकसित रूप मानववाद ने जीवन-दर्शन को सर्वग्राही, व्यापक और महान बनाया। वस्तुतः यही मानववाद युग-दर्शन का मूल सनातन बन गया, जिसमें बुद्ध की करुणा, जैन की अहिंसा, पुरातन का आदर्शवाद और गांधीनीति का सुन्दर तादात्म्य स्थापित हुआ। इस मानववाद में अब पुरातन पंगुता, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों की समस्या न रही, बल्कि इस की समस्या अपेक्षाकृत व्यक्ति परक, चरित्र परक, और भाव परक हो गई। नैतिक मान्यताओं और आदर्शों में व्यापकता आई, क्योंकि समाज की अपेक्षा ये व्यक्ति सापेक्ष्य अधिक हुए। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण, व्यक्तित्व के आधार से इस के विषय में अपने अपने मंतव्य स्थिर करने लगा। सियारामशरण गुप्त ने अपने वैष्णव व्यक्तित्व के प्रकाश में व्यक्ति के संस्कारों को प्रमुखता दी और इन संस्कारों के माध्यम से चरित्र की महानता और आदर्शवाद की स्थापना की। जैनेन्द्र कुमार ने अपने चिंतन और गांधीवादी व्यक्तित्व से एक ओर चरित्र के निर्माण और विकास में जीवन की नैतिकता को ही विधेयक माना अर्थात् जैनेन्द्र के चिंतक मस्तिष्क ने नैतिक मान्यताओं पर ही चरित्र की सापेक्ष्यता सिद्ध की। दूसरी ओर उन्होंने गांधीवादी और पुरातनवाद के जीवन-दर्शन से आध्यात्मिकता और आदर्शवाद का आग्रह स्वीकार किया। परोक्ष रूप से उन्होंने बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा और गांधी के सत्य से प्रेरणा ग्रहण की। अज्ञेय का व्यक्तित्व विद्रोह और करुणा के तत्वों से निर्मित है, लेकिन उन की दृष्टि मूलतः कवि की दृष्टि है। फलतः उन के जीवन दर्शन में व्यक्ति की करुणा के प्रति संवेदना तथा आदर्शवाद का पुट है। इलाचन्द्र जोशी का व्यक्तित्व चिंतन और विश्लेषण प्रधान है अतः इन के अनुसार व्यक्ति का अहं ही समस्त विकृतियों और अनाचारों का मूल है। फलतः इन के जीवन-दर्शन की गति अहं से ऊपर उठ कर समाज की ओर जाती है। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार मनुष्य के लिए पाप-पुण्य कोई वस्तु नहीं है ये सब परिस्थिति जन्य है, मनुष्य जन्य नहीं। इस तरह इस

युग का जीवन-दर्शन समाज सापेक्ष न होकर व्यक्ति सापेक्ष है। इस की मान्यताएँ विभिन्न और व्यापक हो गई हैं। लेकिन सब का संधि-स्थल मानववादी ही है तथा इस मानववाद में चरित्र निष्ठा और मानव संवेदना दो मुख्य तत्त्व हैं।

मनोविज्ञान

विकास युग में जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया गया था, वह चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से संबंधित था। प्रसाद के चरित्रों का घात-प्रतिघात और प्रेमचन्द के चरित्रों का अंतर्द्वन्द्व मूलतः बाह्य घटनाओं से संबद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओं से नहीं। संक्रान्ति-युग में मनोविश्लेषण के विकास ने आश्चर्यजनक उन्नति की। जिस तरह बाह्य जगत् में हम इतने मानव व्यापार इतनी जटिलताएं और समस्याएं देख रहे हैं, इस विज्ञान ने इसी तरह यह सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य का एक अंतर्जगत् भी है, और यह अंतर्जगत् बाह्य जगत् कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है। यह सारा बाह्य जीवन चक्र से प्रेरित और निर्देशित है। अतएव अंतर्प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के व्यक्तित्व में प्रधान हैं। समस्त बाह्य कार्य व्यापार उन्हीं अंतर्प्रवृत्तियों की बाह्याभिव्यक्ति है। मनोविश्लेषण ने इस के भी आगे यह सिद्ध किया है कि मानव अंतर्जगत् में चेतन मन से भी आगे अवचेतन जगत् है तथा यह अवचेतन जगत् चेतन से भी अधिक शक्तिशाली है। मनुष्य के चेतन और अवचेतन के असामंजस्य ने उसे कितना रहस्यमय असाध्य और दुर्बोध बना दिया है। मनुष्य की इच्छाशक्ति किस भाँति बाह्याभिव्यक्ति न पाकर अतर्मुखी हो जाती है और अवचेतन जगत् में अक्षुण्ण रह कर कुंठाओं, अस्पष्ट अमूर्त्त स्वप्न चित्रों को जन्म देती रहती हैं। मनोविश्लेषण में हमें इन के अध्ययन के लिए एक नई पद्धति भी दी है—कि मनुष्य के बाह्य संकेतों कर्म-प्रेरणाओं और भाव-भंगिमाओं द्वारा हम मनुष्य के संश्लिष्ट गूढ़ अंतर्जगत् को समझ सकें उस के मन के उलझे हुए सूत्रों को सुलझा सकें। गहरी दृष्टि और विश्लेषण पद्धति ने संक्रान्ति युग की कहानी-कला को अपूर्व और मौलिक दिशा दी है इस के प्रकाश में नये दृष्टिकोणों से सामाजिक प्रश्नों को देखा गया। विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पाप विद्रोही अपराधी के प्रति करुणा, दया की भावना लाई गई। स्त्री-पुरुष के संबंधों का नये सिरे से अध्ययन हुआ और स्त्री के प्रति अपूर्व संवेदना प्रकट की गयी। संक्रान्ति युग के प्रायः समस्त कहानीकारों के मनोविज्ञान के इन पहलुओं को अपनाया। जैनेन्द्र कुमार ने चरित्रों को लेकर सफल कहानियाँ

दर्शन

यहाँ दर्शन का अभिप्राय तात्विक अर्थ में न होकर व्यावहारिक जीवन-दर्शन से है अर्थात् नैतिक प्रश्नों, मापदंडों और भारतीय आदर्शवादिता का वह रूप जो इस युग में कहानी-कला का उपजीव्य रहा प्रेमचन्द में यह जीवन-दर्शन मुख्यतः गांधीवाद से प्रेरित था और प्रसाद के जीवन-दर्शन में बौद्ध धर्म की करुणा और प्राचीन संस्कृति की आदर्शमूलक स्फूर्ति थी। इस युग में गांधीवाद के विकसित रूप मानववाद ने जीवन-दर्शन को सर्वग्राही, व्यापक और महान बनाया। वस्तुतः यही मानववाद युग-दर्शन का मूल धरातल बन गया, जिस में बुद्ध की करुणा, जैन की अहिंसा, पुरातन का आदर्शवाद और गांधीनीति का सुन्दर तादात्म्य स्थापित हुआ। इस मानववाद में अब पुरातन पंगुता, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों की समस्या न रही, बल्कि इस की समस्या अपेक्षाकृत व्यक्ति परक, चरित्र परक, और भाव परक हो गई। नैतिक मान्यताओं और आदर्शों में व्यापकता आई, क्योंकि समाज की अपेक्षा ये व्यक्ति सापेक्ष्य अधिक हुए। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण, व्यक्तित्व के आधार से इस के विषय में अपने अपने मंतव्य स्थिर करने लगा। सियारामशरण गुप्त ने अपने वैष्णव व्यक्तित्व के प्रकाश में व्यक्ति के संस्कारों को प्रमुखता दी और इन संस्कारों के माध्यम से चरित्र की महानता और आदर्शवाद की स्थापना की। जैनेन्द्र कुमार ने अपने चिंतन और गांधीवादी व्यक्तित्व से एक ओर चरित्र के निर्माण और विकास में जीवन की नैतिकता को ही विधेयक माना अर्थात् जैनेन्द्र के चिंतक मस्तिष्क ने नैतिक मान्यताओं पर ही चरित्र की सापेक्ष्यता सिद्ध की। दूसरी ओर उन्होंने गांधीवादी और पुरातनवाद के जीवन-दर्शन से आध्यात्मिकता और आदर्शवाद का आग्रह स्वीकार किया। परोक्ष रूप से उन्होंने बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा और गांधी के सत्य से प्रेरणा ग्रहण की। अज्ञेय का व्यक्तित्व विद्रोह और करुणा के तत्वों से निर्मित है, लेकिन उन की दृष्टि मूलतः कवि की दृष्टि है। फलतः उन के जीवन दर्शन में व्यक्ति की करुणा के प्रति संवेदना तथा आदर्शवाद का पुट है। इलाचन्द्र जोशी का व्यक्तित्व चिंतन और विश्लेषण प्रधान है अतः इन के अनुसार व्यक्ति का अहं ही समस्त विकृतियों और अनाचारों का मूल है। फलतः इन के जीवन-दर्शन की गति अहं से ऊपर उठ कर समाज की ओर जाती है। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार मनुष्य के लिए पाप-पुण्य कोई वस्तु नहीं है ये सब परिस्थिति जन्य है, मनुष्य जन्य नहीं। इस तरह इस

युग का जीवन-दर्शन समाज सापेक्ष न होकर व्यक्ति सापेक्ष है। इस की मान्यताएँ विभिन्न और व्यापक हो गई हैं। लेकिन सब का संधि-स्थल मानववादी ही है तथा इस मानववाद में चरित्र निष्ठा और मानव संवेदना दो मुख्य तत्त्व हैं।

मनोविज्ञान

विकास युग में जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया गया था, वह चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से संबंधित था। प्रसाद के चरित्रों का घात-प्रतिघात और प्रेमचन्द के चरित्रों का अंतर्द्वन्द्व मूलतः बाह्य घटनाओं से संबद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओं से नहीं। संक्रान्ति-युग में मनोविश्लेषण के विकास ने आश्चर्यजनक उन्नति की। जिस तरह बाह्य जगत् में हम इतने मानव व्यापार इतनी जटिलताएं और समस्याएं देख रहे हैं, इस विज्ञान ने इसी तरह यह सिद्ध कर दिखाया हैं कि मनुष्य का एक अंतर्जगत् भी है, और यह अंतर्जगत् बाह्य जगत् कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है। यह सारा बाह्य जीवन चक्र से प्रेरित और निर्देशित है। अतएव अंतर्प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के व्यक्तित्व में प्रधान हैं। समस्त बाह्य कार्य व्यापार उन्हीं अंतर्प्रवृत्तियों की बाह्याभिव्यक्ति है। मनोविश्लेषण ने इस के भी आगे यह सिद्ध किया है कि मानव अंतर्जगत् में चेतन मन से भी आगे अवचेतन जगत् है तथा यह अवचेतन जगत् चेतन से भी अधिक शक्तिशाली है। मनुष्य के चेतन और अवचेतन के असामंजस्य ने उसे कितना रहस्यमय असाध्य और दुर्बोध बना दिया है। मनुष्य की इच्छाशक्ति किस भाँति बाह्याभिव्यक्ति न पाकर अतर्मुखी हो जाती है और अवचेतन जगत् में अक्षुण्ण रह कर कुंठाओं, अस्पष्ट अमूर्त्त स्वप्न चित्रों को जन्म देती रहती हैं। मनोविश्लेषण में हमें इन के अध्ययन के लिए एक नई पद्धति भी दी है—कि मनुष्य के बाह्य संकेतों कर्म-प्रेरणाओं और भाव-भंगिमाओं द्वारा हम मनुष्य के संश्लिष्ट गूढ़ अंतर्जगत् को समझ सकें उस के मन के उलझे हुए सूत्रों को सुलझा सकें। गहरी दृष्टि और विश्लेषण पद्धति ने संक्रान्ति युग की कहानी-कला को अपूर्व और मौलिक दिशा दी है इस के प्रकाश में नये दृष्टिकोणों से सामाजिक प्रश्नों को देखा गया। विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पाप विद्रोही अपराधी के प्रति करुणा, दया की भावना लाई गई। स्त्री-पुरुष के संबंधों का नये सिरे से अध्ययन हुआ और स्त्री के प्रति अपूर्व संवेदना प्रकट की गयी। संक्रान्ति युग के प्रायः समस्त कहानीकारों के मनोविज्ञान के इन पहलुओं को अपनाया। जैनेन्द्र कुमार ने चरित्रों को लेकर सफल कहानियाँ

लिखीं। उन्हों ने चरित्रों की आत्मव्यथा और विकास मनोविश्लेषण पद्धति पर किया। उन की कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और विश्लेषण की प्रमुखता मिली, लेकिन इस दिशा में जैनेन्द्र से आगे अज्ञेय, के दृष्टिकोण का विकास हुआ, जहाँ जैनेन्द्र के चरित्रों में सामाजिकता अधिक है वहाँ अज्ञेय के चरित्रों में वैयक्तिकता उत्कृष्ट ढंग की है।

इन की कहानियाँ चरित्र की कर्म प्रेरणाएं और मानसिक स्थिति के गहन विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं। इलाचन्द्र जोशी का भी प्रायः यही दृष्टिकोण है। लेकिन जहाँ अज्ञेय अहं ने मनोविश्लेषण में अहं ने अधिक प्रेरित होने के कारण मानवीय पहलुओं और उस की संवेदनाओं के चित्रण में अधिक आकर्षक और प्रभावशाली हैं।[1] वहाँ जोशी अहं का ही मनोविश्लेषण उपस्थित कर एक चिंतक के रूप में अपेक्षाकृत भौतिक धरातल पर कहानियों की सृष्टि करने में सफल हुए हैं।

मनोविज्ञान ने प्रमुखतः स्त्री-पुरुषों संबंधी मूल्यों और समस्याओं को अपना धरातल बनाया है क्योंकि फ्रॉयड ने अप ने मनोविश्लेषण के समस्त सिद्धान्तों और पद्धतियों को स्त्री-पुरुष के यौन संबंधी (Sex relation) आधारों पर प्रतिष्ठित किया है। फलतः फ्रॉयड के यौनवाद के सिद्धान्तों, विश्लेषण-पद्धतियों को इस युग के कहानीकारों ने अपनाया है और उस से उन की अंतर्दृष्टि को अपूर्व बल मिला है।

यौनवाद

फ्रॉयड के अनुसार हमारी समस्त मनःस्थितियों, मनोद्वेगों और मनोविकारों का मेरुदंड यौन भावना ही है अर्थात् फ्रॉयड ने मानव जीवन की पूर्ण व्याख्या यौन के केन्द्र से की है। उन की व्याख्या के अनुसार मनुष्य का अवचेतन जगत् चेतन जगत् की अपेक्षा अत्यन्त शक्तिशाली होता है समस्त

---

[1] उसी बाह्य जीवन-चक्र का चित्रण सच्ची सफलता पा सकता है जो अंतर्जीवन चक्र पर आधारित हो, उसी प्रकार अंतर्जीवन की वही प्रगति श्रेयोन्मुखी हो सकती है जो बाह्य जीवन की प्रगति से निश्चित संबंध स्थापित किए हो। बाह्य और अंतर दोनों जीवनों की प्रगतियाँ एक दूसरे से अन्योन्याश्रय संबंध रखती हैं : इलाचन्द्र जोशी विवेचना : आधुनिक साहित्य में मनोविज्ञान, पृष्ठ ११७।

इन्द्रिय जन्य इच्छाओं में उन्हों ने यौन-इच्छा को ही सब से महत्वपूर्ण माना है इसी को जीवन का मूल केन्द्र सिद्ध किया है। चेतन अवचेतन के जागरण और सुप्रुति का भेद इन्हों ने निश्चित किया है यौन-इच्छाएं किस तरह तृप्ति अथवा अभिव्यक्ति न पाकर अवचेतन जगत् में एकत्र हो कर स्वप्नों में परिचित हो जाती हैं फ्रॉयड ने इस का पूर्ण विकास दिखाया है।[1] इसी आधार पर उन्हों ने स्वप्न-सिद्धान्त (Dream Theories) और स्वप्न-विश्लेषण (Dream Analysis) की विधियों को निश्चित किया है।[2]

इस प्रकाश में फ्रॉयड ने यह सिद्ध किया है कि प्रेम-वासना और इन के आधार पर नीति, अनीति, सच्चरित्र और दुश्चरित्र आदि ऐसी कोई मान्यताएं सत्य नहीं हैं, सब भ्रम है। मनुष्य जन्य है, प्रकृति जन्य नहीं। इन को लेकर यौनवाद ने आगे प्रेम-वासना तथा इन की समस्त विकृतियों का विश्लेषण किया है। मनुष्य के स्वप्नों और चेतन उद्‌गारों भाव-भंगिमाओं तथा नित्य प्रति के जीवन के पहलुओं की सहायता से फ्रॉयड ने यौन संबंधी अध्ययन का पथ प्रशस्त किया है। वस्तुतः कहानी-कला में फ्रॉयड के सिद्धान्तों का सर्व प्रथम प्रभाव उर्दू कहानीकारों पर पड़ा। वहाँ किशन चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास ने इस के स्वस्थ पक्ष को ग्रहण किया तथा सआदत हसन मंटो और असमत चग़ताई ने इस के अस्वस्थ और अति गोपनीय रूप को भी अपनी कहानी-कला में स्थान दिया। लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से असमत और मंटो की इस दिशा की कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। इस युग के हिन्दी कहानीकारों ने भी इस के दोनों रूपों को अपनाया है। अज्ञेय, जोशी, अश्क ने इस के स्वस्थ रूप को अपनाया है। मुख्यतः विज्ञान के रूप में साधन स्वरूप इन्हों ने अपनी कला में स्थान दिया है और यौनजन्य अस्वस्थ कुंठाओं, भ्रान्तियों, उलझनों और विकृतियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कभी आदर्श के पुट से तथा कभी मानवीय निष्ठा के धरातल से यशपाल और पहाड़ी ने इस के दूसरे रूप को अपनाया है विशेषकर पहाड़ी ने नग्न वर्णन और मोटापन को अधिक प्रश्रय

---

[1] The Dreams as Wishfulfilment—The Interpretation. P. 33. by Sigmund Freud.

[2] The Psychology of Dreams—Processes—The Interprepardan of Dreams P. 368 by Sigmund Freud.

इन्द्रिय जन्य इच्छाओं में उन्हों ने यौन-इच्छा को ही सब से महत्वपूर्ण माना है इसी को जीवन का मूल केन्द्र सिद्ध किया है। चेतन अवचेतन के जागरण और सुप्रुति का भेद इन्हों ने निश्चित किया है यौन-इच्छाएं किस तरह तृप्ति अथवा अभिव्यक्ति न पाकर अवचेतन जगत् में एकत्र हो कर स्वप्नों में परिचित हो जाती हैं फ्रॉयड ने इस का पूर्ण विकास दिखाया है।[1] इसी आधार पर उन्हों ने स्वप्न-सिद्धान्त (Dream Theories) और स्वप्न-विश्लेषण (Dream Analysis) की विधियों को निश्चित किया है।[2]

इस प्रकाश में फ्रॉयड ने यह सिद्ध किया है कि प्रेम-वासना और इन के आधार पर नीति, अनीति, सचरित्र और दुश्चरित्र आदि ऐसी कोई मान्यताएं सत्य नहीं हैं, सब भ्रम है। मनुष्य जन्य है, प्रकृति जन्य नहीं। इन को लेकर यौनवाद ने आगे प्रेम-वासना तथा इन की समस्त विकृतियों का विश्लेषण किया है। मनुष्य के स्वप्नों और चेतन उद्‌गारों भाव-भंगिमाओं तथा नित्य प्रति के जीवन के पहलुओं की सहायता से फ्रॉयड ने यौन संबंधी अध्ययन का पथ प्रशस्त किया है। वस्तुतः कहानी-कला में फ्रॉयड के सिद्धान्तों का सर्व प्रथम प्रभाव उर्दू कहानीकारों पर पड़ा। वहाँ किशन चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास ने इस के स्वस्थ पक्ष को ग्रहण किया तथा सआदत हसन मंटो और असमत चग़ताई ने इस के अस्वस्थ और अति गोपनीय रूप को भी अपनी कहानी-कला में स्थान दिया। लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से असमत और मंटो की इस दिशा की कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। इस युग के हिन्दी कहानीकारों ने भी इस के दोनों रूपों को अपनाया है। अज्ञेय, जोशी, अश्क ने इस के स्वस्थ रूप को अपनाया है। मुख्यतः विज्ञान के रूप में साधन स्वरूप इन्हों ने अपनी कला में स्थान दिया है और यौनजन्य अस्वस्थ कुंठाओं, भ्रान्तियों, उलझनों और विकृतियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कभी आदर्श के पुट से तथा कभी मानवीय निष्ठा के धरातल से यशपाल और पहाड़ी ने इस के दूसरे रूप को अपनाया है विशेषकर पहाड़ी ने नग्न वर्णन और मोटापन को अधिक प्रश्रय

---

[1] The Dreams as Wishfulfilment—The Interpretation. P. 33. by Sigmund Freud.

[2] The Psychology of Dreams—Processes—The Interprepardan of Dreams P. 368 by Sigmund Freud.

करना तथा अधिभौतिक शक्तियों को ही कला का उपजीव्य बनाना इन अभि-भौतिक शक्तियों में जो वर्ग पतनोन्मुखी हो उसे अपनी कला द्वारा हेय सिद्ध करना तथा उसे नष्ट करने का सतत प्रयत्न करना, जैसे आज का पूँजीवाद; जो वर्ग विकासोन्मुख हो उसे सर्वथा प्रश्रय देना, सहज सहानुभूति देना जैसे सर्वहारा वर्ग।

इस वस्तुवादी दर्शन ने हिन्दी कहानी कला को एक नई दृष्टि और समाज व्याख्या की एक नई कसौटी दी है। अनेक चरित्रों के अध्ययन इस वस्तु-वादी धरातल से हुए। व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक शक्तियाँ ही कला की उपजीव्य बनी। अहं का समाजीकरण हुआ। क्योंकि मार्क्स के अनुसार साहित्य सामाजिक और सामूहिक चेतना है, वैयक्तिक नहीं। कला के इस दृष्टिकोण को प्रगतिवादी कहानीकारों ने अपनाया है। यशपाल इस के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। व्यक्ति की नैतिकता तथा सामाजिक प्रश्नों का अध्ययन इन्हों ने निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियों के प्रकाश में किया, जिस में आर्थिक पक्ष और वर्ग संघर्ष ही दो मुख्य तत्व मान्य हुए।

इस तरह कहानी-कला के संक्रान्ति युग में दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद, और साम्यवाद, चार प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हों ने इस युग को अपूर्व प्रेरणा चिन्तन और विश्लेषण की नई दृष्टि दी। इन्हीं प्रवृत्तियों में इस युग के कहानी-कार भी अलग-अलग वर्गों में बाँटे गए और उन के ही आधार पर उन की कहानी शिल्प-विधि बनी।

युगीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कहानीकार और उन की विशिष्ट शैली

उक्त प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ, जैसा कि संकेत किया गया है प्रत्येक संक्रान्ति कालीन कहानीकार एक विशिष्ट प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। जैनेन्द्र कुमार सांस्कृतिक दिशा में दर्शन और मनोविज्ञान के कहानीकार हैं। इन की कहानियों में एक ओर आदर्श के पुट से भारतीय जीवन-दर्शन का आग्रह है और दूसरी ओर इन की कहानियों की मुख्य प्रेरणा चरित्र-विश्लेषण और मानसिक ऊहा-पोह में है। जीवन-दर्शन तथा जीवन आलोचना के प्रकाश में भगवती चरण वर्मा और सियाराम शरण गुप्त भी आते हैं, विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति में, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी का नाम लिया जा सकता है। इन की कला में मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण की समस्त काव्योचित पद्धतियों का अनुकरण किया गया है 'अश्क' की कला मनोविज्ञान और सामाजालोचन के

की समस्या है। कथानक के विकास में घटनाओं की क्रमिक है अवतारणा हुई और इस का अंत दार्शनिक ध्येय की परिसमाप्ति पर होता है, जैसे नारद द्वारा बताई हुई विधि के अनुसार इन्द्र और शची का स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरना। ऐतिहासिक संवेदना से भी कथानक का निर्माण इसी पद्धति पर हुआ है। तीसरी प्रकार की संवेदना से कथा-विधान अत्यन्त सरल और प्रायः कलात्मक ढंग से हुआ है।

कुछ कहानियों में कथानक-निर्माण कथात्मक तत्व, कार्य व्यापार और घटनाओं के तादात्म्य से हुआ है, जैसे, हवा महल, रानी महामाया, और जनार्दन की रानी के कथानक। इन तीनों प्रकार के कथानक मुख्यतः सुस्पष्ट और अपने कथातत्व में पूर्ण रहते हैं। इतिवृत्त में कलात्मकता का आग्रह मुख्य रूप से रहता है। चतुर्थ प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण मुख्यतः कथात्मक ढंग से ही हो जाता है, क्योंकि प्रायः इस धरातल की कहानियाँ अन्य पुरुष में कथित हुई हैं, जैसे तत्सत, और विचारा साँप, आदि। लेकिन इस दिशा की जो कहानियाँ विशुद्ध रूप में प्रतीकात्मक हैं, उन के कथानक-निर्माण में कार्य व्यापार और घटनाएं मुख्य रूप से आई हैं जैसे, तत्सत्।

चरित्र

दार्शनिक धरातल की कहानियों में कथानक-निर्माण में बहुत कम कला है, क्योंकि इन का कथा-विधान प्राचीन शैली वार्त्ता, कथा दृष्टान्त आदि के प्रकाश में निर्मित हुआ है। लेकिन इन कहानियों में जैनेन्द्र की कला की वास्तविकता शिल्पविधान में स्पष्ट हुई है। इन्हों ने यहाँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-चित्रण, और उन के चारित्रिक प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्प-कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः यहाँ चरित्र-निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्त्ताओं कथाओं और दृष्टान्तों के चरित्रों की भाँति यहाँ के चरित्रों में अपना अलग-अलग आकर्षण है। यहाँ के चरित्र मुख्यतः छः वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। प्रथम, ऐतिहासिक चरित्र, जैसे यशोविजय, वसन्त तिलका, जय वीर, जय सन्धि; द्वितीय पौराणिक चरित्र, जैसे शंकर, पार्वती, इन्द्र, आदि; तृतीय लौकिक, राजा रानी, योगी, वैरागी, आदि; चतुर्थ आध्यात्मिक चरित्र, पंचम विशुद्ध भावात्मक, और काल्पनिक चरित्र, और अंतिम प्रतीकात्मक, पशु-पक्षी चरित्र।

ऐतिहासिक चरित्र

जय संधि, ऐतिहासिक संवेदना की प्रतिनिधि कहानी है इस में केवल चार चरित्र हैं। ये नायक-नायिकाओं के जोड़े, जैसे यशोविजय, और वसंत तिलका, तथा

जय वीर, और यशस्तिलका ये सब चरित्र किसी न किसी अज्ञान प्रेरणा और अन्तर्द्वन्द्व से अभिभूत हैं, इन के व्यक्तित्व में एक विचित्र रहस्यात्मक प्रेरणा है, यशोविजय में वसंत तिलका ने वसंत से इसलिए विवाह किया है कि वह समाज की विषमताओं को चुनौती दे, दूसरी ओर यशस्तिलका ने जयवीर, को इसलिए अपना पति बनाया है कि वह अपने पति को यशोविजय के सामने पराजित करे, क्योंकि यशस्तिलका यशोविजय से प्रेम करती है। सब किसी न किसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित हैं और सब अपनी-अपनी सीमा में महान और आदर्श हैं।

पौराणिक चरित्र

यहाँ शंकर पार्वती, इन्द्र, शची, नारद, कामदेव, रति और गुरु कात्यायन आदि मुख्य चरित्र हैं, लेकिन इन पौराणिक चरित्रों की अवतारणा निरपेक्ष ढंग से न होकर धरती और मानव सापेक्ष हुई है, नारद का अर्घ्य, में शंकर पार्वती कैलाश पुरी में बैठ कर नीचे धरती के आदि मानव को धनराज और जनराज के के रूप में अपनी लीला देखते हैं। इन में नारद पृथ्वी आदि अन्य ग्रहों का भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते हैं, धरती के मानव की स्थिति की चर्चा होती है। नारद का कहना था कि धरती त्वरा चाहती है कुछ और आगे कुछ अप्राप्त, कुछ निषिध्य पार्वती ने सहसा अपने आपाद् लम्बित केशों से एक लट को निचोड़ते हुए कालकूट अमृत की एक बूँद को पृथ्वी की धुरा में चुवा दिया, फलतः पृथ्वी पर धन राशि आनन्द सुसंपत्ति बिखर गई और पृथ्वी पर कलह मच गया। मानव में 'अपना-मेरा का' कीड़ा पैठता है तथा संयुक्त प्रेम विनष्ट हो जाता है। भद्रबाहु, में इन्द्र कामदेव के सामने धरती के भद्रबाहु और उर्ध्वबाहु को रख कर दोनों के चारित्रिक बल और व्यक्तित्व की तुलना की गई है। इन की परस्पर अवतारणा से यह दर्शन प्रतिपादित किया गया है कि सदा सबका कारण पृथ्वी है, उस पर मनुष्य परम बलिष्ठ और महान् है। अनबन, मैं, बुद्धि, इन्द्र और धृति की अवतारणा से नीति और दर्शन पर अपेक्षाकृत निरपेक्ष ढंग से प्रकाश डाला गया है।

लौकिक राजा रानी

लौकिक राजा रानी के प्रकाश में जिन चरित्रों का निर्माण हुआ है, उन में मुख्य रूप से मुख्यतः चारित्रिक निष्ठा तथा जीवन नीति का स्तर सब से उज्वल और सशक्त है। रानी महामाया जनार्दन की रानी और राज पथिक,

का राजकुमार, ये तीनों चरित्र भावुकता धार्मिक निष्ठा और आदर्श के प्रतीक हैं। यहाँ के स्त्री पात्र अनन्य श्रद्धा भक्ति के प्रतीक हैं, तथा राजा चरित्र और दार्शनिकता के प्रतीक हैं।

जनार्दन राजा यह कह कर कि ब्रह्मांड अनन्त है और ग्रह मंडल में अनेक आवागमन तो लगा ही है, राज्य छोड़ कर विरक्ति-पथ पर चल देते हैं। इसी तरह राज पथिक का राजकुमार, और वैजयन्त भी परोक्ष सत्ता के अन्वेषण और संयोग के लिए अपना-अपना राज्य छोड़ कर चल देते हैं।

आध्यात्मिक चरित्र

लौकिक धरातल पर कुछ आध्यात्मिक चरित्रों की भी अवतारणा हुई है। लाल सरोवर, का वैरागी इस का प्रतिनिधि है। मानवता की सेवा, आदर्श में अपार निष्ठा, वस्तु के प्रति उत्कट उपेक्षा ईश्वर में अनन्य भक्ति इस के चरित्र की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस चरित्र को निश्चित सुस्पष्ट रूप देने के लिए इस के व्यतिरेक में जैनेन्द्र ने एक अधम चरित्र की अवतारणा की है। यह वैरागी, की चारित्रिक विशेषताओं से बिल्कुल उलटा है, वैरागी में इतना अध्यात्म बल है कि वह मानवता की सेवा में अथवा वैसे ही जहाँ कहीं जाता है, उस के प्रत्येक पग पर एक-एक अशर्फी उत्पन्न होती रहती है। लेकिन यह वैरागी सोना पदार्थ का परम उपेक्षक है, और उसे अपने अध्यात्म बल का कुछ पता भी नहीं है, इस के विपरीत मङ्गलदास अतुल स्वर्ण की लालच से वैरागी भक्त हो जाता है, वैरागी को अन्यान्य जीवन परीक्षाएं देनी पड़ती हैं लेकिन अंत में वैरागी को जब अशर्फी के रहस्य का पता चलता है, तब वह ईश्वर से उस की परिसमाप्ति की प्रार्थना करता है और अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है। वैरागी, के व्यक्तित्व से परोक्ष सत्ता की महिमा अध्यात्म बल की निष्ठा वस्तु से ऊपर उठ कर रहस्यात्मक शक्ति की ओर प्रेरित होने का हमें संदेश मिलता है।

भावात्मक चरित्र

दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियों में कुछ ऐसे भी चरित्रों की अवतारणा हुई है जो विशुद्ध रूप से भावात्मक और काल्पनिक हैं। नीलम देश की राजकन्या उस की सखियाँ तथा नीलम देश पहुँचने वाला राजकुमार इस के प्रतीक हैं। राजकुमार की रानी मां राजकुमार को खाना खिलाते, रात को सुलाते समय अपनी कल्पना से नीलम देश की छोटी-सी रानी के भावात्मक व्यक्तित्व से उस का परिचय कराती है। "सात समुन्दर पार नीलम का देश है वहाँ लाल पन्नों

का महल है। उस में अकेली [illegible] रहती है। समुद्र के नीचे से पानी की परियाँ मोर के पात्रों में तरह-तरह के फल-फूल लाती हैं। फूलों को वह सूंघ लेती है, फलों का रस पी लेती है। यहाँ की हवा स्वच्छ दूध की-सी है, उसको वह पीती है, वह चाँदनी के बारीक वसनों के कपड़े पहनती है। ऐसी है वह रानी जो सोने के महलों में सदियों वर्षों से अकेली उस ओर की रानी है और आदि से प्यारी राजकुमार के आने की प्रतीक्षा में अकेलापन काट रही है।"

वस्तुतः यह भावात्मक चरित्र किसी परोक्ष सत्ता का प्रतीक है। इस में परमात्मा की दार्शनिक व्याख्या है। राजकुमार भी इसी प्रकार से आत्मा है और दोनों में परस्पर प्रेम और आत्मा के अस्तित्व का संकेत है।

प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरित्र के प्रकाश में मुख्यतः पेड़-पौधे, जीव जंतु आदि प्रस्तुत हुए हैं। यह विचार गाँव में गाँव, तत्सत् में बट, पीपल, शीशम, बबूल तथा चिड़िया की बच्ची, में चिड़िया आदि चरित्रों को लिया गया है ये प्रतीकात्मक चरित्र विशुद्ध रूप से मानव दर्शन सापेक्ष्य हैं। इन के माध्यम से मनुष्य जीवन इन की नीति, उन के व्यवहार तथा इन के जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। इन में स्वाभाविकता लाने के लिए जैनेन्द्र ने स्वाभाविक परिस्थिति और वातावरण उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

वस्तुतः चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा ही इन दार्शनिक कहानियों के प्राण हैं, इस के ही माध्यम से कहानीकार ने अपना अभीष्ट पूरा किया है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष में इन कहानियों की निर्माण-शैली, वार्ता तथा दृष्टान्त के रूप में हैं। आधुनिक कहानी शैली में इन कहानियों का निर्माण क्यों नहीं हो सका, इस का सब से बड़ा कारण यही है कि ये कहानियाँ विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी गई हैं। स्वयं जैनेन्द्र के ही शब्दों में "दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है। उस रूप में वह अपरीक्षित भी है। वह अधिकांश के लिए अग्राह्य है। फलतः उस को दृष्टान्तगत, चित्रगत, और कथा रूप में परिवर्तन करना पड़ा तभी वे दार्शनिक तत्व ग्राह्य हो सके।"

कहानियाँ विशेषकर दृष्टान्त के रूप में क्यों लिखी गईं? इस के उत्तर में जैनेन्द्र का ही दृष्टिकोण इस के संबंध में सब से अधिक वैज्ञानिक है। "शास्त्र ने

तो कह दिया सत्यं वद, लेकिन असली जिन्दगी में सत्यं वद सीधी-सादी चीज नहीं रह जाती। सत्यं वद पर जब चलना आरम्भ करते हैं तो पेंच पर पेंच पैदा होते हैं। उस सीधे-सादे कथन में शंकाएँ निकलती जाती हैं, जब आदमी कहता है शास्त्र का सत्यं वद हम को मत दो, दुनिया के सामने रख कर दृष्टान्त से हमें दिखलाओ, सत्यं वद क्या है, कैसे यह टिकता है।"[1] फलतः ये कहानियाँ दृष्टान्त शैली में लिखी गई हैं सब में कोई न कोई संसार घटित कथा के दृष्टान्त से दार्शनिक तत्व की प्रतिष्ठापना हुई है। वार्ता-शैली में लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और रेखाचित्र के रूप में निर्मित हुई हैं, जैसे नारद का अर्घ्य, बाहुबली, तत्सत्, और गुरु कात्यायन, आदि वार्ता में वस्तुतः किसी की महिमा वर्णित होती है या किसी के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना कही जाती है। इन कहानियों में भी व्यक्तियों के विषय में बातें कही गई है। इन में कथा विधान सामान्य रह कर व्यक्तियों के विषय में दार्शनिकता की निष्पत्ति सफल रूप से हुई है; कथात्मक शैली में आई हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत लम्बी और सब से अधिक आकर्षक सिद्ध हुई हैं, जैसे, लाल सरोवर, और नीलम देश की राजकन्या, इन कहानियों की शैली बिल्कुल उसी तरह है जैसे कोई कथावाचक या नानी-दादी कहानियाँ सुनाती हैं, उदाहरण के लिए लाल सरोवर, कहानी इस तरह कथित है," कमल के फूलों से भरे इस लाल सरोवर की कथा, भाई, प्राचीन है और परम्परा के अनुसार सुनता हूँ, बहुत पहले यहाँ से उत्तर पूरब की तरफ एक नगर बसा हुआ था। उस के बाद खंडहर की हालत में एक शिवाला[2] था आदि। रानी महामाया, कहानी की निर्माण-शैली कथा और नाटक शैली के बीच से है। वस्तुतः किसी भी कहानी का आरम्भ भूमिका को लेकर हुआ है तथा रानी महामाया, को छोड़कर किसी भी कहानी के अंत में उपसंहार नहीं और यह उपसंहार भी विवशता का परिणाम था। शैली के सामान्य पक्ष में इन कहानियों में देश-काल-परिस्थिति और व्यक्ति आदि का चित्रण, वर्णन सफल और सशक्त हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

दार्शनिक धरातल के कारण इन कहानियों में के निर्माण में एक निश्चित दार्शनिक मौलिक धारणा सर्वत्र व्याप्त है। यही धारणा लक्ष्य रूप में इन कहानियों

के सृजन की मुख्य प्रेरणा रही है। लक्ष्य को हम स्पष्ट रूप से तमाम कहानियों में ढूँढ सकते हैं, जैसे, जनार्दन की रानी, कहानी में लक्ष्य की प्रेरणा, "ब्रह्मांड अनंत है, और इस ब्रह्मांड में आवागमन तो लगा ही है।" 'लाल सरोवर' में लक्ष्य की प्रेरणा, "अनेकानेक अनर्थों का मूल स्वर स्वयं है भौतिकता, लेकिन फिर भी प्रभु, सबमें तुम्हीं हो, तुम्हीं हो", इस तरह, वह विचार सार में वाणी में तो "परमात्मा सदा मौन रहता है, शून्य ही में वह व्यक्त है। जगत् की घटना ही जगदीश्वर की वाणी है।" जय संधि, और नीलम देश, की राजकन्या, जैसी कहानियों की निर्माण की प्रेरणा लक्ष्य में साथ ही साथ अनुभूति की भी तीव्रता स्पष्ट है।

वस्तुतः दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियों में जैनेन्द्र के चिंतक व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इन कहानियों का धरातल इतना ऊँचा है कि कहानी-कला के इस चरम विकास युग में परम्परा गत, प्राचीन शैलियों में लिखी हुई कहानियों का मूल्य वस्तुतः भावगत अधिक है, शिल्पगत कम। ये कहानियाँ अध्यात्म दर्शन और रहस्य की उन शाश्वत प्रेरणाओं से लिखी गई हैं जिन का मूलाधार हमारी संस्कृति है।

मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियाँ

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ, जैनेन्द्र की शिल्पविधि की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ शिल्पविधान का वह चरमोत्कर्ष सर्वथा स्पष्ट है, जो प्रेमचन्द, प्रसाद युग से हमारे अध्ययन को बहुत आगे बढ़ाता है। शिल्पविधान घटना के प्राधान्य, इतिवृत्त के विस्तार और बाह्य संघर्षों और परिस्थितियों के चित्रण, वर्णन से आगे बढ़ कर स्थूल से सूक्ष्म की ओर गया है। इस में बाह्य से अंतर जाने का आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। अतएव जैनेन्द्र की कहानी कला में उन्हें कथा-विधान के नये-नये कौशल, नये-नये प्रयोग करने पड़े हैं, तथा इन में उन के आश्चर्यजनक हस्तलाघवता का परिचय मिलता है।

कथानक

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई समस्त कहानियों को हम स्पष्टतः चार वर्गों में बाँट सकते हैं—प्रथम प्रकार की कहानियाँ वे हैं जो किसी के जीवन के एक लम्बे भाग के आधार पर लिखी गई हैं, जैसे मास्टर जी, दूसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो एक रात या कुछ घंटों के जीवन चक्र के आधार पर निर्मित होकर मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं,

जैसे, एक रात, तीसरे प्रकार की ये कहानियाँ हैं जो केवल विशिष्ट रूपों के आधार पर लिखी गई हैं। ये जीवन के किन्हीं विशिष्ट चित्रों की द्रुत झाँकी उपस्थित करती हैं, जैसे, क्या हो, चौथी प्रकार की कहानियाँ मात्र चरित्र विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं जैसे, मित्र विद्याधर।

प्रथम प्रकार में कथानक सुस्पष्ट तथा अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहाँ कथानक का निर्माण चरित्र के विकास-क्रमों के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सब से अधिक सबल और कथा-विधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कथानक-निर्माण में वर्तमान स्थितियों का पूर्व स्थितियों से तादात्म्य स्थापित कर इस के विधान में इतना कलात्मक चमत्कार उत्पन्न किया गया है कि इन से निर्मित कहानियाँ जैनेन्द्र की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ हैं। फिर भी यहाँ कथानक निर्माण में घटना-चक्रों और संयोगों का बहुत कम सहारा लिया गया है। इस के विकास में मानसिक सूत्रों का अवलम्ब बहुत ही लिया गया है।

यही कारण है कि ये कथानक जहाँ शिल्पविधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं वहाँ इन्हें हृदयंगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा, तभी पाठक से संवेदना का पूर्ण साधारणीकरण हो सकता है। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सूक्ष्म तत्त्वों से निर्मित हुए हैं। ये कुछ क्षणों की मनःस्थिति की आधार शिला से मनःउद्वेगों के घात-प्रतिघातों के साधनों से व्यक्त हुए हैं। केवल नाममात्र के लिए कथानक ऐसे लगते हैं कि जैसे कोई मात्र भाव ही फैलकर कहानी बन गया है और उस में कथा चरित्र आदि इस तरह से सगुंफित हो गए हैं कि सभी तत्वों की अपनी स्वतंत्र सत्ता ही एक दूसरे में खो गई है। क्या हो, में सब कुछ स्मृति चिन्तन द्वारा ही व्यक्त किया गया है, लेकिन फिर भी कथातत्व सूक्ष्म स्वरूप में होता हुआ भी, इतना शक्तिशाली और वेगवान है कि इस से सम्पूर्ण कहानी जैसी कोई अग्निशिखा-सी प्रतीत होती है, जो किसी तूफान की गति में जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार में कथानक और भी सूक्ष्मतर हो गया है। इस में एक तरह से कथा-तत्व का सर्वथा लोप हो गया है। क्योंकि ये कहानियाँ चरित्र की आन्तरिकता के रेखाचित्र हैं, और यहाँ सूक्ष्म भावों, मनोविकारों को स्थूल कथातत्व में समेटना असंगत क्रिया हो गई है।

उक्त चारों प्रकार के कथानक तथा उन के शिल्प-विधान में मूलतः कहानी को संवेदना और मनोविज्ञान के स्तर का विभेद है। जहाँ मनोविज्ञान स्थूल संवेदना को लेकर चला है, वहाँ कथानक, उस का इतिवृत्त, उस का स्वरूप उतना

ही स्पष्ट और निश्चित है। लेकिन जहाँ मनोविज्ञान केवल चरित्रों को लेकर कहानियों में प्रतिष्ठित हुआ है, वहाँ कथानक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गए हैं।

चरित्र

वस्तुतः इस धरातल की कहानियाँ चरित्रों की कहानियाँ हैं, इस में कथा-तत्व केवल साधन स्वरूप में आए हैं, साध्य यहाँ चरित्र-विश्लेषण है। जैनेन्द्र ने अपनी कहानी कला में चरित्र को क्यों इतना महत्त्व दिया, इस का कारण उन के सूक्ष्म दृष्टिकोण[1] और अध्ययन का आग्रह है।

यहाँ समस्त कहानियों में चरित्र अवतारणा केवल दो दृष्टिकोणों से हुई है। जैनेन्द्र ने प्रायः साधारण चरित्रों के स्थान पर विशिष्ट चरित्रों को लिया है। दूसरे प्रकार के चरित्र अपने में स्वयं व्यक्ति नहीं होते वरन् व्यक्ति के टाइप प्रतिनिधि हुआ करते हैं।

विशिष्ट चरित्र

अधिकांश चरित्र प्रायः इसी वर्ग में आते हैं। इन चरित्रों को सब से बड़ी कसौटी यह है कि ये अन्तर्मुखी अधिक होते हैं। सब के सब किसी न किसी अंतर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात से अनुप्राणित रहते हैं तथा ये कुछ ऐसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित रहते हैं कि इन्हें पूर्ण रूप से समझना कठिन कार्य है फिर भी ये चरित्र असाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं। देखने से लगता है जैसे, सामने कोई विशाल अजेय पर्वत खड़ा है, लेकिन प्रत्येक मानवीय स्थितियों में इस तरह पिघल जाते हैं, जैसे, मोम के पुतले। इन के चरित्र का आकर्षण भी अपूर्व है। इन में किसी न किसी दिशा से एक अव्यक्त करुणा की लय, व्यक्त कसक टीस का अभिशाप, अनिर्दिष्ट अभाव और सब से बड़ी विशेषता, इन का निष्पंद, निश्चेष्ट होना है। यह सत्य इन के स्त्री-पुरुष चरित्रों पर समान रूप से चरितार्थ होता है। इस के उदाहरण में, एक रात का जयराज और सुदर्शना,

---

[1] यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी होगी कि शरीर से प्राणों की ओर बढ़ना बनावट से स्वाभाविकता की ओर बढ़ना होगा, सजावट से रुचिरता की ओर और आडम्बर से प्रसाद की ओर बढ़ना होगा। स्थूल वासना के नीचे धरातल पर इस प्रगतिशील जगत् में टिकना नहीं हो सकेगा, सूक्ष्म की ओर अग्रसर ही होना होगा। इसी का नाम विकास है। जैनेन्द्र—'एक रात', भूमिका, पृष्ठ ३

राजीव की भाभी, का राजीव, मास्टर जी, घोपाल, बाबू, और श्याम कला, क्या हो, का वन्दी, और सुषमा, पाजेब, आशुतोष, जाह्नवी की जाह्नवी, नादिरा का नादिरा, आदि सदा अमर रहेंगे ।

प्रतिनिधि चरित्र

जैनेन्द्र के प्रतिनिधि चरित्र अपने में स्वतंत्र व्यक्ति न होकर किसी वर्गगत जातिगत व्यक्तित्व की इकाई होते हैं । जैनेन्द्र ने एक-एक टाइप, कहानी में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट भी किया है । "कुछ लोग अपने में व्यक्ति नहीं होते : वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते हैं : × × ये सब जगह सब नामों के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक हैं । कामादिक प्राणी की हैसियत से अमुक ही उनके जीवन की नीति होती है वस्तुओं का अमुक मूल्य और विचारों की वही एक काठ की बनावट, वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने की झंझट से आरम्भ ही से बचे होते हैं : और अपने विश्वास आप गढ़ने का कष्ट भी उन्हें उठाना नहीं होता[1] ।" ऐसे चरित्रों की अवतारणा प्रायः साधारण ढंग की कहानियों में हुई है ।

जहाँ कोई घर-परिवार संबंधी अथवा किसी व्यक्ति के संबंध में कहानी लिखनी पड़ी है, प्रायः वहाँ प्रतिनिधि चरित्रों ही को लिया गया है जैसे, ग्रामोफोन की रिकार्ड की विजया, पत्नी की सुनन्दा, प्रियव्रत, और टाइप आदि ।

व्यापक रूप से जैनेन्द्र के समस्त चरित्रों में अपने-अपने ढंग से व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है । विशिष्ट चरित्रों में यह सत्य अपने उत्कृष्ट ढंग से चरितार्थ हुआ है । वस्तुतः चरित्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व-विश्लेषण मुख्यतः चार साधनों से हुआ है—

(अ) आत्म विश्लेषण (आ) मानसिक ऊहापोह
(इ) अवचेतन विज्ञप्ति (ई) संकेतों और कार्य

आत्म विश्लेषण

क्या मुझ में कृतज्ञता है ? क्या मुझ में खुशी है ? तब मैंने वह झूठा आचरण किया कि मैंने जज को धन्यवाद दिया, धन्यवाद मुझ में न था । लेकिन यह क्या यह है कि रोऊँ नहीं, इसलिए हँसा ? मैं समझता हूँ यह भी ठीक बात नहीं है ? रोने की भी जरूरत इस समय मेरे भीतर नहीं है ।

—"क्या हो", पृष्ठ २०७

मानसिक ऊहापोह

उस के मन को स्थिरता नहीं थी। वह अपने को कहाँ बाँधे? उस मन के भीतर पढ़ाई भी है, प्रेम भी है, लेकिन वह मन अपने को जैसे अस्वीकृत पाता है। किसने उसे ले लिया है। जिसके लिए इसका वह मन रहता है, तीनों लोकों में जो उसका अधीश्वर है वह आदमी तो एकदम उसे सोने में और ऐश्वर्य में डुबा देना चाहता है वह इसे ऐसा प्यार करता है। पर उसके क्या वह योग्य है।

—ग्रामोफोन का रिकार्ड, पृष्ठ ६१

अवचेतन विज्ञप्ति

अन्त में टहलते-टहलते वह मेज पर आ बैठा और पेन से ब्लाटिंग पैड पर लिखा—लिखा कहें कि खींचा—

Swaraj Independence
Love Marriage

××× ××× God made Love. Did God make marriage also? No, the man did the making of it and I say a Love is not choose. It is never that. Never, never! Ah! how slavish of me thus unwilliugly to use English wust mrite Hindi! हिंदी, हिंदी : हिंदी हमारा देश, हिन्दुस्तानी है, हम, हिंदी हमारी भाषा, हिंदी हमारा वाना, भाइयों : हरीपुर, २३ मील, सवेरे की गाड़ी में नहीं जा सकता। Oh! Damn it all! Why make a misery of it—Dear Jairaj!

—एक रात, पृष्ठ १२

संकेतों और कार्यों द्वारा

कहते-कहते कमरे में फिर मास्टर वापस लौट पड़ते, हिस्ट्री में आर्य जाति विजय, और उन की सौम्यता, खूब याद करना चाहिए : कौन-कौन लोगों ने भारत पर चढ़ाई किया : ओह : तुम लोग सोओ : हम चला जाता है......

ऊपर दरवाजे की तरफ बढ़ते और गणित अथा अंग्रेजी या भूगोल इतिहास की कोई बहुत जरूरी बात बतलाते-बतलाते फिर लौट पड़ते। वास्तव में उनका अभ्यन्तर उस अपने मकान में इस रात्रि के अंधेरे में अपने को अकेला पाने से बचाता था।

— मास्टर जी, पृष्ठ ५७

शैली

जैनेन्द्र की कहानियों की निर्माण-शैली अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। इस का सब से बड़ा कारण यह है कि उन्हों ने मनोविज्ञान और दर्शन के विभिन्न स्तरों और धरातलों से अपनी कहानियाँ लिखी हैं।

अतएव कहानियों की रूप-शैली अनेक प्रकार की हो गई हैं, जैसे, पत्रात्मक शैली, आत्म कथात्मक शैली, सम्वाद शैली, स्वगत भाषण शैली और विशुद्ध नाटक शैली, तथा इन समस्त शैलियों के तादात्म्य से ऐतिहासिक शैली। इन समस्त शैलियों में उन्हें समान रूप से आश्चर्यजनक सफलता मिली है।

उक्त शैलियों के उदाहरण में निम्नलिखित प्रतिनिधि कहानियाँ सर्वथा उल्लेखनीय हैं।

१. पत्रात्मक शैली 'परावर्तन' २. आत्म कथात्मक शैली 'नादिरा'
३. सम्वाद शैली 'ग्रीडटिस' ४. स्वगत भाषण शैली 'क्या हो'
५. नाटक शैली 'परदेशी' ६. ऐतिहासिक शैली 'मास्टर जी'

उपर्युक्त समस्त शैलियों में केवल ऐतिहासिक शैली को छोड़ कर किसी भी शैली में भूमिका और उपसंहार की योजना नहीं हुई है। फलतः कहानियों के निर्माण में अर्थात् उन के आरम्भ, विकास और अंत में केन्द्रैक्य तथा कलात्मक संगुफन की सब से अधिक प्रेरणा है। उन में कहीं भी अस्वाभाविक विकास तथा उपकथाओं, अंतर्कथाओं को वहां जोड़ा गया है। ऐतिहासिक शैली से निर्मित कहानियों में नाटकीय तत्व परम सफलता से आए हैं। इन के विकास में घटनाओं की क्रमिक अवतारणा और नाटकीय परिस्थितियों का उत्पन्न होते जाना, दूसरी ओर चरित्रों के आंतरिक पक्ष में भावों का क्रमिक उदय, मनःस्थिति का स्वाभाविक विश्लेषण और कहानी को लक्ष्य की ओर प्रेरित करते जाना। कहानियां के विकास में अद्भुत गति और प्रवाह देता है। इन्हें पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे हमारी संवेदनशीलता पर किसी ने बहुत तेजी से कोई लकीर खींच दी है, ऐसी लकीर जिस के आदि-अंत का पता नहीं चलता और पाठक कहानी में उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक जाता है, तथा बार-बार कहानियों को पढ़ता रहता है। प्रायः हमेशा पाठक कहानी के अंत पर रोक कर एक बार पुनः उसी कहानी की समस्या का कुछ और समाधान ढूँढ़ने लगता है क्योंकि इन कहानियों से हमें शंका उद्वेलन और अतृप्ति मिलती है, संतोष नहीं। वस्तुतः आधुनिक कहानी-कला की सब से बड़ी विशेषता यही है कि कहानी की पूरी समस्या वहाँ

पैदा होती है जहाँ कहानी का अंत होता है।

शैली के सामान्य पक्ष में यहाँ वर्णन और चित्रण में क्रमशः चित्रात्मकता और विश्लेषण पद्धति की सब से बड़ी विशेषता है। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण और मूर्ति प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई है वहाँ कहानियाँ रेखाचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण हो गई हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में बहुधा व्यंजना का सहारा लिया गया है। क्योंकि यहाँ शैली, व्यक्ति और उस के मनोविज्ञान को केन्द्र बना कर व्यक्त हुई है। अतएव सामान्य शैली के मुख्य पक्ष वर्णन और चित्रण में सूक्ष्मता और व्यंजना आई है। जैनेन्द्र की भाषा-शैली इन के शिल्प विधान के प्रमुख विशेषताओं में से है। इस में इतनी स्वाभाविकता और प्रवाह है कि कहानियाँ अपनी संवेदना के साथ पाठक के अंतस्थल को स्पष्ट करती चलती हैं। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा गद्य शिल्पी की हुई है। जहाँ मानसिक ऊहापोह दिखाया गया है वहाँ की भाषा चिन्तक की भाषा हुई है और जहाँ कहीं किसी चित्र-मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी है, वहाँ की भाषा कवित्वपूर्ण भावुक और एक चतुर शिल्पी की भाषा है। अतएव जैनेन्द्र की भाषा में भावोचित शब्द निर्माण, स्वाभाविक शब्द चयन और शब्द विस्तार इतना है कि उन्हों ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है। भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्ति को इन्हों ने इतना बल दिया है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की भाषा उन की सदैव कृतज्ञ रहेगी।

लक्ष्य और अनुभूति

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी कहानियों की सृष्टि में लक्ष्य और अनुभूति के समान प्रेरणा है, लेकिन फिर भी कुछ कहानियाँ तो विशुद्ध अनुभूति की प्रेरणा से लिखी गई हैं अर्थात् वे कहानियाँ कहानीकार के अनुभूति का अभिव्यक्ति हैं। जो कहानियाँ जीवन के एक लम्बे भाग अथवा जीवन के कुछ घंटों के प्रकाश में मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं वे निश्चित रूप से एक लक्ष्य को लेकर लिखी गई हैं उन में अनुभूति का सहारा, उन के विकास में लिया गया है जैसे, मास्टर जी, कहानी एक व्यक्ति विशेष के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य से लिखी गई हैं और उस में सब से अधिक एक जीवन-दर्शन और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'एक रात' में यह लक्ष्य और भी स्पष्ट हो गया है और इस के विकास में अनुभूति की भी इतनी गहरी प्रेरणा है कि इस के चरित्र हमारी संवेदनशीलता में सदा के लिए घर कर लेते

शैली

जैनेन्द्र की कहानियों की निर्माण-शैली अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। इस का सब से बड़ा कारण यह है कि उन्हों ने मनोविज्ञान और दर्शन के विभिन्न स्तरों और धरातलों से अपनी कहानियाँ लिखी हैं।

अतएव कहानियों की रूप-शैली अनेक प्रकार की हो गई हैं, जैसे, पत्रात्मक शैली, आत्म कथात्मक शैली, सम्वाद शैली, स्वगत भाषण शैली और विशुद्ध नाटक शैली, तथा इन समस्त शैलियों के तादात्म्य से ऐतिहासिक शैली। इन समस्त शैलियों में उन्हें समान रूप से आश्चर्यजनक सफलता मिली है।

उक्त शैलियों के उदाहरण में निम्नलिखित प्रतिनिधि कहानियाँ सर्वथा उल्लेखनीय हैं।

१. पत्रात्मक शैली 'परावर्तन'
२. आत्म कथात्मक शैली 'नादिरा'
३. सम्वाद शैली 'ग्रीडटिस'
४. स्वगत भाषण शैली 'क्या हो'
५. नाटक शैली 'परदेशी'
६. ऐतिहासिक शैली 'मास्टर जी'

उपर्युक्त समस्त शैलियों में केवल ऐतिहासिक शैली को छोड़ कर किसी भी शैली में भूमिका और उपसंहार की योजना नहीं हुई है। फलतः कहानियों के निर्माण में अर्थात् उन के आरम्भ, विकास और अंत में केन्द्रैक्य तथा कलात्मक संगुफन की सब से अधिक प्रेरणा है। उन में कहीं भी अस्वाभाविक विकास तथा उपकथाओं, अंतर्कथाओं को वहीं जोड़ा गया है। ऐतिहासिक शैली से निर्मित कहानियों में नाटकीय तत्व परम सफलता से आए हैं। इन के विकास में घटनाओं की क्रमिक अवतारणा और नाटकीय परिस्थितियों का उत्पन्न होते जाना, दूसरी ओर चरित्रों के आंतरिक पक्ष में भावों का क्रमिक उदय, मनःस्थिति का स्वाभाविक विश्लेषण और कहानी को लक्ष्य की ओर प्रेरित करते जाना। कहानियों के विकास में अद्भुत गति और प्रवाह देता है। इन्हें पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे हमारी संवेदनशीलता पर किसी ने बहुत तेजी से कोई लकीर खींच दी है, ऐसी लकीर जिस के आदि-अंत का पता नहीं चलता और पाठक कहानी में उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक जाता है, तथा बार-बार कहानियों को पढ़ता रहता है। प्रायः हमेशा पाठक कहानी के अंत पर रोक कर एक बार पुनः उसी कहानी की समस्या का कुछ और समाधान ढूँढ़ने लगता है क्योंकि इन कहानियों से हमें शंका उद्वेलन और अतृप्ति मिलती है, संतोष नहीं। वस्तुतः आधुनिक कहानी-कला की सब से बड़ी विशेषता यही है कि कहानी की पूरी समस्या वहाँ

पैदा होती है जहाँ कहानी का अंत होता है।

शैली के सामान्य पक्ष में यहाँ वर्णन और चित्रण में क्रमशः चित्रात्मकता और विश्लेषण पद्धति की सब से बड़ी विशेषता है। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण और मूर्ति प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई है वहाँ कहानियाँ रेखाचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण हो गई हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में बहुधा व्यंजना का सहारा लिया गया है। क्योंकि यहाँ शैली, व्यक्ति और उस के मनोविज्ञान को केन्द्र बना कर व्यक्त हुई हैं। अतएव सामान्य शैली के मुख्य पक्ष वर्णन और चित्रण में सूक्ष्मता और व्यंजना आई है। जैनेन्द्र की भाषा-शैली इन के शिल्प विधान के प्रमुख विशेषताओं में से है। इस में इतनी स्वाभाविकता और प्रवाह है कि कहानियाँ अपनी संवेदना के साथ पाठक के अंतस्थल को स्पष्ट करती चलती हैं। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा गद्य शिल्पी की हुई है। जहाँ मानसिक ऊहापोह दिखाया गया है वहाँ की भाषा चिन्तक की भाषा हुई है और जहाँ कहीं किसी चित्र-मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी है, वहाँ की भाषा कवित्वपूर्ण भावुक और एक चतुर शिल्पी की भाषा है। अतएव जैनेन्द्र की भाषा में भावोचित शब्द निर्माण, स्वाभाविक शब्द चयन और शब्द विस्तार इतना है कि उन्हों ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है। भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्ति को इन्हों ने इतना बल दिया है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की भाषा उन की सदैव कृतज्ञ रहेगी।

लक्ष्य और अनुभूति

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी कहानियों की सृष्टि में लक्ष्य और अनुभूति के समान प्रेरणा है, लेकिन फिर भी कुछ कहानियाँ तो विशुद्ध अनुभूति की प्रेरणा से लिखी गई हैं अर्थात् वे कहानियाँ कहानीकार के अनुभूति का अभिव्यक्ति हैं। जो कहानियाँ जीवन के एक लम्बे भाग अथवा जीवन के कुछ घंटों के प्रकाश में मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं वे निश्चित रूप से एक लक्ष्य को लेकर लिखी गई हैं उन में अनुभूति का सहारा, उन के विकास में लिया गया है जैसे, मास्टर जी, कहानी एक व्यक्ति विशेष के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य से लिखी गई हैं और उस में सब से अधिक एक जीवन-दर्शन और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'एक रात' में यह लक्ष्य और भी स्पष्ट हो गया है और इस के विकास में अनुभूति की भी इतनी गहरी प्रेरणा है कि इस के चरित्र हमारी संवेदनशीलता में सदा के लिए घर कर लेते

हैं। जो कहानियाँ जीवन की द्रुत झाँकी अथवा रेखाचित्र उपस्थित करती हैं उन में केवल अनुभूति की प्रेरणा है। क्या हो : पाजेब, पत्नी, ग्रामोफोन का रिकॉड आदि कहानियाँ अनुभूतिपूर्ण हैं। इन के निर्माण में मानव संवेदनशीलता मनोभावों के आरोह और अवरोह की गति मिलाई गई है। इन कहानियों की चरम सीमा पर जो कहीं-कहीं आदर्शवाद का पुट दिया गया है और उस पर जीवन-दर्शन का आलोक बिखेरा गया है, वह वस्तुतः जैनेन्द्र के सांस्कृतिक व्यक्तित्व की छाया है। जो कहानियाँ व्यक्ति विश्लेषण अथवा रेखाचित्र के रूप में लिखी गई हैं जैसे मित्र विद्याधर, एक टाइप, त्रिवेणी, जाह्नवी, एक कैदी, उर्वशी, प्रतिमा, आदि की भी सृष्टि की प्रेरणा में अनुभूति और भाव अध्ययन अधिक है। इन में जीवन-दर्शन की झाँकी बार-बार कहानीकार के चिन्तक और दार्शनिक व्यक्तित्व की झाँकी है जो अवचेतन रूप से इन कहानियों में उतर आई हैं।

जैनेन्द्र मानव जीवन-दर्शन के सब से बड़े कहानीकार हैं। मनोविज्ञान के धरातल के उन्हों ने मुख्यतः व्यक्ति का जो अध्ययन दिया है वह अनुपम है। कहानी शिल्पविधि द्वारा इन्हों ने जीवन के व्यापक रूप और दार्शनिक पक्ष और व्यक्ति के उन मूल नैतिक प्रश्नों को लिया है जो हमारी संस्कृति और उस के विकास का मेरुदंड हैं।

सियाराम शरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्त की विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ केवल तीन हैं। मानुषी, त्याग, तथा कोटर और कुटीर मानुषी की संवेदना शंकर पार्वती तथा धरती के मानव के प्रतीक मनोहर और उस की पत्नी श्यामा को लेकर निर्मित हुई है। इस में भारतीय आदर्शवाद और परम्परा की प्रतिष्ठा हुई है, त्याग, गांधीवाद दर्शन की संवेदना लेकर इस से एक बच्चे का त्याग दिखाया गया है। कोटर और कुटीर, में चारित्रिक महानता और निष्ठा की प्रेरणा से लिखी हुई कहानी है। वस्तुतः यह कहानी सूत्र और भाष्य के ढंग से लिखी गई है। कोटर और कुटीर में दो प्रतीकात्मक चरित्रों की अवतारणा करके चारित्रिक निष्ठा और आदर्श की प्रतिष्ठापना हुई है। कोटर, का चातक अपने पिता से लड़कर पृथ्वी का पानी पीने के लिए निकल पड़ा। उड़ते-उड़ते वह एक गरीब किसान की कुटी पर बैठता है वहाँ उसे चारित्रिक महानता की दीक्षा मिलती है और पुनः अपने कुटीर पर लौट जाता है। ये तीनों कहानियाँ

अपने संपूर्ण शिल्पविधान में कथा, दृष्टान्त और वार्ता शैली के अंतर्गत आती हैं। दार्शनिक प्रेरणा भी इन में पूर्णतः स्पष्ट है।

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई। कहानियाँ जैसे, पथ में से, काकी मुंशी जी, झूठ सच, आदि में साधारण ढंग का मनोविश्लेषण है। इन्हों ने कुछ निबंधों को भी कहानी शैली में लिखने का प्रयत्न किया है। जैसे, साहित्य और राजनीति, साहित्य में क्लिष्टता आदि, लेकिन ये कहानियाँ अपने शिल्पविधान में बिल्कुल साधारण हैं। गुप्त जी मुख्यतः कवि हैं, इन की विचार धारा में वैष्णव मत की महानता, और गांधीवाद दर्शन दोनों का सुन्दर सामंजस्य है।

'अज्ञेय'

अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। उन की कहानी-कला का मूल धरातल व्यक्ति चरित्र है। इस का सब से बड़ा लेकिन सहज कारण यह है कि अज्ञेय की दृष्टि मूलतः कवि की दृष्टि है, समाज सुधारक की दृष्टि नहीं, जो सामाजिक अव्यवस्थाओं के इतिवृत्त उपस्थित करता चलता है। इन्होंने केवल व्यक्तिगत पहलू को मुख्य केन्द्र बना कर अपनी सब तरह की कहानियाँ लिखी हैं। अध्ययन की दृष्टि से इन कहानियों को हम स्पष्टतः चार भागों में रख सकते हैं—प्रथम सोद्देश्य सामाजिक आलोचना संबंधी, द्वितीय, राजनीतिक बंदी जीवन संबंधी तृतीय चरित्र-विश्लेषण संबंधी और चतुर्थ प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के अध्ययन संबंधी। वस्तुतः इन चारों धरातल की कहानियाँ अपने दृष्टिकोण और देश-काल-परिस्थिति में इतनी विस्तृत, व्यापक और गंभीर हैं कि मानववाद अपने अधिक से अधिक रूपों में इन का उपजीव्य बन गया है। इस के लिए अज्ञेय की कहानी-कला में असाधारण विधान, कौशल और शिल्प विधि का परिचय मिलता है। चरित्र-विधान और शैली-निर्माण में इन की मौलिकता और हस्तलाघवता अपूर्व है।

कथानक

कहानियों के उक्त चार धरातलों के फलस्वरूप कथानक-विधान भी चार रूपों में व्यक्त हुए हैं। जो कहानियाँ सोद्देश्य सामाजिक, नैतिक आलोचना की दृष्टि से लिखी गई हैं उन में कथानक का रूप सुनिश्चित, स्पष्ट इतिवृत्त के साथ है जैसे, रोज, सभ्यता का एक दिन, परम्परा एक कहानी, जीवन शक्ति, शरणदाता, बदला, लेटर बक्स, वसंत, और कवि प्रिया आदि कहानियों के कथानक

में नहीं है। लेकिन कहानी के भाव पक्ष की दिशा में कथा विधान की इतनी जटिलता, इतने प्रयोग, बहुत श्रेयस्कर नहीं। इससे कहीं-कहीं कहानी की आत्मा में अस्पष्टता आ गई है।

चरित्र

• अज्ञेय की कहानी कला की आत्मा व्यक्ति चरित्र के केन्द्र-बिन्दु से निर्मित हुई है अर्थात् चरित्र-अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण, चरित्र-मनोविज्ञान इन की कला की वे आधार शिलाएं हैं, जिन पर कहानीकार अज्ञेय के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। उन्हों ने अपनी कहानियों में जितने भी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक समस्याओं प्रश्नों को लिया है, उन सब का अध्ययन उन्हों ने व्यक्तिगत पहलुओं से किया है। अज्ञेय का यह व्यक्तिगत पहलू चाहे कवि के दृष्टिकोण से अनुशासित हो, चाहे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से, लेकिन यह तो निश्चित है कि वे सर्वत्र अपने व्यक्ति के चरित्र के अध्ययन में एक सफल मनोवैज्ञानिक रहे हैं, जिस पर उन के आदर्शवाद तथा मानववाद का गहरा और अप्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्यापक दृष्टि से चरित्र-अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई है और इन के निर्माण में प्रायः तीन प्रकार की प्रेरणाएं कार्य करती हैं।

(क) अहं रूप (ख) विद्रोहात्मक (ग) विश्लेषणात्मक रूप

वस्तुतः यहीं तीनों प्रेरणाएं चरित्र-निर्माण, चरित्र-विश्लेषण तथा व्यक्तित्व प्रतिष्ठापना में समान रूप से कार्य करती हैं अर्थात् एक तरह से अज्ञेय का प्रत्येक चरित्र व्यक्तिवादी है। उस में किसी न किसी पक्ष से विद्रोहात्मक प्रेरणा कार्य कर रही है और चरित्रों के विकास उन के अहं रूप ही के माध्यम से किया गया है। लेकिन फिर भी चरित्र की संपूर्ण आधार-शिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।

अहं रूप

• व्यक्ति चरित्र को ही कहानी-कला का मूलाधार बनाने के कारण अज्ञेय के चरित्र मुख्यतः व्यक्तिवादी हो गए हैं। यह व्यक्तिवादी कई रूपों में उन के चरित्रों में व्यक्त है। प्रायः चरित्र सामान्य न होकर विशिष्ट हो गये हैं। पात्रों में बाह्य विभिन्नता होते हुए भी प्रायः सभी चरित्र अंतर्मुखी हैं। इस का सब से बड़ा कारण यह है कि अज्ञेय के चरित्रों का विकास उन के अहं रूप "मैं" में ही दिखाया गया है अर्थात् अज्ञेय का "मैं" उन के चरित्रों का प्रतिनिधि रूप

है और समूची कहानी की शिल्प-विधि का सूत्रधार यही है। इसी के चिन्तन, मनन, और स्मृतियों से एक ओर 'मैं' का विकास व्यक्त होता है, दूसरी ओर अन्य चरित्र भी इसी के प्रकाश में आते हैं।

इस तरह अज्ञेय के चरित्र का यह अहं रूप कहीं संकीर्ण अथवा उथला नहीं है। यह इतना उदात्त और समुन्नत है कि वह अपने में सर्वदा मानववाद को समेट कर चलता है। इन की कहानियों में इन का व्यक्तिवाद ही मानववाद का प्रतीक है। इसलिए जो आलोचक अज्ञेय को चरित्रों पर यह दोषारोपण करते हैं कि अज्ञेय अपने से बाहर कुछ नहीं देखते, वह सर्वथा अवैज्ञानिक है। वस्तुतः चरित्र का यह रूप मुख्यतः तीन तरह से उन की कला में व्यक्त हुआ है। प्रथम चिन्तक के रूप में, जैसे, छाया, का वार्डर, जो अपने अहं रूप से कहानी को आरम्भ करता है। अरुण और सुषमा के अलग-अलग अहं रूप इस कहानी की आत्मा ये हैं। कोठरी की बात में, कोठरी के प्रतीक से अलग-अलग सुशील और दिनमणि के चरित्र उन के अहं रूप से व्यक्त हुए हैं। द्वितीय रूप में चरित्र का यह अहं रूप स्वतः नायक के रूप में अभिव्यक्त होता है। सांप का मैं इस का सुन्दर उदाहरण है। इस मैं का स्वरूप इतना शक्तिशाली और सुदृढ़ है कि इस की सीमा में कहानी का सब कुछ आ गया है, वह, जंगल, और सांप, सब, तृतीय रूप में यह अहं भाव पहले अन्य पुरुष के रूप में आता है, वर्णित होता है, इस का परिचय दिया जाता है, लेकिन फिर वह अन्य पुरुष अपने अहं रूप में इतना व्यापक हो जाता है कि उस के माध्यम से अन्यान्य चरित्रों का आविर्भाव होता चलता है। द्रोही इस का उदाहरण है। इस में द्रोही चरित्र का अविर्भाव और विकास यों होता है।

१ अन्य पुरुष में, वह बुद्धिमान था या मूर्ख, दुर्बल या हठी, साहसी था या कायर, हम नहीं कह सकते। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह द्रोही था, सिर से पैर तक द्रोही।[1]

२ अहं रूप में, आँखें बन्द करके सोचता हूँ भविष्य के क्रोड में क्या है, जो मुझसे छिपा हुआ है? बहुत सोचता हूँ, पर एक प्रशस्त अंधकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता।[2]

---

[1] कोठरी की बात, द्रोही पृ० सं० ३१

[2] कोठरी की बात, द्रोही पृ० ३२

३ व्यापक रूप में : अर्थात् जब इस के माध्यम से अन्य चरित्रों अवतारणा होती है।

एक स्मृति आती है एक व्यक्ति कटघरे में खड़ा है।

कमला : कमला : तुम्हें कैसे पाऊँगा।[1]

मैंने पूछा विमल : तुम तो बहुत कष्ट में हो।

वह बोला, आपका परिचय क्या है? मैं तो आप को जानता ही नहीं।[2]

देखो रघुनाथ व्यर्थ की चिन्ता में क्यों पड़े हो? ऐसे व्याख्यान करने लगोगे तो पागल हो जाओगे। मन तुम्हारा सच्चा मित्र है, उसकी प्रेरणा का तिरस्कार मत करो।[3]

अज्ञेय के चरित्र-निर्माण और विधान में इस अहं रूप की सब से बड़ी प्रेरणा है। इस का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने अनेक शिल्पगत प्रयोगों में आश्चर्य जनकसफलता मिली है।

विद्रोह

विद्रोह के धरातल से आविर्भूत चरित्र, सामाजिक, राजनीतिक, तथा व्यक्तिगत प्रश्नों और मूल्यों को लेकर आए हैं। कुछ कहानियाँ ऐसे भी चरित्रों को लेकर लिखी गई हैं जिन में विद्रोह केवल एक पहलू को लेकर व्यक्त हुआ है, जैसे, रोज़ की मालती, दुख और तितलियाँ का शेखर, सूक्ति और भाषा की जसुमती, परम्परा—एक कहानी का[4] दरबान और सभ्यता का एक दिन का नरेन्द्र आदि सामाजिक विद्रोह की भावना के चरित्र हैं। राजनीतिक विद्रोह की प्रेरणा में आने वाले अज्ञेय के चरित्र सब से अधिक हैं, और ये चरित्र अज्ञेय के महान चरित्र हैं, जैसे, पगोड़ा वृक्ष की सुखदा और युवक, छाया का अरुण और सुषमा, कोठरी की बात के सुशील और दिनमणि और एक घंटे का प्रभाकर और रजनी आदि। व्यक्तिगत प्रश्नों और मूल्यों में विद्रोह की गति

---

[1] कोठरी की बात, द्रोही पृ० ३३

[2] कोठरी की बात, द्रोही पृ० ४०

[3] कोठरी की बात, द्रोही पृ० ४८

[4] द्रोह मेरे हृदय में है, मेरी अस्थियों में है, मेरी नस-नस में, है मैं द्रोही हूँ। कोठरी की बात, द्रोही, पृ० ५७

लिए हुए-से चरित्र आते हैं जो अपनी अनन्य करुणा और शोषण को अपने में छिपाए उस भावी विद्रोह के प्रतीक-से लगते हैं, जिन की विद्रोहात्मक आवाज भविष्य में सब से ऊँची उठेगी.। इस के उदाहरण में एकाकी तारा का लूनी, हर सिंगार का गोविन्द, शान्ति हँसी थी का जानकी दास और शान्ति, जीवन-शक्ति की मातरा, और दामू आदि, उत्कृष्ट चरित्र हैं।

वस्तुतः अज्ञेय की परम सफल कहानियाँ वे हैं, जिन में कुछ ऐसे चरित्रों की अवतारणा हुई है, जो सामुहिक रूप से राजनीतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोही हैं, जैसे, शत्रु का ज्ञान, नम्बर दस का रतन, द्रोही का मैं और कमला, कैसेन्डा की अभिशाप की कर्मेन और मेरिया, ये सब चरित्र वस्तुतः विद्रोह के प्रतीक हैं। इन के व्यक्तित्व का निर्माण की करुणा, शोषण और मूक बलिदान के तत्वों को लेकर हुआ है। उक्त तथ्य स्त्री-पुरुष दोनों चरित्रों में समान रूप से स्पष्ट हैं, दोनों शोषित हैं और विद्रोही भी। दोनों कर्म प्रधान हैं। जीवन को सर्वदा हथेलियों पर लिए हुए मिलते हैं। ये सदैव कठिनाइयों से आकृष्ट होते हैं, सरलता से नहीं। इन के विद्रोही चरित्र अपनी प्रकृति की साक्षी देता है—"मैं यदि विद्रोही हूँ तो इसलिए कि मेरी प्रकृति यह माँगती है। मेरी जीवन-शक्ति की वही निष्पत्ति है'।

विश्लेषण

[1] विश्लेषण का आग्रह अज्ञेय के चरित्रों में सब से अधिक है। इसी धरातल से समस्त चरित्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। इन के कर्म प्रेरणाओं, मनःस्थितियों, स्वभावों का सूक्ष्म आकलन और विश्लेषण हुआ है। यह विश्लेषण कई भूमिकाओं से हुआ है; यथा, मनोविश्लेषण, आत्म-विश्लेषण तथा संकेतों और सूक्ष्म हाव-भावों के सहारे मनुष्य की कर्म प्रेरणाओं और मनःस्थितियों का अध्ययन.।

मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण में भी अज्ञेय ने दो विधियों का सहारा लिया है। प्रथम सीधे चरित्र-विश्लेषण, द्वितीय मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविश्लेषण।

पहले के उदाहरण में—"चिन्तन से उसे पीड़ा होती थी, किन्तु पीड़ा

---

[1] कोठरी की बात, पृष्ठ १३२

उसे चिन्तन का आधार देती थी और इसलिए वह पागल नहीं हुआ, इसलिए जब तूफ़ान आकर उसे अशान्त करके चला जाता था, तब वह उन्मद दानव की भाँति उस छोटी-सी कोठरी में टहलने लगता था। एक सिरे से दूसरे सिरे तक, एक, दो, तीन, चार, पाँच कदम फिर वापस एक, दो, तीन, चार, पाँच फिर लौट कर एक, दो, तीन और इसी तरह वह सारी रात बिता था, तब उसकी टाँगे थक जातीं, वह एकाएक रुक कर भूमि पर बैठ जाता और चुपचाप मन ही मन रोने या कविता करने लगता। उसका एक शब्द भी बाहर नहीं निकलता एक छाया भी उस के मुख पर व्यक्त नहीं होती। वह मानो किसी अदृश्य समुद्र के भाटे की भाँति धीरे-धीरे उतर जाती और निश्चल हो जाती उस समय तक जब कि दूसरा तूफ़ान पुनः उसे न उठाये[1]।"

दूसरे के उदाहरण में—'नालायक वह!'

चौंक कर रतन उठ बैठा, क्या उस ने कुछ देखा, या कुछ याद आ गया? कोड़े की मार से आहत-सा वह उठ बैठा। नालायक वह। अगर मैं नही नालायक, जिस ने एक तो चोरी की, दूसरे अपनी बहन को बुलाया और तीसरे हाथ आई हुई दौलत फेंक दी? चोर: दस नम्बर का बदमाश: और बेवकूफ़[2]?

आत्म विश्लेषण

अज्ञेय के चरित्रों में हम इस प्रवृत्ति की प्रेरणा सब से अधिक पाते हैं। उन की कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ तो चरित्र के आत्म विश्लेषण को ही लेकर निर्मित हुई हैं, जैसे, द्रोही, साँप और सिगनेलर। आत्म विश्लेषण की स्थिति में चरित्र अपनी स्मृतियों, चिन्तनों आत्म कथाओं और अंतर्कथाओं द्वारा इस को चरितार्थ करता है। द्रोही का नामक समूची कहानी में आत्म विश्लेषण की समस्त संभावनाओं, स्थितियों और संवेदनाओं को उपस्थित करता है और कहानी के अंत में उस के संपूर्ण आत्म विश्लेषण की निष्पत्ति होती है।

"मैं द्रोही हूँ, रहूँगा, द्रोह मेरे हृदय में है, मेरी अस्थियों में है, मेरी नस-नस में है, मैं द्रोही हूँ, पहली बार मैंने सरकार से द्रोह किया था किसी की मुख श्री से आकृष्ट होकर, दूसरी बार मैंने देश से द्रोह किया किसी के शरीर की लालसा से। तीसरी बार मैंने धर्म से द्रोह किया। किसी के लिए ईर्ष्या

[1] कोठरी की बात, पृ० १२४

[2] परम्परा नम्बर दस, पृ० १०६

करके। फिर इसकी नीचता का परिणाम जब मैं जान गया तब मैं प्रायश्चित्त करने लग गया। पर फल क्या हुआ, प्रायश्चित्त भी नहीं किया और अपनी प्रेमात्मा के प्रति भी छोटा बनकर लौट आया[1]।"

इंगितों तथा गहन हाव-भावों के सहारे मनुष्य की मर्म-प्रेरणाओं और मनःस्थिति के अध्ययन में, 'मनुष्य का भाग्य' कहानी परम उल्लेखनीय है। यह कहानी केवल इस मनोदशा से प्रारम्भ होती है कि एक औरत का पैर भूल के कारण ही सीले पैरों की दूब पर पड़ता है और वह विचलित हो जाती है और वह गिरने से बचती है। ऐसा क्यों है, किन मर्म-प्रेरणाओं से उस की यह मनःस्थिति है इन्हीं के अध्ययन में पूरी कहानी निर्मित हुई है। 'पुलिस की सीटी' में भी कहानी के नायक नरेन्द्र को सीटी की आवाज सुनते ही उसे जान पड़ा मानो अभी संसार में प्रविष्ट हो जायगा, ऐसी भावना स्फुट हो जायगी उस के सहारे के लिए हाथ आगे बढ़ाया। हाथ कुछ थाम नहीं सका। मुट्ठी भर उड़ती हुई हवा को अंगुलियों में से निकल जाते देखकर स्तब्ध ही रह गया, तब नरेन्द्र ने समझ लिया कि वह गिरेगा, गिरकर रहेगा उसने आँखें बंद कर लीं।[2] ऐसा क्यों हुआ? एक साधारण लड़के के सीटी की आवाज सुन कर सत्य की मनोदशा क्यों बिगड़ गई? क्योंकि उस के अन्तर्मन जगत् में एक बहुत बड़ा 'आपूरेशन' था जिसे हम मनोवैज्ञानिक शब्दावली में दंड विक्षिप्तता (Prosecution Mania) कह सकते हैं।

चरित्र की दिशा में इन जितने भी विधान प्रयुक्त हुए हैं उन सब का मूल आधार मनोविज्ञान ही है। यह मनोविज्ञान चाहे आत्मविश्लेषण के रूप में स्थापित हुआ है चाहे विद्रोह के रूप में। चरित्र की मनोवैज्ञानिक अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठापना ये तीनों भूमिकाएँ बहुत ऊँची और महत्वपूर्ण हैं। लेकिन चरित्र की दिशा में इतनी ऊँची भूमिका के कारण कहानी पर इस के दो प्रभाव पड़े हैं। प्रायः चरित्र असाधारण और विशिष्ट हुए हैं, तथा इन को समझने या साधारणीकरण के लिये विद्वान और जागरूक पाठक की अपेक्षा है, साधारण कहानी पाठक की नहीं। लेकिन दूसरी ओर इन चरित्रों की ही महान विशेषताएँ भी हैं ये चरित्र चाहे राजनीतिक हों चाहे विद्रोही चाहे किसी देश प्रांत संस्कृति और वर्ग के हों ये सर्वथा मानवीय संबंधों, प्रश्नों

---

[1] कोठरी की बात, झाँकी, पृ० ५७

[2] पुलिस की सीटी, परम्परा, पृष्ठ १२६।

और आकांक्षाओं के चित्रों से अभिभूत हैं। इन में मानवीय निष्ठा और संस्कार अनन्य है।

शैली

कहानी-निर्माण में शैली की विविधता और इस में विभिन्न प्रयोग तथा प्रकार, अज्ञेय की शिल्पविधि की अन्य सब से बड़ी विशेषता है इन में शैलीगत इतनी विविधता क्यों आई, इस का एक मात्र कारण यह है कि अलग-अलग चरित्रों, व्यक्तियों को अध्ययन के लिये उन्हें उन के अनुरूप कहानी-निर्माण की शैलियाँ ढूँढ़नी पड़ी जिन्हें हम छः भागों में रख सकते हैं।

१. ऐतिहासिक शैली २. आत्म कथात्मक शैली
३. नाटकीय शैली ४. पत्रात्मक शैली
५. प्रतीकात्मक शैली ६. मिश्रित शैली

उक्त समस्त शैलियों में विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अज्ञेय की कला की प्रमुख विशेषता है। वस्तुतः इस के पीछे व्यक्ति के चरित्र-विश्लेषण की प्रेरणा सब से अधिक रूप में कार्य कर रही है।

ऐतिहासिक शैली

ऐतिहासिक शैली की प्रतिनिधि कहानियों में कैसेन्डा का अभिशाप, आदम की डायरी, पगोडा वृक्ष, शरणदाता, हीली बोन् की बत्तखें, आदि कहानियाँ मुख्य हैं। लेकिन यहाँ अज्ञेय ने ऐतिहासिक शैली में भी कुछ नये प्रयोग किये हैं। अन्य पुरुष में वर्णनात्मकता प्रायः विश्लेषण के आधार से अभिव्यक्त हुई है। अन्य पुरुष में उत्तम पुरुष की स्थापना और अन्य पुरुष में स्मृतियों, चिन्तनों द्वारा कहानी में विकास के विधान प्रस्तुत हुए हैं। जैसे, इन्दु की बेटी, वे दूसरे, जय दोल, और पठार का धीरज। वस्तुतः ऐतिहासिक शैली में अज्ञेय का यह तीसरा प्रयोग अपूर्व है। इस की सफलता ने ऐतिहासिक शैली में आश्चर्यजनक शक्ति और विकास दिया है।

आत्मकथात्मक शैली

आत्म कथात्मक शैली अज्ञेय की सर्वप्रिय शैली है क्योंकि इस के माध्यम से अर्थात् 'मैं' के सहारे चरित्र-विश्लेषण में अनन्य सुविधा प्राप्त होती है। अमर वल्लरी, विपथगा, लेटर बक्स, रमन्ते तत्र देवता, साँप, मेजर चौधरी की वापसी आदि कहानियाँ इस शैली की उत्कृष्ट कहानियाँ है। कहानी का निर्माण जहाँ 'मैं', के माध्यम से अबाध गति से होता है वहाँ मैं से संबंधित अनेक अनुभूतियां, स्मृतियों से भी संबंधित अनेक चित्रों के विश्लेषण प्रस्तुत

होते चलते हैं। इस शैली के अंतर्गत संपूर्ण कहानी का विकास घटनाओं और द्वन्द्वों के सहारे होता है यही कारण है कि इस शैली में स्वगत भाषण के तत्व बहुत आए हैं—विशेषकर उन स्थानों पर जहाँ चरित्र के मानसिक द्वन्द्व और ऊहापोह की अभिव्यक्ति अधिक हुई है।

नाटकीय शैली

'जयदोल' में कविप्रिया, और वसंत, दो कहानियाँ इस शैली के अंतर्गत उल्लेखनीय हैं। इन में कविप्रिया तो विशुद्ध एकांकी नाटक शिल्पविधि में लिखी गयी है अतः इसे कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। वसंत में एक नये शिल्पगत प्रयोग के दर्शन होते हैं। यह शैली एकांकी नाटक और कहानी के बीच से चलती है इस में दोनों के तत्वों का सुन्दरतम तादात्म्य हुआ है और उस से एक नई कला-वस्तु की अवतारणा हुई है।

पत्रात्मक शैली

केवल सिगनेलर, इस शैली की प्रतिनिधि कहानी है। इस शैली में भी कुछ विशेषता है। पत्र केवल 'मैं' ने अपने मित्र विमल को लिखा है और 'मैं' क्रमशः पांच पत्रों के समन्वय से सिगनेलर, कहानी की अभिव्यक्ति हुई है। इस के विकास में कहानीकार ने किसी और अन्य के एक भी पत्र का सहारा नहीं लिया है। अंतिम दो पत्र डायरी के पृष्ठों के रूप में हैं क्योंकि उस स्थल पर कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है तथा कहानी अपने चरम परिणति पर पहुँचती है। कहानी में अबाध गति उत्पन्न करने के लिए कहानीकार ने एक ही पत्र को दो-तीन भागों और तिथियों में बाँट कर लिखा है।

प्रतीकात्मक शैली

प्रतीकात्मक शैली अज्ञेय की कहानी कला का एक ललित पक्ष है। जहाँ भी इन्हें मानसिक संघर्षों के अंतस्तल में जाकर उस का अध्ययन प्रस्तुत करना पड़ा है वहाँ इन्होंने प्रायः इसी शैली को अपना साधन बनाया है। अतएव इस शैली से निर्मित इन की कुछ कहानियाँ जैसे चिड़िया घर, पुरुष का भाग्य, कोठरी की बात, पठार का धीरज और साँप आदि शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। कहानी के भाव-पक्ष से पूर्ण स्वाभाविकता और वैज्ञानिकता स्थापित करने के प्रयास में यहाँ प्रतीकों में पूर्ण विविधता और आकर्षण उपस्थित हुआ है। चिड़िया घर के प्रतीक विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु हैं। पुरुष के भाग्य में धूल पर दो गीले पैरों की छाप, अनन्य सुन्दर प्रतीक है। इसी तरह कोठरी की

बात, पठार का धीरज और सांप में क्रमशः कोठरी, पठार और सांप, इस के कलात्मक प्रतीक हैं। इन सब प्रतीकों और कहानी के विभिन्न मानसिक संघर्षों का पूर्ण सफलता से तादात्म्य उपस्थित हुआ है।

मिश्रित शैली

शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ उच्चकोटि की हैं वे इस शैली में निर्मित हुई हैं अर्थात् उन के विकास और अंत में ऐतिहासिक आत्म कथात्मक संवादात्मक, पत्रात्मक और प्रतीकात्मक आदि सभी शैलियों का इन्हों ने सामूहिक सहारा लिया है और इस मिश्रित शैली से कहानी में उच्चकोटि का चरित्र-विश्लेषण, कर्म-प्रेरणाओं की पूर्ण व्याख्या तथा शिल्पविधान में आश्चर्यजनक हस्तलाघवता का परिचय दिया है। छाया, द्रोही, और नम्बर दस इस शैली की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। छाया में वार्डन द्वारा आत्मकथन, वर्णन, अरुण और वार्डन द्वारा संवाद, सुषमा और अशोक द्वारा पत्र व्यवहार, वार्डन और अशोक के अलग-अलग आत्म चिन्तन, विभिन्न प्रतीकों द्वारा अशोक और सुषुमा के मानसिक संघर्षों के चित्र आदि सब शैलीगत उपादानों से इस का कहानी का निर्माण हुआ है। ठीक यही शैलीगत स्थिति द्रोही और नम्बर दस की भी है।

विशुद्ध रचना शैली की दृष्टि से अज्ञेय की कहानियों में रचना विधान विश्लेषण, कथोपकथन और घटना-प्रवाह के सहारे से होता है। व्यापक दृष्टि से इन की कहानियों के रचना-विधान में निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते हैं।

१. आरम्भ : पात्र-परिचय और समस्या का संकेत

२. विकास :

अ. प्रथम मुख्य घटना : जिस में केन्द्रीय भाव की सूचना होती है।

ब. द्वितीय मुख्य घटना : कौतूहल या विस्मय के तत्व जिस के सहारे स्पष्टता आती है।

स. तृतीय मुख्य घटना : जिस से कहानी चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है और कहानी अपने भाव-पक्ष में पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है।

३. निष्पत्ति या चरम सीमा : संपूर्ण तथा एकांत प्रभाव चरितार्थ हो जाता है।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष अर्थात् चित्रण, वर्णन, कथोपकथन भाषा सौष्ठव और शब्द-संयम आदि में अज्ञेय का हस्तलाघव और लेखन शिल्प दोनों

अपनी पूर्ण सफलता पर हैं। चित्रण और वर्णन दोनों विश्लेषण के धरातल से चरितार्थ हुए हैं। कथोपकथन प्रायः छोटे सुगठित और व्यंजनात्मक हुए हैं। अज्ञेय की गद्य-शैली में सर्वत्र आश्चर्यजनक संयम, गंभीरता, चयन, और परिष्कार (Finish) मिलता है यही कारण है कि इन की भाषा अमूर्त से अमूर्त मनोद्‌गारों, घात-प्रतिघातों और मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति में सर्वत्र सफल रही है।

लक्ष्य और अनुभूति

अज्ञेय की कहानियों के निर्माण में लक्ष्य और अनुभूति की प्रेरणा समान रूप से है। लेकिन अनुभूति की प्रेरणा जहाँ इन की कहानियों में प्रत्यक्ष और अपूर्व वेग से व्यंजित होती है वहाँ लक्ष्य अपने अप्रत्यक्ष रूप में ध्वनित होता है। जो कहानियाँ राजनीति, विद्रोह, बन्दी जीवन, तथा अज्ञेय के विस्तृत देशाटन और युद्ध कालीन अनुभवों के धरातल से निर्मित हुई हैं वे मूलतः अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई हैं। वस्तुतः कहानी के निर्माण में अनुभूति की प्रेरणा को अज्ञेय ने सब से ऊँचा स्थान दिया है।[1] जो कहानियाँ सामाजिक तथा नैतिक जीवन के वैषम्य समस्याओं और संघर्षों के धरातल से लिखी गई हैं उन में एक निश्चित लक्ष्य की प्रेरणा ध्वनित होती है अर्थात् ऐसी कहानियों में लक्ष्य की भावना प्रायः कटु व्यंग, चुनौती, ग्लानि और तिरष्कृत अनुभवों के माध्यम से व्यंजित की गयी है। दृष्टान्तों के रूप में नहीं कि सत्यं वद, आदर्श बन, चरित्र निष्ठ बन। कहानियाँ अपने अधिकांश रूप में अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई हैं। यही कारण है कि इन कहानियों में एकांत प्रभाव डालने की क्षमता अपूर्व है।

संक्रान्ति युग में कहानीकार अज्ञेय का मूल्य सब से अधिक है। इन में रचना-कौशल की प्रतिभा नये-नये प्रयोगों का सफल आग्रह इतना है कि इन की शिल्पविधि में आश्चर्यजनक विविधता आ गई है। लेकिन कला-शिल्पी अज्ञेय की उत्कृष्टता शिल्पविधि की ओर है, इस की अपेक्षा इन का भाव-पक्ष कुछ निर्बल पड़ता है। इस में न तो शिल्पविधान की-सी विविधता है न कथा सौष्ठव की भाँति भावगत मौलिकता। लेकिन इस के स्थान पर अज्ञेय ने अपनी कहानी

---

[1] मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपनी अनुभूति ही लिखे जो अनुभूति नहीं है कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा के वशीभूत हो कर उसे लिखना आत्मशोध हो सकता है साहित्यिक सिद्धि नहीं—अज्ञेय, शरणार्थी : भूमिका, पृष्ठ २

कला में देश-काल और परिस्थिति का चित्रण इतने व्यापक और विस्तृत ढंग से किया है कि इन का स्थान सर्वोपरि सिद्ध होता है।

इलाचन्द्र जोशी

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के दूसरे प्रतिनिधि कहानीकार इलाचन्द्र जोशी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से संक्रान्ति युग के समस्त कहानीकारों में जोशी जी प्रथम कहानीकार हैं जिन्हों ने इस प्रवृत्ति को लेकर कहानी लिखना प्रारम्भ किया। इन की सर्वप्रथम कहानी सजनवा[1], उस का प्रमाण है। इन की कहानी का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है और इस के दो प्रमुख पक्ष हैं। मध्यम वर्ग अथवा ह्रासोन्मुख, जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना, दूसरी ओर व्यक्ति के अहंभाव की एकांतिकता पर निर्भय प्रहार, यही दो पक्ष इन की कहानी कला के मूलाधार हैं। अज्ञेय और जोशी के मनोवैज्ञानिक धरातलों में अंतर और विरोध स्पष्ट है। अज्ञेय जहाँ सर्वगामी, अहं रूप के माध्यम से विश्लेषण उपस्थित करते हैं वहाँ जोशी अहं रुप ही पर प्रहार करते हैं क्योंकि जोशी की धारणा है कि 'आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों-ज्यों बढ़ती चली जा रही है त्यों-त्यों उस का अहं भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अहं भाव की अस्वाभाविक मूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है तो वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप वह आत्म-विनाश के पहले अपने आस-पास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है।'[2] इस तरह जहाँ अज्ञेय की मनोवृत्ति अंतर्मुखी है वहाँ जोशी के दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत अंतर्जगत् और बहिर्जगत् का सुन्दर सामंजस्य है। इसी प्रकाश में जोशी की कहानी में शिल्पविधि का निर्माण हुआ है।

कथानक

जो कहानियाँ मध्यम वर्ग और ह्रासोन्मुख जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं, जैसे, चरणों की दासी, होली, अनाश्रित, रक्षित धन का अभिशाप, रोगी, परित्यक्ता, जारज, एकाकी, दुष्कर्मा, और पतिव्रता या पिशाची आदि कहानियों में कथानक का रूप इतिवृत्तात्मक है।

---

[1] हिन्दी गल्प माला, भाग २ अंक ८, मार्च १९२०, पृष्ठ २९९

[2] इलाचन्द्र जोशी, विवेचना, पृष्ठ १२४

इन कहानियों में कथानक का आरम्भ मध्य और अंत पूर्ण स्पष्ट और सुनिश्चित हैं। इन के निर्माण प्रायः दो ढंगों से हुए हैं। मुख्य चरित्र को लेकर उस के जीवन परिचय जीवन संबंधी विभिन्न घटनाओं और वर्णनों के साथ कथानक-निर्माण, जैसे, चरणों की दासी, होली अनाश्रित, आदि के कथानक। ऐसे कथानक प्रायः व्यक्ति को ही लेकर निर्मित हुए हैं। इस का कारण है व्यक्ति चरित्र-विश्लेषण की प्रवृत्ति और उस के जीवन के किंचित घटना चक्रों और कार्य व्यापारों के माध्यम से एक ओर व्यक्ति-जीवन और उस की सामाजिकता पर व्यंग दूसरी ओर व्यक्ति चरित्र-विश्लेषण। दूसरे प्रकार के कथानक निर्माण में कोई चरित्र अन्य व्यक्ति संबंधी उस के जीवन संबंधी कहानी को निरपेक्ष ढंग से वर्णन अथवा कथन प्रस्तुत करता है, जैसे, एकाकी, पतिव्रता या पिशाची, कापालिक, और दुष्कर्मा आदि कहानियाँ। इन में कथात्मकता और वर्णनात्मकता ही मुख्य रूप से कथानक-निर्माण के दो तत्व हैं। वस्तुतः ऐसे कथानक साधारण हैं। दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यक्ति के अहं विश्लेषण, अहं की एकांतिकता पर निर्भय प्रहार के लिए लिखी गई हैं, जैसे, 'मैं', मिस एल्किन्स, रात्रिचर, पागल की सफाई, मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ आदि में कथानक का रूप अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक है। इन में भी जो कहानियाँ विशुद्ध रूप से अहं की एकांतिकता पर प्रहार के लिए लिखी गई हैं, जैसे, मैं, और मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ इन में कथानक का निर्माण केवल भावों मनोद्वेगों के विश्लेषण के माध्यम से हुआ है। 'मैं', के कथानक में न तो कोई घटना-चक्र है न कार्य-व्यापार, बस केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर कहानी निर्मित हुई है। शेष जो कहानियाँ व्यक्ति के अहं के विश्लेषण के निमित्त लिखी गई हैं, जैसे मिस एल्किन्स, पागल की सफाई, रात्रिचर, आदि, इन में कथानक एक सूत्रात्मक ढंग से विभिन्न घटना-चक्रों, कार्य-व्यापारों से निर्मित हुआ है।

जोशी की कहानियों में कथा-विधान स्पष्ट और कथा-तत्व को लेकर निर्मित हुआ है। इन में कहीं भी प्रयोग का आग्रह नहीं है।

चरित्र

जोशी के समस्त चरित्र तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। पहले वर्ग में वे चरित्र आते हैं जो पूर्णतः असाधारण और विशिष्ट हैं, जैसे, कापालिक, रात्रिचर, प्रेतात्मा, शराबी, और एकाकी। दूसरे वर्ग के चरित्र वे हैं जो सर्व साधारण, स्वाभाविक और प्रायः मध्यम वर्ग के प्रतीक हैं, जैसे, रोगी, परित्यक्ता,

दीवाली और होली की विन्दी, मोहन और रज्जन, चरणों की दासी, दासी की कामना, रेल की रात, का महेन्द्र और अनाश्रित के द्वार का और तारा आदि। चरित्र का तीसरा वर्ग सर्वग्राही व्यक्ति को प्रतिनिधि रूप में है। यह तीसरा वर्ग अर्थात् 'मैं', जोशी के चरित्र-विधान में सब से अधिक श्लिष्ट, सुदृढ़ और सर्वग्राही है। इस के विकास मनोविश्लेषण और इस की एकांतिकता के प्रहार में जोशी पूर्ण सफल और वैज्ञानिक सिद्ध हुए हैं।

विशिष्ट और असाधारण चरित्रों की अवतारणा में विश्लेषण की अपेक्षा कौतूहल, जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक है। लेकिन इन में भी जो दो एक चरित्र एक निश्चित मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से अवतरित हुए हैं, जैसे, स्त्री, कुँवर साहब; इन में विश्लेषण के तत्व पूर्ण सफलता से स्पष्ट हो आए हैं। चरित्र के वास्तविक रूप में जोशी के दूसरे प्रकार के चरित्र सब से अधिक आकर्षक और व्यक्तित्व प्रधान हैं। यह हमारे मध्यम वर्ग के जीवन तथा हम लोगों के प्रतीक हैं। इन में एक ओर चरित्रगत स्वाभाविक निर्बलता और त्रुटियाँ हैं। दूसरी ओर इन में अपने सद्गुणों, आदर्श संस्कारों के प्रति आस्था और निष्ठा है। ऐसे चरित्रों का पूर्ण चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा जोशी ने अपनी कहानियों में की है। वस्तुतः ये चरित्र पूर्ण रूप से यथार्थवादी धरातल से अवतरित हुए हैं।

चरित्र का तीसरा प्रकार अर्थात् 'मैं', जोशी जी के चरित्र-विधान का प्रमुख अंग है। बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि उन की कहानियों का सर्व सुलभ प्रतिनिधि नायक 'मैं' ही है। लेकिन यहाँ उल्लेखनीय यह है कि मैं, के अस्तित्व और इस की एकान्तिकता को जोशी जी ने कभी प्रश्रय नहीं दिया है। इस का मनोविश्लेषण परम निर्मम ढंग से किया है। इन्हों ने चेतन और अवचेतन जगत् की अनेक गुत्थियों और कुंठाओं का उद्घाटन मानस के सूक्ष्म प्रेरक सूत्रों के माध्यम से किया है।

मनोविश्लेषण

चरित्रों का मनोविश्लेषण दो रूपों से हुआ है। प्रथम आत्म-विश्लेषण और आत्म-कथन द्वारा द्वितीय अन्य पुरुष में। पहले में चरित्र स्वयं का व्यक्तित्व प्रधान है दूसरे में कहानीकार की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति उभर आई है। वस्तुतः आत्म-विश्लेषण ही जोशी जी की शैली की प्रमुख विशेषता है अधिकांश चरित्र इसी कसौटी पर कसे गये हैं तथा उस का रूप निम्नलिखित है।

आत्म विश्लेषण

"मैं उन आदमियों में से हूँ जो सब समय केवल अपने ही अंतर की

भावनाओं के लिए रही है, और इसी तरह जिस प्रकार मात्र संसार उस से नफ़रत [illegible] भी हर परिस्थिति में उतर सकती है। × × × × में इसी प्रवृत्ति का प्रयास है अर्थात् है आधुनिक मनोवैज्ञानिक भाषा में, इंट्रोवर्ट[1] है।"

निरपेक्ष विश्लेषण

"मृणाल के हृदय में एक नया आन्दोलन मचने लगा। उसके हृदय में पर वहाँ का एक विशेष चित्र अंकित करने लगी। विवाह के समय उसने अपने पति के रूप की धूमिल झलक देखी थी, वह बिल्कुल अस्पष्ट थी, उससे उसकी आकृति के संबंध में कोई धारणा उसके मन में नहीं हो सकती थी।"[2]

जोशी जी के चरित्र [illegible] और [illegible] की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और [illegible] में आये हैं। कभी भी इन्होंने चरित्र को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अपनी कहानियों में नहीं रखा है। इस दिशा में सर्वत्र वैज्ञानिकता और स्वाभाविकता का आग्रह है।

शैली

रचना-कौशल की दृष्टि से जोशी की कहानियों में सब से कम विविधता है। इन्होंने कहानी की विविध शैलियों में लिखने, विविध प्रयोगों और शिल्प-विधानों में बाँधने का ऐसे प्रयत्न ही नहीं किया है। सब के पीछे सर्वत्र एक सहज गति है। इन की कसौटी के अनुसार कहानी में भावना और चरित्र-विश्लेषण ही कहानी की आत्मा है। वस्तुतः इसी धारणा के फल स्वरूप जोशी जी में रचनागत अथवा शैलीगत विविधता बहुत कम है। मुख्यतः दो ही रचना-शैलियों में इन की कहानियाँ लिखित हुई हैं।

आत्म कथात्मक

जितनी भी कहानियाँ अहं विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं वे समस्त कहानियाँ इसी शैली के अंतर्गत हैं। इन में आत्मकथा के अतिरिक्त और भी कई तत्त्व आए हैं जैसे स्वगत भाषण तथा संवाद। इन सब के सामूहिक प्रभाव के फल स्वरूप इस शैली में अपूर्व ऐन्द्रियता, आन्तरिकता और सूक्ष्म अध्ययन की शक्ति आ गई है। जोशी की यही शैली उन की सहज और प्रमुख शैली

[1] आत्म कथात्मक [2] ऐतिहासिक

है। इसी के माध्यम से वे व्यक्ति चरित्र का अध्ययन उस के सूक्ष्म सूत्रों का उद्‌घाटन और अहं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

ऐतिहासिक

सामाजिक, व्यक्तिपरक कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई हैं इन के रचना विधान में वर्णनात्मकता, कथोपकथन, के साथ घटना-चक्रों का क्रमिक प्रतिफलन और कार्यों का स्वाभाविक विश्लेषण यही इस के तीन पक्ष हैं। असाधारण चरित्रों सामाजिक विवरणों और आलोचनाओं की भी कहानियाँ इसी शैली में निर्मित हुई हैं, अतएव रचना शैली की दृष्टि से जोशी जी की कहानियों में निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते हैं।

१. आरम्भ : पात्र परिचय और विषय प्रवेश
२. पूर्व विकास : केन्द्रीय भाव अथवा चरित्र पर बल
३. विकास : केन्द्रीय भाव और मुख्य चरित्र का पूर्व उद्‌घाटन
४. मुख्य घटना द्वारा : भाव और चरित्र विश्लेषण का चरमोत्कर्ष
५. निष्पत्ति या अंत : पूरे अभिप्राय की निष्पत्ति।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में वर्णन, चित्रण और कथोपकथन तीनों के रूप परम स्वाभाविक हैं। इस दिशा में विश्लेषणात्मक शैली इन की मुख्य प्रेरणा है। जहाँ देश-काल-परिस्थिति का चित्रण अथवा वर्णन हुआ है वहाँ की भाषा परम संयत और सुबोध है। जहाँ व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा वैज्ञानिक और अभिव्यंजक हुई है। इस तरह जोशी की भाषा में बौद्धिकता अधिक है और इसी बौद्धिकता के फल स्वरूप जहाँ-कहीं परिस्थिति अनुसार भाषा में लयमयता और माधुर्य आना चाहिए वहाँ ये गुण इन की भाषा में नहीं आ पाते। फिर भी जोशी जी के गद्य में शब्द-संयम, शब्द-निर्माण और भाषा-सौष्ठव आदि तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

जोशी जी की जितनी कहानियाँ व्यक्तिपरक हैं उन में निश्चित रूप से जीवन के मूल्यों पर नैतिक, प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। क्योंकि ये कहानियाँ परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से एक लक्ष्य को लेकर निर्मित हुई हैं। लेकिन विशेषता इन में यह है कि ये कहानियाँ कहीं भी दृष्टान्त-सी नहीं प्रतीत होतीं। इन कहानियों में कहानीकार का दृष्टिकोण और निश्चित लक्ष्य सर्वत्र बिखरे पड़े

है। इसी के माध्यम से वे व्यक्ति चरित्र का अध्ययन उस के सूक्ष्म सूत्रों का उद्घाटन और अहं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

ऐतिहासिक

सामाजिक, व्यक्तिपरक कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई हैं इन के रचना विधान में वर्णनात्मकता, कथोपकथन, के साथ घटना-चक्रों का क्रमिक प्रतिफलन और कार्यों का स्वाभाविक विश्लेषण यही इस के तीन पक्ष हैं। असाधारण चरित्रों सामाजिक विवरणों और आलोचनाओं की भी कहानियाँ इसी शैली में निर्मित हुई हैं, अतएव रचना शैली की दृष्टि से जोशी जी की कहानियों में निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते हैं।

१. आरम्भ : पात्र परिचय और विषय प्रवेश
२. पूर्व विकास : केन्द्रीय भाव अथवा चरित्र पर बल
३. विकास : केन्द्रीय भाव और मुख्य चरित्र का पूर्व उद्घाटन
४. मुख्य घटना द्वारा : भाव और चरित्र विश्लेषण का चरमोत्कर्ष
५. निष्पत्ति या अंत : पूरे अभिप्राय की निष्पत्ति।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में वर्णन, चित्रण और कथोपकथन तीनों के रूप परम स्वाभाविक हैं। इस दिशा में विश्लेषणात्मक शैली इन की मुख्य प्रेरणा है। जहाँ देश-काल-परिस्थिति का चित्रण अथवा वर्णन हुआ है वहाँ की भाषा परम संयत और सुबोध है। जहाँ व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा वैज्ञानिक और अभिव्यंजक हुई है। इस तरह जोशी की भाषा में बौद्धिकता अधिक है और इसी बौद्धिकता के फल स्वरूप जहाँ-कहीं परिस्थिति अनुसार भाषा में लयमयता और माधुर्य आना चाहिए वहाँ ये गुण इन की भाषा में नहीं आ पाते। फिर भी जोशी जी के गद्य में शब्द-संयम, शब्द-निर्माण और भाषा-सौष्ठव आदि तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

जोशी जी की जितनी कहानियाँ व्यक्तिपरक हैं उन में निश्चित रूप से जीवन के मूल्यों पर नैतिक, प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। क्योंकि ये कहानियाँ परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से एक लक्ष्य को लेकर निर्मित हुई हैं। लेकिन विशेषता इन में यह है कि ये कहानियाँ कहीं भी दृष्टान्त-सी नहीं प्रतीत होतीं। इन कहानियों में कहानीकार का दृष्टिकोण और निश्चित लक्ष्य सर्वत्र बिखरे पड़े

पात्र [illegible] करते हैं। [illegible] शान्ति की [illegible] बन गया। [illegible] बाद फिर शान्ति के [illegible] उस पर शान्ति के प्रति, जो [illegible] शान्ति की स्थिति [illegible] को लिये हुए मन को [illegible] पीछे व्यक्ति-अध्ययन और उस के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का [illegible] है। प्रथम प्रकार के कथानक की संवेदना [illegible] दूसरे प्रकार के कथानक की संवेदना अपेक्षाकृत सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक होती है।

चरित्र

अश्क की कहानी-कला में चरित्र [illegible] है। लेकिन [illegible] में भी उन के चरित्रों में विविधता है। उन के समस्त चरित्र [illegible] जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उन की [illegible] और मानवीय तत्वों के धरातल से हुई है। वस्तुतः, अश्क, [illegible] मुख्यतः उन के चरित्रों के ही माध्यम से व्यक्त हुआ है। चरित्र मुख्यतः दो भागों में रखे जा सकते हैं—

(१) साधारण चरित्र (२) प्रतिनिधि चरित्र

साधारण चरित्र

साधारण चरित्रों में अश्क ने परिवार के भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका से लेकर नौकर, किसान, मजदूर व्यावसायिक और अन्य छोटे-मोटे कर्मचारियों को लिया है। साधारण चरित्रों में इन्हों ने उन्हीं चरित्रों को लिया है जो सर्व सुलभ और व्यापक हैं। अश्क ने इन्हीं पूर्ण परिचित चरित्रों को लिया है और उन के रहस्योद्घाटन से पाठक को आश्चर्य चकित कर दिया है। काले साहब का रिक्शा वाला, बगूले, का दुल्ले, डाची का बाकर, तीन सौ चौबीस का हैदर, और उबाल का चंदन इस के अमर उदाहरण हैं। इन्हीं साधारण चरित्रों के सहारे इन्हों ने सामाजिक वैषम्य और जन-संघर्षों का चित्रण किया है। इस दिशा में कुछ चरित्र अपनी सामाजिक परम्परा, नैतिक मानदंडों तथा आर्थिक व्यवस्था से इतने दुखी और शोषित दिखाए गए हैं कि इन के प्रति पाठक की सहज संवेदना और करुणा का जागृत होना स्वाभाविक हो गया है। ये साधारण चरित्र एक ओर मौन विद्रोह के प्रतीक हैं, दूसरी ओर ये मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत हैं।

इन की दुर्बलताएं, परम्परानिष्ठा, विश्वास तथा जीवन-संघर्ष सब हमारे हैं और इन के चरित्र-चित्रण हमारे चरित्र-चित्रण हैं।

प्रतिनिधि चरित्र

अश्क, के प्रतिनिधि चरित्र विशुद्ध यथार्थवादी परम्परा के मेरुदंड हैं। इन की अवतारणा कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितियों और भावों के आधार पर हुई हैं। फलतः इन चरित्रों का प्रायः स्वतंत्र व्यक्तित्व न होकर ये चरित्र के प्रतिनिधि रूप अथवा टाइप हो गए हैं। वस्तुतः अश्क की जितनी कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं, उन के चरित्र प्रायः इसी कोटि में आते हैं। चरित्र अलग-अलग मनःस्थितियों, समस्याओं और द्वन्द्वों के प्रतिनिधित्व करते हैं। इन के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में मनःस्थिति गत विशेषताएं मुख्य रूप से व्यक्त हुई हैं और ये चरित्र उन स्थितियों के सफल प्रतिनिधि हैं अर्थात् इन के चरित्र सापेक्षिक अधिक हैं निरपेक्ष कम। पिंजरा की शान्ति, हमारे ह्रासोन्मुख सामाजिक संस्कार का प्रतीक है। गोखरू की मालती, और पत्नीव्रत के खन्ना साहब, क्रमशः स्त्री संस्कार, निर्बलता और स्वार्थ के प्रतिनिधि चरित्र हैं। अंकुर की शंकरी और उबाल का चन्दन क्रमशः अतृप्त इच्छाशक्ति के उदाहरण हैं। इसी तरह नासूर का सुरजीत और ईश्वर वैवाहिक वैषम्य और अस्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के उदाहरण हैं। बैंगन का पौधा, का बुड्ढा सामाजिक वैषम्य और शोषण का वह प्रतीक है जिस की सीमा उस क्यारी तक नहीं समाप्त होती जहाँ वह सूखा-सिकुड़ा हुआ पीला बैंगन का पौधा खड़ा है। वरन् उस की सीमा हर एक फुटपाथों, चालों, गंदी सड़कों, गंदी गलियों और अनेक ठंडे बरामदों तक फैली है, जहाँ एक ओर धनी वर्ग जाड़े की रात में सुख से सोता है, दूसरा उस के बरामदे में बाहर ठंडक से अकड़ कर मर जाता है। व्यापक रूप से ये प्रतिनिधि चरित्र हमारे जीवन-दर्शन के प्रतीक अधिक हैं, चरित्र कम। अश्क का चरित्र-विधान, पूर्ण मानवीय धरातल पर स्थित है। चरित्रों के रहस्योद्घाटन, उन की सीमाओं-कुंठाओं पर कटु व्यंग इन के चरित्र-विधान का सब से बड़ा कौशल है।

शैली

'अश्क' में रचना-कौशल अवश्य है, लेकिन इन में विभिन्नता नहीं है। वस्तुतः ये उस संस्थान के कहानीकार हैं, जो शिल्पविधि की अपेक्षा कहानी के भाव-पक्ष को अपना साध्य मानते हैं। अध्ययन की दृष्टि से इन की कहानियों में रचना-विधान तीन शैलियों में है।

१. ऐतिहासिक शैली २. प्रतीकात्मक शैली ३. चिन्तन (Reflective) शैली

ऐतिहासिक शैली

'अश्क' की प्रमुख रचनात्मक शैली यही है। अधिकांश कहानियाँ इन्होंने इसी शैली में लिखी हैं। इस दिशा में अश्क की कुछ कलागत विशेषताएँ निश्चित रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्णनात्मकता का सुन्दर समन्वय इन्होंने चरित्र-चित्रण किया है। कथा की अविच्छिन्न एकसूत्रता देश-काल-परिस्थिति के चित्रण के साथ आदि से अंत तक अक्षुण्ण रहती है। इस शैली के अन्तर्गत जो कहानियाँ मात्र चरित्र के धरातल से लिखी गई हैं, जैसे, काले साहब, डाची और कालू आदि ये कहानियाँ अपने कलात्मक रूप में रेखाचित्र अधिक हो गई हैं।

प्रतीकात्मक शैली

अश्क कहानी के केन्द्र-बिन्दु से कभी दूर नहीं हटते, और जब कहीं किसी प्रतीक के सहारे से व्यक्ति की कोई मानसिक स्थिति या कुंठा को कहानी का साध्य बनाते हैं, तब इन की कहानियाँ विशुद्ध रूप से रूपकात्मक हो जाती हैं। प्रतीकों के सहारे एक ओर चरित्र का मनोविश्लेषण करते हैं, दूसरी ओर कहानी के समूचे विधान में इस को मूल स्रोत मानते हैं। अंकुर, और बैंगन का पौधा में दोनों प्रतीक अपने स्थूल रूप में क्रमशः जन्म और मरण के रूप में आये हैं। रचना-विधान की दृष्टि से बैंगन का पौधा, में कहानी की सारी संवेदना उसी बैंगन के पौधे को अपना केन्द्र बना कर उस के चारों ओर घूमती है और कहानी का निर्माण हो जाता है और इसी प्रकाश में बुड्ढे का मनोविश्लेषण भी हो जाता है।

चिन्तन शैली

रचना-विधान की दृष्टि से, चिन्तन-शैली में वे कहानियाँ आती हैं जिन का निर्माण ऐतिहासिक ढंग से न होकर मुख्य चरित्र की पूर्व स्मृति या उस के आत्म-चिन्तन के सहारे पूर्व विकास का संबंध मिलाया गया हो, पिंजरा — समूची कहानी का रचना विधान शान्ति की पूर्व स्मृति में केन्द्रित है। दूलो, में 'मैं', के चिन्तन के माध्यम से दूलो के जीवन का पूर्व भाग उस के वर्तमान जीवन के भाग से मिल कर पूरी कहानी को पूरा करता है। पत्नीव्रत, में इस शैली का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है कहानी का आरम्भ अस्पताल में लक्ष्मी की मृत्यु दृश्य से होता है और इस के विकास में निम्नलिखित विकास क्रम आए हैं।

१. लक्ष्मी और उस के पति खन्ना का पूर्व प्रेम : पूर्व विकास :
२. उस की लाश को उठाने के लिये स्ट्रेचर का आना : उत्तर विकास :
३. लक्ष्मी यक्ष्मा की रोगी कैसे हुई : पूर्व विकास :
४. लक्ष्मी की वर्तमान स्थिति का चित्रण : उत्तर विकास :
५. लक्ष्मी और खन्ना में गहने का द्वन्द्व : पूर्व विकास :
६. खन्ना का न लौटना, पता चलना कि वे शादी करने चले गए हैं। : चरम विकास :

यहाँ पूर्व विकास और चरम विकास दोनों का क्रमिक तादात्म्य उपस्थित किया गया है। वस्तुतः अश्क की यह शैली पूर्ण कलात्मक है।

व्यापक दृष्टि से इन की कहानियों के आरम्भ, विकास और अंत तीनों भाग अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित होते हैं। चरम सीमा पर इन्हों ने विशेष बल दिया है।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में अश्क की कहानियों में चरित्र-वर्णन काफी स्वाभाविक हुए हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में नाटकीयता आई है। घटनाओं की निष्पत्ति और चरित्र प्रवेश के पूर्व इन्होंने सर्वथा नाटकीय परिपार्श्व देने का प्रयत्न किया है। अश्क के कथोपकथन इन की शैली के प्रमुख अंग हैं। इन की भाषा प्रेमचन्द की भाषा की अनुवर्तिनी है। इस में कहीं-कहीं पंजाबी और उर्दू की गति के कारण एक अजीब अटपटा भोलापन आ गया है।

लक्ष्य और अनुभूति

अश्क की कहानी कला में सोद्देश्यता सब से अधिक स्पष्ट है। विशेष कर जितनी कहानियाँ समाज व्यक्ति की आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं, उन में चरित्रगत, नीतिगत और सामाजिक मान्यता गत कोई न कोई लक्ष्य निश्चित रूप से रहता है। उसी लक्ष्य को केन्द्र मान कर अश्क की कहानी-कला अग्रसर होती है। जो कहानियाँ व्यक्ति की विशेष मनःस्थिति को लेकर लिखी गई हैं, केवल उन्हीं के निर्माण में अनुभूति की प्रेरणा मुख्य रूप से रही है। लेकिन सैद्धान्तिक रूप से अश्क कहानी में सोद्देश्यता के पक्षपाती हैं।

अश्क एक सफल कहानीकार के अतिरिक्त उत्कृष्ट नाटककार और मान्य उपन्यास कार हैं। इन दोनों व्यक्तित्व की प्रेरणा इन की कहानी कला में स्पष्ट हैं। नाटक के तीखे व्यंग, तिलमिला देने वाले छींटे और औपन्यासिक शैली

से देश-काल-परिस्थिति के चित्रण इन की कहानी-कला की मुख्य विशेषताएँ हैं।

सामाजिक जीवन की इकाइयों अथवा व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पहलुओं के धरातल पर कहानियाँ लिखने वालों में भगवती चरण वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, के भी नाम उल्लेखनीय हैं। क्योंकि इन दोनों कहानीकारों की कला में अपनी मौलिक प्रतिभा भी है और शिल्प-विधान के प्रयोग भी। वस्तुतः ये दोनों कहानीकार व्यापक रूप से जीवन दर्शन की ही प्रवृत्ति में आते हैं। भगवती चरण वर्मा ने जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है कि नैतिकता और अश्लीलता दोनों व्यक्ति सापेक्ष हैं वस्तुतः इन का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।[1] 'निराला' ने मुख्यतः जीवन को परम स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण से देखा है। इस में जीवन-दर्शन, मानव संवेदना और चरित्र निष्ठा ये तीनों पक्ष अत्यन्त स्वस्थ दृष्टिकोण से लिए गए हैं।

भगवती चरण वर्मा

भगवती चरण वर्मा की कहानी कला मुख्यतः प्रेमचन्द संस्थान के समीप है। दोनों में बहुत थोड़ा-सा ही कलागत अंतर है। इन की कहानियों के व्यापक शिल्पविधान में दो रूप पूर्णतः स्पष्ट हैं, प्रथम इन की कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं, फलतः ये रेखाचित्र के समीप हैं, जैसे, दो पहलू, विवशता, पराजय और मृत्यु, प्रेजेंट्स और इन्स्टालमेन्ट। द्वितीय इन की कहानियाँ बौद्धिक विचारों और समस्याओं को ले कर लिखी गई हैं, फलतः शैली-विधान में ये व्यक्तिगत निबन्ध हो गई हैं, जैसे, दो बांके, पराजय, अथवा मृत्यु, कायरता, और प्रायश्चित, आदि। इन सब कहानियों की शैली, रचना-विधान में भूमिका, तर्क-वितर्क और अंत में दृष्टान्त की प्रेरणा स्पष्ट है। रूप विधान में ये कहानियाँ लघु कहानी हैं।

निराला

निराला की कहानियों में मुख्यतः भाव-पक्ष की सम्पत्ति अतुल है, कलापक्ष की नहीं। कला पक्ष में इन की कहानियाँ प्रेमचन्द ही संस्थान में आती हैं। रचना विधान में वर्णनात्मकता, कथा-विधान में इतिवृत्त तथा शैली की दृष्टि से, ऐतिहासिक शैली इन की कहानी-कला के मुख्य पक्ष हैं। वस्तुतः निराला की कहानियाँ इस अर्थ में उत्कृष्ट हैं कि ये समाज के सभी पात्रों को छूती हैं विशेष-कर उन तीरों को जहाँ शोषण है, संघर्ष है। इन की कहानियाँ अपनी मार्मिकता

[1] भूमिका, दो बाँके, पृष्ठ १

और संवेदना के सहारे मानव विश्लेषण और अध्ययन में सफल हुई हैं, उतनी ही सफलता उन्हें इस सत्य की प्रतिष्ठा में मिली है कि मानव-जीवन अपनी समस्त सीमाओं और संघर्षों के रहते महान और सुन्दर है।

यशपाल

यशपाल की कहानियों का धरातल मुख्यतः निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ हैं, जिन का मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। अतएव यशपाल की कहानी-कला में समाज अपने दोनों पक्षों में ही लिया गया है। प्रथम शोषित और शोषक दृष्टियों से, जिस में समाज का अध्ययन इसे पूंजीपति और सर्वहारा दो वर्गों में बाँट कर किया गया है। इसी के साथ-साथ समाज का सांस्कृतिक पक्ष भी लिया गया है, जहाँ पुरातन धार्मिकता और परम्परा की कटु आलोचना की गई है और उन के स्थान पर आधुनिक आर्थिक शक्तियों को महत्व दिया गया है, अर्थात् समाज का अध्ययन मुख्यतः अर्थ के धरातल से किया गया है। दूसरे पक्ष में स्त्री-पुरुष के संबंधों को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं और नये-नये मापदंडों और मान्यताओं की प्रतिष्ठा के फल स्वरूप इन की कहानियों में मनोविश्लेषण और व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का विवेचन सर्वथा अनूठे ढंग से हुआ है।

कथानक

यशपाल की कहानियाँ समस्या प्रधान हैं तथा सामयिकता और यथार्थ-वादिता उस के दो प्रमुख पक्ष हैं। फलतः इन के कथानकों के मुख्यतः दो रूप हैं। जो कहानियाँ मानसिक विश्लेषण अथवा व्यक्ति संघर्ष को लेकर लिखी गई हैं, उन के कथानक प्रायः छोटे और सूक्ष्म हैं। उन के निर्माण में जीवन के उस पक्ष से संबंधित दो-एक घटनाएं हैं, अथवा कार्य-संकेत है, जैसे काला आदमी, आदमी का बच्चा, और रोटी का मोल, आदि कहानियों के कथानक अपूर्ण से लगते हैं, लेकिन उन में कलात्मक आग्रह बहुत है। दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यापक जीवन-संघर्ष और मनुष्य के कार्यों और कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन के प्रकाश में लिखी गई हैं, उन के कथानक अपेक्षाकृत लम्बे, इतिवृत्तात्मक और पूर्ण हुए हैं। उन के निर्माण में कभी-कभी महीनों, वर्षों की घटनाओं का विवरण और कार्य-व्यापार सम्बद्ध हुए हैं। उत्तराधिकारी, फूलों का कुत्ता, दास धर्म, मक्रील, हिंसा, और पराई आदि कहानियों के कथानक इस दिशा में इस के स्पष्ट उदाहरण हैं। व्यापक दृष्टि से यशपाल में कथा-विधान

की विविधता और प्रयोग का आग्रह नहीं है। समस्त कथानक सीधे स्पष्ट और लक्ष्यात्मक हैं।

चरित्र

यशपाल की समस्त कहानियों में चरित्र अवतारणा मुख्यतः आर्थिक संघर्ष और वर्ग-चेतना के धरातल से हुई है लेकिन इस दिशा में यशपाल का दृष्टिकोण इतना व्यापक है कि इन्हों ने इतिहास, पुराण, समाज, और कल्पना-जगत् से अन्यान्य चरित्रों को लिया है। परन्तु इस व्यापकता में यशपाल के चरित्रों की दो मान्यताएं सर्वत्र व्याप्त हैं। इन के चरित्र सर्वथा सर्व साधारण, यथार्थ और मानव संघर्षों के प्रतीक होते हैं। इस का सब से बड़ा कारण यही है कि इन्हों ने अपनी कहानियों में अधिक से अधिक वर्गों, जातियों, उम्रों, और स्थितियों के चरित्रों को लिया है। चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा इन के चरित्रों में प्रायः सर्वत्र हुआ है। इन के चरित्रों के व्यक्तित्व में संघर्ष और विद्रोह दोनों पक्ष विशिष्ट हैं। इन पक्षों से इन्हों ने पूर्ण यथार्थवादी चरित्रों की अवतारणा की है। अतएव यशपाल के चरित्र-विधान में जैनेन्द्र, अज्ञेय, सरीखे एक भी आदर्श चरित्र नहीं है, यद्यपि उन के चरित्र प्रायः संघर्ष और विद्रोह के धरातल से निर्मित हुए हैं।

शैली

शिल्पविधि प्रयोग की दृष्टि से यशपाल में इस का आग्रह बहुत ही कम है यही कारण है कि इन में शैली गतविविधता और व्यापकता नहीं है। कहानियों की रचना-शैली में कथा-वर्णन, कथोपकथन, और चरित्र-चित्रण मुख्यतः यही तीन तत्व हैं, लेकिन इन तीनों तत्वों के कलात्मक तादात्म्य में यशपाल अपूर्व हैं। संपूर्ण कहानी अपने आरम्भ-विकास और अन्त में इतनी कलात्मकता से गुँथी रहती हैं कि इन भागों को एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। अतएव इन की कहानियों के गठन में प्रभाव की तीव्रता अधिक है। इन की छोटी कहानियाँ जो शैली की दृष्टि से रेखा चित्र अधिक हैं, जैसे, शर्त, दुख, तीसरी चिन्ता, आदमी का बच्चा, चार आने, और जीत का हार आदि इन की शिल्पविधि की उत्कृष्ठ कहानियाँ हैं। इन कहानियों के अंत प्रायः अस्पष्ट और निर्णयहीन हैं। इस का एक मात्र कारण यह है कि इस संक्रान्ति युग में कहानीकार की मान्यताएं सामाजिक तथा अन्य मानवीय संबंधों पर स्वयं ही अनिश्चित और अस्पष्ट हैं।

शैली के सामान्य पक्ष में यशपाल में वर्णन और चित्रण पूर्ण स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल है। भाषा-शैली में इन का भी गद्य अपना अलग सौन्दर्य रखता है कहानियों की भाषा संवेदना के अनुकूल रहती है, लेकिन यह अवश्य है कि अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी जी आदि ने भाषा, गद्य-शैली को जितना महत्व दिया है उतना यशपाल ने नहीं।

लक्ष्य और अनुभूति

यशपाल की प्रायः समस्त प्रतिनिधि कहानियाँ लक्ष्यात्मक हैं। इन के निर्माण में लक्ष्य की ही प्रेरणा प्रधान है। लक्ष्य में आर्थिक संघर्ष और वर्ग-चेतना का आग्रह सर्वत्र स्पष्ट है। वर्ग-चेतना में पूंजीपति और सर्वहारा के अतिरिक्त जितनी कहानियाँ इन्हों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और नैतिक मान्यताओं को लेकर लिखी हैं, उन में नये-नये मूल्यों (Values), मान्यताओं की उद्देश्यता प्रधान है। सभ्यता, संस्कृति, आस्था, ईश्वर आदि के भी प्रश्नों में भी यही प्रेरणा कार्य कर रही है इस के फल स्वरूप इन की कहानियों में कहीं-कहीं अस्वाभाविक उग्रता और नग्नता आ गई है। अनुभूति की प्रेरणा मुख्यतः चरित्र विश्लेषण और उन के कर्म-प्रेरणाओं के अध्ययन में है।

यशपाल मुख्यतः समाजालोचन के कहानीकार हैं। जिस आर्थिक दर्शन अथवा मार्क्सवाद की प्रेरणा इन की कहानी कला में है उस से जो प्रकाश हमारे नैतिक प्रश्नों और सामाजिक मान्यताओं पर पड़ा है, वह सदा उल्लेखनीय है।

पहाड़ी

सीमित यौनवाद की प्रेरणा पहाड़ी की कहानी कला का मुख्य केन्द्र है। स्त्री-पुरुष के समस्त रूपों और सम्बन्धों में इन्हों ने केवल ऐन्द्रिक सम्बन्ध को अपनी कहानियों का चरम साध्य बनाया है। वस्तुतः फ्रॉयड ने जिस सेक्स के प्रकाश में सामाजिक संबंधों और नैतिक प्रश्नों की व्याख्या की है उस में आश्चर्य-जनक व्यापकता और विस्तृत कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन हैं। अस्पष्ट से अस्पष्ट, संश्लिष्ट से संश्लिष्ट और अवचेतन जगत् की गुत्थियों को उस ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों से उपस्थित किया है। अतएव फ्रॉयड की मनोविश्लेषण पद्धति ने मानव हृदय जगत् के अध्ययन का एक नूतन मार्ग खोला है। दूसरी ओर उस ने केवल सेक्स को ही चिरन्तन सत्य मानकर शेष समस्त सामजिक सम्बन्धों को कृत्रिम और अप्राकृतिक माना है। काम-वासना और उस की तृप्ति को उस ने प्रकृति का एक मात्र अनिवार्य धर्म माना है।

पहाड़ी की कहानियाँ फ्रॉयड के इसी दूसरे पक्ष को अपना धरातल बना कर निर्मित हुई हैं। इन की कहानियों की संवेदना प्रायः सेक्स समस्या है। इस समस्या को भी इन्हों ने केवल एक सीमित क्षेत्र में लिया है। प्रायः सभी कहानियों के कथानक काम-वासना के द्वन्द्व में विकसित हो कर उसकी चरम परिणति पर समाप्त होते हैं। चरित्र-अवतारणा की भी दिशा में सभी चरित्र केवल दो पक्षों से सामने आते हैं। कुछ पुरुष चरित्र प्रायः धनी उच्च वर्ग के हैं और प्रतिष्ठित हैं, लेकिन काम-वासना में असमर्थ हैं। इन के स्थान की पूर्ति प्रायः निम्न वर्ग के गरीब युवक करते हैं। स्त्री चरित्र केवल शारीरिक आदि वासना की भूख और अतृप्ति के धरातल से अवतरित हुए हैं। इतने सीमित क्षेत्र में शिल्पविधि की दृष्टि से, पहाड़ी में कथा-विधान और चरित्र-विधान बहुत ही निम्नकोटि के हैं इसका सब से बड़ा कारण यही है कि, सेक्स की दिशा में, फ्रॉयड में जिस मनोविश्लेषण की पद्धति को दी है, उस का प्रयोग कहीं भी पहाड़ी की कला में नहीं हैं। केवल साधारण कथा-विधान और सीमित चरित्रों को लेकर उन्हों ने नग्न वासना, अतृप्ति शारीरिक भूख और यौन विकारों का चयन अपनी कहानियों में किया है, चार विराम, हिरन की आँखें, यथार्थवादी रोमांस, राज रानी, एस्प्रिन की टेब्लुलेट, केवल प्रेम ही विश्राम और लाक्षणिक पुरुष इन की इस दिशा की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

कहानी शिल्पविधि में प्रयोगशीलता

अभी तक हम कहानी शिल्पविधि के सर्वांग पूर्ण विकास और उस की मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा करते आ रहे थे। इधर कहानी शिल्पविधि में प्रयोगशीलता की प्रेरणा कहानियों को कथा और इतिवृत्त के स्पष्ट आकार से बहुत दूर ले गई है और अब कई प्रकार के स्वीकृत कला रूप इस के अंतर्गत आ गए हैं, जिन के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं।

१. रेखा चित्र (Sketch) २. सूचनिका (Reportas)

रेखा चित्र

मशीन और विद्युत ने वर्तमान युग को इतना द्रुतगामी बना दिया कि इस के फल स्वरूप मनुष्य और समाज के जीवन में आमूल परिवर्तन उपस्थित हो गया। सामाजिक जीवन के सामने नित्य नई-नई समस्याएं और उस के फल आते रहे। इस तरह जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता से कला के सामंजस्य ने भावाभिव्यक्ति के उक्त अभिनव रूप विधानों को जन्म दिया। इन रूप विधानों

में रेखाचित्र सब से अधिक सशक्त और प्रभावशाली है। हिंदी साहित्य में रेखाचित्र सब से पहले काव्य में अभिव्यक्त हुआ। इस के उपरान्त चित्र-कला में फिर यह कला हिंदी कहानी शिल्पविधान के अंतर्गत आई। कहानी के अंन्तर्गत रेखाचित्र उस कला-विधान को कहते हैं जो वास्तविकता के किसी अंग विशेष को अलग कर के अनुभूति और अनुभाव द्वारा उस का इतना संवेदनशील चित्र उपस्थित करता है, जिस से एक ओर उस अंग विशेष की बाह्य और आंतरिक सुन्दरता रेखाओं में उभर आती है, दूसरी ओर वास्तविकता संपूर्ण की आंतरिकता भी व्यंजित हो जाती है। वस्तुतः रेखाचित्र आधुनिक युग की द्रुतगामी देन है, इसलिए इस कला-विधान में सम्पूर्ण और विस्तार के स्थान पर उस के टुकड़े या विशेष अंग को ही ग्राह्य माना गया है, जो अपनी सीमा या टुकड़े ही में संपूर्ण का चित्र व्यंजित कर देता है। अतएव रेखाचित्र में लेखक की अनुभूति और वर्ण्यवस्तु को पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण से आँकना ये दोनों शर्तें इस कला के प्राण हैं कहानी के अंतर्गत रेखाचित्र कला के समीप है। यह पूर्ण व्यक्तिवादी कला है, जिस तरह चित्र-कला में अनेक आधुनिक प्रवृत्तियाँ, जैसे प्रतीकवाद, रूपविधानवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद आदि आ रही हैं, उसी तरह रेखाचित्र में, व्यंग चित्र, प्रकाश छाया, अध्ययन चित्र, खाके, शबीहें, आदि कला प्रवृत्तियाँ सामने आ रही हैं।

वर्तमान हिन्दी कहानी में रेखाचित्र की परम्परा जैनेन्द्र और महादेवी वर्मा द्वारा आरम्भ हुई। स्मृति की रेखाएं[१], में जिन-जिन चरित्रों के व्यक्तित्व और उन की चेतना रेखाओं में उभारी गई है, वे इस दिशा में सफल प्रयास हैं। इस का विकास आगे, प्रकाशचन्द गुप्त[२], अमृतराय[3], शमशेर[४], ओंकार शरद[५], डाक्टर रघुवंश[६] और सत्येन्द्र शरत ने किया। प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृत राय और, समशेर की रेखाएं जितनी पैनी हैं, उतनी ही यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति में सशक्त हैं। लेकिन इन के चित्रों में संवेदना की कमी है। ओंकार शरद में संवेदना कुछ मात्रा में अवश्य है, लेकिन इन की रेखाओं में भी अधिक कोमलता और रंगीलियाँ हैं। डाक्टर रघुवंश के रेखाचित्र

---

[१] स्मृति की रेखाएं—महादेवी वर्मा

[२] पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच—प्रकाशचन्द्र गुप्त

[3] लाल धरती—अमृतराय [४] प्लाट का मोची—शमशेर बहादुर

[५] लंका महराजिन—ओंकार शरद [६] छाया तप—डा० रघुवंश

चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण में पूर्ण सफल हैं। सत्येन्द्र शरत ने अध्ययन चित्र (Study sketch) प्रस्तुत किए हैं और, एक नक्श, हम पेशा, आदि चित्र इन के पूर्ण कलात्मक सिद्ध हुए हैं, रेखाचित्र की प्रवृत्ति पूर्णतः आधुनिक कला-प्रवृत्ति है। इस के विकास में अभी प्रयोगशीलता स्पष्ट है और इस के पूर्ण विकास में अभी देर भी है।

सूचनिका (रिपोर्ताज)

संक्रान्ति युगों में साहित्य और कला के लघु रूपों और लघु विधानों की सृष्टि परम स्वाभाविक है। रेखाचित्र समाज और स्थिति की जिस द्रुतगामिता की अभिव्यक्ति है, सूचनिका इस से भी आगे है। हमारा दैनिक जीवन और इस की घटनाओं में इतनी द्रुतगामिता और विभिन्नता है कि उसे कलात्मक रूप विधानों में बाँधते चलना, बड़ा कठिन कार्य हो गया है। लेकिन कला और साहित्य की तो सब से बड़ी जिम्मेदारी यही है कि वह मनुष्य के सामयिक जीवन, युग चेतना और उस के संघर्षों को अपने में सँजोता चले। वस्तुतः सूचनिका का रूप विधान इसी माँग की पूर्ति करता है।

योरुप में पिछले महायुद्ध के बाद जो बड़ी-बड़ी घटनाएं घटीं और मानव संघर्ष में जो ज्वार-भाटे आये, उन की विस्तृत सूचना, रिपोर्ट तैयार करने में वहाँ के गद्य लेखक प्रयत्नशील हुए और उसी के फल स्वरूप सूचनिका का एक स्वतंत्र रूप विधान प्रस्तुत हुआ। रूस इस का जन्मदाता है और अमेरिका में इस विधान का आश्चर्यजनक विकास हुआ। शिल्पविधि की दृष्टि से सूचनिका में प्रायः तीन तत्वों की अपेक्षा होती है। यथार्थ घटना और संघर्ष मयी वास्तविकता का धरातल, द्वितीय परिवेष्ठन और परिस्थितियों चित्रात्मक वर्णन तृतीय विभिन्न शक्तियों, धारणाओं और क्रियाओं की व्याख्या, जो उन घटनाओं और संघर्षों में प्रेरणा दे रही हैं। ये तीनों तत्व सूचनिका के प्राण हैं और इन में से किसी भी एक तत्व की कमी इस रूप विधान को अपूर्ण और असफल कर सकती है। क्योंकि सूचनिका का परम लक्ष्य इसी में है कि वह वर्तमान जीवन की सारी संघर्षमयी चेतना को वास्तविकता को पाठक के हृदय में स्थापित करती चले। हिन्दी में यह रूप विधान अभी आरम्भ हुआ है। उर्दू में अपेक्षाकृत इस का अधिक विकास हो रहा है। कृष्ण चंदर की प्रसिद्ध सूचनिका 'सुबह होती है' इसका सुन्दर उदाहरण है। हिन्दी में इस रूप विधान को अपनाने वालों ने शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, आदि मुख्य हैं। लेकिन अपने निश्चित रूप में अब तब सूचनिका हिन्दी में नहीं आ पा रही है।

फिर भी वर्तमान समय में हिन्दी कहानी शिल्पविधान में निरंतर प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति इस बात का प्रमाण उपस्थित कर रही है कि काव्य के समस्त रूपों में हिन्दी कहानियों का भविष्य सब से अधिक उज्ज्वल और सशक्त हैं। अमेरिका में कहानी शिल्पविधान में नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे हैं, जैसे, केमरा विधान[1], न्यूजरील विधान आदि, इन सब के प्रयोग हिन्दी के नव युवक कहानीकारों द्वारा हो रहा है। समूचे संक्रान्ति युग की सामूहिक दृष्टि से देखने से स्पष्ट पता चल रहा है कि इस युग की कहानी की गति विधि संसार के कहानी-साहित्य में अपना स्थान अमर कर लेगी।

प्रवृत्तियों और कहानीकारों की विशिष्ट शैली के आधार पर शिल्पविधि का विकास

जिस तरह युगीन प्रवृत्तियों ने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करके हमारी नैतिक मान्यताओं, सामाजिक प्रश्नों और उन के निर्णयों में आमूल परिवर्तन ला खड़ा किया, उसी तरह उन प्रवृत्तियों ने कहानीकारों के मापदंड और दृष्टिकोण में भी अपूर्व क्रान्ति की। युग का जितना बौद्धिक दृष्टिकोण 'जीवन' के प्रति हुआ, उतनी ही बौद्धिकता कहानी की परिभाषा के रचना-कौशल और शिल्पविधान के प्रति प्रकट हुई। अतएव इस युग की कहानी-कला में आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हुआ। विशेपकर आश्चर्य इस दिशा में है कि संक्रान्ति युग की कहानी-कला को किसी एक परिभाषा में बाँधना कठिन हो गया है! क्योंकि अनेक प्रवृत्तियाँ, अनेक दृष्टिकोण और उन के प्रतिनिधि कहानीकारों द्वारा उस की विभिन्न मान्यताएं बनती गईं। अध्ययन की दृष्टि से केवल एकांत प्रभाव ही इस युग के कहानीकार का परम लक्ष्य बना।[1] इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार, अपनी रचना-

---

[1] The technique of the camera angle—'This mobility as to the detail combined with the rigidity of the general direction is one of the great techanical pleasure of the modern short story'—Sen O' Faolain The Short storries, page 181

[1] इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य प्रकार में एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उस के द्वारा चुनी

शैली, शिल्पविधान में इतना स्वतंत्र हुआ कि उस ने इस क्षेत्र में अपूर्व व्यापकता ला दी। उस ने इतने प्रयोग किये कि उन का एक स्थान पर आकलन करना कठिन है। सम्यक कहानी शैली से लेकर उस में रेखाचित्र, विश्लेषण चित्र से लेकर सूचनिका (Reportas) कैमरा विधान (Camera Technique) और न्यूजीरल विधान तक कहानी-रचना की सीमा को बढ़ा दिया।

प्रवृत्तियों और उन के कहानीकारों की विशिष्ट शैलियों के फल स्वरूप कथानक-निर्माण तथा कथा-विधान के रूपकों में अनेक नये-नये प्रयोगों और हस्तलाघवता के परिचय मिले। कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकसमता, और वर्णनात्मकता से आगे बढ़ कर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक नक्शों, सूक्ष्म घटनाओं मनोद्वेगों के माध्यम से निर्मित होकर स्फुट रेखाचित्रों, टुकड़ों और सांकेतिक रूपों में कभी-कभी इतने व्यापक हो गए हैं कि उन में जीवन के लम्बे लम्बे भाग विस्तृत समस्याएं संगुम्फित हो गई हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय के कथा-विधान इस दिशा में सदैव उल्लेखनीय हैं।

संश्लिष्ट चरित्र तथा मनःस्थिति की गूढ़ ग्रन्थियों के विश्लेषण में ऐसे कथा-विधान प्रस्तुत किए गए, जिन से चरित्र से संबंधित वे तमाम कर्म-प्रेरणाएं एक ऐसे संधि-स्थल पर स्वीकृत हो गईं कि जिन के सहारे उस गूढ़ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया। ऐसी भी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गईं जिन में कथानक के रूप इत ने सूक्ष्म, और अव्यक्त थे कि उन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना कठिन है। साम्यवाद अथवा मार्क्सीय प्रवृत्ति ने सामाजिक और व्यक्तिगत घटनाओं को कथानक-निर्माण में सब से अधिक स्थान दिया। दूसरी ओर फ्रॉयड की मनोविश्लेषण पद्धति ने जीवन के बाह्य घटनाओं को नगण्य सिद्ध कर व्यक्ति के चेतन अवचेतन जगत् के मनःउद्वेगों, स्वप्न चित्रों को सब से अधिक स्थान दिया और इस प्रवृत्ति के फल स्वरूप कथा-विधान में चरित्र के सूक्ष्म, संकेतों, घटनाओं और उद्गारों को संगुम्फित करने का कौशल प्रकट हुआ। कथानक की रूप-सीमा और उस के वर्ण्य विषय में आश्चर्यजनक विस्तार हुआ तथा उस के विधान में भी इसी तरह अनेक रूपता उपस्थित हुई।

कलात्मक दृष्टि से इस युग की कहानी-कला का मेरुदंड चरित्र है। इसी

गई वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन। वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकान्तिकता ही मुख्य है। अज्ञेय : हिन्दी प्रति० कहा०, भूमिका, पृष्ठ २२,

के अध्ययन, इसी की कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन तथा इसी के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के चारों ओर इस युग की कहानी शिल्पविधि के समस्त उपकरण घूमते मिलते हैं। चरित्र के रूप, चरित्र के वर्ग, चरित्र की स्थिति और चरित्र के स्तर में इतनी व्यापकता आई कि समूचा आधुनिक युग इस के माध्यम से प्रतिविम्बित हुआ। दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद और साम्यवाद, समस्त युगीन प्रवृत्तियाँ इसी केन्द्र-विन्दु से चरितार्थ की गई। चरित्र अवतारणा मूलतः यथार्थ भूमि पर हुई। सामान्य चरित्र से लेकर विशिष्ट और प्रतिनिधि चरित्रों के सहारे सम्पूर्ण मानव संवेदनाओं, कार्य-व्यापारों को कहानी विधान में स्थान मिले। चरित्रों के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा और उन के व्यक्तित्व विश्लेषण में नये-नये प्रसाधन प्रयुक्त हुए, जैसे आत्म विश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति तथा संकेत और छोटे-छोटे कार्य व्यापारों के अध्ययन। व्यापक दृष्टि से इस युग में चरित्र अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई और इस के व्यक्तित्व निर्माण में प्रायः तीन प्रेरणाएं, अहं, विद्रोह और आत्मविश्लेषण चिंतन, कार्य करती रहीं अर्थात् इस युग का चरित्र विकास युग के चरित्र की अपेक्षा अधिक व्यक्तिवादी हुआ। इस का रूप हमारे सामने इतना स्पष्ट हुआ कि सर्वत्र इस से हमारा साधारणीकरण होता रहा। अब हमें कहानियों के कथानक न याद रह कर कहानियों के चरित्र याद रहने लगे। उन के सारे अंतर्द्वन्द्व, संघर्ष हमारे मस्तिष्क में तैरने लगे। वस्तुतः मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति इस का एक विशेष कारण थी। वैसे तो इस का प्रयोग मानव जीवन के प्रायः सभी अंगों और स्तरों के अध्ययन के लिए किया गया, लेकिन इस युग में विशेषकर स्त्री-पुरुष के संबंधों, नैतिक मान्यताओं और स्त्रीत्व को समझने और व्यापक अध्ययन के लिए इस का प्रयोग सब से अधिक हुआ लेकिन इस मनो-विश्लेषण पद्धति का दूसरी ओर चरित्रों की दिशा में दुरुपयोग भी हुआ। इस के नाम पर काम, नग्न प्रेम वासना और उस की अनेक विकृतियों के चित्रण हुए।

शैली की दिशा में, इस युग में सब से अधिक प्रयोग हुए, क्योंकि इस युग की कहानी-कला का चरम लक्ष्य उस की प्रभविष्णुता और प्रभाव की एकान्तिकता है और इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार अपनी निर्माण-शैली, विधान आदि में पूरी तरह स्वतंत्र है। फलतः कहानी की निर्माण शैली और संविधान में अपूर्व ढंग का वैविध्य नवीनता और व्यापकता आई। वार्ता, दृष्टान्त सांकेतिक और प्रतीकात्मक शैली से लेकर ऐतिहासिक आत्म-कथात्मक डायरी, रूपात्मक, नाटकीय, पत्रात्मक स्वगत भाषण और मिश्रित

शैली तक इस का विकास हुआ। रचना-शैली में इतने वैविध्य और प्रयोग आने का सब से मुख्य कारण यह था कि इस युग की कहानी-कला में चरित्र का विकास दिखाने के लिए विस्तार के अभाव ने इस के रचना-कौशल पर सब से अधिक दबाव डाला। जिस के फल स्वरूप इस के रचना-विधान में आश्चर्य-जनक विविधता आई, चरित्र विकास के साथ जब कहानी-कला में भाव-वस्तु को ही उस के अनुरूप प्रमुखता मिली, तब इस के रचना विधान में और भी नये-नये प्रयोग हुए जैसे, रेखाचित्र, व्यंगचित्र, संस्मरण, सूचनिका और केमरा शैली आदि। इस तरह निर्माण की दृष्टि से कहानी की शैली चित्र-कला के बिल्कुल समीप आ गई, और जिस तरह चित्र-कला के माध्यम से अनेक आधुनिक वाद जैसे, प्रतीकवाद, रूप विधानवाद अभिव्यंजनावाद, और प्रभाव-वाद आदि अभिव्यक्त हो रहे हैं, ठीक यही कार्य कहानी-कला से भी लिया जाने लगा। इस तरह अनेक युगीन प्रवृत्तियों और आधुनिक वादों के फल स्वरूप कहानी की निर्माण-शैली में उत्तरोत्तर विकास होता जायगा। यही कारण है कि आधुनिक काल में साहित्य के समस्त प्रकारों में कहानी नामक साहित्य प्रकार का भविष्य सब से अधिक उज्वल है।

लक्ष्य और अनुभूति की दिशा में, इस युग में कहानी-निर्माण की प्रेरणा समान रूप से है। मुख्यतः मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों की सृष्टि प्रायः अनुभूति की प्रेरणा से अधिक हुई हैं। जो कहानियाँ किन्हीं वादों, तात्विक विचारों और समस्याओं के हल विवेचन के लिए लिखी गई हैं, उन की प्रेरणा निश्चित रूप से लक्ष्यात्मक है। समाजशास्त्र के विकास से, विशेषतया मार्क्सीय मत और फ्रॉयड मत की प्रगति से सामाजिक संबंधों पर जो प्रकाश पड़ा और उन के अध्ययन की जितनी पद्धतियाँ आविर्भूत हुईं, यह सोद्देश्यता भी इस युग की कहानियों की प्रेरणा बनीं। अतएव विकास युग की भावात्मक कहानियों की अपेक्षा इस युग की कहानियाँ अधिक बौद्धिक हो गईं। निर्माण की दृष्टि से इस युग के कहानीकारों की दृष्टि अधिक व्यापक हुई। वह मानव जीवन के समस्त पहलुओं को सापेक्ष-निरपेक्ष और कभी-कभी उसे अपना व्यक्तिगत पहलू बना कर अध्ययन करने लगा और उस के संबंध में अपना निर्णय देने का प्रयत्न करने लगा। लेकिन परिणामतः इस युग के कहानीकार की संवेदना अधिक उलझी सिद्ध हुई। उस के विषय में मानसिक ऊहापोह बढ़ा और समस्याओं, मूल्यों के संबंध में उस का निर्णय अस्पष्ट और अस्थायी रहा। यही कारण है कि जहाँ इस युग में कहानी के शिल्प-विधान में विकास युग की अपेक्षा

आश्चर्यजनक विकास हुआ वहाँ कहानी अपने दृष्टिकोण और चरम परिणति में अस्पष्ट और रहस्यात्मक होती रही। कहानियाँ इतिवृत्तात्मकता को छोड़ कर इतनी दूर चली आई हैं कि उन का पूर्ण रूप से समझना साधारण पाठकों के लिए कठिन होने लगा। आज की कहानी कला अपने विधान सम्यक रूप में उत्तरोत्तर गूढ़ और बौद्धिक होती जा रही है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति इस के विकास में स्वस्थ-कर नहीं है, यह निश्चित है।

आश्चर्यजनक विकास हुआ वहाँ कहानी अपने दृष्टिकोण और चरम परिणति में अस्पष्ट और रहस्यात्मक होती रही। कहानियाँ इतिवृत्तात्मकता को छोड़ कर इतनी दूर चली आई हैं कि उन का पूर्ण रूप से समझना साधारण पाठकों के लिए कठिन होने लगा। आज की कहानी कला अपने विधान सम्यक रूप में उत्तरोत्तर गूढ़ और बौद्धिक होती जा रही है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति इस के विकास में स्वस्थ-कर नहीं है, यह निश्चित है।

संस्कृत नाटकों की कथावस्तु

संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के अनन्य प्रयास हैं। इन अनुवादों से संस्कृत के प्रायः समस्त उत्कृष्ट नाटक हिंदी में आए जैसे, राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास कृत, शकुन्तला, का अनुवाद, हरिश्चन्द्र जी द्वारा कवि कांचन कृत, धनंजय विजय, राजेश्वर कृत, कर्पूर मंजरी, और विसाखदत्त कृत, मुद्राराक्षस, नाटकों के अनुवाद, लाला सीताराम द्वारा भवभूति कृत, महावीर चरित, उत्तर रामचरित, मालती माधव, कालिदास कृत, मालविका, शूद्रक कृत, मृच्छ कटिक, और हर्षदेव कृत नागानन्द के अनुवाद।

हिन्दी कहानियों के विकास काल में अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में संस्कृत नाटकों का हिन्दीकरण एक अन्य रूप में भी हुआ। यह हिंदीकरण बिल्कुल नया और प्रयोगात्मक ढंग का था। इस प्रयोग में हिंदी कहानी के एक अनिश्चित रूप को निश्चित ढंग से गढ़ने का प्रयास था। सरस्वती के प्रारम्भ से संस्कृत नाटकों की केवल कथा-वस्तु को लेकर अनेक आख्यायिकाओं की अवतारणा हुई, जैसे, सरस्वती के दूसरे वर्ष की पहली संख्या में पं० जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रत्नावली, श्री हर्ष रचित नाटक की आख्यायिका[1] आगे चल कर इन्हों ने ही महाकवि कालिदास के नाटक की आख्यायिका मालविका[2] और अग्निमित्र, को लिखा। यहाँ इन्हों ने नाटक के संपूर्ण इतिवृत्त को उस की समस्त घटनाओं और दृश्यों को अपनी आख्यायिका में समेटने का प्रयत्न किया है। फलतः यह आख्यायिका संख्या ६ से धारावाहिक रूप में संख्या ९ तक फैल गई है। अतएव इस में कहानी की अपेक्षा उपन्यास के तत्व आ गए हैं संस्कृत के नाटकों की कथा वस्तुओं की ये दोनों हिन्दीकरण की शैलियाँ : सम्पूर्ण इतिवृत्त केवल और आख्यायिका : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति में केवल उस की कथा-वस्तु की दिशा में कुछ प्रेरणा दे सकी है। कथा-वस्तु के रूप विधान और कथा विधान में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं ने आरोह-अवरोह की कला दी है, शेष कुछ नहीं।

शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु

हिन्दी कहानी शिल्पविधि में कथा-तत्व के निर्माण में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं की अपेक्षा शेक्शपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं ने अधिक

---

[1]सरस्वती, १९०१ भाग २ संख्या १ [2]सरस्वती, जून १९०४ भाग ५ संख्या ६

उद्गम और विकास सूत्र

हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति किसी एक दिन की घटना नहीं है, वरन् इस की उत्पत्ति में वर्षों की साधना और प्रयोग की प्राणशक्ति व्यय हुई है। इस की उत्पत्ति कितने उद्गम सूत्रों से हुई है, इस का अध्ययन वस्तुतः उस तरह है, जैसे, किसी विशाल वट वृक्ष की उन तमाम जड़ों, अंतर्शाखाओं और सूत्रों को ढूँढ़ना, जो धरती की न जाने कितनी अगम्य परिधि और तहों में समा गए हैं, लेकिन जिन के सामूहिक अवलम्बन से समूचा वट वृक्ष जीवित खड़ा है। वस्तुतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के आविर्भाव में यथासंभव उन समस्त सूत्रों से प्रेरणाशक्ति ग्रहण की गई है, जिन में कहानी-कला की दिशा में कुछ भी प्राणशक्ति देने की क्षमता थी। यही कारण है कि उद्गम सूत्रों के रूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और अमूर्त्त हैं क्योंकि उद्गम सूत्र मूलतः प्रेरणाओं के स्वरूप में चरितार्थ हुए हैं। आगे चलकर जब उन प्रेरणाओं के फल स्वरूप हिन्दी कहानी शिल्पविधि के स्वरूप की प्रतिष्ठा होने लगी, तब वही सूक्ष्म उद्गम सूत्र इस कला के विकास में पूर्ण स्पष्टता से दृष्टिगोचर होने लगे, और उन्हीं को हम दूसरे शब्दों में प्रभाव भी कहने लगे।

विविध युगों में कहानी-कला की प्रेरणाएं

हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास की दृष्टि से उस के उद्गम के अध्ययन में स्तर विभेद करने होंगे अर्थात् जिस तरह शिल्पविधि के विकास में आविर्भाव, विकास और संक्रान्ति युगों के अंतर्गत हम ने उस के क्रमिक रूपों को देखा है, उसी के अनुरूप हम उस के उद्गम सूत्र के अध्ययन में उन क्रमिक शक्तियों को देखेंगे जो उन युगों को यथासंभव प्रभावित और प्रेरित करती रहीं।

(क) आविर्भाव युग

उद्गम सूत्र के अध्ययन का पूर्ण वैज्ञानिक संबंध आविर्भाव युग से ही है। क्योंकि यही युग वस्तुतः वह संधिस्थल है जहाँ कहानी की उत्पत्ति की अनेक प्रेरणाशक्तियों ने अपना बल दिखाया होगा। वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के आविर्भाव में मूलतः निम्नलिखित उद्गम सूत्रों की प्रेरणा है।

(अ) संस्कृत नाटकों की कथावस्तु (आ) शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु
(इ) उर्दू किस्सा और अफ़साने (ई) प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ

संस्कृत नाटकों की कथावस्तु

संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के अनन्य प्रयास हैं। इन अनुवादों से संस्कृत के प्रायः समस्त उत्कृष्ट नाटक हिंदी में आए जैसे, राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास कृत, शकुन्तला, का अनुवाद, हरिश्चन्द्र जी द्वारा कवि कांचन कृत, धनंजय विजय, राजेश्वर कृत, कर्पूर मंजरी, और विसाखदत्त कृत, मुद्राराक्षस, नाटकों के अनुवाद, लाला सीताराम द्वारा भवभूति कृत, महावीर चरित, उत्तर रामचरित, मालती माधव, कालिदास कृत, मालविका, शूद्रक कृत, मृच्छ कटिक, और हर्षदेव कृत नागानन्द के अनुवाद।

हिन्दी कहानियों के विकास काल में अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में संस्कृत नाटकों का हिन्दीकरण एक अन्य रूप में भी हुआ। यह हिंदीकरण बिल्कुल नया और प्रयोगात्मक ढंग का था। इस प्रयोग में हिंदी कहानी के एक अनिश्चित रूप को निश्चित ढंग से गढ़ने का प्रयास था। सरस्वती के प्रारम्भ से संस्कृत नाटकों की केवल कथा-वस्तु को लेकर अनेक आख्यायिकाओं की अवतारणा हुई, जैसे, सरस्वती के दूसरे वर्ष की पहली संख्या में पं० जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रत्नावली, श्री हर्ष रचित नाटक की आख्यायिका[1] आगे चल कर इन्हों ने ही महाकवि कालिदास के नाटक की आख्यायिका मालविका[2] और अग्निमित्र, को लिखा। यहाँ इन्हों ने नाटक के संपूर्ण इतिवृत्त को उस की समस्त घटनाओं और दृश्यों को अपनी आख्यायिका में समेटने का प्रयत्न किया है। फलतः यह आख्यायिका संख्या ६ से धारावाहिक रूप में संख्या ९ तक फैल गई है। अतएव इस में कहानी की अपेक्षा उपन्यास के तत्व आ गए हैं संस्कृत के नाटकों की कथा वस्तुओं की ये दोनों हिन्दीकरण की शैलियाँ : सम्पूर्ण इतिवृत्त केवल और आख्यायिका : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति में केवल उस की कथा-वस्तु की दिशा में कुछ प्रेरणा दे सकी है। कथा-वस्तु के रूप विधान और कथा विधान में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं ने आरोह-अवरोह की कला दी है, शेष कुछ नहीं।

शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु

हिन्दी कहानी शिल्पविधि में कथा-तत्व के निर्माण में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं की अपेक्षा शेक्शपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं ने अधिक

---

[1]सरस्वती, १९०१ भाग २ संख्या १ [2]सरस्वती, जून १९०४ भाग ५ संख्या ६

प्रेरणा दी है। संस्कृत नाटकों की भाँति भारतेन्दु काल में शेक्सपियर के नाटकों के हिन्दी अनुवाद हुए, जैसे, रत्नचन्द्र द्वारा १८७६ ई० कॉमेडी आफ ऐरर्स, का भ्रमजाल, अनुवाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा, मर्चेन्ट आफ़ वेनिस का 'दुर्लभ बन्धु' नाम से अनुवाद, पुरोहित गोपीनाथ द्वारा 'ऐज़यू लाइक इट' का 'मन भावन' और रोमियो एन्ड जूलियट, का 'प्रेमलीला' नाम से अनुवाद तथा १८६३ ई० में मथुराप्रसाद उपाध्याय द्वारा 'मैकवेथ' का साहसेन्द्र, नाम से अनुवाद, वस्तुतः इन अनुवादों से हिन्दी नाटकों को प्रेरणा मिली है, कहानी को नहीं। परन्तु शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं अथवा आख्यायिकाओं ने निश्चित रूप से हिन्दी कहानी शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास में प्रेरणा दी है। यह प्रेरणा बीसवीं शताब्दी में 'सरस्वती', के माध्यम से हिन्दी कहानी-कला को मिली। इस के दो स्वरूप भी मिले प्रथम शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं को लेकर 'हिन्दी शेक्सपियर'[1] की सृष्टि हुई। दूसरी ओर शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं के धरातल पर कलात्मक आख्यायिकाओं की सृष्टि हुई जिसे हम केवल सरस्वती, के प्रारम्भिक वर्षों की संख्याओं में पाते हैं। काल-क्रम के अनुसार 'सरस्वती' में प्रकाशित शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिकाओं की अपेक्षा हिन्दी शेक्सपियर का समय काफी बाद को आता है। उस समय हिन्दी कहानियों के निश्चित रूप विधान का विकास हो चुका था। फलतः कहानी शिल्पविधि के ऊपर प्रभाव और उद्गम सूत्र की दृष्टि से केवल, 'सरस्वती' में आए हुए शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं का महत्व अपेक्षाकृत बहुत है। ये कथा-वस्तुएं दो रूपों में अवतरित हुईं। प्रथम कलात्मक आख्यायिका के रूप में, दूसरे इसके भाव धरातल पर स्वतंत्र कहानी-सृष्टि के रूप में, जैसे किशोरीलाल गोस्वामी लिखित हिंदी कहानी, इन्दुमती, जिस पर शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाप हैं, टेम्पेस्ट की कथा-वस्तु को भावात्मक धरातल मान कर इसकी सृष्टि हुई है 'यहाँ तक कि इसे भारतीय वातावरण के अनुकूल रूपान्तर की कहें तो अत्युक्ति न होगी'। यद्यपि इस शैली का प्रयास आगे नहीं हुआ फिर भी हिन्दी कहानी की उत्पत्ति में इस का महत्व बहुत है। इस से हिंदी कहानियों के रूप निर्माण में बहुत सरलता और सुगमता मिलने की संभावना थी। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण इसी बात में है कि आगे शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुएं विभिन्न आख्यायिकाओं के रूप में आईं और हिन्दी पाठकों

[1] हिन्दी शेक्सपियर : गंगा प्रसाद, एम० ए० : इंडियन प्रेस प्रयाग १६१४

को हिन्दी के उस प्रारम्भिक विकास काल में उन आख्यायिकाओं से असीम आनन्द मिलता रहा। अतएव आगे शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुएं इस रूप में आई 'सिम्बेलिन[1]' महाकवि शेक्सपियर रचित नाटक की आख्यायिका का मर्मानुवाद, एथेन्स[2] वासी टाइमन, की आख्यायिका, तथा पेरिक्लिस, आख्यायिका की सृष्टि। इन आख्यायिकाओं में कथा-तत्व को बहुत ही सफलता से चरितार्थ करने का प्रयत्न किया गया है। नाटक के समूचे इतिवृत्त को काट-छाँट कर कहानी के समीप लाने का प्रयत्न किया गया है, अतएव इन आख्यायिकाओं में भावी हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास की समस्त संभावनाएं स्पष्ट ही आई हैं। शेक्सपियर के नाटकों की इन आख्यायिकाओं ने कहानी शिल्पविधि की दिशा में विशेषकर कथा-वस्तु के तत्व में नाटकीय गठन और मुख्य संवेदना में अंतर्द्वन्द्व और दुखांत की भावना को प्रतिष्ठापित किया, हिन्दी शेक्सपियर, (१६१४) में निस्सन्देह, शेक्सपियर के प्रायः समस्त नाटकों की कथा-वस्तुओं को इतिवृत्तात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है; जैसे, (ओथलो) भूल-भुलैया, (कॉमेडी आफ़ एरर्स) वेरोना नगर के दो भद्र पुरुष (टू जेन्टल मैन आफ़ वेरोना) अथेन्स का टाइमन (टाइमन आफ़ एथेन्स) बात का बतंगड़ (मच एवाउट नथिंग) एंटनसी और क्लेपेट्रा (एंटनी एन्ड क्लेपेट्रा) निष्फल प्रेम (लव्स लेवर लास्ट) हेनरी आठवाँ, कोरियो लेनस, टीटस एन्डोनीकस टोइलस[3] और क्रैसीडा। कलात्मक दृष्टि से ये आख्यायिकाएं न होकर कथाएं हो गई हैं। इन में सरस्वती की आख्यायिकाओं की अपेक्षा कहानी-तत्व बहुत ही कम आए हैं। काल क्रम १६१४ ई० के अनुसार भी इन का प्रकाशन उस समय हुआ है जब प्रसाद जैसे कहानीकार का अभ्युदय हो चुका था तथा हिन्दी कहानी शिल्पविधि का अपना एक स्वतंत्र रूप स्वीकृत हो चुका था। आलोचनात्मक दृष्टि से फलतः 'सरस्वती' में आए हुए शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिकाओं का महत्व बहुत है। वस्तुतः हिन्दी कहनी के कथा-विकास के निर्माण का एक मात्र उद्गम सूत्र यही है।

---

[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्री कृष्णलाल, पृष्ठ ३२२

[2] सरस्वती, १६०० ई० भाग १ संख्या १ पृ० ८

[3] सरस्वती, १६०० भाग १ संख्या २ पृष्ठ ४४

[4] हिन्दी शेक्सपियर : गंगा प्रसाद एम० ए० : इंडियन प्रेस, प्रयाग, १६१४

उर्दू किस्सा और अफ़साने

उर्दू कथा साहित्य में प्रेमचन्द के पूर्व तक उपन्यास और कहानी नाम की कोई अलग-अलग कथा-वस्तुएं विकसित नहीं हो पाई थी। केवल कथाएं थीं, जिन्हें हम दास्तान, किस्सा कह सकते हैं। फोर्ट विलियम कालेज से, उर्दू कथा-साहित्य के कथात्मक स्वरूप का निश्चित इतिहास मिलने लगता है और उस का यह विकास हिन्दी कथा-साहित्य के समानान्तर मिलता है। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में कथा-साहित्य का विकास दो रूपों में होना प्रारम्भ हुआ। पहला अनुवाद के रूप में। दूसरा स्वतंत्र सृष्टि के रूप में इस दिशा में मुख्य प्रेरणा फोर्ट विलियम कालेज की थी। इस की प्रेरणा से मुख्यतः फ़ारसी और संस्कृत की कथाएं उर्दू में अनूदित हुईं। मीर शेर अली 'अफ़सोस' ने फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख़ सादी की प्रसिद्ध पुस्तक, गुलिस्तां, का उर्दू में अनुवाद किया और उस का नाम बाग़े उर्दू रखा। मीर अम्मन ने इसी ज़माने में, चहार दरवेश, का अनुवाद बागो बहार, के नाम से किया। इस में चहार दरवेश, वाले किस्सों का बहुत विस्तार से स्थान दिया गया है। संस्कृत कथा-कृतियों के उर्दू अनुवाद की भी और, शकुन्तला, नल माधव, सिंहासन बत्तीसी और बैताल पचीसी, के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वतंत्र सृष्टि के संबंध में, जिस का भावात्मक आधार फ़ारसी की कथा-कृतियाँ थीं, हैदर बक्स हैदरी ने आराइशे महफिल, और हातमताई के किस्सों को लिखा। इस के अतिरिक्त, नस्रे बेनज़ीर, लैला मजनूं, खिरदअफ़रोज भी उल्लेखनीय हैं। उर्दू कथा-साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टि से मौलिक रचनाओं का आरम्भ इंशा अल्ला खाँ से न मान कर मिर्जा रजब अली बेग सरुर से मानना उचित होगा। इन की फ़िसानये अजायब, सर्वथा मौलिक रचना थी। इस के अतिरिक्त इस कृति में सर्व प्रथम दास्तान शैली में लखनऊ के समाज का चित्र खींचा है। उस के बाद ही इसी शैली के विकास के फल स्वरूप नज़ीर अहमद ने, तौबातुन्नसूह, नामक प्रथम मौलिक उर्दू उपन्यास लिखा। इस की शिल्पविधि से स्पष्ट है कि यह दास्तान, और किस्सा, शैली से हट कर उपन्यास की शैली के समीप है। इस के उपरान्त सरशार (१८७८ ई०) का काल आता है। उर्दू कथा-साहित्य में सरशार का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। इन का प्रसिद्ध उपन्यास फ़िसानये आज़ाद, उर्दू कथा-साहित्य में एक युग की प्रतिष्ठा करता है इन के अन्य उपन्यास जामे सरशार, सैर कोहसार, कामिनी, और पी कहां है। इसी विकास-क्रम में शरर, का भी नाम उल्लेखनीय है। इन के भी उपन्यास, मंसूर मोहना, मल्क़ुल अज़ीज़ वर्जिना, फ्लोरा फ्लोरेन्डा, मुकद्दसना-

अमीन, आदि कलात्मक उपन्यास हैं। १८८० ई० के बाद अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम उत्तरार्द्ध से ४० वर्षों तक का समय आता है। इस के उपन्यासों में अमीर-मान, फसाना, पाल, आदि ही इस युग के उपन्यास हैं।

इसलिए, उर्दू कथा-साहित्य में दो धाराएँ दिखाई देती हैं। पहली, किस्सा और दास्तान शैली, दूसरी अफसाना शैली। हिन्दी साहित्य के इतिहास-क्रम की दृष्टि से इस प्रकार उर्दू कथा-कृतियाँ हरिश्चन्द्र युग के पूर्व तथा हरिश्चन्द्र युग में आती हैं। भारतेन्दु-युग की दृष्टि से हिन्दी में इस युग में भी कथा और उपन्यासों की परम्परा थी। जहाँ तक इस युग में हिन्दी-उर्दू के कथा-साहित्यों का एक दूसरे से प्रभाव का प्रश्न उठता है, दोनों एक दूसरे से बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए। यद्यपि उर्दू कथा-साहित्य से हिन्दी का प्रभावित होना बहुत स्वाभाविक और सम्भावित था, क्योंकि उर्दू भाषा और साहित्य के प्रति लोगों का पूरा आकर्षण था। लेकिन भारतेन्दु युग के पीछे प्रबल समाज-सुधार भावना, और जातीय भावना इतनी उग्र रूप से आ गई थी कि उस समय हिन्दी कथाकार उर्दू से बिल्कुल प्रभावित ही नहीं हो सके। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के उर्दू किस्से और दास्तान के उद्भव युग और प्रसार की दृष्टि से हिन्दी का कोई मुकाबला नहीं है। इस का यह मतलब कदापि नहीं है कि इस शताब्दी में उर्दू कथा-साहित्य की अपेक्षा हिन्दी का कथा-साहित्य संभवतः अधिक प्रखर और शक्तिशाली था।

जहाँ उर्दू अफसाने का प्रश्न आता है, इस का कोई भी रूप हम उन्नीसवीं शताब्दी में नहीं पाते, जबकि हिन्दी की ओर, उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, हिन्दी प्रदीप और हरिश्चन्द्र मैगज़ीन के माध्यम से कहानी की उत्पत्ति का अस्पष्ट रूप प्रारम्भ हो गया था। लेकिन उर्दू अफसाने की उत्पत्ति अथवा प्रारम्भ की दिशा में, प्रेमचन्द से पहले यहाँ अफसाने का कोई प्रयोगात्मक रूप तक नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि उर्दू कथा साहित्य में प्रेमचन्द से पूर्व केवल उपन्यास लिखे गए हैं। सरशार, शरर, और, रुस्वा, की कथा-कृतियाँ उपन्यास हैं, कहानी या अफसाना नहीं और अब तक जो कहानी या अफसाने शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा था, वह कहानी अफसाने के व्यापक रूप में किया जाता रहा, जिस में एक पृष्ठ का दृष्टान्त भी शामिल किया जाता था और सहस्र पृष्ठों का उपन्यास भी, उदाहरण के लिए जैसे, रानी केतकी की कहानी, और, फसानये आज़ाद, वस्तुतः ऐसी रचना जिस का आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य, मानव जीवन अथवा समाज की समस्या

अथवा व्यापक जीवन की किसी एक घटना पर रखा गया हो। हमें यहाँ तक अर्थात् प्रेमचन्द तक नहीं मिलती।[1] इस तरह से उर्दू अफ़साने के जन्मदाता प्रेमचन्द थे। इन्हीं ने ही : १९०८ ई० से नवाब राय के नाम से उर्दू अफ़साना लिखना आरम्भ किया और १९०९ ई० में, सोज़ेवतन, के नाम से इनका पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ जो अवैध होने के कारण जला दिया गया। लेकिन उद्‌गम की दृष्टि उर्दू अफ़साने के जन्मदाता प्रेमचन्द (१९०९ ई०) के पूर्व ही 'सरस्वती', के माध्यम से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति हो गई थी फलतः इस पर किसी तरह से भी उर्दू अफ़साना के प्रभाव का प्रश्न नहीं उठता। दूसरी ओर प्रेमचन्द स्वयं (१९१६ ई०) में उर्दू अफ़साना क्षेत्र से हिन्दी कहानी जगत् में आ गए, सप्तसरोज, की कहानियाँ इस के उदाहरण में सदा अमर रहेगी। अतएव उद्‌गम सूत्र की दृष्टि से उर्दू क़िस्से और अफ़साने का कोई संबंध हिन्दी कहानी के शिल्पविधि की उत्पत्ति से नहीं है। इस के विकास से कुछ संबंध अवश्यमेव है। प्रेमचन्द इस के उदाहरण हैं। लेकिन इन्हें उर्दू कहानी कार क्यों कहा जाय, ये तो हिन्दी कहानीकार हैं तथा हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास में ये एक युग निर्माता हैं। अध्ययन की दृष्टि से हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के माध्यम से उर्दू अफ़सानों की यथार्थ भाषा शैली और व्यंगात्मक रूप का प्रभाव हिन्दी कहानी शिल्पविधि के पर अवश्य पड़ा लेकिन कटु सत्य तो यह है कि उर्दू के जिस अफ़साना निगरा से यह प्रभाव हिन्दी कहानी दिशा पर पड़ा, वही स्वयं हिन्दी कहानियों के विकास का युग निर्माता था। उद्‌गम सूत्र की दृष्टि से उर्दू क़िस्से और अफ़सानों का आभार हिन्दी कहानी शिल्पविधि की उत्पत्ति पर कुछ भी नहीं है।

लोक कहानियाँ

विषय प्रवेश के अध्ययन में हमने देखा है कि दन्त-कथाओं का आरम्भ मानव की कथा-प्रवृत्ति के साथ ही साथ हुआ है। कालान्तर में चल कर यही दन्त-कथाएं लोक गाथा के रूप में भी विकसित हुई जिसमें गेयता और कथानक दोनों तत्वों का आश्चर्यजनक तादात्म्य स्थापित हुआ। ये गाथाएं समस्त भारत में, विशेष कर हिन्दी प्रान्त में लोकरुचि की विशेष प्रवृत्ति के अनुरूप रही हैं। ये लोक गाथाएं इस प्रदेश में हिन्दी गद्य के जन्म से भी पूर्व अपने तीन रूपों

---

[1] हंस, फरवरी १९३९, वर्ष ९ अङ्क ५ ,उर्दू गल्प का इतिहास

में मिलती है (१) प्रेमात्मक (Love-Ballads) (२) वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और (६) रोमञ्च कथात्मक गाथाएं (Super natural Ballads) प्रभाव और संवेदनशीलता की दृष्टि से इन प्रेम, वीर, और रोमांच कथात्मक गाथाओं का संबंध हमारे साहित्य के मध्य युगीन आख्यानक काव्यों से है और आंशिक रूप में इस का प्रभाव भारतेन्दु युग के कुछ उपन्यासों पर स्पष्ट है। लेकिन हिन्दी कहानियों के उद्गम सूत्र से जिस का सीधा संबंध है, वह है लोक कहानियों का साहित्य। ये लोक कहानियाँ मूलतः परम्परा से आती हुई दंत-कथाओं की ही शाखाएं हैं जिन की निश्चित परम्पराएँ हमारे प्राचीन कथा साहित्य जातक, जैन कहानियाँ हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथा सरित्सागर, वैताल पंच विंशतिका और शुक सप्तति आदि से आरम्भ हुई हैं। वस्तुतः लोकगाथाएं इन्हीं दंत-कथाओं की प्रेरणा का व्यापक विकास है। लेकिन जो दंत-कथाएं अपने मूल और लघु रूप ही में चली आ रही थीं, उन्हीं को आगे लोक कहानियों की संज्ञा मिली अर्थात् जब दंत-कथाओं को आगे चल कर मौखिक परम्परा से पुस्तक संग्रह के रूप में आना पड़ा तब उन्हें लोक कहानियां के नाम से प्रसिद्धि मिली। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध ही में फोर्ट विलियम कालेज की प्रेरणा से ये दन्त-कथाएं विविध लोक कहानियों के संग्रहों में बांधी गई। ये प्रयत्न उर्दू-हिन्दी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से हुए, जैसे, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शुक बहत्तरी, तूतीनामा, सारंगा सदावृक्ष, आदि।

लेकिन लोक कहानियों का मूल और शुद्धतम क्षेत्र लोक वार्ता के अंतर्गत आता है। लोक वार्ता से तात्पर्य हमारे जन विश्वास, आचरण, रीति-रिवाज, के आधार पर घर-गृहस्थी में प्रचलित कहानियों, गीतों, कहावतों से है। लोक रुचि में इस प्रवृत्ति की मूल अधिष्ठात्री है नारी। इन्हों ने ही मुख्यतः अपनी लोक संस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों, अनुष्ठानों पूजा-विधानों को अपनी मौखिक कहानियों में बाँध रखा है। दूसरी ओर उस ने अपने सांसारिक उद्गार, उत्सव समारोहों को गीतों में प्रचलित किया। अतः लोकवार्ता के अंतर्गत घर-गृहस्थी में प्रचलित आख्यान और गीत आते हैं। ये लोकगीत भारतीय जनरुचि के प्राण हैं तथा इन का प्रचलन हिन्दी प्रदेश के समस्त भागों और उन की बोलियां भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी और राजस्थानी में है। ये लोक कहानियाँ मुख्यतः चार प्रकार की मिलती हैं।

१. उपदेशात्मक २. मनोरंजनात्मक
३. वृत्तात्मक ४. प्रेमात्मक

इन समस्त प्रकार की कहानियों की शैली वर्णनात्मक होती हैं। यही कारण है कि ऐसी कहानियों को डा० दिनेशचन्द ने कथा कहा है तथा इन लोक कहानियों को अन्य प्रकाश में चार भागों में बाँटा[1] है (१) रूप कथा (Supernatural-Tales) (२) हास्य कथा (Humorous Tales) (३) व्रत कथा (Religious Tales) और (४) गीत कथा (Nursery Tales) वस्तुतः इस के ऊपर के वर्गीकरण में उपदेशात्मक और मनोरंजनात्मक कहानियाँ शैली की दृष्टि से प्रायः रूपकथात्मक (Supernaltural) ही होतीं हैं, इन दोनों में अमानवीय शक्तियां, देवताओं पृथ्वी और आकाश, आत्मा, तथा परलोक, शकुनों, अपशकुनों, भविष्य-वाणियों, आकाश-वाणियों तथा कभी-कभी भूत-प्रेतों तथा अन्य शक्तियों को लेकर कहानियाँ आती हैं। वृत्तात्मक और प्रेमात्मक कथाओं में भी परमानवीय जगत्, वनस्पति जगत्, पशु जगत्, मानव जगत्, तथा भूत प्रेतों के जगत् से संवेदनाएं लेकर कहानियाँ निर्मित हुई हैं। व्रज की लोक कहानियाँ[2], बुन्देलखंड की कहानियाँ[3], भोजपुरी, अवधी, और छत्तीसगढ़ी की लोक कहानियों में इन बातों के विस्तृत उदाहरण मिलेंगे तथा उन के प्रकाश में अनेक कहानियाँ अपने सहज रूप में मिलेंगी ये कहानियाँ अपने सहजतम रूप में समूचे हिन्दी प्रदेश की धरती की आत्माएं हैं और ये आत्माएं जन जीवन में आमोद-प्रमोद, मनोरंजन और प्राणशक्ति देती रही हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में उन लोक कहानियों, वार्ताओं की ओर डा० ग्रियर्सन ने हमारे शिष्ट समाज को सर्व प्रथम प्रेरित किया। अतः इन लोक कहानियों के विविध संग्रहों के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति हो रही थी और उस के रूप के विविध प्रयोग चल रहे थे, उस समय प्रयोग और प्रयास की दिशा में जो शक्ति सब से अधिक प्राणशक्ति दे रही थी, वह इन्हीं लोक कहानियों की शक्ति थी। इसी उद्गम सूत्र से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति को सब से अधिक प्रेरणा मिली और उस समय प्रायः समस्त हिन्दी कहानीकारों की पहली मौलिक रचनाएं इन्हीं

---

[1] देखिये, फोक लिटरेचर आफ बंगाल : डा० दिनेशचन्द्र

[2] व्रज की लोक कहानियाँ : संपादक श्री सत्येन्द्र एम० ए० व्रज साहित्य मण्डल मथुरा, सं० २००४

[3] संग्रहकर्ता शिवसहाय चतुर्वेदी पाषाण नगरी तथा बुन्देलखंड की कहानियाँ

लोक कहानियों की प्रतिमाएं थीं। उदाहरणस्वरूप, पहले हम 'सरस्वती' की प्रारम्भिक कहानियों को लेते हैं। लाला पार्वती नंदन की कहानियाँ प्रेम का फुआरा,[1] जीवनाग्नि,[2] भूतों वाली हवेली[3], नरक[4] गुलजार आदि। स्पष्ट रूप से इन्हीं लोक कहानियों की प्रेरणा शक्ति से लिखी गई हैं। प्रेम का फुआरा में प्रेम का चमत्कार है लोक कहानियों की भाँति इसका भी विकास, जादू और कौशल से किया गया है। जीवनाग्नि, में लोक कहानी की राजा-रानी, राजकुमार और राजकुमारी शैली की प्रेरणा हैं। जीवनाग्नि, में "एक व्यक्ति को धनपत राय को चिट्ठी मिलती है कि वे मर गए और अपने एक मात्र लड़के रज्जन को तथा एक बक्स को उन्हें सौंप गए हैं। जब रज्जन बीस वर्ष का हुआ, तब उसने उस बक्स को खोला, उसमें पिता जी ने एक कागज छोड़ रखा था, जिसमें लिखा था कि दक्षिण सागर के आसपास एक द्वीप है वहाँ एक स्त्री है। उसके पास जीवनाग्नि का गोला है उसे देखने से आदमी सहस्रों वर्ष जीता रहेगा। वह वहाँ जाता है और अनेकानेक बाधाओं, यात्राओं को समाप्त करता हुआ अपने अभियान को सम्पन्न करता है।" भूतों वाली हवेली और नरक गुलजार, में भूत-प्रेतों और अंध विश्वासों के धरातल पर निर्मित कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ लोक कहानियों के बहुत समीप हैं। इस तरह इन जासूसी कहानियों के भी उद्‌गम के सूत्र इन्हीं लोक कहानियों में है। शुक्ल जी की कहानी, ग्यारह वर्ष का समय[5] भी प्रेमात्मक लोक कहानियों से बहुत प्रेरित हैं "दो अनजाने, बिछड़े हुए पति-पत्नी का एकाएक खंडहर में मिलना, कहानियाँ कहना, पहचान जाना और दोनों का आदर्श संयोग", ये सब लोक प्रेम कहानियों के तत्व हैं। दूसरी ओर इन्दु में प्रसाद की कहानी ग्राम, और चन्दा, इसी उद्‌गम सूत्र की प्रेरणा स्वरूप आई हैं। प्रसाद के आगे की समस्त प्रारम्भिक कहानियाँ, जैसे, करुणा की विजय, उस पार का योगी, प्रतिमा, दुखिया, और पाप की पराजय, आदि निश्चित रूप से लोक कहानियों से प्रेरित हैं। वही प्रेम, करुणा संवेदना, आदर्श, संयोग आदि लोक कहानियों वाले तत्व इन कहानियों में सर्वत्र मिलते हैं। इलाचन्द

[1] सरस्वती, भाग २ संख्या ५, पृष्ठ १६६

[2] सरस्वती, भाग २ संख्या ११ पृष्ठ ३६२ ,

[3] सरस्वती, भाग ४ संख्या ५ से ८ तक

[4] सरस्वती, भाग ६ संख्या ६

[5] सरस्वती, भाग ४ संख्या ६

जोशी की आदि कहानी, सजनवाँ[1], और पं० विश्वम्भर नाथ जिज्जा की आदि कहानी, विदीर्ण हृदय[2], में भी यही तत्व मिलते हैं।

इस तरह से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति में इन लोक कहानियों की प्रेरणा सब से अधिक रही है। मूलतः इसी उद्गम सूत्र से हिन्दी कहानियों में जासूसी और सामाजिक प्रेमात्मक कहानियों की सृष्टि हुई है।

सामाजिक आदर्शों तथा स्नेह, करुणा के मूलमंत्रों की दीक्षा इन्हीं कहानियों ने हिन्दी के आदि कहानीकारों को दी है। लोक कहानियों से विशुद्ध कलात्मक प्रेरणा हिन्दी कहानियों को भले ही न मिली हो लेकिन विशुद्ध भावात्मक प्रेरणा इसे निश्चित रूप से मिली है इस का सब से बड़ा कारण यही रहा है कि हिन्दी के प्रायः समस्त आदि कहानीकार किसी न किसी रूप में जन-जीवन, जन-साहित्य, जन-संस्कृति और ग्रामों से संबंधित थे। वस्तुतः हिन्दी के आदि कहानीकारों को अत्यन्त स्वाभाविक रूपों में ये लोक कहानियाँ दादा-दादी, मां-बाप, हित-मित्रों और दोस्तों से, मौखिक रूप में सुनने को मिली होंगी यही कहानियाँ उन की आत्माओं में भावी कहानीकार की चेतना स्वरूप में प्रतिष्ठापित हुई होंगी। इन लोक कहानियों की ओर ये आदि हिन्दी कहानीकार इसलिए और भी आकर्षित हुए होंगे कि उस समय पश्चिमी दृष्टिकोण लोक कथाओं के पक्ष में अधिक सहानुभूति संपन्न हो गया था फलतः इस की ओर से हीन-ग्रन्थि की भावना नष्ट हो कर इन कहानीकारों में जन-प्रेम, स्वाभिमान और आत्म-प्रेम की भावना जगी होगी और लोक कहानियाँ अपने भावात्मक और प्रेरणा स्वरूप में अधिक अंशों में हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति की उद्गम सूत्र बनी होंगी।

प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के उद्गम सूत्र का संबंध प्रारम्भिक बंगला कहानियों से बहुत है। भारतेन्दु युग ही में हिन्दी नाटकों और उपन्यासों से बंगला के उपन्यास और नाटकों से संबंध जुड़ चुके थे। इन के हिन्दी अनुवाद इस युग की सब से बड़ी विशेषता रही है। इन अनुवादों में भारतेन्दु द्वारा बंकिम कृत राजसिंह, राधाकृष्ण दास द्वारा तारकचंद्र गंगुली कृत, स्वर्णलता, प्रतिमाणा अबला, बंकिम कृत राधारानी, गदाधर सिंह द्वारा

---

[1] हिन्दी गल्प माला, भाग २ अंक ८, पृष्ठ २५१, ३६५

[2] इन्दु कला, ६ खंड २ किरण १, पृष्ठ ४४, ४८

बंकिम कृत, दुर्गेशनन्दिनी, किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा, प्रेममयी, और लावण्य-मयी, राधाचरण गोस्वामी द्वारा श्रीमती सरन कुमारी घोषाल कृत दीप निर्वाण, और विरजा, विजया नंद त्रिपाठी द्वारा भूदेव मुखोपाध्याय कृत, सच्चा सपना, राधिकानाथ वन्द्योपाध्याय कृत स्वर्णबाई, प्रतापनारायण मिश्र द्वारा बंकिम कृत, युगलांगुरीय, और कपाल कुंडला, आदि के अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

नाटकों की दिशा में बंगला से हिन्दी अनुवाद उपन्यासों की अपेक्षा कम हुए। इन में भी रायकृष्ण वर्मा द्वारा, राजकिशोर दे कृत पद्मावती द्वारका नाथ गांगूली कृत, वीरनारी, मधुसूदन दत्त कृत, कृष्णाकुमारी, और मुंशी उदित नारायण लाल द्वारा मनमोहन वसु कृत, सती नाटक, मुख्य हैं। लेकिन भारतेन्दु युग में प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी नाटकों पर इन बंगला अनुवादों का कोई भी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।[1] परन्तु हिन्दी उपन्यासों पर बंगला उपन्यासों का प्रभाव अपूर्व ढंग से पड़ा। इसी परम्परा सूत्र से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति में बंगला की प्रारम्भिक कहानियों ने अनन्य प्राण-शक्ति दी। विशुद्ध शिल्पविधि की दृष्टि से, बंगला कहानियों के अनुवादों के साथ-साथ हिन्दी के आदि कहानीकारों ने मौलिक हिन्दी कहानियों की सृष्टि की। जिन प्रेरणाओं से हिन्दी कहानी कला का जन्म हुआ और इस की स्वतंत्र शिल्प-विधि का विकास हुआ, उन समस्त प्रेरणा सूत्रों में बंगला की ये प्रारम्भिक कहानियाँ सब से अधिक प्राणशक्ति दे रही थी। इस के प्रमाण में हम सरस्वती, इन्दु, और हिन्दी गल्प माला, के अंकों को देख सकते हैं। 'सरस्वती' के चौथे ही वर्ष के संख्या दो और तीन में रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानी; दृष्टिदान[2], के नाम से हिन्दी में अनूदित होकर आई। टैगोर की इस प्रथम हिन्दी अनूदित कहानी में अपूर्व भावुकता तथा सूक्ष्म वर्णन-शैली का दर्शन होता है। स्थान-स्थान पर चिन्तन, मनन, (Reflection) से कहानी में कहानीकार के व्यक्तित्व की पैठ मिलती है। इस में चरित्र प्रतिष्ठापना के प्रकाश में आदर्श का सफल पुट दिया गया है। आगे बंग महिला श्रीमती नीरदवासिनी घोष द्वारा लिखित बंगला कहानी का, कुंभ में[3] छोटी बहू के नाम से, अनुवाद हुआ है उसी वर्ष

---

[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ० २६७

[2] सरस्वती, १६०३ अंक ४ संख्या २, ३ अनुवादक कुमुद बंधु मित्र

[3] सरस्वती, १६०६ ंक ७ संख्या ६ पृ० ३४२

आगे की संख्या में बंग महिला ने टैगोर की अन्य कहानी, दान प्रतिदान, का हिन्दी अनुवाद किया है। आगे चलकर इन्हों ने फिर दालिया[1] नाम से टैगोर की एक कहानी का अनुवाद दिया है। इन्दु, में बंग भाषा के प्रसिद्ध प्रवासी पत्र से अनेक बंगला कहानियाँ अनूदित होकर आई हैं। इन में दीवार की आड़[2], जूता की कथा[3], किरण[4], मन का दान[5], प्रेम पुस्तक[6], ललिता[7], प्रियम्वदा और पोस्टकार्ड[8], और मेरी प्राण[9], बंगला कहानियाँ आती हैं ये कहानियाँ अधिकांश रूप में पं० पारसनाथ जी त्रिपाठी द्वारा अनूदित की गई हैं जिन में अनुवादक ने मूल बंगला कहानीकारों के नामों को नहीं दिया है। मूल बंगला नामों के साथ आई हुई, इन्दु, में अनूदित कहानियाँ कितनी हैं और इन बंगला लेखकों में श्री पांचकौड़ी बन्द्योपाध्याय और अनादि धन बन्द्योपाध्याय, के नाम विशेष ढंग से उल्लेखनीय हैं, हिन्दी गल्पमाला में भी अनादि धन बन्द्योपाध्याय कृत, चोट[10] कहानी का हिन्दी अनुवाद आया है। इस तरह से सरस्वती, इन्दु, हिन्दी गल्पमाला, हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति के माध्यम से तीनों हिन्दी मासिक पत्रों में बंगला कहानियाँ अनवरत आती रहीं और इन से हिन्दी कहानियों के विकास में अपूर्व प्रेरणा मिलती रही। इस संबंध में हिन्दी कहानी-कला अपने उद्गम सूत्र की दिशा में टैगोर, चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय, पांचकौड़ी, और, अनादि धन बन्द्योपाध्याय, के नाम कभी नहीं भुलाये जा सकते। वस्तुतः बंगला कहानियों के जन्मदाता यही व्यक्ति थे और ये पश्चिम के कहानी-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। प्रभात कुमार बन्द्योपाध्याय, भी बंगला कहानियों की उत्पत्ति और विकास के अन्य प्रसिद्ध कहानीकार

---

[1] इन्दु कला, ४ खंड १ किरण १ पृ० ५४
[2] इन्दु कला, ४ खंड १ किरण ५ पृ० ४४०
[3] इन्दु कला, ४ खंड १० किरण ५ पृ० ४४७
[4] १; इन्दु कला, ५ खंड १ किरण १ पृ० ८१
[5] इन्दु कला, ५ खंड १ किरण २ पृ० १४१
[6] इन्दु कला, ५ खंड १ किरण ४ पृ० ३६१
[7] इन्दु कला, ५ खंड २ किरण ५ पृ० ४२७
[8] इन्दु कला, ६ खंड १ किरण १ पृ० ४६२
[9] इन्दु कला, ६ खंड १ किरण ५ पृ० ४८०
[10] हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक ६ पृ० १७०

है और इन्हीं से भी प्रभाव ग्रहण किया [illegible] लेकिन इन की कहानियां[1], हिन्दी में (१९२६ ई०) में [illegible] किया जा सका है। टैगोर और प्रभातकुमार मुखर्जी के साथ [illegible] कहानियों के शिल्पविधि की उत्पत्ति और इस के उद्गम स्रोतों की रचना में प्रभात कुमार की कहानियां बिल्कुल नहीं आतीं। इस [illegible] में [illegible] प्रसिद्ध कहानियां आती हैं जिन्हें टैगोर आदि ने बंगाल [illegible] प्रसिद्ध [illegible] में लिखी थीं।

हिन्दी कहानियों के शिल्पविधि के उद्गम युग और इस पर प्रभाव की दृष्टि से [illegible] और [illegible] के [illegible] हैं एक विशुद्ध भारतीय और दूसरा विशुद्ध पाश्चात्य। शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु, संस्कृत नाटकों की कथावस्तु, [illegible] कहानियां आदि अनूदित हिन्दी कहानियों के कथानक के निर्माण में प्रेरक शक्तियां रही हैं। दूसरी ओर मौलिक कहानियों, अन्य कहानियों (जिन की संख्या कम नहीं है) तथा तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक शक्तियों और उन की विविध विचारधाराएं इस की आधारभूत प्रेरक शक्तियां रही हैं, जिन की प्रेरणा से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का आविर्भाव हुआ।

(ख) विकास युग

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद हिन्दी कहानियों के विकास युग के प्रवर्तक हैं। इन्हीं की कहानीकला अथवा शिल्पविधानात्मक प्रवृत्तियों से समूचा युग प्रभावित रहा। आविर्भाव युग से आगे चल कर इन तीनों शक्तियों ने हिन्दी कहानी शिल्पविधान को इतना समृद्धिशाली बनाया कि इन तीनों कलाकारों की प्रतिभा के संबंध में आश्चर्य होता है। इस का सब से बड़ा कारण यह था कि हिन्दी कहानियों के आविर्भाव में भी इन शक्तियों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। अतएव कुछ ही वर्षों की साधना के उपरान्त इन तीनों शक्तियों के द्वारा कहानी शिल्पविधान का इतना विकास हुआ कि शीघ्र ही हिन्दी साहित्य के सब अंगों के समक्ष हिन्दी कहानी-साहित्य का स्थान गौरवपूर्ण सिद्ध हुआ। इस युग के कहानी शिल्पविधान में भिन्न-भिन्न उद्गम स्रोतों से इसे प्रेरणा और विकास मिला, यह प्रश्न आविर्भाव युग की अपेक्षा यहाँ पूर्ण स्पष्ट है। क्योंकि

---

[1] प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ : अनुवादक लल्ली प्रसाद पाण्डेय इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग १९२६

इस युग में आकर एक ओर हिन्दी कहानी-साहित्य की स्वतंत्र सत्ता निर्मित हुई, और दूसरी ओर इस की शिल्पविधि तथा इस की स्वतंत्र प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा हुई।

उद्गम सूत्र के अध्ययन की दिशा में जिस नई शक्ति का संबंध इस युग में स्थापित हुआ, वह है पश्चिमी कहानी साहित्य का सम्पर्क। वस्तुतः यह शक्ति आविर्भाव युग के उद्गम सूत्रों और प्रभाव डालने वाली शक्तियों से एक नई और स्वतंत्र शक्ति है। इस तरह प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से आविर्भाव युग की कुछ शक्तियाँ जैसे प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ और लोक कहानियाँ इस युग को भी यथासंभव प्रेरित करती रहीं। लेकिन इस दिशा में जो एक नवीन उद्गम सूत्र इस युग को प्राप्त हुआ, वह है पश्चिमी कहानी साहित्य का सम्पर्क।

पश्चिमी कहानी साहित्य का सम्पर्क

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश का प्रथम पश्चिमी साहित्यिक सम्पर्क अंग्रेजी के माध्यम से आरम्भ हुआ। क्योंकि अंग्रेज हमारे शासक थे तथा हमें उन की शिक्षा योजनाओं के बीच से गुजरना पड़ा। लेकिन कहानी-साहित्य की दिशा में अंग्रेजी साहित्य उन्नीसवीं शताब्दी तक अमेरिका, रूस और फ्रांस के सामने नगण्य था। आरम्भ और विकास की दृष्टि से अमेरिका और रूस कहानी-साहित्य की दिशा में सब से पहले आते हैं। यही वे दो उद्गम सूत्र हैं, जहाँ से संसार में कहानी-कला का विकास हुआ। अमेरिका में एडगर एलन पो, ने कहानी-कला को सर्व प्रथम जन्म दिया[1]। इस का समय १८०९ से १८४९ ई० के बीच आता है। इस ने सर्व प्रथम मनोविज्ञान और चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व के धरातल से कहानियों को आविर्भूत किया। इसी उद्गम सूत्र से फ्रांस में कहानी-कला का जन्म हुआ। पो, के प्रभाव से फ्रांस में कहानी का जन्म हुआ और, बाल्ज़ाक, मूसेट, गाटियर, विगनी, मिरमी, वोल्तियर, की हस्तलाघवता से शीघ्र ही यह कला अपने विकास की ओर अग्रसर हुई। वस्तुतः बाल्ज़ाक की प्रतिभा ने प्राचीन कला के स्थान पर आधुनिक कहानी-कला की प्रतिष्ठापना की। इस ने जिस नवीन शिल्पविधान की अवतारणा की उस के प्रकाश में उस शताब्दी के समस्त प्रसिद्ध कहानीकारों ने कहानी-कला की सेवा की। कहानी-कला के आरम्भ और विकास का दूसरा उद्गम सूत्र रूस है। अमेरिका में पो, की भाँति यहाँ पुश्किन इस कला का स्वतंत्र अधिष्ठाता है। इस ने १८३० ई० में सर्व प्रथम पाँच

1. Dictionary of world Literature, P. 522

लौकिक आधुनिक कहानियों का संग्रह (Tales of Balkin) 'टेल आफ़ बाल्किन' के नाम से प्रकाशित किया तथा १८३१ ई० के बाद इस ने दो कहानियाँ दी, 'कैप्टन डाटर', 'दी क्वीन आफ़ स्पेडर' लिखीं तथा रूसी कहानी साहित्य का आविर्भाव[1] किया। अमेरिका और रूस इन दो कहानी-कला के उद्गम सूत्रों के बीच फ्रांस वस्तुतः अमेरिका से संबद्ध था। अमेरिका में पो, के उपरान्त ब्रेटहार्ट (१८३२, १६०२ ई०) ने अपनी शक्तिशाली कला द्वारा आधुनिक कहानी शिल्पविधान में आश्चर्यजनक विकास किया[2]। इस के उपरान्त ओ० हेनरी में अमरीकी कहानी कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। वस्तुतः ब्रेटहार्ड की ही धारा के साथ फ्रांस में, प्लायवेयर, मोपाँसा, आदि ने कहानी-कला को और भी उत्कृष्ट बनाया। क्योंकि अमरीकी कहानी धारा की अपेक्षा मोपाँसा, प्लायवेयर आदि फ्रांसीसी कहानीकारों में कुछ अधिक रंगीनी, चपलता और क्रियाशीलता थी। वास्तव में ओ० हेनरी अवश्यमेव इन विशेषताओं से परिपूर्ण था। उधर रूसी-कहानी धारा में इन्हीं कलात्मक प्रवृत्तियों के समानान्तर तुर्गनेव, चेखव, भी थे। तुलनात्मक दृष्टि से इस रूसी कहानी-धारा में अमरीकी और फ्रांसीसी कहानी-धारा से शिल्पविधि के रूप में अधिक सजीवता और क्रियाशीलता थी। क्योंकि, चेखव, के व्यक्तित्व में (१८६०, १६०४ ई०) शिल्पविधान की गहराई और बारीकी दोनों अनन्य ढंग की थी, जिस की तुलना में विश्व का कोई कहानीकार नहीं टिक सकता। इस ने कहानी-कला को जीवन के यथार्थतम धरातल पर उतारा और जीवन की नगण्य घटनाओं, कर्म-प्रेरणाओं द्वारा चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया। लेकिन सम्यक प्रभाव और ख्याति की दिशा में, टालस्टाय, चेखव, से भी आगे हैं। इस का मुख्य कारण है टालस्टाय का भाव-पक्ष, जीवन के प्रति अनन्य निष्ठा और शोषित वर्ग के प्रति अनन्य समवेदना। काल की दृष्टि से, चेखव, और टालस्टाय (१८२८, १६०४ई०) प्रायः समकालीन ही कहानीकार हैं लेकिन प्रभाव की दृष्टि से चेखव टालस्टाय के समक्ष कम हैं। चेखव का प्रभाव रूसी कहानी

---

1. History of Russian Literature by D. S. Morsky.

2. "Next to Poe in skill stands Bretharte, who in his early stories has left unique first hand record of the lawless times of the gold rush of 1850—World's great short stories-Introduction P. 8.

साहित्य पर बहुत ही कम पड़ा। संसार के कहानी-साहित्य में चेखव की कला की वास्तविक उत्तराधिकारिणी इंगलैण्ड की, कैथराइन मैसफील्ड (१८८८, १९२३ ई०) है। रूसी कहानी-साहित्य में इस का एक भी उत्तराधिकारी नहीं मिलेगा। लेकिन टालस्टाय का प्रभाव संसार के इतिहास में उस समय, गेटे, के उपरान्त साहित्य पर सब से अधिक पड़ा।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि का विकास युग प्रभाव और उद्गम सूत्र की दृष्टि से वस्तुतः इसी रूसी कहानी-धारा से विशेष रूप से संबद्ध है। फ्रांसीसी कहानी-धारा में मोपाँसा की धारा से भी इस का सम्बन्ध जुड़ा था, जिस की चर्चा हम आगे करेंगे।

ऊपर की पंक्तियों में पश्चिम की कहानी-धारा के आरम्भ और विकास की चर्चा अत्यन्त संक्षेप और सूत्रात्मक ढंग से की गई है। उक्त विवरण में अंग्रेजी कहानी-धारा की क्या स्थिति थी, इस की चर्चा अभी तक नहीं की गई। क्योंकि उक्त धाराओं में अंग्रेजी कहानी साहित्य का स्थान अत्यन्त नगण्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जब अमेरिका फ्रांस और रूस में कहानी-कला अपने विकास की एक सीमा पर पहुँच रही थी, उस समय अंग्रेजी कहानी-धारा का आरम्भ हो रहा था। इस तरह उन्नीसवीं शती के अन्तिम दिनों में कहीं जाकर इंगलैण्ड में कहानी-कला विकसित होकर लोकप्रिय हो सकी। अनेक लेखकों ने इसे अपनाया, जिनमें स्टीवेन्सन, कोननडायल, किपलिंग, वेल्स आदि उल्लेखनीय हैं। इस तरह अंग्रेजी कहानी-साहित्य उन्नीसवीं शती में अन्य देशों की कहानी-धारा की अपेक्षा अत्यन्त अजागरूक और पिछड़ा था। यद्यपि इस पर अमेरिकी और फ्रांसीसी कहानी-धारा का प्रभाव तत्काल ही पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था। लेकिन ऐसा क्यों नहीं हुआ : इस का एक ही कारण था कि उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कथाकार जैसे सर वाल्टर स्काट, (१७७१-१८३२ ई०) वाशिंगटन इरविंग (१७८३, १८५९ ई०) और चार्ल्स डिकन्स (१८१२-७० ई०) आदि। कहानी-कला की अपेक्षा गद्य के अन्य प्रकार उपन्यास, निबंध और लेख लिखने में व्यस्त थे, ठीक उसी तरह जैसे भारतेन्दु युग में हिन्दी के लेखक उपन्यास और नाटक के पीछे लगे हुए थे।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिन्दी लेखकों के सामने केवल अंग्रेज थे और उन का अंग्रेजी साहित्य था। इसी के माध्यम से हमारा पश्चिमी कहानी-साहित्य से सम्पर्क स्थापित होना स्वाभाविक था। उस समय शिक्षा-केन्द्रों, योजनाओं और परीक्षाओं के साधन से जो कहानी-साहित्य के नाम से समग्र हिन्दी पाठकों

साहित्य पर बहुत ही कम पड़ा। संसार के कहानी-साहित्य में चेखव की कला की वास्तविक उत्तराधिकारिणी इंगलैण्ड की, कैथराइन मैंसफील्ड (१८८८, १९२३ ई०) है। रूसी कहानी-साहित्य में इस का एक भी उत्तराधिकारी नहीं मिलेगा। लेकिन टालस्टाय का प्रभाव संसार के इतिहास में उस समय, गेटे, के उपरान्त साहित्य पर सब से अधिक पड़ा।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि का विकास युग प्रभाव और उद्गम सूत्र की दृष्टि से वस्तुतः इसी रूसी कहानी-धारा से विशेष रूप से संबद्ध है। फ्रांसीसी कहानी-धारा में मोपाँसा की धारा से भी इस का सम्बन्ध जुड़ा था, जिस की चर्चा हम आगे करेंगे।

ऊपर की पंक्तियों में पश्चिम की कहानी-धारा के आरम्भ और विकास की चर्चा अत्यन्त संक्षेप और सूत्रात्मक ढंग से की गई है। उक्त विवरण में अंग्रेजी कहानी-धारा की क्या स्थिति थी, इस की चर्चा अभी तक नहीं की गई। क्योंकि उक्त धाराओं में अंग्रेजी कहानी साहित्य का स्थान अत्यन्त नगण्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जब अमेरिका फ्रांस और रूस में कहानी-कला अपने विकास की एक सीमा पर पहुँच रही थी, उस समय अंग्रेजी कहानी-धारा का आरम्भ हो रहा था। इस तरह उन्नीसवीं शती के अन्तिम दिनों में कहीं जाकर इंगलैण्ड में कहानी-कला विकसित होकर लोकप्रिय हो सकी। अनेक लेखकों ने इसे अपनाया, जिनमें स्टीवेन्सन, कोननडायल, किपलिंग, वेल्स आदि उल्लेखनीय हैं। इस तरह अंग्रेजी कहानी-साहित्य उन्नीसवीं शती में अन्य देशों की कहानी-धारा की अपेक्षा अत्यन्त अजागरूक और पिछड़ा था। यद्यपि इस पर अमेरिकी और फ्रांसीसी कहानी-धारा का प्रभाव तत्काल ही पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था। लेकिन ऐसा क्यों नहीं हुआ : इस का एक ही कारण था कि उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कथाकार जैसे सर वाल्टर स्काट, (१७७१-१८३२ ई०) वाशिंगटन इरविंग (१७८३, १८५९ ई०) और चार्ल्स डिकन्स (१८१२-७० ई०) आदि। कहानी-कला की अपेक्षा गद्य के अन्य प्रकार उपन्यास, निबंध और लेख लिखने में व्यस्त थे, ठीक उसी तरह जैसे भारतेन्दु युग में हिन्दी के लेखक उपन्यास और नाटक के पीछे लगे हुए थे।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिन्दी लेखकों के सामने केवल अंग्रेज थे और उन का अंग्रेजी साहित्य था। इसी के माध्यम से हमारा पश्चिमी कहानी-साहित्य से सम्पर्क स्थापित होना स्वाभाविक था। उस समय शिक्षा-केन्द्रों, योजनाओं और परीक्षाओं के साधन से जो कहानी-साहित्य के नाम से समग्र हिन्दी पाठकों

मोपाँसा की कहानियाँ-अनुवादक इलाचन्द जोशी।

उक्त उदाहरणों से पूर्णतः स्पष्ट है कि पश्चिमी कहानी-साहित्य का संपर्क हिन्दी कहानी के विकास युग को मिल सका। इस के लिए. प्रेमचन्द का उद्योग और उन की क्रियाशीलता कभी नहीं भुलाई जा सकती। उन्हों ने ही सर्व प्रथम इस का अनुभव किया कि बंगला के माध्यम से कहानी शिल्पविधि की व्यापकता में जाना अथवा अप्रत्यक्ष रूप में पश्चिमी कहानी-साहित्य के संपर्क में आना, सर्वथा भूल है। इस से हिन्दी कहानी शिल्पविधि को कोई सम्यक और सारभूत प्रेरणा नहीं मिल सकती। अतएव प्रेमचन्द ने सीधे टालस्टाय, चेखव, तुर्गनेव और मोपाँसा आदि प्रतिनिधि कहानीकारों की कला से हिन्दी का संपर्क स्थापित किया इस प्रेरणा से विकास युग के कुछ अन्य कहानीकार जैसे कौशिक, सुदर्शन, सत्यजीवन वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कृष्णानंद गुप्त और चतुरसेन शास्त्री प्रभावित हुए और उन्हों ने उक्त पश्चिमी धारा में रूस और फ्रांस के कहानी-कारों का यथासंभव अनुसरण किया। अतः विकास युग के उद्गम सूत्र की दिशा में पाश्चात्य कहानी-साहित्य का संपर्क, इस की सब से प्रमुख विशेषता है। पश्चिम से मुख्यतः रूसी और फ्रांसीसी में कहानी शिल्पविधि की धारा से यह युग विशेषरूप से प्रभावित रहा। प्रेमचन्द इस सत्य के स्पष्टतः प्रतीक हैं। इन की कहानी-कला में मानववाद, सुधार का उत्कट आग्रह, दलित-शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति और विशुद्ध कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य इतिवृत्त का स्पष्ट आकार, आदि विशेषताएं टालस्टाय, मोपाँसा आदि की कला और इन के दृष्टिकोण के प्रभाव से संबंधित हैं। विकास-युग की दूसरी धारा के प्रतीक प्रसाद की कहानी धारा से इस पाश्चात्य कहानीधारा का संपर्क बिल्कुल नहीं था। यह सत्य उन की भावमूलक परम्परा से स्पष्ट है। वस्तुतः उद्गम सूत्र की दृष्टि से प्रसाद की कहानी-कला का संबंध आंशिक रूप से प्राचीन प्रेमाख्यानों से जोड़ा जा सकता है, अन्यत्र से नहीं।

(ग) संक्रान्ति युग

पश्चिमी कहानी-साहित्य से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का जो संपर्क विकास युग में स्थापित हुआ; उस का पूर्ण प्रतिफलन इस के संक्रान्ति युग में प्रकट हुआ। इस युग में अमेरिकी, फ्रांसीसी अंग्रेजी और रूसी आदि समस्त प्रतिनिधि पश्चिमी कहानीधाराओं से हिन्दी कहानीधारा का पूर्ण सान्निध्य स्पष्ट

हुआ। एक प्रकार से संक्रान्ति युग की हिंदी कहानी कला युगीन प्रवृत्तियों के धरातल से विकसित हुई। इस की प्रेरणा में आधुनिक युग की वे प्रतिनिधि प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं, जो इस युग के निर्माण में सफल हुई हैं, जैसे मनोविज्ञान और इस के अंतर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत स्थितियों के लिए साम्यवाद, मार्क्सीय मत, यौनवाद, फ्रॉयडियन मत आदि। सम्यक जीवन-दर्शन की खोज और उस का विवेचन भी इस युग की एक प्रधान प्रवृत्ति रही है। फलतः इन युगीन प्रवृत्तियों के धरातल पर कहानी-कला के निर्माण की प्रेरणा ने इस युग के कहानीकारों को दो दिशाओं की ओर प्रेरित किया। एक थी नयी शिल्पविधियों की दिशा और दूसरी थी उन प्रवृत्तियों की दिशा, जिन से इस युग का कहानीकार प्रभावित होकर उन्हें अपनी कहानी कला में अभिव्यक्त करता, इन दोनों दिशाओं के लिए उस का झुकाव अमेरिका, रूस और ब्रिटेन की ओर प्रेरित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। क्योंकि ये युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः पश्चिम से ही आई हैं और दूसरी ओर इन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिए अमेरिकी, फ्रांसीसी, रूसी और अंग्रेजी की कलाओं में उपयुक्त शिल्पविधियों की भी अवतारणा हो गई थी और इस के विकास भी नित्य प्रति होते जा रहे हैं। इस युग में हम पश्चिम से क्यों इतने निकट आए, इस के कुछ और भी कारण उपस्थित किए जा सकते हैं। विकास युग विशुद्ध राष्ट्रीयता का युग था, इस के विपरीत संक्रान्ति युग अंतर्राष्ट्रीयता का युग है। हम अपने साहित्य को निरपेक्ष ढंग से न देख कर अब पश्चिमी साहित्य की सापेक्षता में देखने लगे, अतएव पश्चिमी कहानीधारा के विभिन्न कहानीकारों से इस युग के कहानीकार प्रभावित हुए, उन की कहानी-कला के प्रभाव, उन के शिल्प-विधान, उन की प्रवृत्तियाँ इस युग की हिन्दी कहानी-कला पर पूर्णतः स्पष्ट हैं।

रूसी कहानीधारा

अध्ययन-क्रम की दृष्टि से रूसी कहानी-कला का प्रभाव इस युग पर सब से पहले पड़ा। इस प्रभाव के उद्गम सूत्र में मुख्यतः तीन प्रतिनिधि रूसी कहानीकार, चेखव, टालस्टाय और गोर्की थे। विकास युग ही में ही टालस्टाय की कला का प्रभाव प्रेमचन्द पर पड़ चुका था। इस युग में आकर विशेषतया टालस्टाय की कला के संपर्क में केवल जैनेन्द्र आए वह भी दार्शनिक धरातल की कहानियों में, चेखव, की कला का सब से स्पष्ट प्रभाव इलाचन्द्र जोशी की

कला पर है। छोटी-छोटी नगण्य घटनाओं द्वारा[1] चरित्र का सूक्ष्म उद्घाटन करना, चेख़व की कला की यह विशेषतया जोशी की कहानियों में पूर्णतः स्पष्ट है। व्यापक रूप में चेख़व की कहानी कला में इतनी अपार शक्ति थी कि इस का प्रभाव पश्चिम के अन्य देशों पर पड़ा, ब्रिटेन की कैथराइन मैंसफील्ड, इस के उदाहरण में आती हैं। भारत में चेख़व का प्रभाव उन समस्त कहानीकारों पर पड़ा जिन्हों ने कहानी-कला सीखने तथा अध्ययन करने के लिए रूसी कहानी-साहित्य का अनुशीलन किया। जैनेन्द्र, अज्ञेय की छोटी-छोटी कहानियों पर, चेख़व, की कला की चपलता और मजाव स्पष्ट है। गोर्की की कला का प्रभाव मुख्यतः यहाँ की उन यथार्थवादी कहानियों पर पड़ा जो समाजशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक प्रश्नों के धरातल से लिखी गईं। आधुनिक रूसी कहानी-कला में रिपोर्ताज, सूचनिका की प्रेरणा से हिंदी में सूचनिका का आविर्भाव यहाँ अति आधुनिक प्रयोग हैं।

फ्रांसीसी कहानीधारा

फ्रांसीसी कहानीधारा के अंतर्गत केवल, गाइ द मोपाँसा (१८५०-९३) की कला का प्रभाव हिन्दी कहानी के संक्रान्ति युग पर पड़ा है। इलाचन्द्र जोशी उपेन्द्रनाथ अश्क, की कहानी-कला पर, मोपाँसा की व्यंग शैली नितान्त स्पष्ट है। मुख्यतः जोशी की कला में बौद्धिकता, और सूक्ष्मविश्लेषण की प्रेरणा का उद्गम सूत्र मोपाँसा का वह व्यक्तित्व है जहाँ उस ने अपनी कहानियों में इन तत्वों को आश्चर्यजनक सफलता से अभिव्यक्त किया[2] है। दूसरी ओर उपेन्द्र-नाथ अश्क की कहानी कला ने व्यंग की शैली की प्रेरणा का उद्गम-सूत्र मोंपासा की वे कहानियाँ हैं जिनमें साधारण पात्र यथार्थ घटना के माध्यम से उच्चकोटि के व्यंग प्रस्तुत किए गए।

अमेरिकी कहानीधारा

विकास की दृष्टि ने अमेरिकी कहानी-कला का प्रभाव इस युग पर सब से अधिक पड़ा। एडगर एलन पो से लेकर वर्तमान युग तक, फ्रांसिस ब्रेटहार्ट,

[1] The Lady with the Dog, Sleepy, My Life etc.—Selech Tales of Tchehov.

[2] The Mad Woman, Toine, The Signal etc. The Great Short-stories of Manpassant Pocket-book,

ओ० हेनरी, स्टीनबेक, सरोयान, अर्नेस्ट, हेमिंग्वे, और जानडास पेसोज, आदि के कला-विधानों का प्रभाव हिंदी कहानी के संक्रान्ति युग पर बराबर पड़ता चला आ रहा था। स्पष्ट शब्दों में इस युग में जितने भी कहानी शिल्प-विधियों की दिशा में नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे हैं अथवा हुए हैं उन के उद्गम मूल में प्रायः अमेरिकी कहानी कला की प्रेरणा सब से अधिक है। ओ हेनरी[1] की कला में इतिवृत्त का स्पष्ट होना, घटना का अप्रत्याशित घुमाव एक विशेष प्रकार की गठना और चरम सीमा पर सब से अधिक बल देना, आदि कलात्मक विशेषताओं का प्रभाव उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, और पहाड़ी की कहानी-कला पर पूर्णतः स्पष्ट है। अज्ञेय की कहानी शिल्पविधि में वह विधानात्मक प्रयोग जो उन की कुछ कहानियाँ जैसे, कविप्रिया, दरोंत आदि में आते हैं उस की प्रेरणा में स्टीनबेक[2] का व्यक्तित्व सर्वदा उल्लेखनीय है, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, और जानडोस पेसोज, की शिल्पविधि की प्रेरणा में अति आधुनिक कहानीकार जैसे अमृतराय, शमशेर, धर्मवीर भारती, डा० रघुवंश, राकेश, सर्वेश्वर दयाल, कृष्णनंदन सिन्हा[3], लक्ष्मी नारायण लाल आदि आते हैं अर्नेस्ट हेमिंग्वे, की कला में चरित्र के अवचेतन जगत् का सूक्ष्म विश्लेषण, बौद्धिक विवेचन और चरित्र अत्यन्त कलात्मक व्यंग, ये विशेषताएं परम मूल्य की हैं।

प्रयोगकालीन अवस्था में, कैमरा-विधान और न्यूजरील-विधान, के जन्मदाता जानडोस पेसोज[4], के व्यक्तित्व का प्रभाव हिन्दी कहानी-जगत् में अपूर्व घटना है, इस शिल्पविधि की प्रेरणा से कहानी का रूप कितना बौद्धिक और सांश्लिष्ट हो जायगा इस के प्रमाण में, पेसोज, की कला स्वयं एक ज्वलंत उदाहरण है।

अंग्रेजी कहानीधारा

उन्नीसवीं शती के अंतिम दिनों में जा कर इंगलैंड में कहानी-कला लोक

---

[1] Best Short-Stories of O' Henry [Modern-Library]

[2] Of Mice & Men Jhon Steinbeck [Modern-Library]

[3] हर दम आग : कृष्ण नन्दन सिन्हा—अजन्ता प्रेस, पटना

[4] U. S. A. John-Doss-Passos (London : John Lehmonn).

प्रिय हुई । स्टीवेन्सन, कोनन डायल, किपलिंग और [illegible] प्रभृति लेखकों ने उसे पूर्ण रूप से अपनाया । लेकिन इस समय तक अमेरिकी, फ्रांसीसी, और रूसी कहानीधारा में इतना अधिक विकास हो गया था कि अंग्रेजी कहानी-धारा उन के सामने नगण्य सिद्ध हुई । अतः उस अंग्रेजी कहानीकार इस संक्रान्ति युग को किसी प्रकार की प्रेरणा न दे सके । लेकिन अंग्रेजी कहानी-कला के विकास काल में कोनार्ड, कैथराइन मैंसफील्ड, सोमरसेट मॉम, और डी० एच० लारेन्स, के व्यक्तित्व से इस धारा में भी आश्चर्यजनक सजीवता और क्रियाशीलता उपस्थित हुई । वस्तुतः इस का मुख्य कारण यह था कि अंग्रेजी कहानीधारा के ये विकासकालीन कहानीकार रूसी, फ्रांसीसी और अमेरिकी कहानी कला से प्रेरणा ले कर अपने व्यक्तित्व को उस के अनुरूप बनाने के लिये प्रयत्नशील हुए और इस प्रवृत्ति में इन्हें आशातीत सफलता मिली । ब्रेटहार्ट का यथार्थवाद कल्पनाशक्ति और नाटकीयता का प्रभाव कोनार्ड पर पड़ा, चेखव, (रूस) की कला का प्रभाव कैथराइन मैंसफील्ड पर पड़ा । डी० बाल्ज़ाक फ्रांस से डी० एच लारेन्स, प्रभावित हुआ और सोमरसेट मॉम, की कला पर मोपाँसा (फ्रांस), की कला का इतना सशक्त प्रभाव पड़ा कि सोमरसेट, अंग्रेजी-धारा का मोपाँसा प्रसिद्ध हुआ ।[1]

हिन्दी के संक्रान्ति युग पर, सोमरसेट मॉम, और डी० एच० लारेन्स, की कला का प्रभाव पड़ा । अज्ञेय की वे कहानियाँ जो उन के विस्तृत देशाटन और युद्ध कालीन अनुभवों के धरातल पर लिखी गई हैं, उन की शिल्पविधि की प्रेरणा का उद्‌गम सूत्र सोमेरसेट मॉम, की इस दिशा की-कहानियाँ हैं । डी० एच० लारेन्स के शिल्पविधान से नाटकीयता के तत्व, स्थितियों की योजना में कटाव और दमक जिस से कहानी का संपूर्ण वातावरण डरावना और रोमांच-कारी हो जाय, यह तत्व अज्ञेय ने अपनी कहानी-कला में अपूर्व सफलता से अपनाया है । डी० एच० लारेन्स की कहानियों की वर्ण्य वस्तु की प्रेरणा पहाड़ी की कहानियों में स्पष्ट है ।

---

[1] Mangham has been called, "The English Manpassant, specially, because he followed his french predecessor's tradition in developing stories where irony of fate plays its part and life becomes a tragic joke."–World's Great short stories-Iutroduction p. 10

हिन्दी कहानी के संक्रान्ति युग में पश्चिमी कहानीधारा का संपर्क पूर्ण प्रत्यक्ष ढंग से ही रहा है। प्रभाव और उद्गम सूत्र के जिस रूप और स्तर का अध्ययन हम ने पिछले पृष्ठों में किया है, उस से अधिक सशक्त रूप में भविष्य के हिन्दी कहानीकारों पर इस का प्रभाव पड़ेगा, ऐसा वर्तमान कहानी-कला की प्रवृत्ति से स्पष्ट है।

बंगला कहानियाँ

उद्गम, सूत्र की दृष्टि से इस युग की कहानी-कला पर, टैगोर, की कहानी-कला का भी प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी कहानियों के आविर्भाव और विकास युग में टैगोर, प्रभात कुमार और शरत्चन्द्र की प्रारम्भिक कहानियां की प्रेरणा निश्चित रूप से इस के विकास में प्राणशक्ति दे रही थी। संक्रान्ति युग में पहुँच कर मुख्यतः टैगोर की कहानी-कला का सम्यक प्रभाव, अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व पर पड़ा है। प्रभात कुमार, शरत्चन्द्र का प्रभाव इस युग की कहानी कला पर पूर्णतः नगण्य है। वस्तुतः टैगोर की कला की नाटकीयता, स्थितियां की योजना में अपूर्व गत्यात्मिकता और चरित्र-प्रतिष्ठा में उच्चकोटि की मानव संवेदना और चरित्रनिष्ठा इन की शिल्पविधि की प्रमुख विशेषताएं हैं। इन कलात्मक तत्वों का प्रभाव, अज्ञेय, जैनेन्द्र, की कहानी-कला पर कहीं-कहीं पूर्णतः स्पष्ट है। अज्ञेय की कुछ कहानियाँ जैसे, कोठरी की बात, सिगनेलर, पठार का धीरज, जयदोल, आदि पर टैगोर की कला की प्रेरणा नितान्त प्रकट है, टैगोर की कहानियाँ जैसे सड़क की बात, घाट की बात[1] की प्रेरणा के अंतर्गत अज्ञेय की कहानी, कोठरी की बात आती है। इसी तरह टैगोर की कहानियाँ जैसे, प्यासा पत्थर और स्वर्ण मृग की कला के उद्गम सूत्र से अज्ञेय की कहानियाँ क्रमशः, पठार का धीरज, जयदोल और सिगनेलर आदि संबद्ध हैं। जैनेन्द्र कुमार की कुछ कहानियाँ जैसे, एक रात, राजीव और भाभी, तथा मास्टर साहब, आदि के विधान पर भी टैगोर की कला का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट है।

टैगोर के उपरान्त वर्त्तमान बंगाला-साहित्य में अचित्तकुमार सेन गुप्ता, आनंदराय शंकर, वनफूल, विभूतिभूषन बनर्जी, सुबोध घोष, और ताराशंकर बनर्जी आदि अनेक प्रतिनिधि बंगला कहानीकार[2] हुए हैं। लेकिन इन की

---

[1] घाट की बात, रवीन्द्र साहित्य, भाग १

[2] प्यासा पत्थर, रवीन्द्र साहित्य, भाग २

कहानी-कला में टेकनीक की [illegible] बढ़ जाती [illegible] है, [illegible] हिन्दी कहानीकार किसी भी रूप में हीन न होगा। अतः हिन्दी [illegible] युग में हिन्दी कहानियाँ इतनी [illegible] हैं, [illegible] है कि अब इस युग की हिन्दी कहानी-कला [illegible] की अपेक्षा बिल्कुल नहीं करती। इस का विकास [illegible] कि इस का कहानी-साहित्य संसार के किसी कहानी-साहित्य की तुलना में रखा जा सकता है।[1]

---

[1] सड़क की बात, रवीन्द्र साहित्य, भाग ३ अनु०, धन्य कुमार जैन

कहानीकला की समीक्षा

कला की दृष्टि से कहानी, गद्यकाव्य के समस्त रूपों में श्रेष्ठ है और इस की यह कलात्मक श्रेष्ठता इस के लघु विस्तार में है। गद्यकाव्य के अन्य रूपों की अपेक्षा इस में जहां एक ओर भौतिक उपादानों की सब से कम, सब से साधारण स्तर की आवश्यकता पड़ती है, वहां दूसरी ओर इस का कार्य सब से महान् और दुष्कर होता है, क्यों कि गद्य-काव्य के अन्तर्गत कहानी-कला वह कला है जो मानव के बाह्य जीवन और उस के अन्तस्तल में बनते-बिगड़ते हुए भाव-बिन्दुओं और समस्याओं को क्षणिक विद्युत्प्रकाश की भांति हमारे सामने ला छोड़ती है और पाठक का मन एवं मस्तिष्क उस के भार से स्पन्दीभूत हो जाता है।

कहानी का विकासोन्मुख रूप

कहानी की संवेदना और इस की अभिव्यक्ति सीमा बहुत विस्तृत है। इतिहास और अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों, संवेदनाओं से ले कर आधुनिक युग की समस्त समस्याएं उस के वर्ण्य विषय में आती हैं। चम्पा नगरी के आकाशदीप से लेकर मध्यकालीन मुगल हरम में दुरवस्था में पड़ी रोती सजनी के आंसुओं में भीगी हुई बेगमों से आधुनिक काल के कफन-चोर किसान, मजदूरों और वर्तमान युग के पुरुष का भाग्य तक की संवेदनाएं इस कला की वर्ण्य वस्तु हैं। विकास की दृष्टि से कहानी अपने विषय की दिशा में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती आ रही है। आधुनिक कहानी की विषय-सीमा के अन्तर्गत आज का कहानीकार जो कुछ भी चाहता है, उसे अपनी कहानी का विषय बना लेता है। वह विषय कुछ भी हो सकता है—एक घोड़े की मौत से ले कर किसी जवान लड़की के प्रेम व्यापार तक की घटनाएं। वह भी विषय लिया जाता है, जिस में कोई कथानक या कथा-सूत्र, स्थूल रूप से उत्पन्न ही नहीं हो सकता, दूसरी ओर वह भी विषय लिया जाता है, जिस में घूमती हुई मशीन और कैमरा की परिधि में आने वाली अनेक कथाएं, उपकथाएं, घटनाएं, चित्र और रंग घनीभूत रहते हैं। अतएव व्यापक विषय-सीमा के फलस्वरूप ही इस के शिल्पविधि में आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हो रहा है।[1]

---

[1] "The short story can be any thnig—from the prose-poem painted rather than written to the piece of

कहानीकला की समीक्षा

कला की दृष्टि से कहानी, गद्यकाव्य के समस्त रूपों में श्रेष्ठ है और इस की यह कलात्मक श्रेष्ठता इस के लघु विस्तार में है। गद्यकाव्य के अन्य रूपों की अपेक्षा इस में जहां एक ओर भौतिक उपादानों की सब से कम, सब से साधारण स्तर की आवश्यकता पड़ती है, वहां दूसरी ओर इस का कार्य सब से महान् और सुन्दर होता है, क्योंकि गद्य-काव्य के अन्तर्गत कहानी-कला वह कला है जो मानव के बाह्य जीवन और उस के अन्तस्तल में बनते-बिगड़ते हुए भाव-बिन्दुओं और सम्बन्धों को क्षणिक विद्युत प्रकाश की भांति हमारे सामने ला छोड़ती है और पाठक का मन एवं मस्तिष्क उस के आगे [illegible] हो जाता है।

कहानी का विकासोन्मुख रूप

कहानी की संवेदना और उस की प्रतिपाद्य सीमा बहुत विस्तृत है। इतिहास और अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों, संवेदनाओं से ले कर आधुनिक युग की समस्त समस्याएं उस के वर्ण्य विषय में आती हैं। नगर नगरी के आकाशदीप से लेकर मध्यकालीन मुग़ल हरम में दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी के आंसुओं में भीगी हुई बेगमों से आधुनिक काल के कफ़न-चोर किसान, मज़दूरों और वर्तमान युग के पुरुष का भाग्य तक की संवेदनाएं इस कला की वर्ण्य वस्तु हैं। विकास की दृष्टि से कहानी अपने विषय की दिशा में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती आ रही है। आधुनिक कहानी की विषय-सीमा के अन्तर्गत आज का कहानीकार जो कुछ भी चाहता है, उसे अपनी कहानी का विषय बना लेता है। वह विषय कुछ भी हो सकता है—एक घोड़े की मौत से ले कर किसी जवान लड़की के प्रेम व्यापार तक की घटनाएं। वह भी विषय लिया जाता है, जिस में कोई कथानक या कथा-सूत्र, स्थूल रूप से उत्पन्न ही नहीं हो सकता, दूसरी ओर वह भी विषय लिया जाता है, जिस में घूमती हुई मशीन और कैमरा की परिधि में आने वाली अनेक कथाएं, उपकथाएं, घटनाएं, चित्र और रंग घनीभूत रहते हैं। अतएव व्यापक विषय-सीमा के फलस्वरूप ही इस के शिल्पविधि में आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हो रहा है।[1]

---

[1] "The short story can be any thnig–from the prose-poem painted rather than written to the piece of

लेखक को कहानी लिखने को विवश करती है या उस की कोई मनोवैज्ञानिक गति अथवा आत्मानुभूति उसे कहानीबद्ध करने को प्रेरित करती है। इस तरह से दोनों रूपों में एक भाव प्रधान या अनुभूति के द्वारा लेखक अपने पाठक के ऊपर एकाकिक प्रभाव डालना चाहता है। इस के लिए वह उस के ही अनुरूप एक कथानक तैयार करता है, कथानक में सजीव पात्रों को जोड़ता है, दोनों के सहारे वह परिपार्श्व तथा उचित वातावरण प्रस्तुत करता है और उस में शैली की क्रियाशीलता से वह पाठक को एक अज्ञात सहज गति से अभिप्राय के चरमोत्कर्ष पर ला खड़ा कर देता है और स्वयं दूर हट जाता है। इस तरह लेखक का अपने मनोवांछित अभिप्राय तक पहुँचने के लिये उसे कला-निर्माण में जो प्रक्रिया करनी पड़ती है, वही प्रक्रिया उस कहानी की कला है, टेकनीक है और उस के प्रति उसे जिन उपकरणों को एकत्र करना पड़ा है, वे समस्त उपकरण उस के मूल तत्त्व हैं और इस से जो कलात्मक वस्तु प्रस्तुत हुई है, वह कहानी है।

कहानी के तत्त्व

इस प्रकार रचना की दृष्टि से कहानी के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं—

(१) कथा-वस्तु (२) पात्र और चरित्र-चित्रण
(३) कथोपकथन (४) स्थिति अथवा वातावरण
(५) शैली (६) उद्देश्य

कहानी के उक्त तत्त्वों में से कहानीकार किसी एक या एकाधिक तत्त्वों पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्त्वों का सामूहिक प्रभाव कहानी-कला की मुख्य आत्मा है, क्योंकि प्रत्येक तत्त्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट और मूल्यवान है। किसी न किसी रूप और स्तर से इन तत्त्वों का सहारा कहानीकार को अवश्य लेना पड़ता है।

कथा-वस्तु

कहानी में कथा-वस्तु का स्थान मुख्य है, क्योंकि यही कहानी का वह ढाँचा है, जिस पर कहानी निर्मित होती है। कहानी के आरम्भ-काल में कथा-वस्तु ही इस का सब कुछ हुआ करता था, लेकिन ज्यों-ज्यों कहानी-कला में विकास होता गया, त्यों-त्यों इस का स्थान गौण होता जा रहा है। विशेषकर जब से कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ है, तब

से इस का रूप अत्यन्त सूक्ष्म होता जा रहा है। वस्तुतः कथा-वस्तु का स्रोत कहानीकार की उन अनुभूतियों और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से होता है जिन के धरातल अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है। अगर अनुभूतियाँ घटनाओं अथवा कार्य-व्यापारों की शृंखला से निर्मित हुई हैं तब उन के प्रकाश में कथा-वस्तु का रूप कहानी में मुख्य होगा और कथानक पूर्ण इतिवृत्तात्मक और स्थूल होगा। लेकिन जब अनुभूतियों का प्रादुर्भाव हमारी मनोवैज्ञानिक महत्ता अथवा अंतर्द्वन्द्व और मनोविश्लेषण के धरातल से हुआ है, तब कथानक का रूप कहानी में अत्यन्त-सूक्ष्म और गौण होगा। आधुनिक कहानी-कला में कहीं-कहीं इस तत्व को बिल्कुल परोक्ष में डाल कर केवल पात्रों और परिस्थितियों के चित्रण से कहानी प्रस्तुत हो जाती है, किन्तु फिर भी व्यापक रूप में कथा-वस्तु का सहारा किसी न किसी रूप में कहानीकार को अपनी कहानी में लेना ही पड़ता है। केवल इस के स्वरूप में वैविध्य अवश्य उपस्थित होता रहता है, यही कारण है कि स्वरूप की दृष्टि से कथा-वस्तु के तीन प्रकार मिलते हैं।

१. घटना प्रधान २. चरित्र प्रधान ३. भाव प्रधान

घटना प्रधान कथा-वस्तु में घटना अथवा कार्य-व्यापार की शृंखलाएं ही इस के निर्माण में चरितार्थ होती हैं। इस में कार्य-व्यापारों की सीमा स्वाभाविकता से बहुत आगे बढ़ जाती है—अर्थात् दैवी संयोग और अति मानवीय शक्तियाँ भी इस में कार्यरत होती हैं। जासूसी कहानियों की कथा-वस्तु इस के सुन्दर उदाहरण है।

चरित्र प्रधान कथा-वस्तु में घटना और संयोग गौण हो जाता है। चरित्र-चित्रण और विश्लेषण ही मुख्य हो जाता है। कथा सूत्र किसी मुख्य पात्र के चरित्र की रेखाओं में अपना विकास पाता है। ऐसे कथानकों में जहाँ एक ओर संश्लिष्टात्मक शब्द मिलते हैं, वहाँ दूसरी ओर इस में आरोह-अवरोह के क्रम बहुत कलात्मकता से स्पष्ट रहते हैं। एक तरह से ऐसे कथानकों से चरित्र-विश्लेषण अथवा चरित्र-अध्ययन के धरातल से कार्य-व्यापार लिए जाते हैं। अतएव इस का रूप अपेक्षाकृत सूक्ष्म और पूर्ण कलात्मक होता है क्योंकि ऐसे कथानकों के निर्माण में बाह्य घटनाएं, कार्य-व्यापार बिल्कुल नहीं प्रयुक्त होते, वरन् चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व पात्रों की मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होने वाली उन की समस्त चरित्रगत विशेषताएं उस के निर्माण में चरितार्थ होती हैं। अज्ञेय और जैनेन्द्र कुमार की मनोवैज्ञानिक

यशपाल की कहानियों[1] के कथानक इस के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं।

भाव प्रधान कथा-वस्तु में स्थूल पात्र से भी आगे उन की अनुभूति और भाव ही इस के सूक्ष्म सूत्र के रूप में आते हैं। फलतः यहाँ कथा-वस्तु का रूप सब से अधिक सूक्ष्म और अमूर्त हो जाता है। न इस में वर्णनात्मकता रहती है न इतिवृत्तात्मकता, वरन् कथा-सूत्र की स्थापना केवल व्यंजना और संकेतों द्वारा की जाती है। ऐसे कथानक मूलतः मनुष्य की किन्हीं शाश्वत भावों, क्रोध, प्रेम, घृणा, करुणा और निर्वेद आदि के पकड़ने से निर्मित होते हैं। लगता है कि पात्र की कोई विशेष भाव दिशा अथवा मनोदशा स्वयं अपने समग्र विकास में कहानी का केन्द्र बन गयी जिसे हम अध्ययन की दृष्टि से कथानक कह सकते हैं। ऐसे कथा-सूत्रों में चरित्र की मनोदशा और उस के व्यक्तित्व की गहरी रेखायें संकेतात्मक अथवा व्यंजनात्मक रूप में संगुम्फित की जा सकती हैं। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी कोठरी की बात में कथा-सूत्र अथवा कथा-तत्व का अस्तित्व पूर्णतः नहीं है और यह कहानी इस दिशा में पूर्ण रूप से सफल है। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से दूसरी ओर कथानक के तीन अंग होते हैं। १. आरम्भ २. मध्य और ३. चरम सीमा अथवा अन्त।

आरम्भ कहानी का आदि भाग है। इसी की कुशल अभिव्यक्ति पर कहानीकार का कलात्मक निर्भर रहता है। इस अंश में कहानी के प्रायः समस्त बीज, उस की मानसिक समस्या का संकेत और मुख्य पात्रों के परिचय किसी न किसी रूप में अवश्य ही आ जाते हैं। दूसरी ओर कथानक के इसी भाग में कहानी की मुख्य जिज्ञासा का चरम आकर्षक रूप भी अपने कलात्मक रूप में व्यंजित हो जाता है। फलतः कथानक का यह भाग कलात्मक दृष्टि से कहानीकार की कुशलता की परीक्षा का द्योतक है। उत्कृष्ट कहानी के कथानक के आरम्भ अंश में आकर्षण की प्रतिष्ठा उस की प्राथमिक आवश्यकता है। क्योंकि इसी की प्रेरणा से पाठक मंत्र मुग्ध होकर सम्पूर्ण कहानी के पीछे आकर्षित होता है। कहानी की मुख्य संवेदना से इस भाग का पूर्ण सामंजस्य इस की दूसरी विशेषता है। इस भाग में किसी न किसी रूप में कहानी का उद्देश्य अवश्य सन्निहित होता है। आकर्षण और लक्ष्य दोनों दृष्टियों से यह अन्तिम विशेषता वस्तु-विन्यास की रूप से बड़ी अपेक्षा है।

[1] अज्ञेय—पुरुष का भाग्य, पुलिस की सीटी, छाया, और रोज़। जैनेन्द्र कुमार-एक रात, मास्टर जी और क्या हो ?

कथानक के मध्य भाग में समस्या का परम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोह-अवरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। कथानक के सम्पूर्ण अंग में विस्तार ही उसका मुख्य अंग है। इसी अंग में कहानी की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है, क्योंकि रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु-विकास का मध्यभाग ही कहानी का विकास भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है। कलात्मक दृष्टि से कहानी लेखक को विकास का उतना ही विस्तार करना चाहिए जितना उस के पात्रों और घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हो, अधिक बिल्कुल न हो। इस भाग में कौतूहल की मात्रा को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए क्योंकि विकास भाग से कहानी की चरम सीमा पूर्णरूप से संबद्ध रहती है और पाठक को वहाँ तक सहज गति से पहुँचाना कहानीकार का सब से बड़ा उत्तरदायित्व है। लेकिन यहाँ कौतूहल की सृष्टि किस रूप और स्तर से हो, यह भी एक प्रश्न है। घटना प्रधान कथानक में भ्रम, विपत्ति और उत्तेजनाजनक परिस्थितियों की सृष्टि में इस की अवतारणा पूर्ण कलात्मक हो सकती है। ऐसी स्थितियों में कभी-कभी कौतूहल तक का आवेग बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है। ऐसे अवसर पर कहानीकार द्वारा उस का संतुलन परमावश्यक है, अन्यथा चरम सीमा पर कहानी का एकान्तिक प्रभाव नष्ट हो जायगा।

चरित्र प्रधान कथा-वस्तुओं के विकास भाग में कुतूहल की सृष्टि परम सरलता से हो सकती है। क्योंकि यहाँ पात्र ही सब कुछ होते हैं उन के अन्तर्द्वन्द्व मानसिक घात-प्रतिघात के फलस्वरूप अनेक अप्रत्याशित समस्याएं खड़ी हो सकती हैं और उन में कौतूहल का समावेश स्वयं अपने आप होता चलता है।

सफल कहानियों में कौतूहल का आविर्भाव अनेक बार अनेक अंगों पर होता है पर उस में हर बार स्तर विभेद होता चलता है अर्थात् कौतूहल में तीव्रता बढ़ती रहती है। पहला कौतूहल प्रारम्भ में उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ कहानी को उस की चरम सीमा की ओर प्रेरित करता है। लेकिन चरम सीमा तक पहुँचने के पूर्व इस की गति में तीव्रता लाने के लिये दूसरे और तीसरे कौतूहल की सृष्टि करनी पड़ती है, जिस के फलस्वरूप समूची कहानी में भावों और अनुभूतियों की इतनी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है कि छोटी-सी कहानी अपने एकान्तिक प्रभाव में परम व्यापक और विस्तृत सिद्ध होने लगती है और चरम-सीमा तक पहुँचते-पहुँचते उस में अप्रत्याशित आनन्द और सौन्दर्य उपस्थित

कथानक के मध्य भाग में समस्या का परम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोह-अवरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। कथानक के सम्पूर्ण अंग में विस्तार ही उसका मुख्य अंग है। इसी अंग में कहानी की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है, क्योंकि रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु-विकास का मध्यभाग ही कहानी का विकास भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है। कलात्मक दृष्टि से कहानी लेखक को विकास का उतना ही विस्तार करना चाहिए जितना उस के पात्रों और घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हो, अधिक बिल्कुल न हो। इस भाग में कौतूहल की मात्रा को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए क्योंकि विकास भाग से कहानी की चरम सीमा पूर्ण रूप से संबद्ध रहती है और पाठक को वहाँ तक सहज गति से पहुँचाना कहानीकार का सब से बड़ा उत्तरदायित्व है। लेकिन यहाँ कौतूहल की सृष्टि किस रूप और स्तर से हो, यह भी एक प्रश्न है। घटना प्रधान कथानक में भ्रम, विपत्ति और उत्तेजनाजनक परिस्थितियों की सृष्टि में इस की अवतारणा पूर्ण कलात्मक हो सकती है। ऐसी स्थितियों में कभी-कभी कौतूहल तक का आवेग बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है। ऐसे अवसर पर कहानीकार द्वारा उस का संतुलन परमावश्यक है, अन्यथा चरम सीमा पर कहानी का एकान्तिक प्रभाव नष्ट हो जायगा।

चरित्र प्रधान कथा-वस्तुओं के विकास भाग में कुतूहल की सृष्टि परम सरलता से हो सकती है। क्योंकि यहाँ पात्र ही सब कुछ होते हैं उन के अन्तर्द्वन्द्व मानसिक घात-प्रतिघात के फलस्वरूप अनेक अप्रत्याशित समस्याएं खड़ी हो सकती हैं और उन में कौतूहल का समावेश स्वयं अपने आप होता चलता है।

सफल कहानियों में कौतूहल का आविर्भाव अनेक बार अनेक अंगों पर होता है पर उस में हर बार स्तर विभेद होता चलता है अर्थात् कौतूहल में तीव्रता बढ़ती रहती है। पहला कौतूहल प्रारम्भ में उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ कहानी को उस की चरम सीमा की ओर प्रेरित करता है। लेकिन चरम सीमा तक पहुँचने के पूर्व इस की गति में तीव्रता लाने के लिये दूसरे और तीसरे कौतूहल की सृष्टि करनी पड़ती है, जिस के फलस्वरूप समूची कहानी में भावों और अनुभूतियों की इतनी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है कि छोटी-सी कहानी अपने एकान्तिक प्रभाव में परम व्यापक और विस्तृत सिद्ध होने लगती है और चरम-सीमा तक पहुँचते-पहुँचते उस में अप्रत्याशित आनन्द और सौन्दर्य उपस्थित

और मैक्सिम गोर्की (रूस) की क्रमशः बाजी और छब्बीस और एक, एच० जी० वेल्स (इंगलैंड) की कीटाणु आदि की चरम सीमाएं अप्रत्याशित कार्य-व्यापार और घटना की तीव्रता पर आधारित है। लेकिन आधुनिक कहानी-कला के अनुसार ये कहानियाँ और इन की ऐसी चरम सीमाएं पूर्ण स्वाभाविक और उत्तम नहीं मानी जा सकतीं। क्योंकि उत्कृष्ट कहानी वह मानी जाती है जिसे बार-बार पढ़ने और मनन करने की इच्छा हो। लेकिन उक्त कहानियाँ एक ही बार पूर्ण तन्मयता के साथ पढ़ी जा सकती हैं और उन से पूर्ण आनन्द उठाया जा सकता है, क्योंकि कहानी समाप्त करने के बाद कोई ऐसी समस्या, प्रश्न और रहस्यात्मिकता नहीं रह जाती जिसे समझने या सुलझाने के लिए कहानी बार-बार पढ़ी जाय। अतएव आज की कहानी-कला में चरम सीमा की ही मान्यता क्या, इस के विधान की समूची मान्यताओं में परिवर्तन हो गया है। यद्यपि कहानी के मूल तत्व वही हैं लेकिन उन की प्रतिष्ठा की दशा में आमूल परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक कहानी कला में भी कहानी के आरम्भ और अन्त-भाग पर विशेष बल दिया जाता है[1]। लेकिन अब इन भागों पर घटना अथवा कार्य-व्यापार के स्थान पर मानव संघर्ष, उस के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व उस की समूची आन्तरिकता की व्यंजना उपस्थित की जाती है, जिस से पाठक बार-बार समूची कहानी को आदि से अंत तक पढ़ता हुआ, उन प्रश्नों और समस्याओं पर स्वयं विचार करें। प्रथम दृष्टिकोण की कहानी समस्या की निष्पत्ति, तत्व हमारे सामने रखती थी, आज की कहानी-हमारे सामने समस्याएं रखती हैं और उस पर सोचने के लिए बाध्य करती है। आज की भी कहानी-कला में कथा-वस्तु है, घटनाएं हैं, संघर्ष है, लेकिन अब इन का संबंध मन-मस्तिष्क से हो गया है। इस के भी विकास में कौतूहल और जिज्ञासा की तीव्रता है लेकिन अब इस का स्तर भावुकता से हट कर बौद्धिक हो गया है। आज की भी कहानी-कला में आश्चर्य-वृत्ति मिलती है ले किन इस में पूर्ण स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। यहाँ चरम सीमा भी है, लेकिन आज की चरम सीमा इस घटना अथवा संयोग पर नहीं व्यक्त हुआ है कि कोई स्त्री अपने खोए हुए आभूषणों को हैट-बाक्स से एकाएक पा जाती है, वरन् एक

[1] Mr. Ellery Sedgewich held that "A story is like a horserace. It is the start and finish that count most."

[Sedgewich & Dominovitch Editor : Novel & story]

और मैक्सिम गोर्की (रूस) की क्रमशः बाजी और छब्बीस और एक, एच० जी० वेल्स (इंगलैंड) की कीटाणु आदि की चरम सीमाएं अप्रत्याशित कार्य-व्यापार और घटना की तीव्रता पर आधारित है। लेकिन आधुनिक कहानी-कला के अनुसार ये कहानियाँ और इन की ऐसी चरम सीमाएं पूर्ण स्वाभाविक और उत्तम नहीं मानी जा सकतीं। क्योंकि उत्कृष्ट कहानी वह मानी जाती है जिसे बार-बार पढ़ने और मनन करने की इच्छा हो। लेकिन उक्त कहानियाँ एक ही बार पूर्ण तन्मयता के साथ पढ़ी जा सकती हैं और उन से पूर्ण आनन्द उठाया जा सकता है, क्योंकि कहानी समाप्त करने के बाद कोई ऐसी समस्या, प्रश्न और रहस्यात्मिकता नहीं रह जाती जिसे समझने या सुलझाने के लिए कहानी बार-बार पढ़ी जाय। अतएव आज की कहानी-कला में चरम सीमा की ही मान्यता क्या, इस के विधान की समूची मान्यताओं में परिवर्तन हो गया है। यद्यपि कहानी के मूल तत्व वही हैं लेकिन उन की प्रतिष्ठा की दशा में आमूल परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक कहानी कला में भी कहानी के आरम्भ और अन्त-भाग पर विशेष बल दिया जाता है[1]। लेकिन अब इन भागों पर घटना अथवा कार्य-व्यापार के स्थान पर मानव संघर्ष, उस के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व उस की समूची आन्तरिकता की व्यंजना उपस्थित की जाती है, जिस से पाठक बार-बार समूची कहानी को आदि से अंत तक पढ़ता हुआ, उन प्रश्नों और समस्याओं पर स्वयं विचार करें। प्रथम दृष्टिकोण की कहानी समस्या की निष्पत्ति, तत्व हमारे सामने रखती थी, आज की कहानी-हमारे सामने समस्याएं रखती हैं और उस पर सोचने के लिए बाध्य करती हैं। आज की भी कहानी-कला में कथा-वस्तु है, घटनाएं हैं, संघर्ष है, लेकिन अब इन का संबंध मन-मस्तिष्क से हो गया है। इस के भी विकास में कौतूहल और जिज्ञासा की तीव्रता है लेकिन अब इस का स्तर भावुकता से हट कर बौद्धिक हो गया है। आज की भी कहानी-कला में आश्चर्य-वृत्ति मिलती है ले किन इस में पूर्ण स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। यहाँ चरम सीमा भी है, लेकिन आज की चरम सीमा इस घटना अथवा संयोग पर नहीं व्यक्त हुआ है कि कोई स्त्री अपने खोए हुए आभूषणों को हैट-बाक्स से एकाएक पा जाती है, वरन् एक

[1] Mr. Ellery Sedgewich held that "A story is like a horserace. It is the start and finish that count most."

[Sedgewich & Dominovitch Editor : Novel & story]

पात्रों को कभी अमरत्व नहीं प्रदान कर सकता और जब उन में प्राणशक्ति ही नहीं तो उन से हमारा साधारणीकरण कैसे हो सकता है। पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश-विदेश जहाँ के भी हों, उन की सृष्टि कहानी के क्षेत्र में हो सकती है, लेकिन उन की सृष्टि में केवल एक शर्त होनी चाहिए, उन की पार्थविकता और स्वाभाविकता में हमें किसी प्रकार का संदेह न हो।[1] इस के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पात्रों में व्यक्तित्व, भाव, संघर्ष और मानव के शाश्वत प्रश्नों की शृंखला गुंथी होनी चाहिए, अतः जो लेखक अप ने पात्रों में जीवन की शक्तियाँ, अन्तर्द्वन्द्व और शाश्वत प्रश्नों को भरता है वह अपने पाठकों के हृदय में चिरस्थायी रूप से स्थान देता है। वे पात्र न केवल घटनाओं के जाल में ही खेलते हैं किन्तु पाठकों के अन्तर्मन में प्रविष्ट हो कर उन में प्राणशक्ति का संचार भी करते हैं। कहानी की विधानात्मक सीमा में अधिक पात्रों का समावेश पूर्णरूप से अनुचित है क्योंकि ऐसी स्थिति में एक भी पात्र का न तो चरित्र ही स्पष्ट हो सकता है न उस के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही हो सकती है। अतएव सफल कहानियों में तो अधिक पात्रों की अवतारणा नहीं की जाती, अगर अधिक की भी जाती है तो शेष सभी पात्र उन्हीं दो मुख्य पात्रों को अधिक स्पष्ट अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए अवतरित होते हैं।

१. व्यापक विभेद की दृष्टि से कहानी के पात्र दो प्रकार के अन्तर्गत ऐतिहासिक, पौराणिक पात्र आते हैं। ऐसे पात्रों की सृष्टि में कहानीकार की कल्पना-शक्ति और पांडित्य की सब से बड़ी परीक्षा होती है। इन पात्रों के आविर्भाव में जो बात सब से अधिक ध्यान देने की होती है वह है इन का विशिष्ट व्यक्तित्व निर्माण, क्योंकि ऐसे पात्रों को हम उन की रूपरेखा की अपेक्षा उन के विशिष्ट व्यक्तित्व से ही पहचान सकते हैं। सामान्य पात्र हमारे समाज में बीच के होते हैं फलतः इन पात्रों से हमारा पूरा साधारणीकरण यों भी संभव हो जाता है कि ये पात्र हमारे देखे-सुने और जाने-पहचाने रहते हैं। आधुनिक कहानी-कला की धारा में वस्तुतः लोकोत्तर पात्रों की अवतारणा बिल्कुल नगण्य है। आज का युग बुद्धिवादी युग है। इसे तर्क, विवेक और विश्लेषण में अधिक आस्था है, अंध-विश्वास, कल्पना और निष्ठा में कम। अतएव आधुनिक कहानी-कला में सामान्य पात्र ही लिए जाते हैं, जो मानव संघर्षों और युग चेतना के प्रतीक होते हैं।

---

[1] जो पात्र मिट्टी के धूमें की भांति अपना कोई व्यक्तित्व न रखते हों वे पाठकों में रुचि नहीं उत्पन्न कर सकते—गुलाबराय—काव्य के रूप—पृष्ठ २२०

सामान्य पात्र दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के पात्र वे हैं जो अपने व्यक्तित्व में पूर्ण है। उन की अपनी व्यक्तिगत सत्ता है और यह सत्ता हमारी सामाजिकता की एक अभिन्न इकाई है। ये पात्र सर्वसाधारण से ले कर उच्चवर्ग तक फैले हुए हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वे हैं जिन का कोई व्यक्तिगत चरित्र न हो कर, सर्वथा चरित्रों के प्रतिनिधि स्वरूप होता है। ये प्रतिनिधि पात्र अपने में व्यक्ति नहीं होते, वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते हैं। उन्हें अपने जातिगत व्यक्तित्व की इकाई समझना चाहिए उन के व्यक्ति की इकाई नहीं। ऐसे पात्र सब जगह, सब नामों के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक होते हैं। वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने के झंझट से पूर्णरूप से बचे रहते हैं और वे अपने विश्वास स्वयं कभी नहीं गढ़ सकते।

कहानी में चरित्र-चित्रण का महत्व सब से अधिक है, क्योंकि कलात्मक दृष्टि से एक ओर कहानी की संक्षिप्त सीमा के कारण चरित्र का विकास दिखाने का अवसर बहुत ही कम रहता है और दूसरी ओर चरित्र-चित्रण की संभावनाएं इतनी सीमित रहती है कि उन से चरित्रों को स्पष्ट करना परम हस्तलाघव की परीक्षा है। कहानी में इतनी सुविधा नहीं होती कि पात्रों का पूरा विवरण दे कर उन की अवस्था, रूप, रंग और अन्य स्थितियों को पूर्ण चित्रित किया जाय यहाँ तो सीमाओं के अंतर्गत गागर में सागर भरने को होता है। व्यावहारिक दृष्टि से चरित्र-चित्रण के लिए चार साधनों का उपयोग किया जाता है वर्णन, संकेत, कथोपकथन, और घटना कार्य व्यापार इन्हीं के माध्यम से पात्रों के चरित्र-चित्रण होते हैं। इन के विभिन्न उदाहरण निम्नलिखित हैं।

वर्णन द्वारा

रोगी का नाम सुन्दर लाल है। फर्स्ट डिवीजन में एम० ए० पास कर के उसने पी० सी० एम० का इम्तहान दिया था और उस में सर्व प्रथम आया था। एक साल किसी नगर में डिप्टी कलक्टर हो कर रहा। उस की स्त्री श्याम भी इसी बीच उस के साथ रही। सुन्दरलाल, सुशील और मधुर स्वभाव का आदमी था बुद्धि का प्रखर, मिलनसार और ऐयाश तबियत। ऐयाशी की मात्रा अधिक होने से अथवा वशंगत दोष के कारण उसे यक्ष्मा रोग ने पकड़ लिया।

संकेत द्वारा

बीस-बाइस वर्ष की अवस्था में मनुष्य की आकांक्षाएं स्वप्न होती हैं उन को परिवरिश मिले तो वह पनपे, नहीं तो सूख कर मुरझा जाती है और यौवन

बीतते-बीतते आदमी अपने को चुका हुआ अनुभव करता है। वे आकांक्षाएँ, स्नेह माँगती हैं। और अनुकूल समय पर और यथानुकूल मिले तो खिल-आती हो कर कैसे-कैसे फूल न खिल आएं, कहा नहीं जा सकता नहीं तो अपने को खाती चुकाती हैं। मूल जिन के द्वन्द्व ही ऐसी प्रकृतियाँ विरोध में वे भी इसे खोजती हैं, अवश्य, और वे मानो चुनौती पूर्वक बढ़ती रहती हैं, पर इस शक्ति को प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नहीं है, वह तो विरल ही है। कहना कठिन है कि राजीव में प्रतिभा की शक्ति कितनी थी किन्तु जब उस में अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे तब वह अकेला अपने को पाता था।

जैनेन्द्र कुमार : एक रात : राजीव और भाभी, पृष्ठ ७३

कथोपकथन द्वारा

मैंने सहसा कहा, इस वक्त कैसा वेबस है। अगर मैं मारना चाहूं, तो निरीह मर जायँ।

हाँ क्यों मरना चाहो, इतना सुन्दर

मैंने अपनी ही झोंके में कहा, अभी ढील मारूँ, तो वरन्

काटने को मुड़ न सके।

क्या जहरीला है

हो भी तो क्या इस समय असहाय है मौके की बात है, कुछ कर भी न सके, सारा रूप लिए ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाय बिटुर-बिटुर ताकता।

उसकी पहिले ही मुग्ध गोल आँखें करुणा से और बड़ी-बड़ी हो आयीं, बोली—बेचारा कितना असहाय!

अज्ञेय : जयदोल : साँप, पृष्ठ २७

घटना कार्य व्यापार द्वारा

धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चंदन बढ़ा और जाकर दरवाजे के साथ पंजों के बल खड़ा हो गया। अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था। उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा किन्तु दूसरे ही क्षण वापस मुड़ा। उस का शरीर गर्म होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था कंठ और ओठ सूखने लगे थे और उस की नसों में जैसे दूध उबलने लगा था। उसी तरह पंजों के बल भागता वह बाहर आया। धीरे से उस ने दरवाज लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने जैकारेंड का तना खड़ा

था उस के जी में आया कि अपने युवा वक्ष की एक ही चोट से वह उस तने को गिरा दे।

उपेन्द्र नाथ अश्क : जुदाई की शाम की शीत उबाल, पृष्ठ १११

आधुनिक कहानी कला में चरित्र-चित्रण के उत्तम प्रसाधनों में से संकेत और कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली सब से अधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है और आधुनिक युग के प्रतिनिधि कहानीकारों ने इन्हीं शैलियों को अपनाया है।

चरित्रों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिए चरित्र विश्लेपण की पद्धति आधुनिक कहानी-कला को सब से बड़ी देन है। इस से एक ओर चरित्र का व्यक्तित्व निश्चित हो जाता है और दूसरी ओर इस पद्धति से पात्र पूर्ण सजीव और अमर बन जाता है वह पूर्ण रूप से मानव मस्तिष्क के समस्त संघर्षों, प्रश्नों और निर्बलताओं का प्रतिनिधित्व करने लगता है। इस के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का अनुनरण किया जाता है।

अ. निरपेक्ष विश्लेपण : अन्य पुरुप का विश्लेपण
आ. आत्म विश्लेपण : स्वयं अपने विपय में अपना विश्लेपण
इ : मानसिक उहापोह द्वारा विश्लेपण : चिन्तन, मनन द्वारा आत्म-विश्लेपण

निरपेक्ष विश्लेपण

हेमन्त का मन आत्मग्लानि से भर आया था वह तो जानता है उसे क्यों भूल सका, भूल नहीं सका क्यों उस की अनदेखी करना चाह सका ? सुधा की आँखों में वह दूसरा है और स्वयं उस को अपनी क्या उस को आँखों में एक भी परछाईं नहीं है और जब तक है तब तक यह उलझन यह गूँथन उस ज्योति शरीर का किरन जाल नहीं है, केवल साँप की गुंजलक है जिसके डंस में केवल मरण है।

अज्ञेय : जयदोल : वे दूसरे, ७६, ८०

आत्म विश्लेपण

मुझे वह समूची वस्तु कुछ मैली मालूम होती है अपावन, अशुचि असुन्दर। मैं उस ओर देखना नहीं चाहता हूँ। तो क्या जी फिर रोने को आता है; नहीं मेरे भीतर अभी तक इस फाँसी की बात को लेकर तनिक भी रोना नहीं आ सका है। मैंने कुछ किया, मैं जानता हूँ, मैंने वह किया। वह करते समय भी

बीतते-बीतते आदमी अपने को चुका हुआ अनुभव करता है। वे आकांक्षाएं स्नेह माँगती हैं। स्नेह अनुकूल समय पर और यथानुपात मिले तो हरी-भरी हो कर कैसे-कैसे फूल न खिल आएं, कहा नहीं जा सकता नहीं तो अपने को खाती चुकाती हैं। मूल जिन के दृढ़ हों ऐसी प्रकृतियाँ विरोध में से भी इसे खींचती हैं, अवश्य, और वे मानो चुनौती पूर्वक बढ़ती रहती हैं, पर इस शक्ति को प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नहीं है, वह तो विरल ही है। कहना कठिन है कि राजीव में प्रतिभा की शक्ति कितनी थी किन्तु जब उस में अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे तब वह अकेला अपने को पाता था।

जैनेन्द्र कुमार : एक रात : राजीव और भाभी, पृष्ठ ७२

कथोपकथन द्वारा

मैंने सहसा कहा, इस वक्त कैसा वेध्य है। अगर मैं मरना चाहूँ, तो निरीह मर जायँ।

हाँ क्यों मरना चाहो, इतना सुन्दर

मैंने अपनी ही झोंके में कहा, अभी ढील मारूँ, तो वरन्

काटने को मुड़ न सके।

क्या जहरीला है

हो भी तो क्या इस समय असहाय है मौके की बात है, कुछ कर भी न सके, सारा रूप लिए ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाय विट्ठुर-विट्ठुर ताकता।

उसकी पहिले ही मुग्ध गोल आँखें करुणा से और बड़ी-बड़ी हो आयीं, बोली—बेचारा कितना असहाय!

अज्ञेय : जयदोल : साँप, पृष्ठ २७

घटना कार्य व्यापार द्वारा

धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चंदन बढ़ा और जाकर दरवाजे के साथ पंजों के बल खड़ा हो गया। अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था। उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा किन्तु दूसरे ही क्षण वापस मुड़ा। उस का शरीर गर्म होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था कंठ और ओंठ सूखने लगे थे और उस की नसों में जैसे दूध उबलने लगा था। उसी तरह पंजों के बल भागता वह बाहर आया। धीरे से उस ने दरवाजा लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने डेकारेक का तना खड़ा

था उस के जी में आया कि अपने युवा वक्ष की एक ही चोट से वह उस तने को गिरा दे।

उपेन्द्र नाथ अश्क : जुदाई की शाम की शीत उबाल, पृष्ठ १११

आधुनिक कहानी कला में चरित्र-चित्रण के उत्तम प्रसाधनों में से संकेत और कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली सब से अधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है और आधुनिक युग के प्रतिनिधि कहानीकारों ने इन्हीं शैलियों को अपनाया है।

८-चरित्रों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिए चरित्र विश्लेषण की पद्धति आधुनिक कहानी-कला की सब से बड़ी देन है। इस से एक ओर चरित्र का व्यक्तित्व निश्चित हो जाता है और दूसरी ओर इस पद्धति से पात्र पूर्ण सजीव और अमर बन जाता है वह पूर्ण रूप से मानव मस्तिष्क के समस्त संघर्षों, प्रश्नों और निर्बलताओं का प्रतिनिधित्व करने लगता है। इस के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है।

अ. निरपेक्ष विश्लेषण : अन्य पुरुष का विश्लेषण
आ. आत्म विश्लेषण : स्वयं अपने विषय में अपना विश्लेषण
इ : मानसिक उहापोह द्वारा विश्लेषण : चिन्तन, मनन द्वारा आत्म-विश्लेषण

निरपेक्ष विश्लेषण

हेमन्त का मन आत्मग्लानि से भर आया था वह तो जानता है उसे क्यों भूल सका, भूल नहीं सका क्यों उस की अनदेखी करना चाह सका ? सुधा की आँखों में वह दूसरा है और स्वयं उस को अपनी क्या उस की आँखों में एक भी परछाईं नहीं है और जब तक है तब तक यह उलझन यह गूँथन उस ज्योति शरीर का किरन जाल नहीं है, केवल साँप की गुंजलक है जिसके डंस में केवल मरण है।

अज्ञेय : जयदोल : वे दूसरे, ७६, ८०

आत्म विश्लेषण

मुझे वह समूची वस्तु कुछ मैली मालूम होती है अपावन, अशुचि असुन्दर। मैं उस ओर देखना नहीं चाहता हूँ। तो क्या जी फिर रोने को आता है, नहीं मेरे भीतर अभी तक इस फाँसी की बात को लेकर तनिक भी रोना नहीं आ सका है। मैंने कुछ किया, मैं जानता हूँ, मैने वह किया। वह करते समय भी

मैं जानता था कि युग के अन्त में यही चीज़ हो सकती है, [illegible], फिर भी मैं अब भी ठीक नहीं जानता कि क्या है? इस पृथ्वी के [illegible] से [illegible] के इतने भाग को मैं जानता था कि जिन से मैं बोलता हूं, मिलता हूं, जिन से प्यार होता और जिन का प्रेम लेता हूं, जिन के भीतर आत्म की [illegible] और जिन्हें अपने भीतर धारण कर के मेरा जीवन संभव बना सकता है, वे सब मेरे लिए न रहेंगे, मैं उन के लिए न रहूंगा।

जैनेन्द्र कुमार : एक रात : क्या हो, पृष्ठ २०८

मानसिक ऊहापोह

मुझे कभी-कभी खेद होता है कि क्यों यह मेरा मित्र [illegible] भरा है, जहाँ है। क्यों मुझे, उसे समाज में उस के योग्य स्थान पर पहुंचाने नहीं देता। पर मैं उसे इतनी-सी छोटी बात समझाने में असमर्थ हो जाता हूं, कि भंगी का झम्मन भंगी सम्राट जार्ज से छोटा है। मैं बहुत कहता हूं, तो वह [illegible] हँस पड़ता है। वह कमबख्त क्यों नहीं समझता दुनियाँ में छोटा-बड़ा है, फिर है एक से लाख बड़ा है और हमेशा रहेगा, और उसे बड़ा बनना ही चाहिए, छोटा नहीं रहना चाहिए और मुझे खीज होती है कि मैं क्यों नहीं उसे बड़ा बनने को राजी नहीं कर सकता। जब वह छोटा है, तो मैं ही क्यों दुनियाँ में बड़ा बना खड़ा हूँ।

जैनेन्द्र कुमार : एक रात : मित्रविद्याधर, पृष्ठ १६६

आधुनिक कहानी-कला में पात्र और चरित्र-चित्रण की महत्ता सर्वोपरि हो गई है। क्योंकि आधुनिक कहानी का मूलाधार मनोविज्ञान है और इस मनोविज्ञान का मूल केन्द्र चरित्र है। फलतः आज के पात्र कल्पना और चरित्र विधान में कहानीकारों की व्यक्तिवादिता पूर्ण रूप से प्रतिफलित हो रही है। इस दिशा में आधुनिक कहानीकार की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर और चरित्र के बाह्य संघर्ष से आन्तिरिक संघर्षों की ओर बढ़ना, इस युग की कला की सब से बड़ी देन है।

कथोपकथन

कहानी'कला के मूल तत्वों में कथोपकथन एक नाटकीय तत्व है, अतएव उस में नाटकीयता आना इस की परम स्वाभाविकता है। कथोपकथन तत्व कहानी-कला का सर्वोत्तम अंश है। इस से कहानी में आकर्षण, सजीवता और पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को प्रेरणा मिलती है। कहानी के विकास क्रम में यह

तत्व इस कलात्मक शृंखला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य आगे आने वाली घटनाओं से हमारा तादात्म्य जोड़ती रहती है। इस तत्व से कहानी की मुख्य संवेदना और पात्रों में सीधा संबंध जुड़ा रहता है। इस तरह कहानी के अंतर्गत कथोपकथन की तीन दिशाएं होती हैं। कथा-वस्तु का विकास, पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा समूची कहानी कौतूहलता के सहारे प्रवाह और आकर्षण की सृष्टि।

केवल वर्णनों द्वारा संपूर्ण कहानी की सृष्टि में जो बात सब से अधिक अकलात्मक सिद्ध होती है वह है कहानी में पात्रों का अव्यक्त हो जाना। ऐसी स्थिति में कहानियों में प्रभविष्णुता और संवेदनशीलता दोनों विशेषताएं प्रायः नष्ट हो जाती हैं। लेकिन संपूर्ण कहानी को सृष्टि भी कथोपकथनों के माध्यम से कर देना कहानी को कुंठित कर देना है, क्योंकि इस स्थिति में कहानी, कहानी न रह कर प्रायः एकांकी नाटक हो जाती है। वस्तुतः कथोपकथन और वर्णन विवेचन में सुन्दर समन्वय और अनुपात होना चाहिए तभी कहानी का सम्यक रूप अत्यन्त कलात्मक हो सकता है।

कहानी के अंतर्गत कथोपकथन का सब से बड़ा गुण जिज्ञासा और कौतूहल उत्पन्न करता है। कथोपकथन का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सहज संगीत, जिस के सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर कहानी पढ़ने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहे। कथोपकथन सर्वथा देश-काल-पात्र-परिस्थिति और कहानी की गति के अनुकूल होना चाहिए। कहानीकार अपने व्यक्तित्व को दूर रख कर विभिन्न पात्रों के माध्यम से उस के कथोपकथनों में उसे पात्रों के व्यक्तित्व की रक्षा करनी होगी। हास्य, विनोद और व्यंग का समावेश कथोपकथन के स्तर को पूर्ण रूप से ऊँचे उठाना है इस के लिए कथोपकथन की भाषा शैली में लाक्षणिकता और व्यंजकता दोनों गुणों की उपेक्षा होती है। कथोपकथन छोटे गठित और स्थिति अनुकूल होने पर उन की महत्ता कहानी के प्रवाह में सब से अधिक हो जाती है। इस दिशा में सम्भाषण की मौलिकता दृष्टिकोण की नवीनता ये दोनों तत्व इस की परम विशेषताओं में आते हैं।

रूप विधान की दृष्टि से कथोपकथन प्रायः तीन शैलियों में मिलते हैं।

१. पूर्ण नाटकीयता के रूप में, अर्थात् केवल कथोपकथन हो, उस में कहानी कार्य, स्थिति के संकेत न हों, जैसे—

कौन—वजीरा सिंह।

हाँ—क्यों लहना क्या कयामत आ गई—जरा तो आँख लगने दी होती

होश में आओ—कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उन की वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है सूबेदार ने इस का मुख नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। शौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।

तो अब ? गुलेरी : उसने कहा था

२. पात्रों की मुद्राओं के संकेत के साथ-साथ उन के कथोपकथन आगे बढ़ते हैं अर्थात् कथोपकथन के बीच-बीच में, कहानीकार पात्रों की मुद्रा और स्थितियों की ओर भी संकेत करता चलता है, जैसे,

अनन्त एकाएक चुप हो गया। फिर बोला उफ कैसी कहान है यह... ज्योति ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींच लिया दोनों फिर चुप हो गए मिनट भर बाद ज्योति ने फिर पूछा अब क्या सोच रहे हो ? वह अनन्त की ओर देखती नहीं थी, देख वह अपलक दृष्टि से ताज की ओर ही रही थी, फिर भी जाने कैसे अनन्त का नाड़ी-स्पंदन निरंतर उस में प्रतिध्वनित होता जा रहा था।

कुछ चुप रह कर अनन्त बोला—बताओ, क्या दिन के प्रकाश में प्यार भी उतना कठोर लगता है, जितना कि पत्थर। ज्योति ने कुछ विस्मय से कहा क्यों, क्या मतलब ? मैं नहीं समझी। अज्ञेय : परम्परा : ताज की छाया में

३. पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्य-व्यापारों और घटनाओं के उल्लेख जो पात्रों के कथोपकथन, काल की स्थिति में चरितार्थ होते रहते हैं, जैसे—

राजीव ऊपर आया तब उसी छोटे-छोटे में इशारे से बताया कि भाभी हाँ, उस पीछे वाले कमरे में हैं। उधर को बढ़ना ही था कि ऊपर की आवाज आई, क्या है ?

आवाज कम काफी न थी, उस पर स्वयं भाई साहब भी सामने आए। अगब डाँट उन की मुद्रा में थी। बोल क्या है ?

राजीव ने कोठरी की ओर बढ़ते हुए कहा कि कुछ नहीं।

कुछ है भी, और जोर से भाई साहब ने कहा।

रंग का लोटा है। राजीव ने धीमे से कहा।

जैनेन्द्र कुमार : राजीव और भाभी

उपर्युक्त तीनों शैलियों में द्वितीय और अंतिम शैली का प्रचलन आ- निक कहानी-कला में बहुत है। वस्तुतः पात्रों के चरित्र-चित्रण और उस संबंध कहानी की मूल संवेदना से जोड़ने के लिए उपर्युक्त दोनों शैलियाँ पृ कलात्मक और सशक्त हैं। इन दोनों शैलियों में आश्चर्यजनक गठन औ संपूर्ण कहानी में प्रवाह तत्व की गति मिलती है। नाटक में कथोपकथन के स उस के अभिनयात्मक तत्व उस में छिपे रहते हैं, जो अभिनेता की भावभंगि और उस के व्यापारों में अपनी अभिव्यक्ति पाते रहते हैं, लेकिन कहानी तो विशे रूप से पठन-पाठन की वस्तु है। इस के कथोपकथन में, अतएव पात्रों की मुद्राओं स्थितियों की व्यंजना और इस के साथ ही साथ कार्य-व्यापारों की विवेचना क रहना आधुनिक कहानी-कला की परम विशेषता है।

स्थिति अथवा वातावरण

कहानी-कला का मेरुदंड वास्तविक जीवन है, काल्पनिक लोक नहीं वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियों निर्मित होता है अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण क कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथा-वस्तु और उस के संचा पात्रों का सीधा संबंध उक्त स्थितियों से होता है अर्थात् इन का उद्गम और संबंध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होग इन का भी संबंध किसी काल विशेष से होगा। वर्तमान, भूत, अथवा भवि किसी कला प्रकार से फिर इन में भी विभेद हो सकते हैं। इस के उपरान्त दोनों का सापेक्षिक संबंध जीवन की किन्हीं परिस्थितियों से होगा। इन परिस्थिति की सीमा में समस्त मानवीय राग, द्वेष, अनुभूतियाँ और हर प्रकार के संघर्ष सकते हैं वस्तुतः इन सब के अलग-अलग चित्रण से कहानी में विभिन्न प पार्श्व प्रस्तुत होते हैं और इन सब के सामूहिक संकलन और प्रभाव से कहा के वातावरण की सृष्टि होती है।

नाट्य कला में नाटक की स्थिति और वातावरण के लिए रंगमं विशेष पर्दे, सजावट और अभिनेताओं के वेषभूषा आदि कार्य करते हैं, लेकि कहानी-कला, पठन-पाठन की वस्तु होने के कारण इस में स्थिति और वातावर के लिये स्थान-स्थान पर यथोचित देश-काल-परिस्थिति के चित्रण प्रस्तुत क होते हैं। क्योंकि बिना तत्व के कहानी का पाठक, कहानी की मूल संवेदना भाव-क्षेत्र से अपना तादात्म्य ही नहीं स्थापित कर सकता। एक तरह से कहा

होश में आओ—कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उन की वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है सूबेदार ने इस का मुंह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।

तो अब ? गुलेरी : उसने कहा था

२. पात्रों की मुद्राओं के संकेत के साथ-साथ उन के कथोपकथन आगे बढ़ते हैं अर्थात् कथोपकथन के बीच-बीच में, कहानीकार पात्रों की मुद्रा और स्थितियों की ओर भी संकेत करता चलता है, जैसे,

अनन्त एकाएक चुप हो गया। फिर बोला। उफ कैसी थकान है यह... ज्योति ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींच लिया दोनों फिर चुप हो गए, मिनट भर बाद ज्योति ने फिर पूछा अब क्या सोच रहे हो ? वह अनन्त की ओर देखती नहीं थी, देख वह अपलक दृष्टि से ताज की ओर ही रही थी, फिर भी जाने कैसे अनन्त का नाड़ी-स्पंदन निरंतर उस में प्रतिध्वनित होता जा रहा था।

कुछ चुप रह कर अनन्त बोला—बताओ, क्या दिन के प्रकाश में प्यार भी उतना कठोर लगता है, जितना कि पत्थर। ज्योति ने कुछ विस्मय से कहा क्यों, क्या मतलब ? मैं नहीं समझी। अज्ञेय : परम्परा : ताज की छाया में

३. पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्य-व्यापारों और घटनाओं के उल्लेख जो पात्रों के कथोपकथन, काल की स्थिति में चरितार्थ होते रहते हैं, जैसे—

राजीव ऊपर आया तब उसी छोटे-छोटे में इशारे से बताया कि भाभी हाँ, उस पीछे वाले कमरे में हैं। उधर को बढ़ना ही था कि ऊपर की आवाज आई, क्या है ?

आवाज कम काफी न थी, उस पर स्वयं भाई साहब भी सामने आए। अजब डाँट उन की मुद्रा में थी। बोल क्या है ?

राजीव ने कोठरी की ओर बढ़ते हुए कहा कि कुछ नहीं।

कुछ है भी, और जोर से भाई साहब ने कहा।

रंग का लोटा है। राजीव ने धीमे से कहा।

जैनेन्द्र कुमार : राजीव और भाभी

उपर्युक्त तीनों शैलियों में द्वितीय और अंतिम शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला में बहुत है। वस्तुतः पात्रों के चरित्र-चित्रण और उस का संबंध कहानी की मूल संवेदना से जोड़ने के लिए उपर्युक्त दोनों शैलियाँ पूर्ण कलात्मक और सशक्त हैं। इन दोनों शैलियों में आश्चर्यजनक गठन और संपूर्ण कहानी में प्रवाह तत्व की गति मिलती है। नाटक में कथोपकथन के साथ उस के अभिनयात्मक तत्व उस में दिये रहते हैं, जो अभिनेता की भावभंगिमा और उस के व्यापारों में अपनी अभिव्यक्ति पाते रहते हैं, लेकिन कहानी तो विशुद्ध रूप से पटन-पाठन की वस्तु है। इस के कथोपकथन में, अतएव पात्रों की मुद्राओं, स्थितियों की व्यंजना और इस के साथ ही साथ कार्य-व्यापारों की विवेचना करते रहना आधुनिक कहानी-कला की परम विशेषता है।

स्थिति अथवा वातावरण

कहानी-कला का मेरुदंड वास्तविक जीवन है, काल्पनिक लोक नहीं। वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियों से निर्मित होता है अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथा-वस्तु और उस के संचालक पात्रों का सीधा संबंध उक्त स्थितियों से होता है अर्थात् इन का उद्गम सूत्र और संबंध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा। इन का भी संबंध किसी काल विशेष से होगा। वर्तमान, भूत, अथवा भविष्य किसी कला प्रकार से फिर इन में भी विभेद हो सकते हैं। इस के उपरान्त इन दोनों का सापेक्षिक संबंध जीवन की किन्हीं परिस्थितियों से होगा। इन परिस्थितियों की सीमा में समस्त मानवीय राग, द्वेष, अनुभूतियाँ और हर प्रकार के संघर्ष आ सकते हैं वस्तुतः इन सब के अलग-अलग चित्रण से कहानी में विभिन्न परि-पार्श्व प्रस्तुत होते हैं और इन सब के सामूहिक संकलन और प्रभाव से कहानी के वातावरण की सृष्टि होती है।

नाट्य कला में नाटक की स्थिति और वातावरण के लिए रंगमंच, विशेष पर्दे, सजावट और अभिनेताओं के वेषभूषा आदि कार्य करते हैं, लेकिन कहानी-कला, पठन-पाठन की वस्तु होने के कारण इस में स्थिति और वातावरण के लिये स्थान-स्थान पर यथोचित देश-काल-परिस्थिति के चित्रण प्रस्तुत करने होते हैं। क्योंकि बिना तत्व के कहानी का पाठक, कहानी को मूल संवेदना और भाव-क्षेत्र से अपना तादात्म्य ही नहीं स्थापित कर सकता। एक तरह से कहानी

में यह तत्व सौन्दर्य और आकर्षण का वह तत्व है, जिस से केवल कहानी के विधान सौन्दर्य में ही नहीं अभिवृद्धि होती, वरन् इस से पाठक कहानी में सतत् आकर्षित और प्रेरित रहता है। इस से कहानी में परिपार्श्व के साथ-साथ पाठक के संवेद्य जगत् अर्थात् मस्तिष्क में भी उसी के अनुरूप वातावरण की स्वयं सृष्टि हो जाती है और कहानी पढ़ते समय या कहानी समाप्त करने के बाद पाठक उसी कहानी के देश-काल और परिस्थिति लोक में मग्न मिलता है। कहानी के एकांतिक प्रभाव में भी इस तत्व का बहुत बड़ा हाथ रहता है। इस से कहानी में सहज प्रभविष्णुता और शक्ति उत्पन्न होती है जिस के फलस्वरूप कहानी का पाठक इस कला से अपना संबंध स्थापित किये फिरता है।

ऐतिहासिक कहानियों में स्थिति और वातावरण का निर्माण इस कला की प्रमुख विशेषता है। कार्य-वस्तु से संबंधित देश-काल और परिथिति का पूरा-पूरा ज्ञान और उस की सहज अभिव्यक्ति ऐसी कहानियों की मूल आत्मा है। अगर इस दिशा में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता और अज्ञानता उपस्थित हुई तो यह निश्चित है कि कहानी असफल हो जायगी और उस की संवेदना से किसी भी प्रकार पाठक का साधारणीकरण न हो सकेगा यही कारण है कि सफल ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण उपस्थित करने के लिये देश-काल और परिस्थित का विशद् वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं। आधुनिक कहानियों में इन तीनों के वर्णन और चित्रण एक साथ एक गति में की जाती है और इस प्रवृत्ति का सामूहिक प्रभाव वातावरण प्रस्तुत करने से परम सफल सिद्ध हुई है। प्रसाद ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों में प्रायः देश-काल और परिस्थिति का चित्रण अलग अलग अंशों में करने का प्रयत्न किया है, लेकिन आज की कला में इसी दिशा में विकास हुआ है और इन तीनों तत्वों के सामूहिक प्रस्तुतीकरण से कहानी में वातावरण की प्रतिष्ठापना बहुत कलात्मक ढंग से हुई है उदाहरण स्वरूप "वह नहा रही थी, ऋतु न गरमी की न सरदी की। इसलिए अपने आँगन में निश्चिन्तता के साथ नहा रही थी। छोटे-से घर की छोटी-सी पौर के किवाड़ भीतर से बंद कर लिए थे, घर की दीवारें ऊँची न थीं, घर में कोई था नहीं, इसलिए वह मौज के साथ नहा रही थी। सुन्दरी थी, युवती, गोरी नारी। पानी के साथ हँसते-मुस्कराते अठखेलियाँ कर रही थी।

पठान बादशाह शेरशाह सूरी का शाहजादा इस्लाम शाह झूमते हुए हाथी पर सवार उसी घर के सामने वाली सड़क से चला आ रहा था। कारचोबी,

ज़रीदार की अचकन, सुनहला बादला हौदा, गहरे हरे रंग की चमकती हुई मखमल की चाँदनी, हौदे पर चमकते हुए मोतियों की झालरें, चाँदनी के सुनहले बेल-बूटों से दमक में होड़ लाने वाली।"

उपर्युक्त अवतरण में एक ही गति में देश-काल और परिस्थिति के चित्रण से कहानी में पूर्ण सफलता से वह वातावरण प्रस्तुत हो गया है, जिस का सूक्ष्म संबंध कहानी की मूल संवेदना से है।

आधुनिक सामाजिक कहानियों में देश-काल-परिस्थिति के अंतर्गत परिस्थिति तत्व के चित्रण में अपूर्व बल दिया जाता है। इस के चित्रण में इतनी व्यापकता आती जा रही है कि एक ओर इस के अंतर्गत देश-काल के वर्णन की अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यंजनात्मक रूप में हो जाती है, और दूसरी ओर इसकी विशदता से कहानी में ऐसा सुगठित वातावरण प्रस्तुत होता है जिस के सफल परिपार्श्व में कहानी की सम्पूर्ण संवेदना, पात्रों की गति के साथ पाठक के सामने चित्रित हो जाती है। अतएव आधुनिक कहानी-कला के अन्तर्गत मुख्यतः परिस्थिति के चित्रण द्वारा कहानी के वातावरण की अवतारणा कर देना इस की शैली की विशेषता है। इस का कारण यह है कि आज की कहानी-कला प्रायः व्यक्ति के चरित्र के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता की ओर विकसित हो रही है। अतएव इस में वातावरण प्रस्तुत करने के लिये मुख्यतः परिस्थिति के चित्रण की ओर ध्यान दिया जाता है, देश-काल की ओर बहुत ही कम। वस्तुतः इन दोनों तत्वों के चित्रण अपने व्यंजनात्मक रूप में परिस्थिति चित्रण में स्वयं ही हो जाते हैं : जैसे—

"हेमन्त कई क्षण तक चुपचाप बालू की ओर देखता रहा यह नहीं कि उस के मन में शून्य था, यह भी नहीं कि मन की बात कहने को शब्द बिल्कुल ही नहीं थे केवल यही कि बालू पर उसके अपने पैरों की जो छाप हुई थी गीली बालू जो चिकनी माटी की तरह होती है उसमें उसके लिए एक आकर्षण था जिसमें निरा कौतूहल नहीं, जिज्ञासा की एक तीखी तात्कालिता थी। छालियाँ उसके पास तक आकर लौट जाती थीं क्या कोई बड़ी लहर आकर उस छाप को लील जायगी। क्या एक लहर में वह छाप मिल जायगी, न कि केवल हल्की पड़ जायगी मिटने के लिये कई लहरों को आना होगा जिन लहरों को पैदा करने के लिए समुद्र की, पृथ्वी की आन्तरिक हलचल की चन्द्र, सूर्य तारागण के आकर्षण की एक विशेष अन्योन्य संबद्ध स्थिति को बार-बार आना होगा...क्या उस का एक एक अनैच्छिक पद-चिह्न

मिटाने के लिए सारे विश्व चक्र के एक विशेष आवर्तन की आवश्यकता है।

अज्ञेय : जयदोल : वे दूसरे, पृष्ठ ७३

उपर्युक्त अवतरण में मुख्यतः परिस्थिति-चित्रण के माध्यम से कहानी के आरम्भ ही में कितने शक्तिशाली वातावरण की अवतारणा हो गई है। इस चित्रण में कहानी की मनोवैज्ञानिकता पात्रों के आन्तरिक संघर्ष दोनों बातें स्पष्ट हैं। आधुनिक कहानी-कला में स्थिति अथवा वातावरण के तत्व इस के परम आवश्यक तत्वों में से हैं। इस के माध्यम से कहानी में एकांतिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न होती है और समूची कहानी में वह आकर्षण और प्रेरणा आती है, जिस से मुक्त होकर कहानी का पाठक इस में रत रहता है।

शैली

कथा-वस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण कथोपकथन और वातावरण आदि कहानी-कला के विभिन्न तत्व हैं लेकिन शैली-तत्व, कहानी-कला की वह रीति है जो इस के तत्वों को अपने विधान में उपयोग करती है। स्पष्ट शब्दों में शैली-तत्व, कहानी-कला के समस्त उपकरणों के उपयोग करने की रीति है। इस में एक तरह से विधान की व्यंजना है। वस्तुतः कहानी कला में रूप विधान का चातुर्य और हस्तलाघव का सब से बड़ा प्रमाण देना पड़ता है। एक तरह से इस कला में इस के भाव-पक्ष की सफलता और उत्कृष्टता इस के कला-पक्ष के आधीन है और कला-पक्ष के अन्तर्गत इस का शैली तत्व सब से महत्वपूर्ण है क्योंकि कहानी कला में हस्तलाघव और विधानात्मक सफलता इस के दो मुख्य शर्तें हैं।

अध्ययन की दृष्टि से शैली-तत्व के अन्तर्गत इस के दो पक्ष आते हैं प्रथम भाषा पक्ष, द्वितीय रूप विधान पक्ष। भाषा शैली के कहानीकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है इसी के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक कहानी सरल, सुबोध और सरल शैली में है तथा अमुक कहानी गूढ़, अस्पष्ट और दुर्बोध शैली में है। अतएव कहानी की भाषा शैली में गद्य का महत्व सब से अधिक है। गद्य में शब्द और वाक्य योजना की स्वाभाविकता और भावों के साथ इस का गठन और संयम इस की परम विशेषता है। क्योंकि कहानी के गद्य में शब्द-चयन और वाक्य-योजना ही भाषा की वह कलात्मकता है जिस के विविध प्रयोग और रूपों से कहानीकार अपने भाव-चित्र को मूर्त्त करता रहता है। फलतः शब्द-शक्ति का ज्ञान उस की

[illegible] के [illegible] रूप में [illegible] । [illegible]

भाषा शैली

[illegible] भाषा शैली [illegible] है । [illegible] भाषा शैली [illegible] है ।

१. [illegible] शैली २. [illegible] भाषा [illegible]

३. [illegible] शैली

[illegible] भाषा शैली [illegible] भाषा शैली [illegible] । [illegible] और [illegible] ।

उदाहरण

१. [illegible] किसी ने [illegible] दिया, किसी ने [illegible] और [illegible] । [illegible] ।

[illegible] : पंच परमेश्वर

"[illegible] । और [illegible] । [illegible] और [illegible] । और [illegible] था और [illegible] था । [illegible] ।"

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : [illegible]

२. "अभिमान ! [illegible] अभिमान ? और अगर [illegible] ही तो [illegible] जो [illegible] होती हैं । यह तो सबसे बड़ी थी, [illegible] उत्तर-दायित्व । [illegible] कुटिल हो गये । [illegible] अशान्ति के इन तीन-चार वर्षों में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे, [illegible]

मिटाने के लिए सारे विश्व चक्र के एक विशेष आवर्तन की आवश्यकता है।

अज्ञेय : जयदोल : ये दूसरे, पृष्ठ ७२

उपर्युक्त अवतरण में मुख्यतः परिस्थिति-चित्रण के माध्यम से कहानी के आरम्भ ही में कितने शक्तिशाली वातावरण की अवतारणा हो गई है। इस चित्रण में कहानी की मनोवैज्ञानिकता पात्रों के आन्तरिक संघर्ष दोनों बातें स्पष्ट हैं। आधुनिक कहानी-कला में स्थिति अथवा वातावरण के तत्व इस के परम आवश्यक तत्वों में से हैं। इस के माध्यम से कहानी में एकांतिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न होती है और समूची कहानी में वह आकर्षण और प्रेरणा आती है, जिस से मुक्त होकर कहानी का पाठक इस में रत रहता है।

शैली

कथा-वस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण कथोपकथन और वातावरण आदि कहानी-कला के विभिन्न तत्व हैं लेकिन शैली-तत्व, कहानी-कला की वह रीति है जो इस के तत्वों को अपने विधान में उपयोग करती है। स्पष्ट शब्दों में शैली-तत्व, कहानी-कला के समस्त उपकरणों के उपयोग करने की रीति है। इस में एक तरह से विधान की व्यंजना है। वस्तुतः कहानी कला में रूप विधान का चातुर्य और हस्तलाघव का सब से बड़ा प्रमाण देना पड़ता है। एक तरह से इस कला में इस के भाव-पक्ष की सफलता और उत्कृष्टता इस के कला-पक्ष के आधीन है और कला-पक्ष के अन्तर्गत इस का शैली तत्व सब से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कहानी कला में हस्तलाघव और विधानात्मक सफलता इस के दो मुख्य शर्तें हैं।

अध्ययन की दृष्टि से शैली-तत्व के अन्तर्गत इस के दो पक्ष आते हैं प्रथम भाषा पक्ष, द्वितीय रूप विधान पक्ष। भाषा शैली के कहानीकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है इसी के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक कहानी सरल, सुबोध और सरल शैली में है तथा अमुक कहानी गूढ़, अस्पष्ट और दुर्बोध शैली में है। अतएव कहानी की भाषा शैली में गद्य का महत्त्व सब से अधिक है। गद्य में शब्द और वाक्य योजना की स्वाभाविकता और भावों के साथ इस का गठन और संयम इस की परम विशेषता है। क्योंकि कहानी के गद्य में शब्द-चयन और वाक्य-योजना ही भाषा की वह कलात्मकता है जिस के विविध प्रयोग और रूपों से कहानीकार अपने भाव-चित्र को मूर्त्त करता रहता है। फलतः शब्द-शक्ति का ज्ञान उस की

गंभीरता और संयम तथा विषय और वस्तु के अनुकूल उस में परिवर्तन, कहानी की भाषा शैली की मुख्य विशेषता है।

भाषा शैली

व्यापक रूप से प्रत्येक कहानीकार की अपनी अलग-अलग भाषा शैली होती है। प्रत्येक के गद्य में अपना स्वतन्त्र संगीत, भाषा-सौष्ठव और शब्द-संयम होता है लेकिन प्रकार की दृष्टि से प्रायः तीन प्रकार की भाषा शैलियाँ होती हैं।

१. बोलचाल की भाषा शैली २. गंभीर और परिष्कृत भाषा शैली
३. अलंकृत, तत्सम भाषा शैली

इस के उदाहरण प्रेमचन्द से लेकर आज की कहानी भाषा शैली में से कहीं से भी दी जा सकती हैं लेकिन निश्चित भाषा शैलियों के दृष्टिकोण से प्रथम के अन्तर्गत प्रेमचन्द, अश्क और यशपाल आदि की भाषा शैलियाँ आती हैं। द्वितीय के अन्तर्गत अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार और तृतीय के अन्तर्गत ऐतिहासिक कहानीकार जयशङ्कर प्रसाद की।

उदाहरण

१. "विरला ही भला कोई आदमी होगा जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने यूं ही ऊपरी मन हूँ-हाँ करके टाल दिया, किसी ने उस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं और कहा कब्र में पाँव लटके हुए हैं आज मरे या कल दूसरा दिन होंगर हवस नहीं मानती। अहा तुम्हें क्या चाहिए। रोटी खाओ और अल्ला का नाम लो तुम्हें खेती बारी से क्या काम।

प्रेमचन्द : पंच परमेश्वर

"दूर कहीं मुसलमानों के मुहल्ले में मुर्ग ने अजान दी। चौंक कर शंकरी उठी। उसने अपने सब गहने उतार कर ट्रंक में बन्द किए, कपड़े बदल, फिर तह लगा कर रखे और दबे पाँव ऊपर पहुँची। चाँद तब दायीं ओर के ऊँचे मकान की ओर चला गया था और चारपाइयों पर हलका-सा अंधेरा छा गया था। चुपचाप शंकरी अपनी चारपाई पर जा लेटी।"

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : अङ्कुर

२. "अभिमान? स्त्री का क्या अभिमान? और अगर करें ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बड़ी थी, केवल उत्तर-दायिनी। हीली के ओठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गये। युद्ध की अशान्ति के इन तीन-चार वर्षों में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे, अनोखे

रूप, उल्लसित उच्छ्वासित, लोलुप, गर्वित, याचक, पाप संकुचित, दर्प स्फीत-मुद्राएँ, और वह जाती थी कि इन चेहरों और मुद्राओं के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियों के सुख दुख, तृप्ति और अशान्ति, वासना और वेदना, आकांक्षा और सन्ताप उलझ गए। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण में एक पराया और दूषित तनाव आ गया था।" 'अज्ञेय' : हीली बोन की बत्तखें

"इसके मन का सब संशय भाग गया। अभाव विलुप्त हो गया। अशेष प्रश्न, उसका जी मानों चारों दिशाओं को एक साथ अभिवादन देना चाहता है। सब ओर उसे प्रीति, सब ओर उसे मंगल है। इस प्रभातकालीन उषा के प्रकाश में अपने जयराज को देखा। कौन उसके लिए आज वर्जित है, कौन उसके लिए आज निषिद्ध है। किसके साथ पार्थक्य उसके लिए अनिवार्य है।'

जैनेन्द्र कुमार : एक रात

३. "उद्यान की शैलमाला के नीचे एक हराभरा छोटा-सा गाँव है। वसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलों के सौरभ से उसके झोंपड़े को भर देता है। तलहटी के हिम शीतल करने उसको अपने बाहुपाश में जकड़े हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश में एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है, उत्पन्न करता है।"

जयशङ्कर प्रसाद : बिसाती

उक्त विविध शैलियों के प्रयोग से कथा-वस्तु के प्रवाह और पात्रों की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ता है। स्थिति और पात्र के अनुकूल कहानी की भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है, यही कारण है कि बोलचाल की भाषा शैली का महत्व कहानी में अत्यधिक है। गंभीर तत्सम भाषा शैली में प्रायः कृत्रिमता आ जाती है।

रूपविधान शैली

शैली के रूप विधान पक्ष के अन्तर्गत कहानी-निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ आती हैं, जैसे :

१. ऐतिहासिक शैली	२. आत्मचरित्र शैली
३. पत्रात्मक शैली	४. डायरी शैली
५. नाटकीय शैली	६. मिश्रित शैली

ऐतिहासिक शैली

इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार एक कथावाचक की भाँति पूर्णतः

[illegible] ही कर कहानी को [illegible] करता है। [illegible] होती है, [illegible] कहानी [illegible] होता। और [illegible] कहानीकार [illegible] और [illegible] की [illegible] है। [illegible] मिलता है। इस [illegible] कहानी [illegible] की [illegible] जाती है। [illegible] और [illegible] होती है। [illegible] होती है। इस [illegible] शिल्प, [illegible]

[illegible] था। [illegible] हो गई, [illegible] है।"

[illegible]

और इस तरह कहानी पूरा [illegible] कहानी [illegible] है। इस के विकास में यह शैली भी [illegible] और [illegible] रहता है। [illegible] और [illegible] यह इसी [illegible] है। इस में [illegible] और [illegible] होती है, यही कारण है कि इस शैली का [illegible] और [illegible] अन्य सब शैलियों की अपेक्षा अधिक है।

आत्मचरित्र शैली

आत्मचरित्र शैली में कहानीकार अथवा कहानी का कोई पात्र 'मैं' के रूप में आत्मदर्शन और आत्मविश्लेषण के द्वारा पूरी कहानी कह जाता है। इस तरह सम्पूर्ण कहानी में वे घटित और अंकित ही कर इसी की सीमा में वर्णित होते हैं, यही कारण है कि इस शैली को उत्तम पुरुषात्मक शैली भी कहते हैं। रूप विधान की दृष्टि से इस के अन्तर्गत तीन शैलियाँ हैं। यथा :

१. कहानी का मुख्य पात्र आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कहानी स्वयं कहता है, जैसे, इलाचन्द्र जोशी की, 'पगली' और 'दोनों' शीर्षक कहानी—"आज

प्रातः भ्रातृ द्वितीया के बाद का तीज है। तीन दिन तक काम की भीड़ थी। आज अवकाश का दिन है। प्रातःकाल के कामों से छुट्टी पा कर सब को खिला-पिलाकर, स्वयं खा-पीकर अपने कमरे में चारपाई पर बैठ कर खिड़की से बाहर का दृश्य देख रही हूँ।

२. कहानी के विभिन्न पात्र क्रमशः आत्मवर्णन अथवा आपबीती कथा सुनाते हैं, और सब की आत्मकथाओं के समन्वय से समूची कहानी, अपनी पूरी एकसूत्रता से निर्मित हो जाती है, जैसे, सुदर्शन की कवि की स्त्री और उपेन्द्रनाथ अश्क की चित्रकार की मौत शीर्षक कहानी जिस में लालचंद, जगत किशोर और राधारानी अपनी-अपनी आत्मकथाओं द्वारा एक समूची संवेदना की सृष्टि करते हैं और कहानी अपने सम्यक रूपों में सफल होती है।

३. कहानीकार स्वयं आत्म-भाषण के रूप में समूची कहानी पूरी करता है। कलात्मक दृष्टि से उस का 'मैं' कहानी का मुख्य पात्र बन जाता है और वह अपनी आत्मकथाओं में कहानी के अन्य पात्रों का भी समेट कर चलता है : जैसे, अज्ञेय की मंसो शीर्षक कहानी :

जब उस दिन एक विचित्र विस्मय से भर कर अपने झोपड़े के द्वारा पर आते ही मैंने अपने हाथों को हथकड़ियों में बँधे हुए पाया, तब उस अनहोनी, यद्यपि चिर अपेक्षित घटना के दबाव के बीच में भी, मैंने यह सोचा था कि इस विघ्न द्वारा कुछ पूर्ण हो गया है कुछ ऐसा जिस का और कोई अन्त मैं सोच नहीं पाता था।

इस शैली के अन्तर्गत में चरित्र का आत्म-विश्लेषण उत्कृष्ट ढंग का होता है। उस के अन्तस्तल के अमूर्त्त से अमूर्त्त तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों, अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता से हो जाती है। जिन कहानियों में एक ही पात्र का विश्लेषण करना हो, उस के लिये यह शैली उत्कृष्ट है।[1] रूप विधान की दृष्टि से इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार आत्मकथा अथवा स्वगत-भाषण की सीमाओं में रह कर कहानी की पूरी संवेदना उस के आरोह-अवरोह की पूर्ति करनी पड़ती है, फिर भी कहानी में सहज कुतूहल और पाठक के लिये आरंभ को अक्षुण्ण रखना, कहानीकार का प्राथमिक उत्तरदायित्व रहता है।

[1] जिन कहानियों में एक ही प्रधान चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिये यह शैली अत्यन्त, उपयुक्त है।
: डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृष्ठ २४६

ुनिक कहानी-कला में इस शैली का प्राथमिक उत्तरदायित्व रहता है। आधु-
कहानी-कला में इस शैली का अपूर्व प्रचलन और प्रसार है, क्योंकि आज
कहानी-कला का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत
विश्लेषण की पद्धति ने आधुनिक कहानीकारों को असीम वर्ण्य वस्तु का
दिया है और वह आत्म-विश्लेषण के माध्यम द्वारा उन्हें सहज गति से
ना रहा है। आधुनिक कहानी शैलियों में यह शैली सब से अधिक सशक्त
र प्रभावशाली है। मानव अन्तस्तल के गूढ़ से गूढ़ विषय और संवेदनाएं इस
ी के द्वारा कहानी के रूप में अभिव्यक्त हो रही हैं।

ात्मक शैली

इस शैली में कहानीकार पत्रों के माध्यम से कहानी की सृष्टि करता है।
ाव की दृष्टि से यह शैली अन्य शैलियों से असफल है। इस में प्रयोगशीलता
र कलात्मक आडम्बर ही अधिक है, कहानी की मूल आत्मा अप्रस्फुटित ही
जाती है। यही कारण है कि इस शैली का प्रचलन और विकास बहुत ही
ा हुआ है। इस शैली में रूप विधानात्मक दो सीमाएँ उपस्थित होती है जिन के
ास्वरूप कहानी में अस्पष्टता आ खड़ी होती है। प्रथम विभिन्न पत्रों में
ानी की संवेदना बिखरी होने के कारण कहानी की एकसूत्रता नष्ट हो जाती
और कहानी में वातावरण का निर्माण नहीं हो पाता, जिस से कहानी आकर्षण
्य हो जाती है। द्वितीय कहानी के विभिन्न इकाइयों में बँट जाने के कारण
ा का सम्यक् विकास नहीं हो पाता, अतएव इस में प्रभाव की शक्ति नष्ट हो
ाती है। इस शैली के अन्तर्गत कहानी लिखने की तीन प्रणालियाँ हैं। यथा—

१. कई पत्रों के माध्यम से कहानी की सृष्टि की जाती है, जैसे, चंद्रगुप्त
द्यालंकार का एक सप्ताह, उपेन्द्रनाथ अश्क का नरक का चुनाव।

२. एक ही पत्र के माध्यम से समूची कहानी का निर्माण, जैसे, विनोद
कर व्यास की अपराधी, इलाचन्द्र जोशी की चौथे विवाह की पत्नी।

३. आरम्भ और विकास भाग की अभिव्यक्ति विभिन्न पत्रों के द्वारा
ी जाती है और कहानी का अन्तिम भाग स्वतंत्र विवेचन, विश्लेषण और
र्णनों द्वारा सम्पन्न होता है, जैसे, अज्ञेय का सिगनेलर और उपेन्द्रनाथ
श्क की मरीचिका।

प्रभाव की दृष्टि से पत्रात्मक शैली की उक्त तीसरी प्रणाली प्रथम और
द्वितीय की अपेक्षा उत्कृष्ट है। इस में कहानी का एकान्तिक प्रभाव और कहानी-

कार की आत्मानुभूति दोनों की यथासंभव अभिव्यक्त हो जाती है।

डायरी शैली

डायरी शैली वस्तुतः पत्रात्मक शैली का ही दूसरा रूप है। इस में डायरी के विभिन्न पृष्ठों द्वारा सम्पूर्ण कहानी कही जाती है। इस शैली में अतीत का वर्णन पूर्ण अनुभूति और भावुकता से किया जाता है। आत्मचरित्र शैली और इस शैली में बहुत सामीप्य है। इस में भी आत्म-विश्लेषण और विवेचन की सारी स्थितियाँ उत्पन्न मिलती हैं। इलाचन्द्र जोशी की प्रसिद्ध कहानी 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' और भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'अन्ना' इस शैली के सुन्दर उदाहरण हैं।

नाटकीय शैली

नाटकीय शैली के अन्तर्गत दो मुख्य शैलियाँ आती हैं, प्रथम, संलाप शैली, दूसरी वह शैली जो एकांकी नाटक के विधान को लेकर चलती है। वस्तुतः इस दूसरी शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला की देन है।

संलाप शैली

भोजन की थाली पर बैठे छोटे राजकुमार ने पूछा, माँ वह महल लाल पन्नों का है न?

रानी ने कहा—कौन-सा महल बेटा? यह तुम कुछ खा नहीं रहे हो। खाओ

राजकुमार ने कहा—माँ, सात समुन्द्र पार जो नीलम के देश की छोटी-सी रानी है। उनका महल लाल पन्नों का तो है न?

माँ ने कहा—हाँ बेटा, लाल पन्ने का है, और उसमें हीरे भी लगे हैं और उस महल का फर्श...पर वह तो कहानी रात को होगी। अब तुम खाना खाओ।

जैनेन्द्र कुमार: एक रात, राजपथिक, पृष्ठ १२२

एकांकी नाटक शैली

और ठीक उसी समय स्त्री का पति प्रवेश करता है। पति जैसा ही उस का स्वर है, साधारण, न रूखा न मीठा, जिस में कुछ अपनाया भी है, कुछ उदासीनता भी, लेकिन क्या अपनापा और उदासीनता प्यार के परिचय के ही दो पहलू नहीं हैं?

पति—मालती

स्त्री—जी

पति—चिढ़ता हुआ : अगर मैं बाहर खड़ा रहता, तो सोचता कि न जाने कौन तुम से बातें कर रहा है। यह क्या पता था कि आप जूठ बरतनों से भी बातें कर सकती हैं।

स्त्री—नहीं-हाँ

पति—यानी इतनी तन्मय हो कर बात कर रही थी कि तुझे मालूम ही नहीं। कौन था आखिर वह मन मोहन सुध बिसरावन कौन...आया था?

स्त्री—: अनमनी-सी : वसन्त।

पति—: न समझते हुए : कौन वसंत?

अज्ञेय : जयदोल, वसन्त, पृष्ठ ५१

मिश्रित शैली

कहानी-निर्माण की एक शैली यह भी है, जिस में अनेक-शैलियां, जैसे, ऐतिहासिक, पत्रात्मक, डायरी, संलाप और आत्मचरित्र शैली आदि का सहारा लिया जाता है। जैसे अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी छाया और कैसेन्ड्रा का अभिशाप; उपेन्द्रनाथ अश्क की पिंजारा, जैनेन्द्रकुमार की एक रात आदि। रूप विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ मिश्रित शैली में ही लिखी जा सकती हैं, क्योंकि इस में कहानीकार को इतनी विधानात्मक स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी कहानी में प्रभाव लाने के लिये, चरित्र-चित्रण और विश्लेषण आदि के लिये उन समस्त कहानियों का सदुपयोग कर सकता है, जो उस की अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण सहज और शक्तिशाली सिद्ध होगी। इस शैली के माध्यम से कहानी में सम्यक विकास और इस में व्यापकता उपस्थित होती है। हिन्दी की प्रायः सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ इसी शैली के अन्तर्गत आती हैं। इस में न प्रयोग का आग्रह होता है न शैली की चमक-दमक, वरन् समूची कहानी पूर्ण संयम गंभीरता और अपूर्व प्रभाव की शक्ति लिये हुए पाठक के सामने आती है।

उद्देश्य

कहानी-कला के अन्तर्गत उद्देश्य इस का वह तत्व है जिस की मूल प्रेरणा से कहानी में इतने कलात्मक प्रयत्न, हस्तलाघव और विधानात्मक कुशलता के परिचय देने होते हैं। स्पष्ट रूप से समूची कहानी-कला का यह तत्व वह

अन्तिम लक्ष्य है, जिस की प्राप्ति के लिये कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज की नाना परिस्थितियों, समस्याओं के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उन के प्रति उस के निदान, उस के निर्णय आदि कहानी के उद्देश्य बनते हैं, तथा इसी उद्देश्य के भाव-बिन्दु पर कहानी का कथानक, चरित्र और शैली आदि की अवतारणा होती है। उन्हीं उद्देश्यों को पूर्ण रूप से व्यंजित और चरितार्थ करने के लिये कहानीकार का अपनी कहानियों का विभिन्न शैलियों और रूप विधानों के रखनी पड़ती है। क्योंकि एक शैली में उद्देश्य की एक ही दिशा सफलतापूर्वक चरितार्थ की जा सकती है और उस को कहानी के उद्देश्य तत्वों, कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठापना, आधुनिक कहानी की सब से बड़ी विशेषता है। कहानी की शैली, कहानी के रूप विधान में इतनी चाल, इतने हस्तलाघव केवल व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिये ही किये जाते हैं, अन्य लक्ष्य से नहीं।[1] कहानी का यह व्यक्तित्व इत ना व्यापक और महान है कि उस की इस सीमा में समस्त मानव व्यापार, उस की समस्त समस्यायें, विदान, और भाव स्वीकृत रहती हैं। अतएव कहानी के चरम उद्देश्य पर यह सत्य निश्चित है कि उस में मानवता और मानव मूल्यों की व्याख्या होगी, मनुष्य के शाश्वत भावों, अनुभूतियों और समस्याओं पर प्रकाश डाला गया होगा। इन विशेषताओं से शून्य कहानी किसी भी तरह आधुनिक कहानी नहीं कही जा सकेगी।[2]

कहानीकार के अपने इसी व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के अन्तर्गत कहानी में यथार्थवाद आदि इकाइयाँ आती हैं। कभी-कभी उद्देश्य के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से मिलती हैं और इसी अनुभूति के धरातल पर पूरी कहानी प्रतिष्ठित होती है।. ऐसी कहानियाँ अपने एकान्तिक प्रभाव में अत्यन्त

---

[1] The purpose of all these trick or conventions is to communicate personality which appearing only to tell a story. Sean O' Faolain.

[2] I think it is safe to say that unless a story makes this subtle coment on human nature, on the permanat relatioship between people. Their variety, their expedness, it is not a story in modern sense—

Seam O' Faolain. Short Stories Page 154

शक्तिशाली और उत्कृष्ट होता है। उन के उद्देश्य-वस्तु में जहाँ एक ओर मनोवैज्ञानिक अनुभूति मिलती है वहाँ दूसरी ओर हमें एक ऐसे सत्य का दर्शन होता है जिस में हमारे मनोविज्ञान, युग-चेतना और व्यक्तित्व-चेतना, तीनों का सामंजस्य उपस्थित होता है।

कलात्मक दृष्टि से ऐसे उद्देश्यों की अनुभूति अत्यन्त परोक्ष रूप से कहानी में करायी जाती है, तभी कहानी सफल हो जायगी, अपितु कहानी कहानी न रह कर प्रवचन और वार्ता हो जायगी। वस्तुतः जिस कहानीकार की अनुभूति, संवेदना, जितनी गहरी और महान होगी, उस की कहानी उतनी शाश्वत होगी, और जिस कहानीकार का उद्देश्य, उस का व्यक्तित्व जितना महान होगा, उस की कहानी उतनी ही महान होगी।

कहानियों का वर्गीकरण

कहानी-कला के मूल तत्वों में कथानक, चरित्र, वातावरण ही इस के मुख्य तत्व हैं। इन्हीं के सम्यक और आनुपातिक संयोग से कहानी की सृष्टि होती है। लेकिन कहानी-विधान की दृष्टि से, संवेदना के अनुकूल, कहानीकार कभी अपनी सृष्टि में कथानक और कार्य-व्यापार को मुखयता देता है, कभी पात्र और चरित्र-चित्रण को, कभी वातावरण को। इस तरह एक तत्व की प्रमुखता से प्रत्येक कहानी अपने रूप और प्रकार में एक दूसरे से भिन्न हो जाती है, और सब में अपने अलग-अलग आकर्षण उत्पन्न हो जाते हैं। किसी में इतिवृत्त अथवा कार्य-व्यापार की सुन्दरता रहती है, किसी में चरित्र-चित्रण तथा उस के विश्लेषण और किसी में वातावरण के आकर्षक का सुख मिलता है। इस भाँति विभिन्न तत्व की प्रधानता के धरातल से कहानियों का निम्नलिखित वर्गीकरण हो सकता है। यथा—

१. कथानक प्रधान कहानी
२. चरित्र प्रधान कहानी
३. वातावरण प्रधान कहानी
४. विविध कहानियाँ

कथानक-प्रधान कहानी

मूल्य की दृष्टि से कथानक प्रधान कहानी सब से साधारण कोटि की होती है। लेकिन व्यापकता और प्रसार की दिशाएं इस कहानी को सब से अधिक महत्व मिला है। कहानी अपने आविर्भाव युग में मुख्यतः इसी रूप में थी और इस रूप का विकास आज तक की कहानियों में मिलता आ रहा है। कथानक प्रधान कहानियों के, चरित्र प्रधान, घटना प्रधान और कार्य प्रधान तीन

रूप होते हैं और तीनों रूप इस के मुख्य धरातल हैं, जहाँ से कहानीकार अपनी संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति उपस्थित करता है। चरित्र प्रधान कथानक में चरित्र ही वह मूल केन्द्र होता है, जहाँ पर कहानी की मुख्य संवेदना स्थिर होती है। चरित्र का विकास, उस की सारी गति-विधि, कार्य-व्यापार ऐसी कहानी की मूल प्रेरणा होती है, जैसे, कौशिक की 'पावन पतित' प्रेमचन्द की 'आत्माराम' और यशपाल की 'उत्तराधिकारी' आदि कहानियाँ। 'उत्तराधिकारी' कहानी में हरीस वह चरित्र है, जिस के केन्द्र-विन्दु से एक बहुत लम्बा और इतिवृत्तात्मक कथानक निर्मित होता है। हरीस गाँव में छोड़ कर लाम पर चला जाता है। बहुत वर्ष बीत जाते हैं, वह घर नहीं लौटता, इधर इसी बीच में उस की पत्नी, मानी को किसी अन्य से बच्चा पैदा होता है। हरीस कुछ वर्ष बाद घर लौटता है और मानी तथा उस के बच्चे का खून करना चाहता है, लेकिन मानी सदा के लिये भाग जाती है। हरीस पुनः एक अन्य स्त्री, कुशली को अपने घर बैठाता है और उस से एक संतान की आकांक्षा में जोता है। परन्तु हरीस लड़ाई में जख्मी हो जाने के कारण शारीरिक रूप से असमर्थ था, फिर उत्तराधिकारी कैसे आए। कुशली मेले में जाती है, ईश्वर से संतान के लिये वरदान माँगती है। वहीं उस से और गनेर सिंह से संबं हो जाता है। उसे गर्भ रह जाता है और वह गनेर सिंह की घरवाली बन जाती है। उसे बच्चे पैदा होता है। हरीस पंचायत करता है और बहुत प्रसन्नता-संतोष से कुशली और उस के बच्चे को अपने घर लाता है। क्योंकि हरीस को एक उत्तराधिकारी की अमिट इच्छा थी।

घटना प्रधान कथानक में घटनाएं ही कथानक-निर्माण में मुख्य होती है। इन्हीं घटनाओं के माध्यम से समूचा कथानक निर्मित होता है लेकिन ऐसे कथानक कलात्मक दृष्टि से बहुत निम्नकोटि के होते हैं। क्योंकि इस का अधार मानव की शाश्वत समस्याएं तथा मनोभाव न होकर केवल जीवन की बाह्य घटनाएं होती हैं। ऐसे कथानकों के विकास में दैव घटना और संयोग का विशेष सहारा लिया जाता है। 'कौशिक' की 'ताई' कहानी इस के उदाहरण में सर्वश्रेष्ठ है कार्य प्रधान कथानक, घटना प्रधान कथानक का ही एक विकसित रूप होता है। इस में भी घटनाएं आती हैं लेकिन कार्य-व्यापार की एकसूत्रता में आती है अर्थात् कथानक में कार्य-व्यापार की मुख्यता मिलती है और घटनाएं उस में साधन के रूप में आती हैं। इस तरह ऐसे कथानकों से निर्मित कार्य प्रधान कहानियां में सब से अधिक मुख्यता कार्य-व्यापार पर दिया जाता है

और इस के अन्तर्गत जासूसी, रहस्यपूर्ण तथा अद्भुत कहानियाँ आती हैं। इस प्रकार की कहानियों के प्रतिनिधि कहानीकार गोपालराम गहमरी और दुर्गा प्रसाद खत्री सर्वथा उल्लेखनीय हैं।

कथानक प्रधान कहानियों में वर्णन और इतिवृत्त इस के दो प्रधान अंग हैं। इस में मानव की बाह्य उलझनों और कार्य-व्यापार पर बहुत बल दिया जाता है। चरित्रों को विविध परिस्थितियों में डाल कर, उस से कथावस्तु के निर्माण तथा आरोह-अवरोह से कहानी की सृष्टि होती है। ऐसी कहानियों में प्रवाह और कौतूहल तत्व की विशेष प्रधानता होती है, लेकिन कला की दृष्टि से कथानक प्रधान कहानियाँ साधारण स्तर की समझी जाती है।

चरित्र प्रधान कहानी

चरित्र प्रधान कहानियों का मुख्य उद्देश्य चरित्र-चित्रण और चरित्र-विश्लेषण होता है। अतएव इन कहानियों का मुख्य धरातल मनोविज्ञान होता है। उदाहरण के लिये प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी—'कफ़न' चरित्र प्रधान कहानियों की दिशा में अमूल्य देन है। गरीब बाप-बेटे, जाड़े के दिनों में बाहर अलाव के किनारे बैठे हैं। भीतर बेटे की पत्नी प्रसव-पीड़ा से कराह रही है। लेकिन उसे देखने मात्र के लिये उन दोनों में से कोई भी भीतर नहीं जाता। क्यों?—इसलिए कि वे दोनों भूखे थे, और अलाव में कुछ आलू भूने जा रहे थे उन्हें डर था कि अगर कोई भीतर जाता, तो दूसरा अलाव से आलू निकाल कर खा जायगा। इसलिए दोनों वहीं बैठे रहे और असीम पीड़ा से सुबह होते-होते औरत मर जाती है गरीब, निकम्मे, कामचोर, दोनों रोते हुए बैठे रहे। गाँव के लोगों ने कफ़न के लिये चन्दा करके उन्हें दिया और बाप-बेटे कफ़न खरीदने के लिये बाजार गये। भूखे, लालची और असन्तुष्ट—वे दोनों कफ़न के लिये कपड़ा देखते-देखते शराब की दूकान पर पहुँचे। गोस्त खाये, चटपटे लिये और पूरे रुपये की दोनों ने शराब पी डाली और मदमस्त होकर यहींनाचने-गाने लगे। इस कहानी में उन दोनों भूखे, निकम्मे और नीच चरित्रों को स्पष्ट किया गया है। चरित्र के इतने सुन्दर और सत्य चित्रण के केन्द्र-बिन्दु से पूरी कहानी निर्मित हुई है। इस कहानी में कार्य-व्यापार, घटनाएं और प्रसंग बिल्कुल नाममात्र के लिये हैं, और जो कुछ है भी वे सब उन दो चरित्रों की छाया है, जिनसे वे चरित्र बिल्कुल स्पष्ट रूपये में हमारे सामने खड़े हैं।

विकास युग में चरित्र प्रधान कहानियों के सर्वश्रेष्ठ लेखक प्रेमचन्द हैं।

इन की कहानियों में मनोविज्ञान अपने तात्विक रूप में अधिक प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी कहानियों के संक्रान्ति युग में मनोविज्ञान की उन्नति और उस से चली हुई मनोविश्लेषण की पद्धति से चरित्र प्रधान कहानियाँ और भी सुदृढ़ तथा समुन्नत हुईं। जैनेन्द्र कुमार आधुनिक मनोविज्ञान के धरातल से चरित्र प्रधान कहानियों की सृष्टि के जन्मदाता हैं। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और यशपाल इस प्रवृत्ति के उन्नायकों में से हैं।

चरित्र प्रधान कहानियों में चरित्र के बाह्य विश्लेषण की अपेक्षा अब चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण की प्रतिष्ठा हुई। व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का विवेचन एक पैनी दृष्टि से हुआ। चरित्र प्रधान कहानियाँ घटनाओं को छोड़ कर स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुईं। इन में विशुद्ध व्यक्ति विश्लेषण, आत्म विश्लेषण और मानसिक उहापोह की प्रवृत्ति आई। जैनेन्द्र कुमार की, 'एकराता', 'मास्टर जी', 'राजीव और भाभी', 'एक टाइप', 'मित्र विद्याधर' 'क्या हो', 'अज्ञेय की', 'छाया', 'सांप', 'मंसो', 'नम्बर दस', 'सिगनेलर', 'पुलीस की सीटी', 'पुरुष का भाग्य', 'इलाचंद्र जोशी की', 'मैं', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी' और यशपाल की 'एक राज', 'अगर हो जाता' 'कुल मर्यादा', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'उबाल', 'पिंजरा', 'बैंगन का पौदा' और नासूर आदि कहानियाँ इस क्षेत्र की प्रतिनिधि और उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

वातावरण प्रधान कहानी

कहानी कल्पना लोक की वस्तु न होकर जीवन की वस्तु है। जीवन स्वतः वातावरण सापेक्ष है। हमारे प्रतिनिधि के जीवन के कार्य-व्यापारों में एक अलौकिक परिपार्श्व और वातावरण की प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा को कहानी की संवेदना के साथ-साथ पूर्ण रूप से चित्रित करने से कहानी वातावरण प्रधान हो जाती है। वातावरण के निर्माण में प्रकृति चित्रण, तथा रूप-चित्रण, इस की मुख्य विशेषताएं है। सामाजिक कहानियों में वातावरण का निर्माण उस में एकान्तिक प्रभाव और स्वाभाविकता के साथ-साथ सौन्दर्य की अवतारणा करती है और कहानी के चरम उद्देश्य का प्रभाव पाठक पर अनन्य ढंग से पड़ता है, जैसे, प्रसाद की 'बिसाती', 'बनजारा', 'आंधी', 'प्रतिध्वनि' तथा प्रेमचन्द की 'अलग्योझा', 'पूस की रात' शतरंज के खिलाड़ी और गुली-डण्डा आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट कहानियाँ है।

ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण की अवतारणा परम आवश्यक तत्व

है, क्योंकि बिना इस के कहानी में न तो ऐतिहासिकता ही आ सकती है और न कहानी का वह चरम उद्देश्य ही चरितार्थ हो सकता है, जिस के आधार पर कहानी लिखी गई है। प्रसाद की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ, जैसे 'देवरथ' 'सालवती', 'स्वर्ग का खंडहर' और 'आकाशदीप' इस दृष्टिकोण से परम सफल कहानियाँ हैं। इन में परिपार्श्व और वातावरण का इतना आकर्षण और वेग है कि पाठक कभी भी इन से दूर नहीं जा सकता तथा कहानियों से उस का सीधा साधारणीकरण होता जायगा। इन कहानियों में वातावरण प्रस्तुत करने में कहानीकार ने अपनी आश्चर्यजनक प्रतिभा का उदाहरण दिया है। फलतः इन कहानियों में ऐतिहासिकता के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य अपूर्व ढंग से प्रस्तुत हुआ है। वस्तुतः वातावरण-प्रधान कहानियों में कवित्वपूर्ण भावना, उस की कलात्मक अभिव्यक्ति, नाटकीय स्थितियों की अवतारणा और उन में चरित्रों के संघर्ष, इस की मुख्य विशेषताएं है। विकास युग में इस दिशा में 'प्रसाद' अद्वितीय हैं और संक्रान्ति युग में 'अज्ञेय' और जैनेन्द्र कुमार। संक्रान्तियुगीन कहानी-कला के अनुसार कहानी में वातावरण प्रस्तुत करने के लिये नाटकीय स्थितियों को उत्पन्न करना और उन में चरित्रों के संघर्ष की अभिव्यक्ति करना, इस की प्रधान कला है। विकास युग में इस का संबंध आदर्शवाद, स्वच्छन्दतावाद से था, लेकिन संक्रान्ति युग में इस का सम्बन्ध यथार्थवाद से है।

विविध कहानियां

उक्त तीन प्रकार की मुख्य कहानियों के अतिरिक्त हिन्दी कहानी-साहित्य में कुछ ऐसी भी विविध ढंग की कहानियाँ हैं, जो अपने में स्वतंत्र हैं तथा वे उक्त किसी भी प्रकार में नहीं आ सकती, जैसे प्रकृतवादी, प्रतीकवादी और सांकेतिक कहानियाँ।

हिन्दी में प्रकृतवादी कहानियों के जन्मदाता बेचन शर्मा उग्र हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों, घृणास्पद और लज्जाप्रद वर्ण्य विषयों को लेकर समाज की तीखी, और व्यंग्यात्मक आलोचना की है। संक्रान्ति युग में यशपाल और 'पहाड़ी' इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। यशपाल मुख्यतः समाजालोचन के कहानीकार है और अनेक स्थलों पर प्रकृतवादिता की प्रेरणा से उन की कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर वर्णन हुए हैं, 'वो दुनियाँ' 'पिंजरे की उड़ान' और 'भस्मावृत चिनगारी' आदि कहानी संग्रहों में कतिपय कहानियाँ इस के उदाहरण में रखी जा सकती हैं। यशपाल की इन प्रकृतवादी कहानियों में समाजालोचन के पीछे निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हैं। पहाड़ी, में यह प्रकृतवाद सब से अधिक तीखे और वीभत्स

रूप में व्यक्त हुआ है। इन्हों ने मुख्यतः स्त्री-पुरुष के लैंगिक सम्बन्धों को लेकर काम और वासना की अधिक से अधिक विकृतियों की अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में दी है। इस दिशा में 'पहाड़ी' की 'विश्राम', 'केवल प्रेम ही', 'चार विराम', 'यथार्थवादी रोमान्स', 'छिपकली', 'एस्पिरीन की टेब्लेट' और 'राजधानी' आदि कहानियाँ उपयुक्त उदाहरण हैं। विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से, अर्थात् कला-कला के लिये, प्रकृतवादी कहानियाँ अत्यन्त सशक्त चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफल और यथार्थवादी परम्परा की सजीव अभिव्यक्ति है। इन की कला सर्वथा निर्दोष है, लेकिन प्रभाव और उद्देश्य दोनों दृष्टियों से ये कहानियाँ कुरुचिपूर्ण और अमंगल कारक है।

प्रतीकवादी कहानियों का आरम्भ राय कृष्णदास से हुआ लेकिन उस का पूर्ण विकास संक्रान्ति युग में जैनेन्द्र कुमार और 'अज्ञेय' की कहानी-कला द्वारा हुआ। जैनेन्द्र ने अपनी 'लाल सरोवर', 'तत्सत्', 'वह सांप', 'कामनापूर्ति' 'राजपथिक', 'नीलमदेश की राजकन्या' आदि कहानियों में विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से जीवन के अमृत तत्वों तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को लिया है। अज्ञेय ने पैगोडा वृक्ष, पुरुष का भाग्य, चिड़ियाघर और कोठरी की बात आदि कहानियों में प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र उपस्थित किये हैं। वस्तुतः प्रतीकवादी कहानियाँ अपने कलात्मक और भावात्मक दोनों रूपों में उत्कृष्ट है। अमूर्त विषयों और मनुष्य के अन्त सौन्दर्य तथा मानसिक संघर्षों के चित्र इस में प्रस्तुत हुए हैं।

सांकेतिक कहानियों के जन्मदाता जैनेन्द्र कुमार हैं। इन्हों ने दृष्टांत, वार्ता, और कथा-शैलियों में जीवन की रहस्यवादी समस्याओं और दार्शनिक पक्ष को लेकर और उनसे कहानियों की सृष्टिकर उपदेश और प्रवचन का काम लिया है। 'कःपन्था', 'देवी-देवता', 'उर्ध्वबाहु', "भद्रबाहु', 'गुरु कत्यायन' और नारद का अर्घ्य आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं इन सांकेतिक कहानियों में वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्मता, किन्तु उन की व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति दोनों उल्लेखनीय हैं। सियाराम शरण गुप्त की भी 'मानुषी तथा कोटर और कुटीर' इस शैली की सफल कहानियाँ है।

कहानी-कला के मूल तत्वों और कहानियों के वर्गीकरण के निरूपण में जो सब से विशेष बात है, वह है कहानी-कला का निरन्तर विकास और इस की मान्यताओं में परिवर्तन और परिवर्द्धन। हिन्दी कहानी-कला अपने व्यापक रूप में कितने विकास पथ पर है, यह सत्य इस के कलात्मक समीक्षा से स्पष्ट है।

उपसंहार

(क) कहानीकला और साहित्य के अन्य प्रकार

आधुनिक युग में कहानी-कला को जितनी प्रमुखता मिली है, उस की तुलना में साहित्य के अन्य प्रकार, जैसे, उपन्यास, एकांकी नाटक, निबंध, गद्यगीत, रेखा-चित्र, गीत और खंडकाव्य आदि नहीं आ सकते। यह युग गद्य का युग है, लेकिन गद्य साहित्य के भी अन्य प्रकारों में जितना प्रचलन और व्यापकता इस कला को मिली है, वह अनन्य है। इस की शिल्पगत सुगमता और सरलता के अतिरिक्त इस में आनन्द और मनोरंजन की संभावनाएं अपेक्षाकृत सब से अधिक है। वस्तुतः इस सत्य का दर्शन हम कहानी-कला और साहित्य के उक्त अन्य प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से कर सकेंगे।

कहानी और उपन्यास

कहानी और उपन्यास कथा-साहित्य की दो विशिष्ट शैलियाँ हैं और समूचे गद्य साहित्य पर उन के प्रभाव अपूर्व हैं। लेकिन कहानी-कला का स्थान और इस की व्यापकता तथा लोकप्रियता उपन्यास से भी अधिक है। वस्तुतः कहानी और उपन्यास के मूल तत्वों में समानता है लेकिन दोनों के शिल्पविधि और रूप विधान में अपार भिन्नता है। यह भिन्नता और अन्तर दोनों के धरातल और भाव परिधि में ही हैं। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत है। इस में हमारा सम्पूर्ण समाज, हमारा सम्पूर्ण जीवन, एक समूचा युग संगुंफित हो सकता है, क्योंकि इस की परिधि अपार है। इस के विस्तार और प्रसार में कोई विशेष सीमा नहीं। सौ पृष्ठों से लेकर हजार पृष्ठों तक में उपन्यास की संवेदना फैली मिलती है, लेकिन उस के विपरीत कहानी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। यह सम्पूर्ण जीवन के लिये किसी एक सत्य की ही दीप्ति दिखा सकती है। उपन्यास में जहाँ अनेक भाव अनेक रसों की निष्पत्ति होती है, वहाँ कहानी में केवल एक ही विचार और एक ही भाव की अभिव्यक्ति हो सकती है। उपन्यास के निर्माण और विकास में एक से अधिक संवेदनाएं, और एक से अधिक इतिवृत्ति तथा अनेक रूप की घटनाओं और कार्य-व्यापारों की अवतारणा होती है, लेकिन कहानी के निर्माण और विकास में केवल एक सूक्ष्म संवेदना, एक सूक्ष्म इतिवृत्ति और

तक पहुँचती हैं। कहानी-कला उसी धरातल से पूर्ण स्वतंत्र और अधिक से अधिक शिल्पगत अधिकारों के साथ अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है। अतएव कहानी-कला में एकांकी-कला की अपेक्षा पूर्ण सुगमता और सरलता के साथ एकांत प्रभाव, मनोरंजन और आनन्द प्रस्तुत करने की क्षमता अधिक होती है। आधुनिक कहानी-कला और एकांकी-कला उत्तरोत्तर एक दूसरे के समीप होती जा रही हैं। इस का सब से बड़ा कारण यह है कि रंगमंच और अभिनय के अभाव से कहानी की भाँति एकांकी भी पढ़ने के लिये अधिक लिखे जा रहे हैं।

कहानी और निबंध

किसी विषय अथवा समस्या को ले कर उस पर अपनी ओर से चिन्तन, व्याख्या और विश्लेषण करने की व्यवस्था को निबंध कहते हैं। इस में एक भाव अथवा एक ही समस्या मुख्य होती है और उस पर व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत करना निबंध-कला की शोभा है। इस तरह निबंध-कला व्यक्तित्व प्रधान होती है। यह तत्व वस्तुतः कहानी के तत्व के समान हैं अर्थात् निबन्ध और कहानी का भाव-पक्ष प्रायः समान होता है। लेकिन उस का प्रतिपादन और उस की कलात्मक अभिव्यक्ति दोनों कलाओं में विभिन्न रूप से होती है। कहानी-कला उस भाव अथवा समस्या के चित्रण विश्लेषण के लिये उस के अनुरूप एक कथावस्तु ढूँढेगी और उसे आकर्षण इतिवृत्ति में बाँधेगी। पात्रों और घटनाओं के माध्यम से उस में आश्चर्यजनक सजीवता और गति पैदा होती है। कौतूहल जिज्ञासा वृत्ति से समूचे कहानी के कार्य-व्यापार में आकर्षण उपस्थित होता है और अन्त में कहानी अपने सामूहिक प्रभाव के साथ लक्ष्य के चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इस प्रकार हमें सजीव और व्यावहारिक रूप से उदाहरण सहित किसी भी विषय और समस्या का हल, उस पर कलाकार का दृष्टिकोण ज्ञात हो जाता है। निबंध में इन कलागत तत्वों का अभाव रहता है इस में केवल विषय समस्या से संबंधित बौद्धिक विश्लेषण सूखे ज्ञान, तर्क और व्याख्या के अंश होते हैं।

कहानी और गद्यगीत तथा रेखाचित्र

गद्यगीत और रेखाचित्र से भी कहानी भिन्न है। गद्यगीत में किसी भाव के धरातल से कलाकार की भावात्मक उड़ान होती है और रेखाचित्र में किसी एक मानसिक स्थिति या चरित्र के आन्तरिक व्यक्तित्व को वर्णन और चित्रण की रेखाओं में बाँधने का प्रयास होता है। कहानी-कला इन दोनों से

महान होती है, ये दोनों शैलियाँ और गद्य रूप उस के अन्तर्गत आते हैं अर्थात् कहानी के रूप-निर्माण में गद्यगीत और रेखाचित्र की अवतारणा सदा होती रहती है और इन शैलियों से कहानी के रूप-निर्माण में सहायता ली जाती है। उत्कृष्ट कहानियों में सदैव उस की कथा-वस्तु को पूर्ति, चरित्र-चित्रण, और वातावरण निर्माण के लिये इन शैलियों से निर्मित भाव-चित्र और रेखा-चित्र मिलते हैं। आधुनिक कहानी-कला में रेखाचित्र शैली को कहीं-कहीं प्रमुखता मिल रही है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से अभी तक रेखाचित्र कहानी के समग्र सहायक तत्वों में आती है।

कहानी और गीत

पद्य साहित्य के प्रकार में गीत, कहानी को तुलना में यथासंभव रखी जा सकती है क्योंकि गीत में एक विशेष भाव, चित्तवृत्ति के कलास्वरूप लिखी जाती है और उन में एक भाव का संगीत मुखरित होता है। इस के अतिरिक्त कहानी गीत से भिन्न है क्योंकि गीत मूलतः भाव-जगत् की अनुभूतियों के आधार पर लिखा जाता है। उस में कल्पना-तत्व के साथ-साथ संगीत-तत्व का तादात्म्य उपस्थित किया जाता है, लेकिन कहानी जीवन के धरातल से जीवन की आलोचना और सत्य-दर्शन से लिखी जाती है। इस में चिन्तन, मनन और व्याख्या-विश्लेषण के तत्व होते हैं। गीत मुक्तक काव्य के अन्तर्गत है अतएव इस में घटनाओं; कार्य-व्यापारों की असम्बद्धता, अव्यवस्था आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन कहानी शिल्पविधि प्रधान होती है और उस की शिल्पगत मान्यताओं के अनुरूप उस में घटना की क्रमबद्धता आवश्यक है, सत्य-दर्शन और जीवन की सजीव व्याख्या अपेक्षित है। गीत में मूल रूप से एक भाव ही मुख्य है, जिस में किसी कथा-वस्तु और उस की एक निश्चित संवेदना तथा लक्ष्य-विन्दु परम आवश्यक तत्व है।

कहानी और खण्डकाव्य

गीत में कहानी-कला के अनुरूप जिन तत्वों के अभाव है, उन की कुछ और पूर्ति खण्डकाव्य में हो जाती है अर्थात् इस में एक निश्चित संवेदना और उस से निर्मित एक कथा-वस्तु होती है। कथा-वस्तु का धरातल जीवन की किसी विशिष्ट घटना को बनाया जाता है। इस में पात्र होते हैं और पात्रों से घटनाओं की अवतारणा होती है और सब का सामूहिक प्रभाव उस के लक्ष्य पर स्पष्ट होता है। लेकिन खण्डकाव्य और कहानी की निर्माण-शैली और रूपविधान में

महान अन्तर होता है। कहानी में इतिवृत्ति का जितना आकर्षण और कौतूहल के साथ वर्णन चित्रण का जितना बल होता है, वह खण्डकाव्य में नहीं मिलता। यद्यपि प्रभाव और लक्ष्य की दृष्टि से खण्डकाव्य कहानी से कहीं अधिक महान और व्यापक है, फिर भी कहानी में आकर्षण और सुगमता अधिक है।

(ख) कहानी के शिल्पविकास की मान्यता

पिछले पृष्ठों में कहानी-कला के इतने व्यापक और विस्तृत अध्ययन से हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, वस्तुतः वे ही निष्कर्ष कहानी-कला के उन समस्त मूल तत्वों से संबंधित हैं, जो कहानी के शिल्प-विकास की विशिष्ट मान्यताएं हैं।

मानव जीवन में कहानी का आदि स्थान है ज्योंही मनुष्य को बोलना आया होगा, उसी क्षण से किसी न किसी रूप में कथा-कहानी का आरम्भ हुआ होगा। कौतूहल और जिज्ञासा, अर्थात् क्यों, कैसे की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने इस के जन्म में इतनी बलवती प्रेरणा दी होगी कि साहित्य के इस माध्यम ने बहुत ही शीघ्र मानव-समाज को अपने आकर्षक और अनिवार्यता की सीमा में बाँध लिया होगा। कौतूहल और जिज्ञासा से परिपूर्ण कथा-सूत्र जब अपने रूप-विधान में बहुत विस्तृत और अनेक कार्य-व्यापारों के साथ निर्मित हुआ, तब इस से कथा, आख्यान, और लम्बी-लम्बी कहानियों की सृष्टि हुई। इस के आधार पर कहीं प्रबन्ध काव्य रचे गए, कहीं इस के मेरुदंड पर नाटक और नीति ग्रंथ प्रस्तुत हुए। इस से कहीं धर्मोपदेश दिए गए, कहीं दार्शनिक तत्वों के निरूपण और कहीं इस के माध्यम से विशुद्ध मनोरंजन उपस्थित हुए। ज्यों-ज्यों मनोरंजन की वृत्तियाँ बढ़ती गयी, और आधुनिक जीवन में द्रुतगामिता आती गयी, त्यों-त्यों कहानी के निश्चित शिल्पविधि का विकास होता गया। इस की संवेदनात्मक सीमा, रूप और शिल्पविधान में उत्तरोत्तर पश्चिम की कहानी-कला के अनुरूप, गठन और मँजाव आता गया। इस की संवेदना में पहले जीवन की एक लम्बी कथा आई, फिर धीरे-धीरे सीमा संकुचित हुई, और इस में केवल जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाएं आईं और उन के प्रकाश में मानव-जीवन की व्याख्या हुई। इस के उपरान्त नित्यप्रति के जीवन और उस की अलग-अलग समस्याओं में से केवल एक समस्या, समस्या का भी एक अंग और मूल घटना के आधार पर कहानी का निर्माण होने लगा। फिर शीघ्र ही विकास-क्रम से इस में मनोविज्ञान का प्रवेश हुआ और इस के संविधान में अनुभूतियों की प्रेरणा प्रधान हुई।

अध्ययन की दृष्टि से कहानी-कला के उक्त समस्त विकास क्रमों में, सौंदर्य और सत्य दर्शन ही इस कला का चरम लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन में, एक ओर शिल्प-विधान में उत्तरोत्तर विकास होता चला आ रहा है, तथा दूसरी ओर कहानी-कला जीवन के अधिक से अधिक समीप आती जा रही है और अपनी संवेदनात्मक सीमा में जीवन के विविध समस्याओं तथा अनेक दायित्वों को समेटती जा रही है। विशुद्ध भाव पक्ष की दिशा में कहानी-कला का यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा है। बाह्य समस्याओं से आन्तरिक समस्याओं के चित्रण और निदान प्रस्तुत करने में कहानी-कला अग्रसर होती जा रही है। विकास युग में, अर्थात् प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी-कला में अपेक्षाकृत जीवन, जगत्, बाह्य परिस्थितियाँ, बाह्य समस्याएँ, और व्यापक रूप से जीवन अपने बहिरङ्ग रूप में प्रतिपादित हुआ और जीवन का व्यावहारिक संतुलन उन की विषय-सीमा में प्रतिष्ठित हुआ और जीवन के विविध अङ्गों पर संवेदनात्मक दृष्टि डालना उन की कहानी-कला का चरम लक्ष्य निश्चित हुआ। उस युग में समकालीन सामाजिक राजनीतिक कुरीतियों के प्रति सुधार का उत्कट आग्रह तथा यथार्थ समस्याओं के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा राष्ट्रीय जागरण का जोश, कहानी-कला की विशिष्ट मान्यताएँ बनीं। कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्ति का स्पष्ट आकार और शिल्पविधान की स्पष्टता और सुगमता का प्राधान्य रहा।

लेकिन इस के उपरान्त अर्थात् संक्रांति युग में हिन्दी कहानी-कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी। वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उस ने नयी दिशाओं में फैलना आरम्भ किया। इस के मूलतः दो कारण थे, प्रथम इस में हिन्दी कहानी-कला का अमरीकी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी कहानी-कला से सीधा सम्पर्क, द्वितीय, मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति का अनुसरण। फलतः इस युग में आकर कहानी की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हुए। इस युग की प्रतिनिधि कहानी लेखकों की कला में सुगठित घटनाक्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति तथा सरल साधारण स्पष्ट चरित्र के लिए कोई विशेष आग्रह नहीं रह गया। जीवन की एक द्रुत झाँकी; स्वभाव, चरित्र या मनःस्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को ही आधुनिक कहानीकार अपनी कला का उपजीव्य बनाता है। स्पष्ट शब्दों में कहानी-कला का मेरुदण्ड व्यक्ति अथवा चरित्र हो गया है। मानव मन कितना जटिल, उस के कर्म की अन्तःप्रेरणाएँ किस प्रकार चेतन-अवचेतन के असा-

अध्ययन की दृष्टि से कहानी-कला के उक्त समस्त विकास क्रमों में, सौंदर्य और सत्य दर्शन ही इस कला का चरम लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन में, एक ओर शिल्प-विधान में उत्तरोत्तर विकास होता चला आ रहा है, तथा दूसरी ओर कहानी-कला जीवन के अधिक से अधिक समीप आती जा रही है और अपनी संवेदनात्मक सीमा में जीवन के विविध समस्याओं तथा अनेक दायित्वों को समेटती जा रही है। विशुद्ध भाव पक्ष की दिशा में कहानी-कला का यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा है। बाह्य समस्याओं से आन्तरिक समस्याओं के चित्रण और निदान प्रस्तुत करने में कहानी-कला अग्रसर होती जा रही है। विकास युग में, अर्थात् प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी-कला में अपेक्षाकृत जीवन, जगत्, बाह्य परिस्थितियाँ, बाह्य समस्याएँ, और व्यापक रूप से जीवन अपने बहिरङ्ग रूप में प्रतिपादित हुआ और जीवन का व्यावहारिक संतुलन उन की विषय-सीमा में प्रतिष्ठित हुआ और जीवन के विविध अङ्गों पर संवेदनात्मक दृष्टि डालना उन की कहानी-कला का चरम लक्ष्य निश्चित हुआ। उस युग में समकालीन सामाजिक राजनीतिक कुरीतियों के प्रति सुधार का उत्कट आग्रह तथा यथार्थ समस्याओं के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा राष्ट्रीय जागरण का जोश, कहानी-कला की विशिष्ट मान्यताएँ बनीं। कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्ति का स्पष्ट आकार और शिल्पविधान की स्पष्टता और सुगमता का प्राधान्य रहा।

लेकिन इस के उपरान्त अर्थात् संक्रांति युग में हिन्दी कहानी-कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी। वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उस ने नयी दिशाओं में फैलना आरम्भ किया। इस के मूलतः दो कारण थे, प्रथम इस में हिन्दी कहानी-कला का अमरीकी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी कहानी-कला से सीधा सम्पर्क, द्वितीय, मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति का अनुसरण। फलतः इस युग में आकर कहानी की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हुए। इस युग की प्रतिनिधि कहानी लेखकों की कला में सुगठित घटनाक्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति तथा सरल साधारण स्पष्ट चरित्र के लिए कोई विशेष आग्रह नहीं रह गया। जीवन की एक द्रुत झाँकी; स्वभाव, चरित्र या मनःस्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को ही आधुनिक कहानीकार अपनी कला का उपजीव्य बनाता है। स्पष्ट शब्दों में कहानी-कला का मेरुदण्ड व्यक्ति अथवा चरित्र हो गया है। मानव मन कितना जटिल, उस के कर्म की अन्तःप्रेरणाएँ किस प्रकार चेतन-अवचेतन के असा-

अध्ययन की दृष्टि से कहानी-कला के उक्त समस्त विकास क्रमों में, सौंदर्य और सत्य दर्शन ही इस कला का चरम लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन में, एक ओर शिल्प-विधान में उत्तरोत्तर विकास होता चला आ रहा है, तथा दूसरी ओर कहानी-कला जीवन के अधिक से अधिक समीप आती जा रही है और अपनी संवेदनात्मक सीमा में जीवन के विविध समस्याओं तथा अनेक दायित्वों को समेटती जा रही है। विशुद्ध भाव पक्ष की दिशा में कहानी-कला का यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा है। बाह्य समस्याओं से आन्तरिक समस्याओं के चित्रण और निदान प्रस्तुत करने में कहानी-कला अग्रसर होती जा रही है। विकास युग में, अर्थात् प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी-कला में अपेक्षाकृत जीवन, जगत्, बाह्य परिस्थितियाँ, बाह्य समस्याएँ, और व्यापक रूप से जीवन अपने बहिरङ्ग रूप में प्रतिपादित हुआ और जीवन का व्यावहारिक संतुलन उन की विषय-सीमा में प्रतिष्ठित हुआ और जीवन के विविध अङ्गों पर संवेदनात्मक दृष्टि डालना उन की कहानी-कला का चरम लक्ष्य निश्चित हुआ। उस युग में समकालीन सामाजिक राजनीतिक कुरीतियों के प्रति सुधार का उत्कट आग्रह तथा यथार्थ समस्याओं के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा राष्ट्रीय जागरण का जोश, कहानी-कला की विशिष्ट मान्यताएँ बनीं। कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्ति का स्पष्ट आकार और शिल्पविधान की स्पष्टता और सुगमता का प्राधान्य रहा।

लेकिन इस के उपरान्त अर्थात् संक्रांति युग में हिन्दी कहानी-कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी। वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उस ने नयी दिशाओं में फैलना आरम्भ किया। इस के मूलतः दो कारण थे, प्रथम इस में हिन्दी कहानी-कला का अमरीकी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी कहानी-कला से सीधा सम्पर्क, द्वितीय, मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति का अनुसरण। फलतः इस युग में आकर कहानी की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हुए। इस युग की प्रतिनिधि कहानी लेखकों की कला में सुगठित घटनाक्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति तथा सरल साधारण स्पष्ट चरित्र के लिए कोई विशेष आग्रह नहीं रह गया। जीवन की एक द्रुत झाँकी; स्वभाव, चरित्र या मनःस्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को ही आधुनिक कहानीकार अपनी कला का उपजीव्य बनाता है। स्पष्ट शब्दों में कहानी-कला का मेरुदण्ड व्यक्ति अथवा चरित्र हो गया है। मानव मन कितना जटिल, उस के कर्म की अन्तःप्रेरणाएँ किस प्रकार चेतन-अवचेतन के असा-